"बुन्देलखण्ड के दुर्ग
एक ऐतिहासिक अध्ययन"

इतिहास विषय के अन्तर्गत

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की

पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी BUNDELKHAND UNIVERSITY JHANSI

विद्या ऽमृतमश्नुते

शोध-प्रबन्ध

वर्ष-2006

निर्देशक
डॉ० के.के. शुक्ल
प्राचार्य
राजकीय महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, बाँदा

शोधार्थी
रामसजीवन

अनुसंधान केन्द्र
पंडित जवाहर लाल नेहरू पी.जी. कॉलेज, बाँदा

डॉ० के० के० शुक्ल
प्राचार्य
राजकीय महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय बाँदा (उ० प्र०)

दिनांक 21-03-2006

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री रामसजीवन ने "बुन्देलखण्ड के दुर्ग एक ऐतिहासिक अध्ययन" विषय पर शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी की डॉक्टर ऑफ फिलासफी उपाधि हेतु मेरे निर्देशन में पं0 जवाहर लाल नेहरू पी0 जी0 कालेज बाँदा केन्द्र से निर्धारित अवधि में विश्वविद्यालय के नियमानुसार पूर्ण किया है। यह शोध प्रबन्ध उनके द्वारा एकत्रित किये गये तथ्यों पर आधारित है। अतः शोध प्रबन्ध पी-एच0 डी0 उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिए अग्रसारित किया जाता है।

परिक्षणार्थ अग्रसारित

डॉ0 नन्दलाल शुक्ल
प्राचार्य
पं0 जे0 एन0 पी0 जी0 कालेज बाँदा

शोध निर्देशक

डॉ0 कमला[illegible]शुक्ल
राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बाँदा
प्राचार्य
राजकीय महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय बाँदा(उ0प्र0)

घोषणा पत्र

मै रामसजीवन पुत्र श्री मइयादीन प्रजापति ग्राम जरिया पो0 खौडा जिला बाँदा का निवासी हूँ। मै शपथ पूर्वक यह घोषडा करता हूँ कि यह शोध प्रबन्ध जिसका शोध प्रारूप विश्वविद्यालय में दिनाँक 29 अप्रैल 2002 को शोध हेतु स्वीकृत हुआ था, मेरी एक मात्र मौलिक कृति है। मैने इसके लेखन में किसी अन्य शोध प्रबन्ध की अनुकृति नहीं की है। केवल अपने कथन को प्रमाणित करने के लिए अन्य सन्दर्भ ग्रन्थों का सहारा उदाहरण के रूप में लिया है। इसके लेखन में मैने अपने शोध निर्देशक डॉ0 कमलाकान्त शुक्ल, प्राचार्य राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय (बाँदा) के निर्देशों का पूर्ण अनुपालन किया है।

अतः यह मेरी ही कृति है।

दिनाँक ....

शपथ कर्ता

रामसजीवन

रामसजीवन

प्राक्कथन

ज्ञान का उदय मानव मस्तिष्क में जन्म लेते ही हो जाता है।किन्तु बचपन में वह उदायागिरि में उदित बाल रवि की भाँति होता है।जैसे–जैसे आयु की वृद्धि होती है उसके ज्ञान में भी वृद्धि स्वअनुभूति के माध्यम से होती हैं।किसी भी बालक के प्रारम्भिक गुरू उसके माता पिता होते है।जो परिवारिक पर्यावरण के अनुसार अपने शिशु को पल्लवित करते है।और स्वालम्बी बनाते है।बालक की मेधा का विकास करना माता पिता का पुनीत कर्तव्य है

जब शिशु अपने आयु के कुछ वर्ष ब्यतीत कर चुकता है।तो वह गुरू के सम्पर्क में आता है।इन गुरूओं की संख्या एक न होकर अनेक होती है। प्राथमिक शिक्षा से लेकर स्नातकोत्तर उपाधि गृहण करने तक मेरें अनेक गुरू रहें।जो प्रेरणा के स्रोत थे उन्हीं की कृपा से मैं कुछ करने में सक्षम हुआ इसलिए सर्व प्रथम उन्ही के चरण कमलों में अपनी श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ।मेरें हृदय में यह उत्कण्ठा थी की इतिहास विषय में स्नातकोत्तर उपाधि गृहण करने के पश्चात मैं अपने पवित्र मात्र भूमि बुन्देलखण्ड के लिए कुछ करू इसी समय मेरी मुलाकात राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाबिद्यालय बाँदा के प्राचार्य डॉ0 कमलाकान्त शुक्ला से हुई उन्होनें मेरे उत्साह को देखकर मुझे यह सलाह दी कि बुन्देलखण्ड के सुप्रसिद्ध दुर्ग अनेक राजनीतिक घटनाओं से जूडे हुए है।जिनका विषद वर्णन बेद,पुराणों महाकाव्यों में हैं। तथा अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों में उनका उल्लेख भी है।ये दुर्ग हमारी धर्म संस्कृति के संस्थापक भी है जिन्होंने अनेक कलाओं को जन्म दिया है।मैने शुक्ला जी की अन्तर वेदना को समझा और उनसे यह अनुरोध किया कि यदि वे मेरे शोध निर्देशक बन जाय तो मै यह कार्य पूरा कर सकता हूँ।प्रसन्नता है कि वे मेरे शोध निर्देशक बने और उन्हीं की महान अनुकम्पा से मेरा यह कठिन कार्य पूरा हुआ शोध प्रबन्ध लिखा गया जिसे मै आपके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ।

बुन्देलखण्ड के दुर्गो पर शोध कार्य करना कोई साधारण कार्य नही था।दिशा हीन व्यक्ति दुर्गो की खोज में कहाँ भटके केवल बाँदा जनपद के वे दुर्ग जहाँ यदा कदा तीज त्योहारों में विविध प्रकार के मेले आयोजित होते है।मेरे द्वारा देखे गये थे।शेष दुर्गो का मुझे ज्ञान नहीं था इसी समय मुझे एक पुस्तक श्री राम सेव रिक्षारिया की उपलब्ध हुई जो बुन्देलखण्ड के दुर्गो पर थी।उस पुस्तक का सहारा लेकर मैने बुन्देलखण्ड के महत्वपूर्ण 45 दुर्ग घूमें इनमे अधिकांश दुर्ग जीर्ण–शीर्ण स्थित में है।और कुछ पूरी तरह नष्ट हो चुके हैं धन और सम्पत्ति के प्रलोभन में दुर्ग के महत्व स्थल खोद कर नष्ट कर दिये है।जिन्हें देखकर शोधकर्ता को गहरा दुख हुआ और लगा कि वर्तमान पीढ़ी को अतीत की घटनाओं से कोई लगाव नहीं है। वे अपने पूर्वजों के सम्मान को और अपनी संस्कृति को बचाने के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं

कर रहे। पं0 गोरे लाल तिवारी,एस0डी0 त्रिवेदी,विहारी लाल बबेले की पुस्तकों और विभिन्न गजेटियर से यह पता लगा कि बुन्देलखण्ड में 400 से अधिक दुर्ग थे। इनमें से बावन गढ़ गौंड़ नरेशो के अधिकार में थे 100से अधिक दुर्ग चन्देलों के अधिकार में इतने ही दुर्ग बुन्देले और बघेलों के अधिकार मे थे।कलान्तर से इनमें से कुछ तुर्को और मुगलों के अधिकार में आ गये थे।दुर्गो को देखने से प्रसन्नता भी हुई और कष्ट भी हुआ जीर्ण–शीर्ण भवनों को देखकर गरिमामयी अतीत की अनुभूति हुई परन्तु वर्तमान दुर्दशा देखकर अपने–आप में रोना आया।

दुर्गो का इतिहास जानने के लिए यह आवश्यक था कि प्रत्येक दुर्ग के सन्दर्भ में ऐतिहासिक ग्रन्थ उपलब्ध हो। बुन्देलखण्ड के अनेक पुस्तकालयों में पुस्तकों की खोज की गयी पुस्तकों के लिए झाँसी, ग्वालियर, जबलपुर, भोपाल, इलाहाबाद, बनारस, के पुस्तक विकृेताओं और प्रकाशकों से भी सम्पर्क साधा गया किन्तु कोई विशेष कामयाबी हाथ नहीं लगी, इलाहाबाद, झाँसी, लखनऊ, खजुराहो, आदि के संग्रहालयों में कुछ प्राचीन ग्रन्थ,तथा आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट ऑफ इण्डिया इण्डियन, एन्टीक्वेरी,एसियासिक सोसाइटी ऑफ बंगाल आदि देखने को मिली तथा कुछ प्राचीन अभिलेख उपलब्ध हुए जिनका सम्बन्ध विविध दुर्गो से इनमे से कुछ अभिलेख अपटनीय थे। जिन्हें पढ़ा नहीं जा सकता मुझे कुछ समय बाद फोर्ट्स ऑफ इण्डिया नामक ग्रन्थ उपलब्ध हुआ जिनमें सुप्रसिद्ध भारतीय दुर्गो का उल्लेख था। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड के इतिहास पर लिखी गयी विभिन्न पुस्तकें शोधकर्ता को मिलीं अनेक जनपदों के गजेटियरर्स उपलब्ध हुए जिनका अध्ययन मैने किया इनसे पर्याप्त जानकारी दुर्गो के बारे मे मिलीं।

यथार्थ जानने के लिए पुस्तकीय ज्ञान पर्याप्त नहीं होता बल्कि क्षेत्र–क्षेत्र में दुर्ग है।वहाँ के निवासियों से भी दुर्ग की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।अनेक जनश्रुतियाँ और परम्परायें दुर्ग से जुडी होती है।दुर्गो में अनेक मेलों का आयोजन होता है।यहाँ जो श्रद्धालु आते है यहाँ के पवित्र जलाशयों में स्नान करते हैं, धार्मिक स्थलों में पूजा अर्चना करते है।तथा दुर्ग के महत्वपूर्ण स्थलों देखते है कालिंजर और महोबा में आल्हा–ऊदल की बीरता की कहानियाँ सुनने को मिलीं इसी प्रकार दतिया और ओरछा में वीर सिंह जी देव और हरदौल की कथाएँ सुनने को मिली। ग्वालियर दुर्ग में राजा मान सिंह और मृगनैनी की प्रेम गाथा का वर्णन सविस्तार सुनने को मिलता है। दुर्ग में ही पहुँचकर अनेक धर्मो का परिचय मिलता है। और उस धर्म से सम्बन्धित पूजा विधान का पता लगता है। अनेक दुर्गो में धर्म समन्वय के दर्शन भी होते है।इन दुर्गो में अनेक मूर्तियाँ भी उपलब्ध होती हैं जिन्हें मूर्ति शिल्प का उत्कृष्ट उदाहरण माना जा सकता है।

बुन्देलखण्ड में उपलब्ध दुर्ग तदयुगीन वास्तुशिल्प का बोध कराते हैं। दुर्ग की प्राचीर प्रवेश द्वार आवासीय स्थल सामरिक महत्व के स्थल प्रसाासनिक स्थल और विविध प्रकार के मार्ग दुर्ग से जुडे होते हैं। दुर्ग आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ थे यहाँ अनेक व्यापारी और उत्पादक तथा उद्यमि आया–जाया करते थे। और यहीं से अन्य स्थलों को भी तैयार माल का निर्यात किया जाता था। अनेक दुर्गो के उत्तखनन विविध प्रकार की मुद्रायें और माप तौल के बॉट उपलब्ध हुए जिनसे तद्युगीन व्यापार का पता लगता है और तद्युगीन कर प्रणाली का बोध होता है।

दुर्गो का सर्वाधिक महत्व सामरिक दृष्टि कोण से था यह ऐसे स्थल में बनाये गये थे जहाँ शत्रु सेना आसानी से नही पहुँच सकती थी यदि पहुँच भी जाती तो उसे दुर्ग विजित करने में कठिनाई का सामना करना पडता था।पाण्डु वंश, नागवंश, कछवाहा वंश, राष्ट्रकूट, गुर्जर प्रतिहास, चन्देल कल्चुरि, गौंड, बुन्देले, और मराठे यहाँ के अनेक दुर्गो के शासक रहे। उनके नेतृत्व में अनेक युद्ध इन दुर्गो में लड़े गये जिनका वर्णन विविध ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। तथा जिनका यशोगान आज भी होता रहता हैं। इस समय चतुरंगणीं सेना युद्ध किया करती थी जिनके पास विविध अस्त्र–शस्त्र होते थे इस समय स्थल युद्ध ही प्रधान था इसलिए मुख्य रूप से वे ही अस्त्र प्रयोग में लाये जाते थे। जिनसे शत्रु सेना पर घातक हमला किया जा सकता था।

दुर्गो का सविस्तार अध्ययन शोध प्रबन्ध में किया गया है। तथा उसका विषद वर्णन भी उसमें प्रस्तुत किया गया है यद्यपि ज्ञान की न्यूनता और विषय सामाग्री के आभाव के कारण कुछ न कुछ कमी शोध प्रबन्ध में रह गई है। किन्तु वह कभी ऐसी नही हैं कि शोध प्रबन्ध के पाठक गढ़ शोध कर्ता को छमा न कर सके।

सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध पाँच अध्याय में विभाजित है। शोध प्रबन्ध के प्रत्येक अध्याय में विषयानुसार ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया गया है। तथा उसके लिए समुचित ग्रन्थीय साक्ष्य प्रस्तुत किये गये है। शोध प्रबन्ध के अन्त में शोध प्रबन्ध का विश्लेषण और उसके परिणामों से अवगत कराया गया है। तथा अन्त में सन्दर्भग्रन्थ सूची संलग्न की गई है इन ग्रन्थों का सहारा शोध प्रबन्ध को पूरा करने के लिए किया गया है।

शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में बुन्देलखण्ड का परिचय दिया गया है। उसका सीमांकन, नामकरण, दर्शाया गया है। कि किस युग मे बुन्देलखण्ड किस नाम से विख्यात था बुन्देलखण्ड का प्रकृतिक विभाजन बुन्देलखण्ड की पर्वत श्रेणियाँ बुन्देलखण्ड में प्रवाहित होने वाली सरितायें भी इसी अध्याय में वर्णित है प्रचीन काल से अब तक बुन्देलखण्ड में विविध नगरों का विकास हुआ जिनका वर्णन भी इसी अध्याय में है। बुन्देलखण्ड की प्रकृतिक संरचना का प्रभाव यहाँ की अर्थिक दशा में

पडा जिसका वर्णन सविस्तार इस अध्याय में किया गया है।

शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में बुन्देलखण्ड में उपलब्ध दुर्गो के सन्दर्भ में विवरण प्रस्तुत किया गया है। सुरक्षा की दृष्टि से इन दुर्गो का महत्व था इस अध्याय मे दुर्ग की परिभाषा, दुर्ग की कोटि दुर्ग का प्रसासनिक महत्व, सुरक्षा की दृष्टि से दुर्गो का रचना विधान और दुर्गो में रहने वाली सेना का सविस्तार वर्णन है। यहाँ के दुर्ग धार्मिक दृष्टि आस्था के केन्द्र रहें है। इसलिए तदयुगीन धार्मिक ब्यवस्था का भी वर्णन इस अध्याय में है वास्तुशिल्प की दृष्टि से भी दुर्गो के निर्माण विधान में प्रकाश डाला गया है। क्योंकि पर्यटक दुर्गो को तभी देखेगा जब उसमे कुछ विशेषताएं होगी। शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में कालिंजर अजयगढ़, रसिन, मडपा, शेरपुर, रनगढ़, महोबा, सिरसागढ़, मनियागढ़, ओरछा गढ़ कुण्ढार, मण्डला, चन्देरी, ग्वालियर आदि दुर्गो पर प्रकाश डाला गया है। क्योंकि अधिकांश पर्यटक इन्हीं दुर्गो को देखने के लिए आता है।और उनके वास्तुशिल्प से आर्कर्षित होता है।

शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में वास्तुशिल्प के दृष्टि कोण से दुर्गो का मूल्यॉकन किया गया है। प्रत्येक दुर्ग में सुरक्षा की दृष्टि से परिकोटे का निर्माण किया गया प्रत्येक दुर्ग में अनेक प्रवेश द्वार उपलब्ध होते हैं। दुर्ग के ऊपर निवास करने वाली जनता के लिए अनेक जलाशयों का निर्माण किया गया दुर्ग के ऊपर सभी वर्ग के निवासी निवास किया करते थे उनके लिए आवासीय स्थल बने उनका सम्बन्ध किसी न किसी धर्म से था इसलिए प्रत्येक दुर्ग में धर्मिक स्थलों का निर्माण किया गया। बुन्देलखण्ड में मूर्ति पूजा विशेष रूप से होती थी। इसलिए अनेक मूर्तियों की स्थापना दुर्गो में की गई दुर्ग में ऐसे स्थल भी उपलब्ध हुये जो सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थे निर्माण सामाग्री वास्तुशिल्प विधा और वास्तुनिर्माण का सविस्तार वर्णन इस अध्याय में है।

शोध प्रबन्ध के अन्तिम और पॉचवे अध्याय में सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध का उपसंहार प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त शोध प्रबन्ध का शीर्षक शोध प्रबन्ध की विषय सामाग्री शोध प्रबन्ध के लिए अपनायी गई विधि का विश्लेषण किया गया है। शोध प्रबन्ध का मुल्यांकन उसके पाठक गण किया करते हैं फिर भी उसका अनुमान यहाँ प्रस्तुत किया गया है आशा ही नहीं पूर्ण विस्वास है कि शोध प्रबन्ध के पाठक और आगामी शोध छात्र शोध प्रबन्ध से लाभ उठा सकेगें।

यह दुष्कर शोध कार्य मैने इतिहास के महा मनीषी, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय के इतिहास विभागाध्यक्ष (प्राचार्य) अपने पूज्य गुरू डॉ० के०के० शुक्ला, जी के कुशल निर्देशन में उनकी कृपा के छत्र तले बैठकर पूर्ण करने का प्रयास किया है। उनका आशीर्वाद ही इस शोध कार्य के पथ का पाथेय बना। यदि उनका वैदुष्णपूर्ण व उत्साह वर्धक निर्देशन मुझे निरन्तर न प्राप्त होता, तो मै इस कठिन

कार्य को सफलता के सही बिन्दु तक न पहुँच पाता। तथा मैं उनका आजीवन ऋणी रहूँगा और अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा और कृतज्ञता उनके चरणों में अर्पित करता हूँ।

इतिहासविद 'बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन' के लेखक राधाकृष्ण बुन्देली जी के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होने शोध ग्रन्थ से सम्बन्धित उपयोगी विषयवस्तु खोजने हेतु प्राचीन ग्रन्थो व पुस्तकों को सुलभ कराते हुए महत्वपूर्ण सुझावों का द्वार दिखलाया है।

पं0 जवाहरलाल नेहरू पी0जी0 कालेज बांदा के 'प्राचार्य' डॉ0 नन्दलाल शुक्ला जी का भी मैं अहसान मन्द हूँ जिन्होने बुन्देलखण्ड के दुर्गो से सम्बन्धित अपने कालेज से समय–समय पर पुस्तके उपलब्ध करवायी मैं पूज्य गुरू जी का आजीवन ऋणी रहूँगा।

पं0 जवाहरलाल नेहरू पी0जी0 कालेज बांदा के इतिहास विभागाध्यक्ष (सेवा निवृत्त) अपने पूज्य गुरू जी प्रो0 बी0एन0राय को मैं बड़ी श्रद्धा के साथ कृतज्ञता अर्पित करता हूँ जिन्होने सदैव स्नेहाशीष व ज्ञान का अमृत पिलाया और शोध के सरोवर में शोधात्मक विचार बिन्दुओं का सतत ज्ञान कराया। उनके मार्ग दर्शन के फलस्वरूप ही इस शोध ग्रन्थ की भाषा, संस्कार प्राँजलता, सहजता, सुबोध गम्यता व उत्कृष्टता के मुखर निदान को वरण करने में सक्षम हो सका है। मैं अपने पूज्य गुरू जी 'राय' सर का आजीवन आभारी हूँ। क्योंकि उनके भी सहयोग की समिधायें इस शोध कार्य के हवनकुण्ड में जली है।

अतर्रा महाविद्यालय अतर्रा के रीडर भूगोल विभाग (सेवा निवृत्त) पूज्य डॉ0 बी0एल0 वर्मा, का भी अहसान मन्द हूँ जिन्होने बुन्देलखण्ड के दुर्गो की विशद जानकारी हासिल करायी तथा समय–समय पर इस शोध कार्य में मदद की है और अपने अमूल्य निर्देश भी दिये है। तथा उनके पुत्र अतर्रा महाविद्यालय अतर्रा के कृषि विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ0 विवेक चक्रवर्ती, लालबहादुर शास्त्री महाविद्यालय गोन्डा के अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष डॉ0 गोरेलाल प्रजापति शिक्षक प्रवेश कुमार बाजपेयी जी के प्रति भी आभारी हूँ जो इस शोध कार्य को पूर्ण कराने हेतु बराबर मुझे प्रोत्साहित करते रहे मैं उनका ह्रदय से आभारी हूँ तथा आजीवन ऋणी रहूँगा।

अपने वंदनीय बाबा जी स्व0 श्री मोहना प्रजापति (पहलवान) जी को तथा दादी माँ श्रीमती चुनियाबाई प्रजापति को मै श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ जिन्होनें इस पुनीत कार्य को करने के लिए मुझे बहुत पहले प्रेरणा प्रदान की थी और जो इस शोध कार्य के पूर्ण होने के पहले ही इस दुनिया से चले गये है। अपने पिता श्री मइयादीन प्रजापति एवं माता श्रीमती सियादुलारी प्रजापति जी के प्रति पूरे मन से सम्मान व्यक्त करता हूँ, जिन्होने वात्सल्य की उंगली पकड़ाकर मुझे उच्च शिक्षा के

पथ पर चलाया और सशक्त उत्साहवर्धन का 'दीप' थमाकर सफलता के द्वार तक पहुँचाया। अग्रज भ्राता श्री रामराज प्रजापति, श्री रामाधीन प्रजापति एडवोकेट (वर्तमान जिला पंचायत संदस्य) बहन श्रीमती गीता प्रजापति के प्रति भी बहुत आभारी हूँ जिनकी प्रबल मंगल कामनाएं सदैव मेरे साथ रही। जो इस शोध कार्य को पूर्ण कराने में पूरे सच्चे मन से सहयोग प्रदान किया मै उनका आजीवन ऋणी रहूँगा।

अन्त में उन सबके प्रति भी मैं बड़ी निष्ठा के साथ ह्रदय से आभार व्यक्त करता हूँ। जिन्होने इस श्रमसाध्य शोधकार्य को पूरा कराने में किंचित भी मुझे अपना सहयोग प्रदान किया है और जिनके नामों का उल्लेख विस्मृत के धुन्ध में यहाँ नही कर पाया हूँ।

इस शोध कार्य के लेजर सेटिंग के लिए, ''श्रद्धा कम्प्यूटर सेन्टर'' के श्री रविकान्त साहू, श्री कैलाश विश्वकर्मा जी को भी धन्यवाद देता हूँ कि अल्प समय में शब्दों की अशुद्धियों को दूर करते हुए इस कार्य को सम्पर्णूता प्रदान करने में कठिन श्रम किया है।

'बुन्देलखण्ड के दुर्ग एक ऐतिहासिक अध्ययन' शोध प्रबन्ध प्रखर शोध निर्देशक श्रद्धेय गुरूवर प्राचार्य डॉ0 कमलाकान्त शुक्ला जी की अनुकम्पा से पूर्णता को प्राप्त हुआ है। उन्हे पुनरापि नमन हैं। इस शोधकार्य में जो अशुद्धियाँ रह गयी हों, उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। आशा है कि यह शोध प्रबन्ध विषय से सम्बन्धित जिज्ञासुओं को रूचिकर लगेगा सहृदय पाठको के मन को भायेगा, इस सम्भाग में बुन्देलखण्ड के दुर्गो के संगमो का संदर्शन कराना एवं बुन्देली माटी की झाँकी दिखाने हेतु उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

इसी प्रात्याशा और विश्वास के साथ

शोध छात्र

रामसजीवन

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

खण्ड – क

- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त परिचय सीमांकन एवं नामकरण।
- बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक संरचना एवं बनावट।
- बुन्देलखण्ड के निवासी एवं उनकी सभ्यता, संस्कृति, आर्थिक एवं अद्योग।
- बुन्देलखण्ड के निवासियों का धर्म।

खण्ड - ख

- बुन्देलखण्ड की राजनीतिक व्यवस्था एवं उनसे जुडी हुई घटनाएं।
- आर्यो से लेकर गुप्त युग तक की राजनीतिक व्यवस्था।
- गुप्त युग से लेकर सम्राट हर्ष वर्धन तक।
- चन्देल युग से लेकर तुर्कों के आगमन तक।
- बुन्देलखण्ड में तुर्क एवं मुगलकाल की राजनीतिक व्यवस्था एवं उसका प्रभाव।

श्री गणेश प्रतिमा कालिंजर दुर्ग

बुन्देलखण्ड का इतिहास
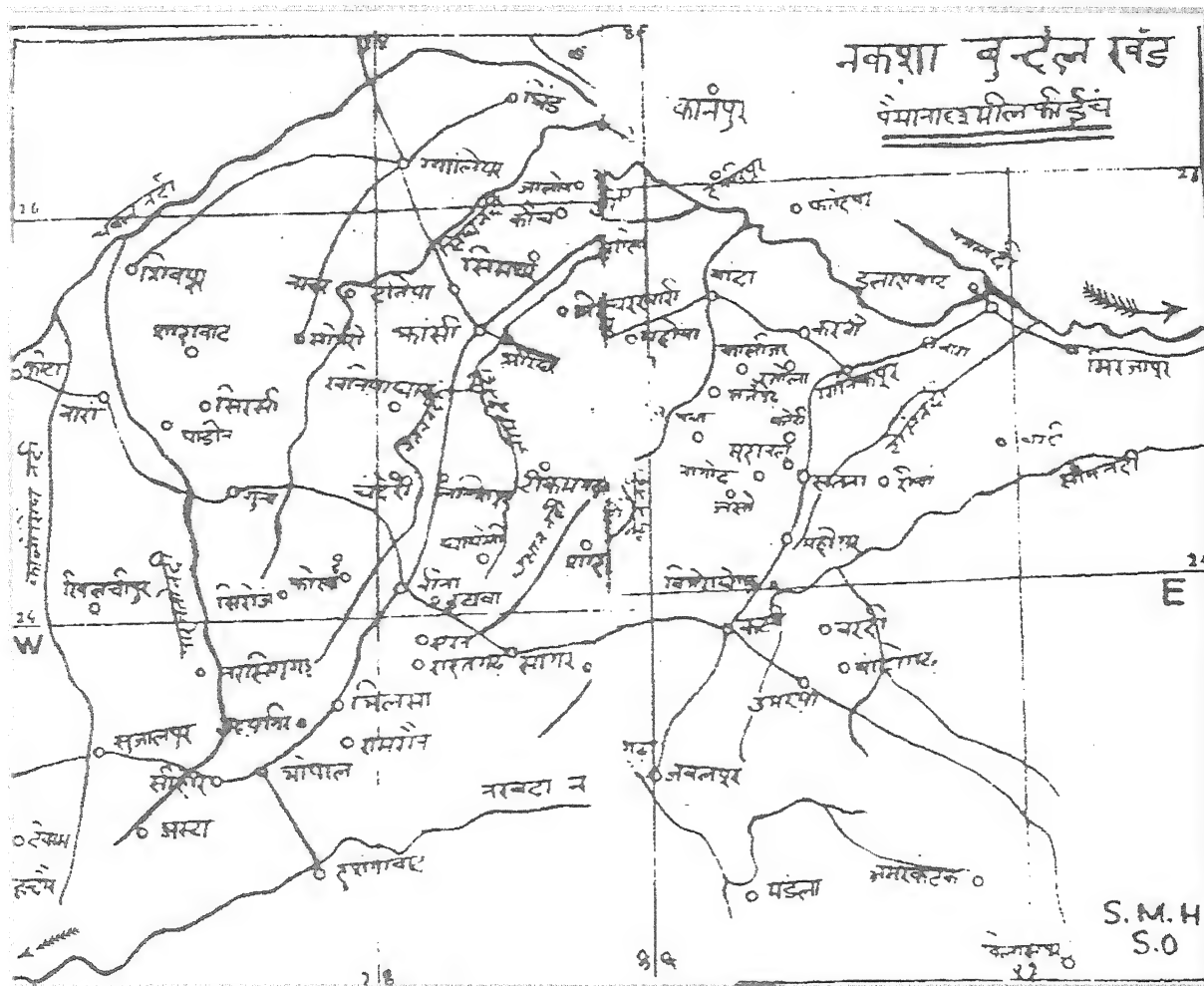
लेखक - दीवान प्रतिपाल सिंह

प्रथम अध्याय खण्ड-क

बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त परिचय– यह सश्वनी एवं गरिमामयी बुन्देलखण्ड अति प्राचीन काल से अपना पुरातात्विक, सांस्कृतिक ऐतिहासिक महत्व रखता है। ऐसा लगता हैं कि यही परिक्षेत्र संस्कृति का जन्म दाता हैं यहाँ उपलब्ध पुरातात्विक पुरावशेषो से यह ज्ञान उपलब्ध होता है। कि जो पुरावशेष यहाँ उपलब्ध होते है। वे यहाँ निवास करने वाले ब्यक्तियो की जीवनशैली पर पूरा प्रकाश डालते है। इनको देखने के पश्चात बुन्देलखण्ड का महत्व और उसकी प्राचीनता प्रगट होने लगती है। भारतवर्ष के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ बेद माने जाते है। ऋग्वेद में महर्षि वृहस्पति, और अश्वनी, कुमारों का वर्णन है। वृहस्पति, ऋषि, का सम्बन्ध बाँदा जनपद के कालिंजर परिक्षेत्र से था। और अश्वनी कुमारों, का सम्बन्ध ओरछा से था।[1] डॉ0बी0ए0 स्मिथ जनरल कनिंघम तथा प्रो0 कीलहार्न के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये है। और नये ऐतिहासिक साक्ष्य खोजे है।

यह परिक्षेत्र बुन्देलखण्ड के नाम से प्रसिद्ध है इसका नाम बुन्देलखण्ड कब और कैसे पड़ा इस सन्दर्भ में अनेक सन्दर्भ कथायें प्रचलित है। सत्य प्रकाश तथा वीरसिंह देव चरित्र के आधार पर यह कथा पचलित है। कि एक राजा ने विन्ध्यवासिनी देवी को प्रसन्न करने के निमित्त तक बहुत दिनों तक तपस्या की किन्तु देवी न प्रसन्न हो सकी तो निराश होकर उसने देवी के ही चरणों पर अपने जीवन का अन्त करना चाहा। उसने अपनी तलवार निकाली और आत्म बलिदान की भाना से जैसे ही उसने तलवार अपनी गर्दन पर मारी देवी प्रकट हो गयी और कहा कि उसके रक्त बिन्दुओं से उत्पन्न उसका पुत्र महान शक्तिशाली और विजेयता होगा तथा प्रसिद्ध बुन्देला वंश का प्रादुर्भाव करेगा।[2] किन्तु प्रसिद्ध विदेशी विद्वान वी0एस0 इलियच और स्मिथ इस कथा को स्वीकार न करके एक दूसरी कथा को स्वीकार करते हैं। जो इस प्रकार है ''हकीकत–उल– आलिमा'' में बुन्देलो की उत्पत्ति एक अलग ही कथा है और इलियच तथा स्मिथ ने भी समर्थन किया है[3]। इस कथा के अनूसार गहरवार वंश के राजा हरदेव एक सेविका (बाँदी) के साथ खैरागढ, से आकर ओरछा, के निकट बस गये[4]। उसने वहाँ के संगार नरेश का बध कर दिया और वह बेतवा तथा धसान के बीच के देश का स्वामी बन गया। राजा हरदेव उत्तराधिकारी जो इस सेविका (बाँदी) से हुए वे बुन्देला अथवा बुन्देला कहलाए और यह प्रदेश बुन्देलखण्ड कहलाया। पर

नामकरण की यह योजना नही प्रतीत होती हैं।

दीवान प्रतिपाल सिंह ने अपनी पुस्तक में यहाँ के निवास करने वाले कुछ ब्यक्तियो का उल्लेख भूमिका भाग में बुन्देलखण्ड के महत्व को किस प्रकार उजागर किया हैं।

यथा-- वर बीर–देश 'बुन्देलखण्ड'।

तप–याग–केन्द्र, हिय भरतखंड ।

तुव विशद विन्ध्यगिरि गगन ताहिं,

नद, गर्त्त गूढ पाताल जाहिं।

रत्नादि सर्व सम्पन्न अंग,

कहु सुथल शुभ्र, कहु कठिन शृंग।

कहुँ पुष्पित बन सर, नगर, खेत,

कहु निजन रद कटकतात,

कहु लूक कलेवर झुलसजात,

बहुगढ, गुफादि मन्दिर, कटीर,

सत, रज तम– गुणा– मय जीव भीर।

प्रख्यात चार सरितन मँझार,

तुव अति अनूप आनन्द– अगार।

निश्चर, अनार्य, तिब्बति, असूर

बर्मीय, कोल, सुर, नाग सूर।

दिति– दनुज, गरूणा, द्रविड सुगौंड,

सुत सरल, आर्यन दिय बगौड़।

कुल– सूर– चन्द– सत्ता महान,

किय सभ्य प्रतिष्ठित संस्थान।

श्री राम, कृष्णा तुव बनहि आय,

गे विपति– काल कछु दिन बिताय।

शिशुनाम आदि मागधा भुवाल,

कन्नौज बनारस के नृपाल।

हूणादि आदि पुनि गये हार,

राम रहे कलचुरी गहरवार।

परिहार, चन्देल, मुस्लिम खँगार,

बुन्देल धाक मालव, बिहार।

अर्जुन दे, सोहन, मल्खान,

परताप– रूद्र मधुकुर महान।

बिरसिंह बीर अरू छत्रसाल,
दल–दुवन दलन हिंदुवान ढाल
इत रघुकुल प्रमार धँधेर धीर
गुर्जर सेंगर, कछवाह बीर।
भूसुर, योगी, दौवा दराज,
बन गौड़ सौर, कौदर गराज,
सब जाति, धर्म, उद्योग, भोग
उदंड, दीन, धनि, अधनि लोग।
सब सुत सम, पितु ! तुव उर उदार,
सबके हित मृदु ममता पियार।
सब करै मौज तुम सुखद गोद,
चिर चहैं छत्र बाबा समोद।
बन सकै न वर्णन बदन–चित्र
कछु कियो लिखन–साहस सु–पुत्र
'प्रतिपाल' समर्पत, कर कँपात,
यह तुच्छ भेंट लो बिहँसि तात।[5]

उपरोक्त कविता का गम्भीर अध्ययन करने के उपरान्त कोई भी ब्यक्ति बुन्देलखण्ड के सन्दर्भ में सूक्ष्म जानकारी प्राप्त कर लेता है इस कविता में बुन्देलखण्ड का सीमांकन उसकी प्राकृतिक संरचना और वहाँ के निवासियों के सन्दर्भ में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर होता हैं। यहाँ उत्पन्न हुए महत्वपूर्ण ब्यक्तियो का सन्दर्भ भी उसे इस कविता के माध्यम से उपलब्ध हो जाता हैं और वह इस गौरव मयी भूमि के प्रति इतिहास कार की भाँति नत मस्तक हो जाता हैं। सुप्रसिद्व इतिहास कार एम० एल० निगम ने इसके महत्व को स्वीकार किया हैं और उसके इतिहास को अति प्राचीन बतलाया है।

यथा– *Bundelkhandi, a derivative, of hindi, is spopen thorugout the regeon. the folk lores of the region, drawan mastly from the old bardic tradition, are full of glamour and glory of the people of the region. hence, the name bundelk hande here is used as the most convenlent synonym, for the region to trace its early his torical and cultural growth.*

The early history of bundelh hand, as gleaned

throuh the uedic and paranic literature ptesents a very hazy and chequered account the sacred literat ure contained in brahmanas, upanishads sutras and puranas does mention the existence of the vasas or vatsa country with kaushampi as its captial [6]

एम0 एस0 निगम के अनुसार बुन्देलखण्ड के निवासी हिन्दी भाषी है तथा ग्रामीण अन्चलो में निवास करते है और पुरानी परम्पाराओं का अनुपालन करते है। यह लोग सांस्कृतिक दृष्टि से अनेक जातियो मे विभाजित है और उनकी अपनी सांस्कृतिक पहचान हैं। यदि बुन्देलखण्ड के इतिहास पर दृष्टि डाली जाय तो अनेक बैदिक और पौराणिक ग्रन्थो में उसका उल्लेख मिल जाता है। बृाहाणो द्धारा रचित धर्म ग्रन्थो उपनिषदो, शास्त्रो, और पुराणो, मे वर्णित कथाओ से इस क्षेत्र और ऐसा प्रतीत होता है कि यह क्षेत्र कौशाम्भी के वत्स्य नरेशो के आधीन था।, [7]

बुन्देलखण्ड की प्राचीनता को स्वीकार करते हुए सुप्रसिद्ध इतिहासकार के0 के0 शाह यहाँ पुराऐतिहासिक काल के ऐतिहासिक साक्ष्यों को देखकर बुन्देलखण्ड को अति प्राचीन क्षेत्र मानती है और उसके लिए डा0 एच0 बी0 संकालिया का उदाहरण पेश करती हैं।

that palaeoliothic man inhabited the region of bundek hand is now a fact established beyond doubt. [8] regarding tool industries of this period H.D. sankalia says,"the most Interesting and instructive area is lalitpur. here within a radius of a mile from the railway station several works sops were discovered, " About Biana Nala nearby he concluded that it was by eatly man to be a suitablhe site for habitation the tools disclose transiton form the early stancage." [9] एच0 वी0 संकालिया ने ललितपुर के सन्निकट उत्खनन कार्य किया था यह कार्य उन्होने बीना के सन्निकट एक नाले मे किया था जहाँ उन्होंने पुराणाषाण कालीन मानव के अस्त्र–शस्त्र उपलब्ध हुए थे लगभग चार हजार वर्ष पुराने थे इस उपलब्धि से बुन्देलखण्ड की प्राचीनता दृष्टि गोचर होती है।

सुप्रसिद्ध इतिहास कार एस0डी0 त्रिवेदी इस क्षेत्र को बौद्धकाल में भी महत्वपूर्ण स्थल स्वीकार किया हैं। मुख्य रूप से भरहुत और सांची में उपलब्ध विहार इस बात के परिचायक है कि यहाँ बौद्ध

धर्म पल्लवित हुआ और बहुत समय तक उसका आसतित्व बना रहा उसके बाद यहाँ ब्राहण धर्म का विकास प्रारम्भ हुआ।

the beginnings of art activity in the bundelk hand region can be treced from the 2nd century b.c. on wards when under the patonage of the bunddhists, stupas and viharas sprang up the famaus buddist stupa at bharhut and sanchi had been the happy hunting ground for scholars in the bast they stillattracl researchers in the present day as well.[10] brahmanical faith in the region did not lag behind. the followers of that fath contructed thir temple as well.[11] बौद्ध काल के पश्चात बुन्देलखाण्ड किसी न किसी रूप में महिमा मदिन्र बना ही रहा।

पं0 गोरेलाल तिवारी ने बुन्देलखाण्ड को परिभाषित करते हुए उसक महत्व को उजागर ''किया है भारत वर्ष के मध्म भाग में नर्मदा के उत्तर और यमुना के दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत की शाखाओं से समाकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों के जल से सिचिंत सृष्टि–सौदर्या लंकृत जो प्रदेश है उसे बुन्देलखण्ड कहते है। समय–समय पर इसके नाम दर्शाण, वज्र, जेजाक–भुक्ति,जुजौती, जुझार खाण्ड तथा विन्ध्येलखण्ड भी रहे है। ऐसा प्रतीत होता है कि विन्ध्यावही में स्थित होने के कारण इस प्रदेश का नाम विन्ध्येलखाण्ड पडा बाद में अपभ्रष्ट हो गया यह बुन्देलखाण्ड कहलाया।[12] मोती लाल त्रिपाठी अशान्त ने इस भूमि में उत्पन्न बीर पुरूषो का गुणगान किया है । इन्होने बुन्देलखाण्ड का गौरव बढ़ाया ''बुन्देलखाण्ड की रत्नगर्मा भूमि में रणबांकुरें आल्हा ऊदल, विराटा की पद्यिनी, बीर सिंह जू देव, छत्रसाल, हरदौल, व दुर्गावती, महारानी लक्ष्मी बाई आदि नक्षत्रों को जन्म किया है जिनके रक्त येसे इस धरती का कण–कण सना हुआ है और जिन्होने अपने शौर्य और पराकम से शत्रुओ का मान मर्दित किया है। भारत का इतिहास इस तत्य का ज्वलन्त प्रमाण है कि इसी बीर प्रसविनी भूमि ने अनेको बीरो का जन्म दिया जिन्होने बीरता पराकम और शौर्य का परिचप देकर बुन्देलखाण्ड को गौरवशाली बनाने में संकिय सहयोग प्रदान किया है इसी बुन्देली बसुन्धारा पर महारानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजी के छक्के छडाये और अपने देश की रक्षा के लिए बलिदानी ज्वाला मे भस्मसात हो गई,।[13] श्री आशान्त जी ने मूर्तिकला की द्रष्टि से भी खजुराहों देव गढ़ अजय गढ और चन्देरी को

बुन्देलखण्ड का महत्व पूर्ण स्थल माना है तथा उन्होने ओरछा को एक महत्व पूर्ण नगर की संज्ञा दी हैं।

इतिहास कार राधाकृष्ण बुन्देली ने भी यह बात स्वीकार की है कि बुन्देलखण्ड में अनेक स्थलो में विभिन्न प्रकार के स्मारक दस्ता बेंज साहित्यक ग्रन्थ अस्त्र शास्त्र मुद्रायें तथा अति प्राचीन मानव अस्तियाँ उपलब्ध होती है जिन्हें देखकर यहाँ की सभ्यता सस्कृति का पता लगता है इसके लिए वे व्यक्तियों की प्रसंसा करते है और कहते है। ''

बुन्देलखण्ड के वे व्यक्ति महान है जिन्होने अपने कार्या से अपना नाम अमर किया और वे हमारे और आपके लिए बुन्देलखण्ड की पावन धरती के इतिहास है सभ्यता के शुभरम्भ से लेकर आज तक इस रत्नगर्भा वसुन्धरा ने सैकडों ऐतिहासिक हीरों को अपने गर्भ से निकाला है इन महान व्यक्तियों से हमारी श्रद्धा है।14

यदि हम बुन्देलखण्ड के महत्व का विशलेषण करना चाहे तो सर्व प्रथम हमें पुरातत्व महत्व कें विखारी हुई सम्पदा का अवलोकन हो जाता है यह सम्पदा प्राचीन अवशेषो, प्राचीन नगरो दुर्गो, आवासीय स्थलो, धार्मिक स्थलो, जलाशयों नृत्य स्थलो के रूप में यहाँ मिलती है इसके साथ ही साथ प्राचीन मुद्रा अस्त्र–शस्त्र आभूषण वस्व अभिलेखो के रूप में भी उपलब्ध होती है अनेक प्राचीन ग्रन्थो के पाण्डुलिपियाँ भी यहाँ उलपब्ध होता है। जो ऐतिहासिक घटना पर पूरा प्रकाश डालती है यहाँ के परम्परा ये सामालिक व्यवस्था भेष भूषा तथा धार्माचरण से भी बुन्देलखण्ड का इतिहास उजागर होता है और इसका महत्व स्पष्ट हो जाता है।

यथा– *चन्देलो का राज्य रहा चिरकाल यहाँ पर।*
हुए बीर नृप गण्ड, मदन, परमाल जहाँ पर।।
बडा विपुल बल बनेगए दुर्गम दुर्जय।
मन्दिर महल मनोयस मनोहर अनुपम अक्षय।।
यही शौर्य सम्पत्ति मयी कमनीय भमि है।
यह भारत का हृदय रूचिर रमणीय भूमि है।।

(मुन्शी अजमेरी)

बुन्देलखण्ड का सीमांकन– बुन्देलखण्ड का सीमांकन इतिहासकारों और भूगोल वेत्ताओं ने अपने ढंग से किया है। सर्वमान तथ्य ये हैं कि उत्तर में यमुना नदी, दक्षिण में नर्मदा नदी, पूर्व में टोंस नदी, और पश्चिम में चम्बल नदी इसकी सीमायें निर्धारित करती हैं।दीवान

प्रतिपाल सिंह के अनुसार इसी देश में पूर्वोत्तर पार्श्व में गंगा से दक्षिणं इलाहाबाद तथा मिर्जापुर जिलों के भाग और चम्बल से पूर्व ग्वालियर, भोपाल आदि के भाग तथा सागर, दमोह, जबलपुर जिले आते हैं। परन्तु अधिकार आदि में बहुत समय से परिवर्तन हो जाने से अब जनता उसके बहुत कुछ किनारों के हिस्सों को बुन्देलखण्ड का अंश होना जानती ही नहीं है [15]। ''भारतवर्ष के मानचित्र में यह प्रदेश बुन्देलखण्ड की स्थित नक्से पर 23,–45, और 26, 50, उत्तरीय तथा 77,–52, और 82,–0, पूर्वीय भू–रेखाओं के मध्य में है।''

'पं. गोरेलाल तिवारी ने बुन्देलखण्ड का सीमांकन करते हुए इसके सीमांकन को कुछ संकुचित कर दिया है। इस भू–भाग के उत्तर में यमुना का प्रचंड प्रवाह, पश्चिम में मंद–मंद बहने वाली चम्बल और सिन्ध नदियाँ, दक्षिण में नर्मदा नदी, और पूर्व में बघेलखण्ड, है। इस प्रदेश का उत्तरीय भाग जिसमें आजकल, झाँसी, जालौन, ललितपुर, बाँदा, और हमीरपुर, के जिले हैं– अंग्रेजी राज्य में हैं। मध्य भाग में ओरछा, समथर, और दतिया, के राज्य तथा चरखारी, छतरपुर, पन्ना, बिजावर, अजयगढ इत्यादि छोटे–छोटे राज्य हैं। दक्षिणी भाग में सागर, दमोह और जबलपुर के जिले हैं [16]।

के. के. शाह के अनुसार बुन्देलखण्ड का सीमांकन यहाँ पृथ्वी जनश्रुतियों के अनुसार किया जाता है तथा जिसका साक्ष्य यहाँ के साहित्यक ग्रन्थों में भी मिलता है।

one of them refers to the river-frontiers by which the area is bounded on all four sides viz the Jamuna the Narmada the chambal and the tons whereas the other De-scribes it figuratively basing the idea on a pastoral motif immensely interesting and imaginatively beautiful as are these couplets they seem to hace been Born out popular apreciation and enthusiasm Allending the temporary-ascendency of the Bundela clan and, for this very reason are hardly the material to guide us in the matter of fining the boundaries of Bundelkhand.[17]

श्री त्रिपाठी भी ग्रन्थीय साक्ष्य के आधार पर बुन्देलखण्ड का सीमांकन करना उचित मानते हैं।

(अ) *इत जमुना उत नर्बदा, इत चम्बल उत टोंस।*

छत्रसाल सो लरनकी रहीन काहू हौस।।

(ब) भौस बधी है ओरछे, पडा होशंगाबाद।

लगवैया है सागरे, चपिया रेवा पार [18] ।।

"डा. अयोध्या प्रसाद पाण्डे के अनुसार बुन्देलखण्ड का सीमांकन इस प्रकार किया गया है" उन्नतोदर सम चतुर्भज के रूप में बुन्देलखण्ड उत्तरी अक्षांश 23,–24, तथा 26,–50, और पूर्वी देशांतर 77,–52, तथा 82, के मध्य स्थित है। यमुना इसकी उत्तरी तथा चम्बल उत्तरी–पश्चिमी सीमा का निर्माण करती है दक्षिण की ओर इसमें मध्य प्रदेश की जबलपुर तथा सागर कमिश्नरियां तथा दक्षिण–पूर्व में बघेलखण्ड, तथा मिर्जापुर, की पहाडियाँ सम्मिलित हैं [19]। यमुना–सिंचित इस प्रदेश में उत्तर प्रदेश के झाँसी, जालौन, बाँदा तथा हमीरपुर जिले सम्मिलित थे। इनके अतिरिक्त इस प्रदेश में अनेक छोटी–बडी रियासतें शामिल थी जो आजकल मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की अंग बन गई हैं[20]।
श्री एम. एल. निगम ने भौगोलिक आधार पर बुन्देलखण्ड का विभाजन इस प्रकार किया है।

Yet the geographical boundaries and the climate of the Region, have remained unchanged till this date. The geographical boundaries of the region are well Defined by the River Yamuna in the north and River Narmada in south; the River chanbal in the west and the River tons in the east.[21]

"इतिहासकार राधाकृष्ण बुन्देली ने बुन्देलखण्ड की उस सीमा का समर्थन किया है जिसे निर्विवाद रूप में सभी स्वीकार करते हैं" राजनीतिक दृष्टि से इतिहास लिखने के लिए उस बुन्देलखण्ड को मान्यता देनी होगी। जो चेदि कल्चुरियों और चन्देलों के हाथ में रहा हो। कालान्तर में यह साम्राज्य गौडों और बुन्देलों के अधीन रहा ऐतिहासिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड की निम्नलिखित परिभाषा ही उचित प्रतीत होती है ।

छन्द–उत्तर समतल भूमि गंगा जमुना सुवहति हैं।

प्राची दिश कैमूर, सोन कासी सुलखाति हैं।।

दक्खिन रेवा विन्ध्याचल तन सीतल करनी।

पच्छिम में चम्बल चंचल सोहति मनहरनी।।

तिन मध्य रोजेगिरि बन सरिता सहित महोर।

कीर्ति स्थल बुन्देलन को बुन्देलखण्ड वर।। [22]

दीवान प्रतिपाल सिंह ने इसका विस्तृत सीमांकन इस प्रकार किया है:—

पूर्व में— टोंस और सोन नदियाँ अथवा बघेलखण्ड या रीवाँ राज्य हैं तथा बनारस के निकट बुन्देला नाले तक सिल–सिला चला गया।

पश्चिम में— बेतवा, सिंध और चम्बल नदियाँ विन्ध्याचल श्रेणी तथा मालवा, सिंधिया का ग्वालियर राज्य और भोपाल राज्य हैं। पूर्वी मालवा इसी में आता है।

उत्तर में— यमुना और गंगा नदियाँ अथवा इटावा, कानपुर, फतेहपुर, इलाहाबाद, और मिर्जापुर, तथा बनारस, के जिले हैं।

दक्षिण में— नर्मदा नदी और मलवा हैं।

परन्तु समय–समय पर राजाओं की सत्ता के अनुसार सीमाएं बढती और घटती रही हैं।

ग्वालियर राज्य के भिन्ड, ग्वालियर, गिर्द, नरवर, ईसागढ़ और भिसला, के जिले अथवा उनके भाग और इसी प्रकार से भूपाल राज्य की उत्तरीय और पूर्वीय निजामतों के भाग तथा मध्य प्रदेश के सागर, दमोह, जबलपुर जिले अथवा उनके भाग रीवाँ की पश्चिमी तहसीलों के भाग और संयुक्त प्रान्त के काशी के निकट से मिर्जापुर, इलाहाबाद, बाँदा, हमीरपुर, जालौन, तथा झाँसी, जिले अथवा उनके भाग बुन्देलखण्ड के ही अंश हैं। बीच–बीच में खाली मैदान पाकर गोंड लोग इसके बहुत कुछ आटविक अंश पर अधिकार कर लेते रहे हैं। अतएव इसी में गोंडवाने का एक भाग भी है। प्राचीन 'जुजौति' देश इसका पश्चिमी–दक्षिणी भाग मात्र था। वह चन्देलों के 'जेजाक भुक्ति' के भीतर पड गया था।

क्षेत्रफल

व्योरेवार नक्शे को देखने से ज्ञात होगा कि इस देश का क्षेत्रफल सब मिलाकर 48310 वर्गमील हैं। इसमें इलाहाबाद, और मिर्जापुर, के दक्षिणी, भाग शामिल नहीं हैं। व्योरा यों हैं—

प्रान्त या भाग	वर्गमील
1. संयुक्त प्रदेश के 4 जिले	10535
2. मध्य प्रदेश के 3 जिले	8780
3. इन्दौर का आलमपुर परगना	37
4. भोपाल की दो निमतों में से	2242
5. रीवाँ राज्य की 6 तहसीलें	5862
6. ग्वालियर के 5 जिलों में से	900
7. बुन्देलखण्ड के 9 राज्य	9672

8. बुन्देलखण्ड के 3 राज्य	1126
9. बुन्देलखण्ड की 14 जागीरें	476
10. बुन्देलखण्ड की 8 जागीरें	580
योग	48310 वर्गमील

मुंशी श्यामलाल ने इसका क्षेत्रफल 30817 वर्गमील और मध्य भारत के गजेटियर में 9852 तथा 11600 वर्गमील लिखा है। 2000 वर्गमील का अन्तर कदाचित इलाहाबाद तथा मिर्जापुर जिलों के अंशों का है जिनको गजेटियर में बुन्देलखण्ड का अंश माना है [23]।

बुन्देलखण्ड क सीमांकन के आधार केवल एक बिन्दु में आधारित नहीं हो सकते इसके लिए निम्न बिन्दुओं को आधार मानना होगा।

भौगोलिक आधार– किसी भी क्षेत्र का सीमांकन निर्धारित करने के लिए वहाँ की प्राकृतिक संरचना को आधार माना जाता है। यह संरचना भूगोल से संबंधित होती है सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र की संरचना विषम प्राकृतिक संरचना है जो विन्ध पर्वत श्रेणियों से आवृत्त है। तथा यहाँ का धरातलीय बनावट भिन्न–भिन्न होते हुए भी एक सा है सुप्रसिद्ध भूगोल वेत्ता श्री एस. एम. अली ने पुराणों के आधार पर विन्ध्यक्षेत्र के तीन जनपदों– विदिशा, दर्शाण, एवं कऊष, की स्थिति का परिचय दिया है। उन्होंने विदिशा का ऊपरी बेतवा के बेसिन से दर्शाण का (धसान) और उसकी धाराओं की प्रमुख गहरी घाटियों द्वारा चीरा हुआ सागर प्लेटों तक फैले प्रदेश से तथा करूष का सोन नदियों के बीच के समतलीय मैदान से समीकरण किया है। इसी प्रकार त्रिपुरी जनपद जबलपुर की नर्मदा घाटी से लेकर मण्डला नरसिंहपुर जिलों के कुछ भाग को बुन्देलखण्ड का भाग माना है [24]।

इतिहासकार जयचन्द्र विद्यालंकार ने बुन्देलखण्ड का सीमांकन करते समय भूगोल के साथ इतिहास का समिश्रण कर दिया है। उन्होंने विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड को तीसरा प्रान्त माना है। जिसमें उन्होंने बेतवा (वेत्रवती) धसान (दशार्ण) और केन (शुक्तमती) के नदी क्षेत्र एवं नर्मदा की ऊपरी घाटी और पंचमढ़ी से अमरकंटक तक का पर्वतीय क्षेत्र शामिल किया है।

इनकी पूर्वी सीमा टोंस नदी है। यह सीमा पुराणों के अनुसार है [25]। श्री आर. एल. सिंह ने भौगोलिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड का सर्वेक्षण किया है और उसकी सीमाएं इस प्रकार निर्धारित की हैं– उत्तर में यमुना, दक्षिण

में विन्ध्य पर्वत की श्रेणियाँ, उत्तर पश्चिम में चम्बल एवं दक्षिण पूर्व में पन्ना अजयगढ की श्रेणियाँ यही बुन्देलखण्ड क्षेत्र है। इसमें उत्तर प्रदेश के पाँच जिले जालौन, ललितपुर, झाँसी, हमीरपुर, और बाँदा,। मध्य प्रदेश के चार जिले दतिया, टीकमगढ, छतरपुर, पन्ना, इसके अतिरिक्त उत्तर पश्चिम में भिण्ड, लहर, ग्वालियर जिले की भाँडेर तहसील शामिल है। इसे भू संरचना की दृष्टि से सही माना जा सकता है [26]। केवल भौगोलिक संरचना को आधार मानकर किसी भी क्षेत्र का सीमांकन करना उचित नहीं माना जा सकता।

सीमांकन का सांस्कृतिक एवं भाषायी आधार–

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बुन्देलखण्डी भाषा बोली जाती है यह भाषा 13 उप भाषाओं में विभाजित है जिन्हें स्तरीय, बुन्देलखण्डी, भधावरी, पवारी, हिण्डोला, खटोला, लुधाटी, बनाफरी, ऐलेपार्क, पैलेपार्क, पठा, जाड़, जूडर, गहोरा पठार, कोलाई, पाषकी, गौड बानी, तथा बालाघाटी तथा तिरहारी, आदि भाषायें बोली जाती है। इन भाषाओं को बोलने वाले बुन्देलखण्डी कहलाते हैं। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार प्राचीन काल के जनपद की एक सांस्कृतिक दृष्टि से नर्मदा, चम्बल, और अटारी, की सभ्यता बहुत प्राचीन हैं परन्तु जनपदीय चेतना का उदय रामायण और महाभारत काल से हुआ। इस काल में इसे बुन्देलखण्ड नहीं कहा जाता था [27]। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र से सांस्कृतिक समानता है यहाँ व्यक्तियों का धर्माचरण पहनावा, वेशभूषा और भोजन व्यवस्था एक सी है इसलिये इसे बुन्देलखण्ड कहा जा सकता है।

बुन्देलखण्ड की भाषा का व्यापक सर्वेक्षण अनेक विद्वानों ने किया है और इसी आधा पर बुन्देलखण्ड का सीमांकन भी किया है। ''डॉ. कामिनी ने अपनी पुस्तक में बुन्देलखण्ड का सीमांकन भाषाई आधार पर किया है। लोक संस्कृति क्षेत्र के आधार पर परिवर्तित होती रहती है'' [28] विलियम केरे ने जो सन 1793 में भारत आए थे उन्होंने अपनी भाषाई सर्वेक्षण में जिन 33 भारतीय भाषाओं का उल्लेख किया था उनमें बुन्देलखण्डी भी थी [29]। सन 1838 से 1843 के बीच मेजर राबर्ट लीच ने बुन्देलखण्ड की हिन्दीवी बोली के व्याकरण का निर्माण किया। इसके बाद सर जार्ज ए. ग्रियर्सन [30], ने बुन्देलखण्ड पर महत्वपूर्ण कार्य किया और भाषा के आधार पर बुन्देलखण्ड का क्षेत्र निर्धारित किया यह क्षेत्र राजनीतिक क्षेत्र से भिन्न है [31]। यदि भाषाई दृष्टि पर विचार किया जाये तो चम्बल नदी के उस पर आगरा, मैनपुरी, इटावा तथा चम्बल नदी

के इस पार सागर, दमोह, भूपाल तथा नर्मदा के दक्षिणी भाग ओसंगाबाद, शिवनी, बालाघाट, और छेन्दवाडा, की भाषा बुन्देलखण्डी नहीं है। श्री कृष्ण नन्द गुप्त इस बात को स्वीकार करते हैं इसलिए उनकी दृष्टि में यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड का भाग नहीं होना चाहिए [32]। जबकि डॉ. रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल बुन्देलखण्ड का क्षेत्र अति विस्तृत मानते हैं। उन्होंने उत्तर में मुरैना पश्चिम में शिव पुरी और गुना दक्षिण में बैतूल तथा ताप्ती नदी के तट तक भाषाई आधार पर बुन्देलखण्ड मानते हैं [33]। डॉ. महेश प्रसाद जायसवाल ने दुर्ग जिले का कुछ भाग, बाँदा जिले का कुछ भाग महाराष्ट् का चाँदा जनपद, बुलडाना, भण्डारा अकोला, जिले के कुछ भागों को बुन्देलखाण्ड माना है [34]। जबकि डॉ. उदय नरायण तिवारी डॉ. ग्रियर्सन के मत का समर्थन करते हैं। उनके मतानुसार भाषाई आधार पर सीमांकन करना उचित नहीं होगा [35], इसी तरह का मत डॉ. हरदेवबाहरी का है। उन्होंने माना कि डॉ. ग्रियर्सन का मत तथ्य परख है और मानने योग्य है बुन्देलखण्ड की सीमांकन का निर्धारण केवल भाषाई आधार पर नहीं हो सकता है [36]।

बुन्देलखण्ड का सीमांकन निर्धारण राजनीतिक दृष्टिकोण से— वीरम् भोग्या वसुन्धरा अर्थात जो बहादुर नरेश अपनी शक्ति के बलबूते पर जितने क्षेत्र को विजित कर लेता था वह क्षेत्र उसके राज्य का अंग बन जाता था बुन्देल वंशीय नरेश वीरसिंह जी देव चम्पतराय और महाराजा छत्रशाल ने अपने बाहुबल से जिस क्षेत्र को विजित किया वह बुन्देलखण्ड कहलाया भूगोल वेत्ता सर थामस फील्डेज यह मानते हैं कि क्षेत्र का विभाजन पर्वत और चरितायें करती हैं। बुन्देल खण्ड की सीमा का निर्धारण विन्ध्य पर्वत श्रेणियाँ करती है इस तरह यह देखा जाये तो दक्षिण में महादेव पर्वत और दक्षिण पूर्व में कैकल पर्वत बुन्देलखण्ड की सीमा का निर्धारण करती है [37]।

इस परिक्षेत्र में एक स्थल पर भारतियों एवं और नौ भागों का राज्य रहा है तथा इसके दूसरे स्थल पर दक्षिणी भाग में वाकटको का राज रहा है जब दोनों मिलकर एक हो गये तब यह राज्य विस्तृत हो गया, [38], बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में यदि कहीं बुन्देलखण्डी भाषा नहीं बोली जाती और किसी परिक्षेत्र की संस्कृति भिन्न है किन्तु फिर भी ऐसे क्षेत्र में यदि वहाँ बुन्देलखण्ड के किसी नरेश का अधिकार रहा है तो उसे बुन्देलखण्ड माना जाता है। प्राचीनकाल में बाँदा चेदि शासकों और नागों

के आधीन नहीं था यह वाकटकों के साम्राज्य में भी शामिल नहीं था कालान्तर में यह चन्देलों के आधीन हुआ और चित्रकूट, और कालिंजर, के आधीन हो गया और बुन्देलखण्ड मान लिया गया। सुप्रसिद्ध विद्वान कनिघंम ने चिल्ला के सन्निकट आल्हा–ऊदल का निवास स्थल खोजा है इस स्थल पर बुन्देलखण्डी भाषा नहीं बोली जाती फिर भी राजनीतिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड का अंग है [39]। यह सत्य है कि बुन्देलखण्ड का जो भाग कल्चुरियो, चन्देलों, गौंडो, और बुन्देलों के हाथ में रहा उस क्षेत्र को बुन्देलखण्ड के नाम से पुकारा गया।

बुन्देलखण्ड का नामकरण– किसी भी क्षेत्र की पहचान उसके नाम से होती है चाहे वह देश हो प्रान्त हो या जनपद। वह किसी न किसी नाम से जाना जाता है। किसी प्रकार जिस सांस्कृतिक क्षेत्र में निवास करते हैं वर्तमान समय में उसे बुन्देलखण्ड नाम से पुकारा जाता है। हमारी यह भूमि चिरकालिक है इसलिये इसके नाम समय–समय पर परिवर्तित होते रहे हैं। बुन्देलखण्ड का इतिहास अति प्राचीन है इसलिये इसके अनेक नाम भी अति प्राचीन होंगे।

बुन्देलखण्डके विभिन्न नामों पर चर्चा करने के लिए वर्तमान बुन्देलखण्ड शब्द से ही इसकी संरचना पर विचार करना चाहिए। दीवान प्रतिपाल सिंह का कथन है वर्तमान समय में इस देश को ''बुन्देलखण्ड'' कहते है। यह नाम दो शब्दों ''बुन्देलखाण्ड'' से बना है। इसका अर्थ ''बुन्देलों का खण्ड या भू–भाग'' है। यहाँ पर जबसे (14वी. श. ई० से) बुन्देले की सत्ता जमी है तब से यह देश ''बुन्देलखण्ड'' कहलाने लगा है [40]।

डॉ. इन्दुप्रभा सिंह सचान दीवान प्रतिपाल सिंह और मुंशी श्यामलाल के साक्ष्यों को सही मानते हुए बुन्देलों के पूर्व इस क्षेत्र का नाम गौडवाना मानती है [41]। किन्तु इसके बाद का नाम इतिहासकार एम. एल. निगम बुन्देलखण्ड ही मानते हैं।

As spate has rieghtly described the region, "Bundelkhand is recognizable by a mass of rounded hummocky Hills with almost a "roches moutonnees" effect, Typical tropical exfoliation weathering in the Redish Bundelkhand- Gheiss, cut across by innumerable white quartzite dyes in all sizes from veins of a few inches to massive walls. [42]

बुन्देलखण्ड में चन्देलों का राज्य चिरकाल तक रहा अनेक यशस्वी राजाओं ने अपने सुकृत्यों से इस तपो भूमि का मान बढाया डॉ. अयोध्या प्रसाद पाण्डे के शब्दों में चन्देलों के समय में इस देश का नाम जेजाक भुक्ति अथवा जेजाभुक्ति था। यह नाम चन्देल वंश के तृतीय नरेश जेजा अथवा जयशक्ति के नाम पर था। चन्देलों के उत्थान पतन काल में यह देश जेजाक भुक्ति नाम से ही विख्यात था। पृथ्वीराज चौहान के मदनपुर के शिलालेख से प्रकट होता है कि 12 वीं शताब्दी तक यह देश जेजाक भुक्ति ही कहलाता था [43]। इस सन्दर्भ में महोबा में एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है वह इस प्रकार है। विन्ध्येल शब्द विन्ध्य तथा प्राकृत प्रत्यय इलच के योग से बना है। (जेजाख्यया अथनृपतिः सबभूव जेजाक भुक्तिः पृथइव यथा पृथिव्यामासीत् [44]।।) अंग्रेज विद्वानों ने भी इस क्षेत्र के इतिहास को खोजने में सक्रिय भूमिका निभाई थी उन्हें भी चन्देल कालीन इतिहास में इस क्षेत्र का नाम जेजाक भुक्ति ही मिला।

यथा– *अरूणा राजस्य पौत्रेण श्री सोमेश्वर सूनुना।*

जेजाक भुक्ति देशोयम् पृथ्वीराजेन लूनिता।। [45] संबत 1239

इस क्षेत्र के इस भूभाग पर चेदि वंशीय राजाओं का राज्य था इस वंश का शक्तिशाली शासक शिशुपाल था। कालान्तर में यह लोग हैहय कल्चुरि और कल्चुरी कहलाये इनका राज्य गुजरात, इन्दौर, जबलपुर तक रहा तथा कुछ समय तक कालिंजर भी इनके राज्य में रहा इसलिए इनका देश चेदि देश के नाम से जाना गया। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार उस समय यह समस्त देश ही अथवा उसका अंश था चन्देल भी इसी चेदि या चंदेली या चंदेरी वंश के थे [46]। सुप्रसिद्ध विद्वान बी. सी. ला. नें जमुना नदी के तट से लेकर दक्षिण में फैले सम्पूर्ण कुरूक्षेत्र को वर्तमान बुन्देलखण्ड माना है और इसे चेदि देश के रूप में स्वीकार किया है।

B. C. Law located it lying near the Jamuna contigous to the kingdom of the kurus roughly corresponding to modern Bundelkhand. [47] सुप्रसिद्ध विद्वान मिराशी भी बुन्देलखण्ड में कल्चुरियों के अस्तित्व को स्वीकारते हुए इसके भूभाग को चेदि देश के रूप में स्वीकारते हैं।

Cedi was originally the name of the country olong the southern Bank of the Jamuna from the chamble on the

north west to the karvi on the south-east. what is father noteworthy in this observations is his view that in later times cedi came to signify the modern province of Baghelkhand.[48]

महाभारत काल में धसान नदी के आस–पास के क्षेत्र को दर्शाण देश के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ के राजा हिरण्य वर्मा की पुत्री पंचाल देश के नरेश शिखण्डी को ब्याही थी यहाँ के राजा सुधर्मा का युद्ध भीम सेन से हुआ था। इस समय दर्शाण देश की राजधानी विदिशा थी [49], कौशाम्बी के आस–पास का क्षेत्र जो बुन्देलखण्ड से मिला हुआ था तथा केन नदी के पूर्व में था उसे वत्स्य देश के नाम से पुकारा जाता था इनके राज्य का विस्तार सोन नदी तक था। ईसा पूर्व पाँचवीं, चौथी, शताब्दी में यह वत्स्य देश के नाम से ही प्रसिद्ध था, [50], कल्चुरि नरेश कर्णदेव ने केन नदी के किनारे कर्णवती नगरी बसायी थी इसलिए उसके आस–पास का क्षेत्र कर्णवती प्रदेश के नाम से विख्यात था सम्भवता यह नगरी बाँदा थी [51]।

कालिंजर के आस–पास का क्षेत्र कांलजर प्रदेश के नाम से जाना जाता है पुराणों में इसका उल्लेख मिलता है।

पवित्र मृषिभिजुंष्टं पुण्यं पावनश्रुतमम्।
गंगायमुनर्योवीर संगम् लोक विश्रूतम्।।13
यत्रायजत भूतात्मा पूर्वमेव पितामहः।
प्रयागमिति विख्यातं तस्मादमरतसत्तम।।14
अगस्त्यस्य च राजेन्द्र तत्रनमवरोमहान।
हिरण्य बिन्दु कथितौ गिरौ कालंरे नृप 52।।15

जब भारत वर्ष में गुप्त साम्राज्य था कि यह क्षेत्र गुप्तों के आधीन था उस समय इस देश को आटब्य देश के नाम से पुकारा जाता था। समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रसास्ति अभिलेख में इसे आटब्य देश के नाम से पुकारा गया है [53], सम्राट हर्ष के जमाने में यह क्षेत्र विन्ध्य आटवी के नाम से प्रसिद्ध था इसका उल्लेख बाणभट्ट द्वारा रचित कादम्बरी में मिलता है [54]।

सागर तथा दक्षिणी बुन्देलखण्ड के एक भाग को 'पिप्पलादि' देश के नाम से पुकारा जाता था समुद्रगुप्त के एरण अभिलेख में इसका उल्लेख है [55]। गुप्तकाल में ही ग्वालियर के आस–पास के क्षेत्र को जो विदिशा तक फैला हुआ था विषद देश के नाम से पुकारा जाता था।

पन्ना के आस–पास का क्षेत्र जहाँ महर्षि दधीच तपस्या करते थे वह क्षेत्र बज्र देश के नाम से विख्यात था। क्योंकि देवराज इन्द्र ने दधीच की हड्डी से बज्र तैयार किया था इसलिए यह क्षेत्र बज्रदेश के नाम से विख्यात हुआ और उसके चूरे से हीरों का निर्माण हुआ जो पन्ना के आस–पास पाये जाते हैं।

अनेक पुराणों में इस देश को मध्य देश के नाम से भी पुकारा गया है यह क्षेत्र हिमालय पर्वत और विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी के मध्य का भाग था कई पुराणों में चित्रकूट के आस–पास के क्षेत्र को चित्रकूट देश के नाम से पुकारा गया है।

इस क्षेत्र में देवताओं के युद्ध दैत्यों से हमेशा होते रहते थे। इसलिए इस क्षेत्र को युद्ध देश के नाम से भी पुकारा जाता था पुराणों में इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है।

चैद्य नैषधयोः पूर्वे विन्ध्य क्षेत्राँच्च पश्चिमे।
रेवायमुनयोर्मध्ये युद्धदेश इतिवर्तते [56] ।।

मुगलकाल में इस क्षेत्र का नाम डॉग कहा जाता था कुछ लोग डॉग शब्द का अर्थ लूटमार करने वाली जातियों से लगाते थे। इसका कुछ भाग हवेली, कुटारा, खटोला, गुडाना, बनफरी, धधेखण्ड, पॅवारी, गहोरा, पठार, पैलेपार, ऐलेपार, चन्देरी आदि कहलाते है [57]।

(2) बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक संरचना एवं बनावट– बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक संरचना विषम प्राकृतिक संरचना है कहीं तो उपजाऊ भूमि है और कहीं पठारी भाग और मरूस्थल है, कहीं गहराई है तो कहीं ऊँचाई है, कहीं पर विन्ध्याचल, पर्वत श्रेणियाँ, और कहीं गहरे गढ्ढे हैं। कहीं बन सम्पदा है, कहीं खानिज सम्पदा है, कहीं ग्राम है, कहीं नगर है, और कहीं जंगल है, इस क्षेत्र में गर्मी, बरसात, और जाडा, तीनों प्रकार की ऋतुयें होती हैं, दीवान प्रतिपाल सिंह का यह पद दृश्यटब्य है [58]।

तुब आति अनूप आनँद–अगार। उपरोक्त काब्य साक्ष्य के अनुसार यह क्षेत्र चार नदियों से आवृत्त है तथा व्यक्ति जो यहाँ निवास करता है उसे अपनी जीविका उपार्जन के संसाधन प्राकृतिक संरचना के अनुसार उपलब्ध होते है। वह कृषि और खनिज सम्पदा तथा बन सम्पदा से अपना जीवन निर्वाह करता है वह पूर्ण रूपेण प्रकृति के आधीन है।

बुन्देलखण्ड मे उपलब्ध भूमि एवं उसके प्रकार–

जो भूमि बुन्देलखण्ड में होती है उसका अधिकॉश भाग पहाडी है

किन्तु जहाँ मैदानी भाग हैं वहाँ निम्न प्रकार की भूमि उपलब्ध होती है।

1—मार मोटा या मुंड— यह भूमि काले रंग की होती है। तथा कुछ—कुछ सफेद रंग लिये होती है। यह सर्वोत्तम कोटि की होती है तथा थोडे से जल में तर हो जाती है तथा यहाँ कीचड हो जााता हैं।

2—रौनीमार— इसे मार दोयम भी कहते हैं। यह हलके काले रंग की होती है और इसमें काले कण भी मिले रहते है।

3—कांबर— यह बिलकुल काली होती है और इसमे काले—काले मिले रहते है।

4—पॉडुवा किस्म अव्वल— यह मिट्टी पीली और काले रंग की तथा कडी होती है पडुआ मे कही—कही और भी भेद कायम है जैसे बलुआ ऊसर गरौटी, और भाट, इनके नाम भी स्थान—स्थान पर भिन्न है।

5—पाँडुआ किस्म दोयम— यह कुछ—कुछ भारी तथा कोमल और हलकी होती है ।

6—राँकड किस्म अव्वल— यह लाली लियेहुए होती है और इसमें पत्थर के छोटे छोटे टुकडें मिले रहते है। इसको पतली या पथरीली राँकड भी कहते है। इसके अन्य भेद डाडी, कोडरा, आदि। विभिन्न स्थानों पर कायम है।

7—राँकड किस्म दोयम — इसमे पत्थर के बडे—बडे कण होते है इसका रंग लाल होता हैं। इसमें मिट्टी कम होती है इसको मोटी राँकड भी कहते हैं।

8—हड—कांबर— यह काबर जाति की हैं। भेद इतना हैं कि जोतने के समय इसके बहुत कडें ढ़ेले जाते है। यह घटिया जाति की भूमि हैं।

9—दौन— यह लाल रंग की भूमि प्रायः दो पहाडों के मध्य में होती में होती हैं इसमें यह विशेषता हैं कि अधिक वर्षा से पथरीली राँकड की तरह झडती नही और कम पानी बरसने से जल्द सूखती भी नही तरबनी रहती है।

10 दो माटियाँ— जहाँ की भूमि मोटी अथवा मार और पँडुआ मिली हो उसे दो माटिया कहते है।

11 तरीताल या कछार— यह सर्वोत्तम किस्म की मिट्टी है तथा यह भूमि नदी के किनारे की भूमि कहलाती है। जब नदी मे बाढ़ आती है तो वह अपने साथ नाना प्रकार के उपजाऊँ पदार्थ लाती है बाढ़ उतर जाने के पश्चात यह पदार्थ भूमि खाद का काम करता है। उपज की दृष्टि से यह सर्वोत्तम है काछी लोग इस भूमि मे नाना प्रकार की

सब्जियाँ बोते है।[59]

<u>**बुन्देलखण्ड की पर्वत श्रेणियाँ—**</u> सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र पर्वतो से आवृत्त है केवल यमुना तट के बाँदा, हमीरपुर, और जालौन, जनपद को छोडकर सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड मे पर्वत सर्वाधिक है। इसकी भौगोलिक स्थित यूरोप के स्वीटजरलैण्ड जैसी है यहाँ की पर्वत श्रेणियाँ निम्न भागो मे विभाजित है।

<u>**1—विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी—**</u> यह श्रेणी दतिया राज्य क सेवडा अर्थात कन्हरगढ़ से 5 मील उत्तर सिंधु नदी के तट के केशवगढ से आरम्भ होती है (26,'24',78',50',) वहाँ से दक्षिण पश्चिम की ओर नरवट को चली गयी है। फिर वहाँ से दक्षिण पूर्व को झुककर उत्तर पूर्व होती है। कालिंजर, अजयगढ़, बरगढ़, से बिन्ध्यवासिनी देवी सूरमहल, और राजमहल से होकर गंगा किनारे —किनारे चली गई है यह पूरी श्रेणी भारत वर्ष के मध्य में कमर बन्द के समान है इसकी चौडाई 12 मील है, और उचाई 2000फिट से अधिक नही है ।[60]

<u>**2—पन्ना पर्वत श्रेणी—**</u> यह पर्वतीय भाग विन्ध्याचल पर्वतीय श्रेणी काही एक भाग है यह विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी के दक्षिण से प्रारम्भ होता है तथा कर्वी में समाप्त होता है । इसकी उँचाई 1000 फुट है और चौडाई 10मील है इसमे बडे—बडे गढढे है तथा इसमें बलुआा पत्थर और चमकीला रीवा पत्थर उपलब्ध होता है। कचरा घाटी और लोहार गाँव के बीच इसकी उँचाई 1050फीट और पथरिया के निकट इसकी उँचाई 1200 फिट है इस पर्वतीय क्षेत्र मे अनेक प्रकार के वृक्ष उपलब्ध होते हैं।

<u>**3—भाँडेर पर्वत श्रेणी—**</u> यह पर्वत श्रेणी पन्ना पहाड से दक्षिण पश्चिम की ओर लोहार गाँव घाटी से प्रारम्भ होती है इसकी उँचाई 2500 फिट और चौडाई 15 से 20 मील तक है इसके ऊपरी भूभाग मे खेती होती है तथा इसमें चूना बनाने का पत्थर उपलब्ध होता है ।

<u>**4—कैमूर पर्वत श्रेणी—**</u> यह पर्वत श्रेणी विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी का एक भाग है यह कर्बी से प्रारम्भ होती है और भाँडेर पर्वत श्रेणी के सामानान्तर जबलपुर और दमोह सीमा तक विस्तृत है इसके पूर्व मे बघेल खण्ड है इन पर्वत श्रेणियों के अतिरिक्त अनेक पर्वत है जिन्हे पहाड चौरिया अथवा भटिया कहते है हमीरपुर जनपद की नवगाँव महेश्वर श्रेणी अजनरपुर पहाड श्रेणी जबलपुर जिले की पटियागढ़ श्रेणी सागर जिले की मालधौन श्रेणी, राहत गढ़ श्रेणी, लिधौरा वण्डा श्रेणी, सागर श्रेणी, दमोह जिले की चुनार घढ़ घाटी, मोजला श्रेणी, मदनपुर की घाटी, तथा नारहट

और भषनेह की घाटी तथा ग्वालियर की सीमा पर मायापुर की घाटी में अनेक पर्वत है बुन्देलखण्ड मे पर्वत श्रेणियो को घाटी के नाम से पुकारा जाता है और पहाडो के बीच के रास्ते को खदिया कहते है छोटी पहाडी को भटिया कहते है ।[61]

बुन्देलखण्ड की सरिताएँ या (नदियाँ)— बुन्देलखण्ड के सीमा का निर्धारण यमुना, टौंस, नर्मदा, और चम्बल, नदिया करती है ये नदियाँ जल अपूर्ति का प्रमुख साधन है। इनसे हमें कृषि उद्योग और व्यक्तिगत उपयोग के लिए जल प्राप्त होता है अनेक नदियाँ यही के पर्वतों से निकलती है और अन्य बडी नदियो में मिल जाती है ये नदियाँ निमनलिखित है।

1—यमुना नदी— यह नदी बुन्देलखण्ड के उत्तर मे प्रवाहित होती है छोटी मोटी नदियाँ जिनका उदय जबलपुर और भूपाल के सन्निकट से हुआ है उनका पानी जमुना मे पहुँचता है यह नदी जालौन, हमीरुपर, बाँदा, आदि उत्तरी सीमा प्रवाहित होती है चम्बल, सिन्ध्य, बेतवा, धसान, बाग, केन, और पैशुनी, इसमे जाकर मिलती है

2—चम्बल नदी— यह नदी इन्दौर राज्य की मऊ छावनी के निकट जनपव पहाड से निकलती है। तथा यह इन्दौर ग्वालियर सीता मऊ झालावार और राज पूताने कें कई राज्यों से प्रवाहित होती हुई इटावा से 25 मील दक्षिण पूर्व में यमुना नदी पर आकर मिल जाती है इसका प्रवाह 650 मील लम्बा है इसका प्रचीन नात चर्मणवती था।

3—सिन्ध्य नदी— यह नदी टोक रियासत के सिरोज परगने के नैनवास से निकली है इसका प्रवाह 250 मील मध्य भारत में है अन्त में यह जगम्न पूर्व से 10 मील उत्तर जाकर यमुना में मिल जाती है। इसके रास्ते में ग्वालियर, दतिया, और जालौन आदि राज्य पडते है इसकी सहायक नदियाँ पार्वती, मउवर, और नन, है आगे चलकर कनवारी और पउज इसी मे मिल जाती हैं।

4—बेतवा नदी— यह नदी भूपाल राज्य में स्थित नर्मदा नदी के किनारों के पर्वतो से निकली है और अपनी लम्बी यात्रा करते हुए बुन्देलखण्ड के उत्तर में यमुना नदी से मिल जाती है इसका प्रवाह 400 मी है यह भूपाल, सागर, ग्वालियर, लालित पुर, झाँसी, ओरछा, जालौन, और हमीरपुर, जनपद के कई राज्यों से प्रवाहित होती हैं इस नदी के किनारे भेलसा, देंव गढ़, चन्देरी, आदि प्राचीन नगर है बीना, नारायण, जामने, वर्माण आदि इसकी सहायक नदियाँ हैं इसका प्राचीन नाम मालवा

नदी था।

5—धसान नदी— यह नदी भूपाल राज्य के सिर मऊ पहाडी से निकली है ओर बुन्देलखण्ड की प्रमुख नदियों में एक हैं। इसके मार्ग में भूपाल सागर झाँसी ओरछा, विजावार, बीहट, जिगनी, और गरोली आदि रियासते पडती है।

6—केन नदी— यह नदी जबलपुर जिले के परिचमी कैमूर पहाडो से निकली है सह दक्षिण से प्रवाहित होकर उत्तर की ओर आकर बाँदा जनपद के चिल्ला नामक ग्राम में यमुना नदी में आकर मिल जाती है यह पन्ना, छतरपुर, चरखारी, गौरहार, आदि में प्रवाहित होती हैं। सुनाड, श्यामरी,और उर्मिल, इसकी सहायक नदियाँ है।

7—बागे नदी— यह नदी पन्ना राज्य के कौहारी गाँव से निकल कर बाँदा जनपद के कमासिन गाँव के सन्निकट बिलास गाँव में आकर यमुना में मिल जाती है कालिंजर दुर्ग इस नदी के सन्निकट है तथा इसके किनारे उद्गम स्थल पर हीरे पाये जाते है।

8—पैशुनी नदी— यह नदी पाथर कछार राज्य से निकली है तथा चौवी चौवे की जागीरो से होती हुई और बाँदा जनपद का सीमांकन करती हुई आगे चलकर बागें नदी में मिल जाती है इस नदी के तट पर जैसा महातीर्थ है।

9—टोंस नदी— यह नदी मैहर पहाडो से निकली है तथा इसका उदगम स्थल तमसा कुण्ड है। इसका प्रवाह 120 मील है और आगे चलकर यह नदी सतना नदी मे सिल गयी है।

10—महा नदी— महा नदी का उद्गम स्थल मडला जिला है यह नदी जबलपुर की दक्षिणी सीमा से होकर उत्तर की ओर विजय राघव गढ़ से प्रवाहित होती हुई रीवा की ओर निकल जाती है और वहाँ सून नदी मे जाकर मिल जाती है। इसकी सहायक नदियाँ कठिनी और निवार, नदी, है।

11—नर्मदा नदी— यह नदी जबलपुर जिले के दक्षिणी भाग से निकली है इसका उद्गम बघेल खाण्ड का अमर कण्टक पर्वत है यह मडला जिले से प्रवाहित होती हुई जबलपुर जिले मे आती है फिर यह नरसिंह पुर जिले की ओर बढ़ जामी है इसके उत्तरी तट पर दमोह सागर और भूपाल रियासते है और दक्षिणी तट पर नरसिंह पुर और होसंगाबाद जनपद है? अन्त मे यह भडोच (गुजरात) के पास समुद्र मे मिलती है इस नदी किनारे संगमरमर पत्थर प्राप्त होता है इसकी सहायक

नदियाँ गौर फलकू विरंज और सिन्धौर हैं।[62]

बुन्देलखण्ड के बन— सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड नाना प्रकार के बनो से धिरा हुआ है जमुना नदी के उत्तरी क्षेत्रमें कोई विशेष बन नही है इसी प्रकार सागर, दमोह, और जबलपुर, के कुछ भागो में बनो की कमी है। जहाँ पर्वत नही है वहाँ घने जंगल नही पाये जाते केवल नदी किनारें बबूल के बृक्ष उपलब्ध होते है। इसके अतिरिक्त झणबेरी, क्ष्योला, और झाँडीदार पेंड पड़ती जमीन मे उग आतें है यहाँ पर पथरीली जमीन और ऊँचे—नीचे जमीन मे यहाॅ खेती नही होती वहाँ नाना प्रकार के वृक्ष उत्पन्न होते है इन वृक्षो की लकडी जलाने के काम मे आती है बुन्देलखण्ड में जंगलो को डाॅग कहा जाता है। इन जंगलो के मध्य में अनेक आदि वासी जातियाँ निवास करती है। जिन्होने अपनी सीमाओ के लिये पत्थर की दीवाले खडी कर रखी है यहाँ बनो मे निवास करने वाली जातियों ने पेडो के नीचे चबूतरे बनाकर अपने देवता स्थापित कर लिये ये लोग उनकी पूजा करते रहते है।

बन उपज— यहाँ के जंगलो मे साल, सागौन, महुआ खैर, बाँस, लालचन्दन, इमली, आम, सरीफा, चिरौंजी, ताड, खजूर, बेंर, सेमर, सलैया, गबदी, अमलताॅस, हलुआ, गूलर, हलद् सिहाडू, कचनार, प्यासा, जामुन, चिल्ला, दूधी, करधई, बेंल, मुनगा, कुशम आदि के वृक्ष उत्पन्न होते हैं। इनकी लकडी फल और फूल यहाँ के लोगो के लिये उपयोगी है।

इनके अतिरिक्त हजारों पेड जैसे कुल्ला या कुल्लू, केमा, धामुन, बेरी, पीपल, बरगद, नीम, तिन्सा, कुमी, जमरासी, करार, बेंकल, सहनबल, चिरोल, धवा, या, धौ, रयोंजा या रेवजा, कैथा सिरमा, ऐरमा, कंजी, बीजा, या बीजासाल, सेजा या लेडिया, बकायन, अशोक कदम, गुंजा, कांकड, हर्र, बहेडा, आँवला कोहा, या कवा, शीशम, छेवला, या ढाक, या पलास, घोंट पापडा, कारी आदि और अनेक प्रकार की बूटियां अथवा दवायें यहाँ के पहाडों और जंगलो मे होती है[63]

यहाँ के बनो में नाना प्रकार की झाॅडिया उपरोक्त बडे—बडे बृक्षो कें अलावा बहुत काॅटेदार झाँडियां जंगलो में होती हैं। ये प्रायः निम्न जाति की है।

1—करोंदा, 2—करेल, 3—रियां 4—चमरेल, 5—माहुल, 6—इंगौट व इंगुवा, 7—सहजना, 8—जरिया या झरबेंरी, 9—मकुइया, या मकोर, 10— रक्त बिडार 11— गटान 12—थूहड़ 13—संपाफनी आदि।

इन बनों में उद्योग की दृष्टि से लाक ओंद, शहद

मोम, बैचाँदी सफेद मूसली, बंश लोचन, कत्था बिलाई कन्द, लक्ष्मण कन्द, साभर सींक, चमडा, खखूदन, नौनी, धवई हडडी ,महुआ अचार, आँवला हर्र, बहेरा आदि पदार्थ बनो के कारण हमें उपलब्ध होते हैं।

इन पदार्थों के अतिरिक्त घास भी जंगलो से अपलब्ध होती है यह घास निम्न प्रकार की होती है ।

1–पखोवा या पखी या पखा, 2–केल या कैला 3–मुसपाल या मुसेल, 4–गनेर या गुनैया या गुनर या गुनारू 5–सैद या भानुपुरी या सैना 6–रोसा या रोहस, 7–उकारी 8–दूब 9–लियासा 10–लंपू 11–मुरजना 12–गंदली 13–तिगुडा, 14–पनबसा 15–पंडप इत्यादि।[64]

बनो में उपलब्ध होने वाले जीव जन्तु– बुन्देलखण्ड मे उपलब्ध बनो में नाना प्रकार के हिंसक जीव जन्तु पाये जाते है। यहाँ पर छोटा शेर पर्वतो और जंगलो मे निवास करता है और निर्जन बन मे अपना निवास बनाता है पहले राजा लोग इनका शिकार किया करते थे। इन्हे बन राज भी कहते है इनकी संख्या बहुत कम हो इसके अतिरिक्त यहाँ तेन्दुआ भी पाया जाता है यह गाय और बकरियो को काफी नुकसान पहुँचाता है। यहाँ अजयगढ़ और चन्देरी के जंगलो मे चीता भी पाया जाता है अनेक राजा महाराजा चीता पाला करते थे यहीं के जंगलो मे नदी किनारे और पहाडो मे भालू भी रहता है। यह मनुष्यों पर हमला करता है तथा पेड के जडे बेर आदि खाता है ईटा खाना भी इसे बहुत पसन्द है इसके अतिरिक्त भेडिया विध्ना, गीदडया लडइया, जंगली कुत्ता सूअर स्याही, चरखरा, अघ्लेडा आदि जानवर यहाँ उपलब्ध होते है ।

कुछ अन्य जानवर भी यहाँ उपलब्ध होते है जिनमें मृग ,नील गाय चिनकारा , साँभर चीतल चौसिगा, भडिया, लोमडी खरगोश बन्दर लंगूर चमगीदड नेवला साफ बिच्छी, गोह ,गोहरा, छिपकली, गिरगिट, आदि यहाँ के प्रमुख जंगली जानवर है ।

जल जीव– यहाँ के जलाशयों में निम्नप्रकार की मछलियों उपलब्ध हैं

1–महेश्वर	2–गुलाबी	3–बछुआ	4–नैनी या मिरगल
5–बैकरी	6–रोहू	7–गौंच	8–कलवांस या करौंची
9–टेंगरा(कनुटवा)	10–सौर	11–ग्वाली	12–चपटा
13–बाजी	14–पडहन	15–अनबारी	16–चिलवा
17–बाम	18–झिंगरा	19–सिलंद	20–सिरी
21–मुई	22–स्वांग	23–दिगर	24–बवास

25—बस 26—करटा 27—बजुरी 28—करोसर

यहाँ के जलाशयो मे मछलियो के अतिरिक्त मगर, घडियाल, कछुआ, सूक्ष, उदबिलाव, केकडा, आदि जल जीव पाये जाते है ।

आकाश मे उडने वाले पक्षी— यहाँ जंगलो और मैदानी भागो मे अनेक प्रकार उडने वाले पक्षी पाये जाते है।

,मोर	तीतर
ताता(सुवा, सुग्गा)	बटेर
कौआ	लवा
फाख्ता(डोकिया)	मुरेलायासावर
गौरेया(बाम्हनचिरैया)	मंगूरा
सारस	चूहा
मुर्गाबी	राजहंस
बत्तखा	भर—तीतर
सिलगिला	छपका
हाडल	लालमुनैया
कबूतर	गलगलिया
पिडी	पनडुब्बी 65

बुनदेलखण्ड में उपलब्ध खनिज सम्पदा— बुन्देलखण्ड खनिज सम्पदा के लिए धानी क्षेत्र है यहाँ के वन पर्वतो और मैदानी भागो मे नानाप्रकार की खनिज सम्पदा उपलब्ध होती है। यह खनिज सम्पदा एक स्थान से दूसरे स्थान से दूसरे स्थान पर जाती रहती है तथा इससे उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश और केन्द्रीय शासन को 5 हजार करोंड का राजस्व प्रति वर्ष मिलता है। मुख्य रूप से यहाँ कलई चूना, इमारती, लकडी, एवं इमारती पत्थर उपलब्ध होते है इसके अतिरिक्त लोहा, ताँबा, सोना, बिल्लौर, पत्थर, हीरा और कोयला यहाँ अनेक स्थानो पर पाया जाता है।

मुख्य रूप से कलई अथवा चूने का पतथर सतना और जबलपुर आदि मे कई स्थानो पर उपलब्ध होता है सड़क और इमारतो मे लगने वाला पत्थर ललितपूर बाँदा के आस पास उपलब्ध होता है। यहाँ कई स्थानो मे गोरा पत्थर भी उपलब्ध होता है इनसें विशेष प्रकार के पत्थर के उपयोगी बर्तन और खिलौने बनते है यहाँ जबलपुर के सन्निकट संग्र, जराहत पत्थर उपलब्ध होता है यह देखने मे संगमरमर जैसे होता है किन्तु ये संगमरमर स मुलायम होता है। यहाँ पर कही कही कच्चा

हीरा भी पाया जाता है जिसे बर्टन बनायी जाती है केन नदी के तट पर एक विशेष प्रकार का पत्थर पाया जाता है जिसे सजर पत्थर कहते है इसे नग वगैरा बनाया जाते है यहाँ पन्ना आदि जनपद में इमारती पत्थर सर्वाधिक पाया जाता है इसका उपयोग घरो में होता है ।

जिस पत्थर से लोहा निकलता है उसे धाउ कहते है यह ज्यदा तर लाल जमीन मे पाया जाता है कालिंजर और अमर कटंक के पास जबलपुर के आस पास मैगनीज उपलब्ध होती है जिसके उपयोग से लोहा स्पात मे बदल जाता है यहाँ कई एक स्थानो मुख्य रूप से जातारा मैहर, कलई, खाडी घेरू, और प्योरिया आदि मिटटी पायी जाती है। इसका उपयोग मकानो की रंगाई के लिए होता है यहाँ नदियो के तटपर उत्तम कोटि की उपलब्धा है जिसका उपयोग भवन निर्माण मे होता है झाँसी और सागर जनपद मे अभ्रक पाया जाता है। झाँसी सागर जबलपुर और बुन्देलखाण्ड के दक्षिणी जिलो पर कई स्थानो मे ताँबा उपलब्ध होता है। जबलपुर जनपद मे एल्यूमीनियम उपलब्ध होता है यहाँ कई एक पहाडियो मे मुख्य रूप से बिजावर और जबलपुर के सन्निकट पत्थर का कोयला होता है। जबलपुर के आस पास चीनी मिटटी भी उपलब्ध होती है जिसे नाना प्रकार के चीनी मिट्टी यहाँ जबलपुर के सन्निकट फिटकरी, सोना, चाँदी, और सीसा, भी उपलब्ध होता है। कालिंजर के सन्निकट कुठला जवारी के जंगल में एक प्रकार का लाल पत्थर पाया जाता है। जिससे यहाँ के लोग सोना बनाया करते थे।

यहाँ की प्रमुख मूल्यवान खनिज सम्पदा हीरा हैं सर्वाधिक पन्ना राज्य में उपलब्ध होता है। और इसका कुछ भाग कालिंजर के सन्निकट उपलब्ध होता है मुख्य रूप से यह हीरा भौर खदान मौढा खदान में उपलब्ध होता है इसके अतिरिक्त यह आइने–अकबरी में इसका उल्लेख उपलब्ध होता है, कालिजर से 20कोस पर हीरे की खान थी और कालिंजर के राजा कीरतसिंह के पास 6 बडें –हीरे थे [66] हीरों के उद्योग का बिस्तार पन्ना महराज छत्रशाल के जमाने से हुआ सन् 1672 से लेकर सन् 1731 तक कई स्थानो पर हीरों की खादाने लगाई गई उसके पहले यहाँ के निवासी हीरों का महत्व नही समझते थे।

जलवायु एवं मौसम– बुन्देलखाण्ड की विषम प्राकृतिक संरचना होने के कारण यहाँ की जलवायु भी परिवर्तनशील है जिसके कारण निम्न ऋतुये होते हैं।

1. ग्रीष्म ऋतु– यहाँ पर्वतों की संख्या सर्वाधिक है जो ग्रीष्म ऋतु

में सूर्य से तप जाते हैं जिसके कारण मई जून में यहाँ अत्यधिक गर्मी पडती है और गरम हवायें चलती है जिन्हें लू–लपट के नाम से पुकारा जाता है। कभी–कभी इनके प्रभाव से लोग मर भी जाते हैं तथा कभी–कभी गर्मी की वजय से यहाँ अनावृष्ट का सामना करना पडता है जो कृषि को प्रभावित करता है।

2. वर्षा ऋतु– यह ऋतु बुन्देलखण्ड में असाढ़ माह में प्रारम्भ होती है और क्वाँर के महीने में समाप्त होती है यहाँ की वर्षा ईश्वर के आधीन है। और कृषक वर्षा के आधीन यहाँ कभी आधक वर्षा होती है जिसके कारण नदियों में बाढ़ आ जाती है छोटे–मोटे गाँव और शहर कभी–कभी जलमग्न हो जाते हैं और पानी बरसते समय कभी बिजली भी चमकतीहै और बादल फट जाता है। कभी–कभी वर्षा बहुत कम होतीहै या इस पूरे परिक्षेत्र में 32 से 45 इंच तक की वर्षा होती है अधिक वर्षा के कारण यहाँ नाना प्रकार की बीमारियाँ फैल जाती हैं। इस सन्दर्भ में यहऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होता है। सन 1857 ई० में मारक्विस ऑफ वैटिंक गवर्नर जनरल साहब ने इस ओर दौरा किया था। उस समय उनके लश्कर में ऐसा हैजा फैला था कि सैकडो आदमी मर गए और जलाना कठिन हो गया। स्थानीय जलवायु के खराब होने के कारण कैथा की छावनी तोडकर नौ गाँव में कायम की गई थी [67]। वर्षा ऋतु के पहले और बाद में यहाँ बडी तेज आधियाँ चला करती है जिससे अनेक मकान छतिग्रस्त हो जाते है और पेड उखड जाते हैं कालिंजर, अजयगढ आदि पर्वतीय क्षेत्रों में तेज आधियाँ चला करती हैं।

3. जाडे की ऋतु– अक्टूबर माह के प्रारम्भ से 15 मार्च तक यहाँ जाडे की ऋतु रहती है अक्टूबर और नवम्बर माह में कुछ जाडा कम पढता है दिसम्बर, जनवरी, फरवरी में बहुत अधिक जाडा पढता है और कहीं–कहीं बर्फ भी जम जाता है बसन्त पंचमी से लेकर होली तक यह जाडा धीरे–धीरे कम होने लगता है कभी–कभी सीत लहर चलती है कोहरा पड़ता है और ओले भी गिरते हैं जिनसे कृषि को काफी नुकसान पहुँचता है।

1. प्राकृतिक संरचना का जनजीवन में प्रभाव– यहाँ की प्राकृतिक सरंचना के कारण आवागमन के साधनों का आभाव रहा है जिसके कारण यहाँ एक विस्तृत संस्कृति का जन्म हुआ है यहाँ निवास करने वाले कोल, भील, गौड, बैगा, खैरवार, सबर, पुलिन्द आदि जंगली जातियों के अलावा बाहर से आई हूज, शक, कुषाण, और आर्य कुल

जातियों इस संस्कृति को विकसित करने में अपना सहयोग प्रदान किया। यहाँ बुन्देली भाषा को जन्म मिला यहाँ की भेष–भूषा और धर्मा चरण अन्य स्थलों भिन्न हुआ जिससे यहाँ की पहचान बनी भूमि की बनावट में आवासीय व्यवस्था को प्रभावित किया तथा यहाँ की ऋतुयें के वस्त्रों के ऋतु के अनुसार अलग–अलग स्वरूप प्रदान किया ऋतुओं ने ही अपने प्रभाव से जो भूमि अनाज उत्पन्न कराया उसीसे यहाँ के लोगों का भरण–पोषण हुआ लोग यहाँ के निवासी प्रकृति के दास हुए और विषम परिस्थितियों ने उन्हें जीना सिखाया।

यथा–

महुआ मेवा बेर कलेवा गुलगुज बडी मिठाई ।
जो इतनो चहने होय तो करो गुजाने सगाई ।
इन्द्र करौटा लय गये मगा बाद्दाँ गये टेक ।
बेर करौंदा जो कहे मरन देहे एक ।
जमी हम वार नही दरको फलदार नही ।
मर्द वफादार नही औरत बिन यार नही ।

प्राकृतिक जीवन का आर्थिक सरंचना पर प्रभाव–

यह धरती खानिज सम्पदा से भरी पडी है किन्तु आलस्य अबोधता और अज्ञानता के कारण यहाँ का मूल निवासी इस खानिज सम्पदा का ब्यापक लाभ नही उठा पाया। वह इसलिए गरीब बना रहा और आज भी गरीब है । जबकि इसका लाभ राजा महराजाओं सामान्तो जागीरदारो जमीदारो और धनी व्यक्तियों ने व्यापक रूप से उठाया इन्होने खानिज सम्पदा का दोहन किया उसे बाहर भेजा और करो डो की सम्पाती कमाई चन्देल कालीन दुर्ग धार्मस्थलो की भब्यता को देखाकर उस युग की आर्थिक परिकल्पना की जा सकती है। इन नरेशो ने निश्चित ही यहाँ की वन सम्पदा खानिज सम्पदा और कृषि उपज, से इतना आर्थिक लाभ उठाया होगा जिनसे वे अनेक स्थलों में दुर्ग धार्मस्थल और बडे–बडे सरोवर बनवाने मे सफल हुये इसी समृति को देखाकर अनेक विदेशी आकमण कारियो ने बुन्देलखण्ड़ पर आक्रमण किया। और उसे लूटा जो सम्पत्ति लूट कर ले गये उसे यहाँ की आर्थिक स्थित का अन्दाज लग जाता है। दूसरी ओर आलस्य और निर्धनता से प्रभावित होकर यहाँ का ब्यक्ति चोर और लुटेरा बना।

नाथ हमार यहै सेवकाई,
भूषन बसन न लेहि चुराई

बैरंगियाँ नाला जुलुम जोर,
जहाँ साधु भेष मैं रहत चोर,
जब तबला बाजैधीन धीन,
तब एक–एक पै तीन–तीन,

यहाँ के व्यक्ति को जब मुक्त में खाना मिल जाता है तो वह काम नही करना चाहता मर्दो की अपेक्षा औरतें ज्यादा श्रम शील है।

3–प्राकृतिक संरचना का इतिहास एवं राजनीति पर प्रभाव– यहाँ की प्राकृतिक बनावट ने यहाँ राज्य करने वाले नरेशो को व्यापक संरक्षण प्रदान किया है इसका अन्दाज विभिन्न पर्वतीय क्षेत्रो और मैदानो में बने दुर्गो से लग जाता है। बुन्देलखण्ड का सर्व प्रसिद्व दुर्ग कालिंजर था जिसका जीत पाना किसी भी आक्रमण कारी के लिए आसान कार्य नही था। इसी प्रकार अजयगढ, मनियागढ, महोबा, देवगढ, ग्वालियर, आदि के दुर्ग थे आसानी से नही जीते जा सकते शत्रु सेना को यहाँ तक आने और उसे जीतने मे व्यापक कठिनाई उठाना पडती है इस क्षेत्र में नागो कुशवाहा, वंशियो वत्स्यो, कल्चुरियों चन्देलो, और बुन्देलो, ने सैकडो वर्ष तक राज्य किया और अपना स्वतन्त्र असितित्व बनाये रखने के लिए सतत संघर्षशील रहें और शत्रुओं को परास्त करते रहे यदि बुन्देलखण्ड में उँचे–उँचे पर्वत और पवित्र सरिताए न होती तो सम्भवता न तो नरेश दुर्गम स्थलो पर अपने दुर्ग बना पाते और न यहाँ के निवासियो की मूल संस्कृति का वे संरक्षण कर पाते इसलिए प्राकृतिक संरचना को हम इस रूप मे स्वीकार करते इसमें यहाँ के इतिहास और संस्कृति को तथा राजनीति को प्रभावित किया है ।

3–बुन्देलखण्ड के निवासियों की सभ्यता एवं संस्कृति तथा उद्योग– सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में हजारो की संख्या में गाँव है और सैकडो कस्बे है तथा अनेक नगर हैं। इन सभी क्षेत्रों में व्यक्ति हजारो वर्षो से रह रहा है कि यह ज्ञात नही है कि व्यक्ति यहाँ कब और कैसे आया उसका सम्बन्ध किस जाति विशेष से है और उसे यहाँ रहते हुए कितने वर्ष यहाँ व्यतीत हो गये है ये सब ज्वलन्त प्रश्न है जिनका कोई निश्चित उत्तर नही है हम अपनी परिकल्पना के आधार पर इनका इतिहास हजारो वर्ष पुराना मानते है तथा कोइ ऐसा तथ्य सामने लही दिखाई देता जो विज्ञान और यथार्थ से जुडा हो हमने अपने पुर्त जो से सुना उसी को माना अैर वही बात अपने उत्तराधिकारियों से कही

जो आगे चलकर इतिहास बन गई। स्पष्ट है कि हमने परम्पराओं को ही इतिहास माना है थोडे बहुत साक्ष्य जो हमे उपलब्ध हो गये उन्ही को हमने मान लिया है।

मानव सभ्यता और संस्कृति का क्या आधार है यह हमें सोचना और समझना होगा हमको पाषाण युग को प्राचीनतम युग माना है और तहीं से हम सभ्यता का सुभारम्भ मानते है। बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलो में पुरा पाषाण युगीन अस्त्र–शस्त्र उपलब्ध हुए है जिनसे यह आभास होता है कि व्यक्ति यहाँ अति प्राचीन काल से अपनी जीवन शैली से जी रहा है इसी जीवन शैली को हम सभ्यता और संस्कृति का नाम देते है इसमे आवासीय व्यस्था वस्त्र आभूषण सामाजिक व्यवस्था आर्थिक व्यवस्था आदि शामिल होते है इसी को हम अपनी संस्कृति का आधार मानते है बुन्देलखण्ड की सभ्यता संस्कृति एक भिन्न प्रकार की सभ्यता संस्कृति है। यह सभ्यता संस्कृति भारत वर्ष के अन्य क्षेत्र मे विकसित सभ्यता संस्कृति से मेल नही खाती इसकी अपनी खुद की विशेषताएं है मुख्य रूप से प्रकृति उपासना बहुदेव वाद और ग्राम देवताओ की उपासना इसकी मुख्य विशेषताएं थी।

यदि यहाँ के व्यक्तियो की आर्थिक स्थित पर विचार किया जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि समपूर्ण आर्थिक स्थित का आधर यहाँ के प्राकृतिक संरचना और उसमें उपलब्ध होने वाले अनेक पदार्थ तथा कृषि उपज यहाँ की आर्थिक स्थित का निर्माण करती है जो भी यहाँ उतपन्न हुआ व्यक्तियो ने उसी पर आधारित उद्योग स्थापित किये मुख्य रूप से कुटीर उद्योग जो भिन्न–भिन्न जाति और वर्ग में बँटे थे वही यहाँ के अर्थ के साधन बने तथा वही उद्योग शासन तन्त्र को भी लाभ पहुँचाते रहे तथा यहाँ के आर्य तन्त्र में निर्बल या श्रमिक कृषि या व्यापारी सामन्त या प्रशासक को जन्म दिया तथा इसी ने आर्थिक दृष्टि से निर्धन और धनी व्यक्तियों के बीच विभाजन की रेखा भी खीची।

बुन्देलखण्ड के निवासी– बुन्देलखण्ड में अति प्राचीनकाल मे अनेक ऐसे स्नि उपलब्ध होते है जिनसे यह पता लगता है कि यहाँ अति प्राचीन काल से मनुष्यो की बस्तियाँ थी ये बस्तियाँ यमुना, नम्रदा, चम्बल, विन्ध्य, टोस तथा अन्य नदियो के किनारे थे दीवान प्रतिनाल सिह के अनुसार इसमें सत्य आर्य कुलो के सिवाय प्राचीन अनार्य कुलो की कितनी ही असत्य जंगली नंगी–धडंगी जातिया कौंदर सौर, आदि कई स्थलो पर इस समय भी मौजूद हैं। जो इस भूभाग के सम्बन्ध में आर्यो

से पहले का स्पष्ट पता दे रही हैं। द्रविड कुल में माने जाने वाले दक्षिणी ब्राहण तथा गौंड अथवा कोपत्तुर भी यहाँ हैं नाग भी नर वर आदि में होना कहे जाते हैं।[68]

मानव सत्यता का विकास पूर्व पाषाण काल और उत्तर पाषाण काल में हुआ इस सब्यता के अवशेष बाँदा जनपद के बरियारी ग्राम से उपलब्ध हुए है यह स्थान केन नदी के तट पर स्थित हैं।[69]

बाँदा गजेटियर में भी इस बात की पुष्टि की गई है कि पुरा पाषण युग में भी यहाँ मानवो का असितित्व था जिनकी खोज कतिपय इतिहास कारो ने की।

The stone implements and olher Remains found here of the palealithic and nealithic periods [70] prove that human civi-lization began here in those earliest times in much the same way as in the rest of the country. the first glimpse of the early history of the district is obtain ed from the stone arrowheads and other implements discovered in 1882 A.D. at various places in the distrid.[71] specimens of nealithic tools have been feen found at manikpur and its neigh bourhood.[72]

ललितपुर जनपद में भी पुरा पाषाण युगीन अस्त्र शस्त्र उपलब्ध में है इनकी खोज डॉ0 संकालिया ने की थी।

यथा– *the discovery of some plaeolithie tools in the lalitpur area throws sometight on the existence of the hand-axe culture there the material of which thesetools are made is a coores sand stone nevertheless thevari ous types of hand -axes and cleavery symmet vically made.[73]*

चित्रकूट जनपद के सिद्वपुर गाँव में ही पुरा पाषाण युगीन अस्त्र–शस्त्र उपलब्ध हुए है इनमें बहुत अस्त्र–शस्त्र नुकीले है इसी प्रकार के अस्त्र–शस्त्र ऐचवारा और लोधवारा मे भी उपलब्ध हुए है।[74] सुप्रसिद्व इतिहासकार के0के0 शाह ने भी पुरापाषण युगीन अस्त्र शस्त्रो की चर्चा की है उन्होने ऐसे अस्त्र–शस्त्र दमोह जनपद में पाये जाने का अल्लेख किया है यह अस्त्र–श्स्त्र लगभग चार हजार वर्ष पुराने है ।

the rivers sonar popra and bearna in damch district yielded industries of all the three periods. apartfrom stone

tools the early manhas left a rich legacy if Roch -paintinags the earliest among them being lahen to 4000B.C.[75] *k.d. bajpou uho made a discovery in banda district halds the view that the paintings rveaed a civilizalion older than that of the indus velley but with .a highly deveoped aesthetic sense.*[76]

एम0 एल0 निगम जैसे प्रसिद्व इतिहासकार भी यह स्वीकार करते है बुन्देलखण्ड की सभ्यता अति प्राचीन है और यहाँ पुरा पाषाण युग में भी मनुष्य निवास करता था अनका मानना है कि

The prehistoric tools from various sites inthe banda[77] *Hamirpur jhansi*[78] *sagar*[79] *damoh panna*[80] *and jabalpur*[81] *districts of nubndelhhand include a huge coection of the stone tools of the series in the year 1951 k. n. puri discovered a paleolithic site at deogarh in jhansi district in the basin of the betwa river atribqry of the yamuna*[82] *.*

पुरापाषाण युगीन के अस्त्र–शस्त्र सम्पूर्ण बुन्देल खण्ड मे अनेक स्थलो में शैल चित्रों की उपलब्धि हुई है ये शैल चित्र गुफाओ के अन्दर और पर्वतो की बाहरी दीवारों पर बने हुए है सुप्रसिद्व अंग्रेज विद्वान काकबर्न ने बाँदा जनपद में इन्हे सर्व प्रथम खाजा था [83] । इसके अतिरिक्त सिल्वेराड ने भी इसी जनपद में सराहट मलवा तथा कुलियागढ में शैल चित्रो की खोज की थी इन शैल चित्रो में अस्त्ररोहियो का समूह अंकन और आखेट के चित्र है सराहट में उपलब्ध एक शैल चित्र में एक बैल गाडी का चित्र है जिसमें एक बैल जुडा हुआ है। इसी प्रकार के शैल चित्र अमवा, बरगढ़ उलटन में भी प्राप्त हुए है यही देवराग्राम मे भी अनेक शैल चित्र अपलब्ध हुए है [84] बाँदा गजेटियर में भी इस बात का उल्लेख मिलता है कि इस जनपद के कई स्थलो में अति प्राचीन शैल चित्र अपलब्ध हुए है जिससे यहाँ के निवासियो के बारे मे पता चलता है[85] ।

Rough shetches of birds beats and human beings Have been found in thes region and it was undoubt edly one of the four principel centres of neolithic paintings[86] *.*

सुप्रसिद्व इतिहासकार डाँ0 कन्हैया लाल अग्रवालने भी बाँदा

जनपद में सराहट,मलवा, कुरियाकुण्ड, अमवा,अल्टन, और बरगढ़, में शैल चित्रो के असितित्व को स्वीकार किया है [87] सुप्रसिद्व विद्वान एम0 एल0 निगम ने भी बाँदा जनपद के अतिरिक्त भूपाल तथा सागर जनपद मे भी शैल चित्रो की अपलब्धि को सही माना है।

A large number of such cave paintings have been found in babnda district of uttar pradesh snd the bhopal and sagar districtys. of madhya pradesh Besides the hilly tarcts around the valleys of ricers chambal narmada and son have also yielded numerous other sites wilh such paintibing which wold suggest thal the people who practised thes art inhabited the vast areas uight from the mirapur distict in nort the hoshrngabad district in south and the chambal valley in the north west A serics of Excavations conducted in the rock-shelters have brought to light a quantity of microliths wich prompted scholars to date these paintings to the mesolithic period.[88]

यह स्पष्ट रूप से नही कहा जा सकता कि बुन्देलखण्ड के मूल निवासी कौन थे किन्तु यह सत्य है कि आर्यो के पूर्व यहाँ अनार्य कुल की अनेक जातियाँ निवास करती थी ये लोग नंग–धंडग रहते थे तथा कुछ स्थानो में इन्हे कौदड शौर, कोल, भील, गौंड, बैगा, खैरवार आदि नाम से पुकारा जाता है। सबसे पहले इसमें यहाँ पर तिब्बती वर्मी कोल उत्तरी पूर्व क्षेत्र से बुन्देलखण्ड में आये इन्होने सर्वप्रथम अपना निवास स्थल कालिंजर, मडफा, मैहर, आदि मे बनाया बाद में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में फैल गये दीवान प्रतिपाल सिह के अनुसार यहाँके प्राचीन बडे–बडे पहाडी किलेमनियागढ़, कालिंजर, मडफा, मैहर, आदि कदाचित इन्ही कोल द्रविडो के है।[89]

सुप्रसिद्व विद्वान ड्रेक दोपमैन ने बाँदा जनपद में भील कोल के असितित्व को स्वीकार किया है यह कहाँ है कि यह लोग विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियो मे निवास करते थे–

In pre-historic times this region seems to have been Inhabited by primitive peoples like the bhils and hols whose descendants still inhabit the vindhyan forests of the district[90]

हमीरपुर जनपद मे भी गौंड, कोल, भील, काछी, ओर कुर्सी, आदि जातियाँ

प्राचीन काल से रहती है।

In primetive times this major part of the region was covered with forests and would have been inhabeted by such forest tribes as 4the gonds kols bhils kachhies Kurmis etc. whose existince is re-vealed through local traditions.[91]

झाँसी जनपद में भी कोल सहरिया गौंड, घर, बांगड, और खगांर, निवास करते थे यद्यपि इनकी संख्या बहुत कम 7 है।

In prehistoric times this region seems to have been Inhabited by certain primitive peoples likes the bhils kols saheriyas Gonds, bhars bangars and khangars. these people still the district though In small numbers.[92]

जालौन जनपद में निवास करने वाली जातियो में अन्य जनपदो की भाँति आर्यो के पूर्व कोल भील, आदि जातियाँ निवास करती है ।

The material for contstructing the early history of the jalaun destrict are even more meagre than those for other portions of bundelhhand. leke other portions of the tract its earlicst oeeupants were probably bhils and simelar tribes but because of Its greater fertity and less wild and broken chara cter it was oeeupied earlier than other portions of Bundelkhand by aryan Immigrants.[93]

ऐसे प्रतीत है कि आर्यो का आगमन यहाँ अनार्य कुल जातियो के बाद हुआ । आर्यो द्वारा रचित बेदों मे इस क्षेत्र से जुडे कई स्थलो का वर्णन उपलब्ध होता है उनके ग्रन्थो मे दशाण चेदि वत्स्य आदि क्षेत्रो का वर्णन सविस्तार मिलता है। ये लोग गौरांग लम्बे सभ्य और सुशील थे बहुत से इहिास कार इन्हे विदेशी जाति का मानते हैं और उनका अनुमान है कि ये लोग उत्तर पश्चिम एशिया से भारत वर्ष आये थे किन्तु राधा कृष्ण बुन्देली पुराणो का उदाहरण देते हुए कहते हुए कि राजा दक्ष के तीन कन्याये थी जिनमे एक सती का विवाह भगवान शिव से तथा दिति और अदिति नाम की दो कन्याये महर्षि कश्यप को व्याही थी इनमे से दिति अथवा अनार्य पैदा हुए और अदिति से देवता आर्य पैदा हुए जब आवागमन के साधनो का आभाव था तब कोई भी जाति का बाहर से आगमन सम्भव प्रतीत नही होता था।

श्री एम0 एल0 निगम का मानना है कि आर्यो का आगमन

यहाँ ईसा के लगभग 5000 वर्ष पहले हुआ तथा इन्होने अपना सर्वप्रथम निवास स्थान कौसाम्बी ऐरच और त्रिपुरी के आस–पास बनाया वे बाद मे धीरे–धीरे ये ग्रामीण अंचलो में फैल गये सामाजिक दृष्टि से आर्य लोग चार वर्णो मे विभाजित थे ये वर्ण ब्रहाण क्षत्रिय वैश्य ओर शूद्र थे।

The society as a whole was divided into four varnas vez. the prahmin Kshtriya vaishya and shudra. we get ample evidences in epigrapnic records and the contemporary literature about the existence of these four sections.Howeve the rigidity of the caste system had not yet fuly developed . there are inscrptional refrernces to various Groups which followed their hereditary probessions and formed their guilds to look after their Interests. we do not however have positive Evidence to conclude that these profesional groups Had fallen into the rigidety of the later castesystem.[94]

आर्यो के आगमन के सम्बन्धा मे अपलब्धा संस्कृत साहित्य से होती है कालान्तर मे किस प्रकार से सम्पूर्ण विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी के मध्य में किस प्रकार आर्य फैले और उन्होने अपनी संस्कृति का विस्तार यहाँ किया के0 के0 शाह के अनुसार

Early aryan advance of instrusion into the area hasto be Ascertained from sansbrit literature. Brahmanisat of Bundelkhand appear to have been Initiateby the Rsis who ventured into the vindhyan wilds.[95]

स्थानीय किंम दन्तियाँ है कि बुनदेलखण्ड का सम्पूर्ण क्षेत्र ऋषियों के आश्रम से भरा हुआ था बाल्मीकि, वेद ब्यास, अत्रि, और अगस्त के आश्रम बुन्देलखण्ड में ही थे।[96] यह बडी दिलचस्प बात कि दतिया के सन्निकट गुजर्रा मे जहाँ अशोक का स्तम्भ लेख है वह क्षेत्र सिनदो की टोरिया नाम से विख्यात है इससे यह स्पष्ट होता है कि इस सथान पर साधू सन्त लोग रहा करते थे [97] बाण भटट द्वारा रचित कादम्बरी से भी यह ज्ञात होता है कि विन्ध्य आटवी में ऋषि लोग रहकर पवित्र यज्ञों का आयोजन किया करते थे [98]।

बाँदा गजेटियर मे भी आर्यो के आगमन का उल्लेख मिलता है सर्व प्रथम आर्यो ने यहाँ चेदि वंश की स्थापना की जिसका संस्थापक कशु चेदिया था उसने यहाँ के दस राजाओ का गुलाम बनाकर अपने पुरोहितो को दान मे दिया उसकी प्रसंसा दान स्तुति मे ऋगवेद मे की

गई है[99] चेदि नरेस ने अपना राज्य बाँदा जनपद के गिरवाँ ग्राम के समीप केन नदी के तट पर सुक्ति मती नगरी पर स्थापित किया था। जालौन जनपद मे भी आर्यो का आगमन चेदि साम्राज्य स्थापित होने के बाद हुआ इन्होने अपना राज्य कशुचेदि के नेतृत्व मे यमुना तट से लेकर समस्त बुन्देलखण्ड मे फैलाया इस वंश के राजा से यहाँ के दस राजाओ का युद्व हुआ जिनमे परास्त हुए [100] झाँसी जनपद मे भी आर्यो का आगमन इसी प्रकार हुआ उनहोने समपूर्ण झाँसी क्षेत्र मे भी दस राजाओ को हराकर अधिकार कर लिया इसके पश्चात पुरू रवा और उसके पश्चात उसके नाती पयति ने कुछ वर्षे तक राज्य किया उस समय झाँसी मध्य क्षेत्र के अन्तर्गत था [101]।

जालौन जनपद मे भी आर्यो का विस्तार कुछ इसी प्रकार हुआ है ।

अपलब्ध पौराणिक साक्ष्य के अनुसार अयोध्या के राजा सगर ने सम्पूर्ण उत्तर भारत पर राज्य किया उनकी मृत्यु के पश्चात उनके द्वितीय पुत्र ने विदर्भ तक राज्य का विस्तार किया और वह चेदि देश का राजा बना चम्बल से लेकर सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र उसके राज्य में आ गया आर्यो के सम्पर्क मे आने के पश्चात यहाँ निवास करने वाले लोग आर्यो के घर मे संस्कृति से परिचित हुए [102]।

डाँ० कन्हयालाल अग्रवाल बाल्मीकि रामायण को साक्ष्य मानते है हुए यह सिद्व करते है कि यहाँ करूश जाति जैसी अनार्य जाति निवास करती है यहाँ की जनसंख्या मे आर्ये, द्रविणों, शको कुषाणों, [103] और हूणो का मिश्रण है लेकिन जो जातियाँ पर्वतीय क्षेत्रों मे निवास करती है वे शुद्व है बाल्मीकि, रामयण,[104] मे राक्षस , सबर , आदि जन जातियो का उल्लेख मिलता है इसके मध्य भाग मे कोल, भील , सवर , कुलिन्द , मुण्ड और द्रविड जाति के लोग रहते थे अजयगढ में उपलबध अभिलेख, [105] में इसका उल्लेख मिलता है इनका रंग काला कद ठिगना नाक चौडी बाल घने और काले होते थे। ये लोग बुन्देलखण्उ मे निवास करते थे कालान्तर मे ये आर्यो से घुल मिल गये आर्यों की आकृति लम्बी होती थी बाल मुलायम और घुघराले होते थे इनकी मुछे दाडी और दाढी घनी नुकीली और उँची नाक लम्बा सिर और बडी–बडी आँखे उनकी विशेंष्ताए थी जो यहाँ के मूल निवासियो से नही मिलती थी।

अनार्यो के अतिरिक्त जब आर्य यहाँ आये उस समय इनके वर्ण कर्म पर आधरित थे बाद में ये वर्ण कर्म पर आधारित थे बाद मे ये

वर्ण वंश के अनुसार है गये थे इससे उच्च वर्ग का लाभ हुआ ब्राहाण सर्चोच्च स्थित पर आ गये और क्षत्रियो ने इन्हे उच्च पदो पर नियुक्त किया [106]

आर्य कुल जातियो मे क्षत्रियो की स्थित की स्थित ब्राहण के बाद थी ये लोग बाहरी शत्रुओ से देश की रक्षा करते थे बिकमी सम्बत 1208 का एक अभिलेख अजयगढ मे उपलब्ध हुआ है [107] क्षत्रियो के पश्चात कायस्थो का प्रमुख स्थान था ये लोग राजा महाराजाओ के लिपिक हुआ करते थे इन्हे कार्णिक के नाम से पुकारा जाता था।

समाज मे तीसरा स्थान वैश्यो का था ये लोग कार्य व्यापार और उद्योग किया करते थे इन्हे सेठ या श्रेष्ठी नाम से पुकारा जाता था बीर वर्मा के ढाही ताम्र पत्र मे कायस्थ हरकारी गोपाल अजयपाल माली आदि जातियो का उल्लेख मिलता है, [108] चरखारी ताम्रपत्र मे नापतो (नउआ) महरो और धीगरो का उल्लेख है [109]

चीनी यात्री फाहियान इस क्षेत्र की यात्रा मे आया था वह निम्न जातियो की सन्दर्भ मे लिखता है कि चाण्डालो को दुष्ट कहा जाता है उन्हे नगर के बाहर रहना पडता है जब कभी वे नगर या बाजार मे प्रवेश करते है तब उन्हे भूमि पर एक छडी ठोकर ध्वनि करनी पढती है ताकि सवर्ण लोग उन्हे पहचान कर अलग हट जाएँ और इस प्रकार उनके स्पर्श से बच जाये केवल चाण्डाल ही शिकार करते और मांस बेचते है [110]

स्पष्ट है कि यहाँ निवास करने वाली आर्यो की चार जातियाँ अपने अपने जाति कर्म को करती थी ये लोग कृषि पशुपालन व्यापार और वाणिज्य करते थे और कुछ लोगा नौकरी करते थे तथा कुछ श्रमिक के रूप मे काम किया करते थे [111] ।

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में निम्नलिखित जातियो के लोग निवास करते है जिनके सनदर्भ मे ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते है।

पाणिक— बुनदेलखण्ड मे ये लोग ब्यवसाय करते थे तथा इनकी अनेक उप जातियाँ थी बान्धवगढ़ [112] अभिलख और बिलहारी अभिलेख [113] मे इनका उल्लेख मिलता है।

स्वर्णकार— बुन्देलखण्ड मे इस जाति का महत्व था ये लोग स्वर्ण रजक धातुओ के माध्यम से रत्न जड कर आभूषण बनाते थे [114] ।

मणिहारक— बुन्देलखण्ड में भी इस जाति का महत्व था ये लोग मोतियो मणियो तथा अन्य रत्नों के माले पिरोय कर बनाया करते थे

आजकल इन्हे मनिहार कहते है।[115]

ताम्रकार— ये लोग ताँबा , पीतल , तथा अन्य धातुओ से विविध प्रकार के बर्तन बनाते थे वर्तमान समय मे इन्हे तमेरे या ठगेरे कहते है।[116]

कर्मकार— ये लोग धातु विशेष से अस्त्र—शस्त्रो का निर्माण किया करते थे युद्व अस्त्र शस्त्र के अलावा ये लोग खुर्पी हसिया और फावडे आदि भी बनाते थे।[117]

तन्तुवाय— ये लोग वस्त्र बनाया करते थे और इनकी स्त्रियाँ बुनाई का कार्य करती थी इनका वर्ण मन्दसौर अभिलेख मे है।[118]

दर्जी— ये लोग विविध परिधानो को शिला करते थे ,[119]

कुम्भकार— ये लोग मिटटी के विविध प्रकरा के बर्तन बनाया करते थे बैदिक युग में इन्हे कुलाल कहते थे तथा इनका विस्तार वर्णन मिलता है।

मृतपिण्ऽस्तु यथा चक्रे चकवत्तेन पीडितः
हस्तम्यां कियामाणस्तु विश्वात्व मुपगच्छति।।[120]

रज्जुनिर्माता— प्राचीन युग मे रस्सियों की उपयोगिता थी इसलिए इनको बनाने वाले लोग भी यहाँ रहा करते थे।[121]

चर्मकार— ये लोग विविध प्रकार के जानवरो की खालो से विविधा प्रकार की वस्तुये बनाते थे इन्हे अछूत माना जाता था।[122]

बढई— ये लोग लकडी का काम करते थे इन्हे तक्षन या त्वष्ट्रा तत्चक और बड्ढकी कहते थे।[123]

मुर्तिकार— ये लोग पत्थर धातु हाथी दाँत और लकडी से मुर्तियाँ बनाते थे प्राचीन काल मे इन्हे रूपकार कहा जाता था।[124]

स्थापति— ये लोग वास्तु शिल्प के ज्ञाता थे तथा विविध प्रकार के महल मन्दिर दुर्ग सरोवर बावनी आदि का निर्माण करते थे[125]

बैद्य— ये लोग विविध लागो की चिकित्सा किया करते थे कल्चुरियो और चन्देलो के जमाने मे अच्छे बैद्य थे इनका वर्णन अभिलेखों मे है।[126]

महानाचनी अथवा नृत्यनिया— बुन्देलखण्ड मे प्रचीनकाल मे धार्मिक स्थलो और राजदरबारों में नृत्य करने के लिए नृत्यनियाँ रहती थी इनहे महानाचनी कहते थे[127]

नापित(नाउ)— ये लाग बाल काटने का कार्य करते थे और धार्मिक संस्कारो मे बृाहणो का साथ देते थे कही—कही इन्हे कत्पहा और दिवा

कीर्ति के नाम से सम्बोधित कया गया है। [128]

ढ़ीमर– ये लोग मछली पालन या मछली पकडने का कार्य करते थे इनका उल्लेख चरखारी ताम्र पत्र में हुआ है। [129]

माहर– ये लोग अछूत जाति के थे इनका उल्लेख चरखारी ताम्र पत्र में है। [130]

मेद– ये लोग वर्णशंकर जाति के थे इनका जन्म वैदेह पुरूष और चर्मकार स्त्री संयोग से हुआ था ये लोग बडे जानवरो का मॉस खाते थे, और अछूत माने जाते थे।

मृताना गोमहिष्यादीना मांस मश्मनतो: मेदा:। नीलकण्ड, [131]

चाण्डाल– ये लोग अछूत जाति के थे इनकी उत्पत्ति सूद्र पुरूष और ब्राहाण कन्या से हुई थी ये लोग तोता, मोर, हंश, गिद्व, उल्लू, आदि जानवर पालते थो और उनका विक्रय करते थे इन्हें अछूत समझा जाता था [132]

मृतप– ये लोग भी छोटी जाति के थे इनका काम मुर्दो को जलाना था तथा इन्हे भी अछूत माना जाता था। [133]

घासियारे– ये लोग पालातू पशुओ के लिए घास उपलब्ध कराते थे जो लोग बैल, घोडो, बकरी गधा पालते थे, उन्हे ये लोग घास उपल्ब्ध कराते थे इन्हे तृण मूॅलक कहा जाता था गिलहरी अभ्लिेख मे इसका वर्णन है [134]

ताम्बूलिक– ये लोग पान का व्यवसाय करते थे तथा इसकी खेती भी करते थे सिया ढ़ोणी प्रस्तर अभिलेख मे इनका वर्णन है [135]

कल्लपाल– ये लोग मदिरा बनाने का कार्य करते थे निम्नलिखित मदिराये इस समय बुन्देलखण्ड मे निर्मित होती थी, [136] गौडी पैष्टी मादवी, कादम्बरी , हैताली , लांगलेया , ताल जाता आदि विभिन्न प्रकार की सुराओ का उल्लेख हुआ है [137]

कन्दुक– मिठाई बनाने का कार्य करते थे सिया ढ़ोही प्रस्तरे अभिलेख में इनका उल्लेख है। [138]

तेली– ये लोग विविध प्रकार के बीजो से तेल निकाला करते थे और उसका व्यवसाय करते थे इसका उल्लेख सियाढ़ोही प्रस्तर खाण्ड मे है। [139]

इसके अतिरिक्त निम्न जातियो के लोग यहाँ निवास करते थे।

ब्राहाण– जुझौतिया, दिखित, कनौजिया, सरवरिया, सनाढ़य, बैलवार, अहिबासी, मरहठा, खेडावाल, सनौडिया,।

क्षत्रिय— वैस, दिखित, पवांर, जनवार, रघुवंशी, मौहार, बागडी, गौर, गौतम,, बुँदेला, चन्देल, चौहान, नंदवंशी, बिसेन, गहरवार कछवाहा, सुरकी, लौडेर, तोमर, सेंगर, परिहार, भदौरिया, यदुवंशी, सिरकरवार, राठौर, बघेल, करचुली, परमाल, राजपूत, पायक, गहलौत सोलंकी, रावत, धँधेरे बनाफर, बडगूजर अन्य राजपूत गुप्त, हूण, नाग, भगोडिया, चंद्रावत डोडिया गोयल, जैवार, पुरबिया उमर, खीची, भाटी चापडा, देवडा, हुजूरी, झाला, सोमवंश बिलकैत, चौरसिया, गोड, कमरिया, सूरजवंशी सीसौदिया, क्षत्री जांगडा, सैधो, ठाकुर,।

वैश्य— अग्रवाला, अग्रहारी, केसरवानी, कसोधन, मारवाडी, गहोई, ओमरे, असाटी, परवार,।

शूद्र तथा अनार्य— चमार, अहीर, कोरी, कुरमी काछी, लोधी, आरख, खँभार, केवट, कुम्हार बसोर, तेली, कोल, गौड, दंगी सेजबारी, बहरिया, माली, दौवा, सौर ,बढ़ई धोबी कहार,ढीमर लुहार भरभूंजा, डुमार, गडरिया नाई भाट, खाटिक, चडोर दहेत, कौदर, गुरदा, गूजर, बंजारा कलार, मोची सोनार खाती, कीर, फिरार सहरिया, भर धोसी, गुसाई, योगी,[140]

बुन्देलखण्ड मे रहने वाली अपराधी जातियाँ—

बुन्देलखण्ड मे एक ऐसी अपराधी जातिया भी है जो अपराध से अपना जीवन यापन करती है इन जातियो मे ललितपुर और झाँसी के सलोढ़िया और उठायी गीर बहुत प्रसिद्व है इन लोगो की बस्तियाँ ओरछा राज्य मे सनोढियों के 12 गाँव 1 चरकुवाँ 2—हरपुरा 3—जमरार 4—करनारी और 5—मनोरा तथा बानपुर मे 6—बीर और 8—उदिया और (शाहगढ मे) 9—महाबरा तथा (दतिया मे 10 रोरी और 11 पहाडी कहे जाते है)[141] यह कोई जाति नही बल्कि एक चोरो का एक गिरोह है जो इसारे से चोरी और डकैती डालता है। कहीं—कहीं ये लोग ठग बनकर ठगिया काम भी करते हैं, इसके अतिरिक्त बेरली, सोर, और मुसलमान फकीर भी चोरी करते है खसुवा या मेहरे चोरी नहीं करते बल्कि अन्य प्रकार से धन ठगते है कभी —कभी लूटी भी चोरी करते थे तथा लडके चुरा ले जाते थे।

बुन्देलखण्ड के निवासियो की सभ्यता और संस्कृति—

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड मे दो प्रकार की सभ्यता संस्कृति पायी जाती है पहली संस्कृति यहाँ रहने वाले मूल निवासियो की संस्कृति है जिन्हें वे अपने अनुसार अपनाते है दूसरी सस्कृति आर्यो की सभ्यता संस्कृति है जिसका विकास यहाँ आर्यो के आगमन के बाद हुआ पहले

दोनो संस्कृतियो मे जमीन आसमान का अन्तर था किन्तु जब दोनो संस्कृतियाँ एक दूसरे के नजदीक आयी तो उनमे एक दूसरे का प्रभाव पडा किनतु 15शताब्दी क बाद दोनो संस्कृतियाँ एक हो गयी यहाँ रहने वाले अनाडियो अनुसूचित जाति और अनुसूसचित जन जाति के लोगो को चतुर्थ वर्ण मे सामिल कर लिया गया ताकि संस्कृति का एकी करण हो सके फिर दोनो संस्कृतियो का पृथक-पृथक अध्ययन बहुत आवश्यक है।

अनाढियो की संस्कृति— यहाँ के मूल निवासी कोल, भील, गौड, बैगा, खैरवार, पुलिन्द,[142] आदि के इन लोगो की संस्कृति जंगली क्षेत्रों में निवास करने के कारण इनकी संस्कृति भिन्न थी यही निवास करने वाले समर जाति के लोग चिन्ता वर्णन हर्ष चरित्र और बाणभट्ट द्वारा रचित कादम्बरी मे मिलता है ये लोग मांसाहारी थे और इनकी जीवन शैली अलग थी।[143]

ये लोग जगलो मे निवास करते थे ओर परम्परागत भेष-भूषा धारण करते थे इनका धार्मिक यज्ञो मे विशेष विश्वास था और ये अपने यज्ञो मे मनुष्य की बलि देते थे तथा विशेष उत्सवो मे मदिरा पान करते थे और मांसाहार करते थे। यह अपनी जीविका उपार्जन शिकार के माध्यम से करते थे ये लोग सियार और उल्लुओं के माध्यम से शुभ और अशुभ का बोध करते थे। वे कुत्तो के माध्यम से पशु पक्षियो और जानवरो के आने जाने का मार्गजान लेते थे ये जगलो मे निवास करते थे और जब विशेष भोज का अयोजन करते थे इसमे मदिरा पान अनिवार्य था धनुष बाण इनके संरक्षक थे जिनसे ये शत्रुओ का विनास करते थे इनके बाण जहर से भुझे हाते थे तथा देखोने मे साँप जैसे लगते थे ये लोग दूसरो की औरतो को भगाकर अपने पास रख लेते थे और हिंसक प्रवृत्ति के होते थे ये लोग अपने देवता की पूजा जंगली जानवरो के रक्त से स्नान कराके करते थे और उस देवता को किसी वृक्ष के नीचे मूर्ति बनाकर रखाते थे।[144]

जब ब्राहाण सम्पदा का विकास हुआ उस समय भी सवर्ण जाति के लोग जंगलो मे निवास करते थे और चितकौड देवी की उपासना करते थे तथा उस देवी के सामने सुअर के बच्चो की बलि देते थे यहाँ की एक दूसरी जाति गौडो की थी जो अपने ही समाज के लोगो से रिस्ता करते थे। उनकी एक जाति मनुखइया नाम की थी जिससे यह प्रतीत होता है कि ये लोग देवताओं के सामने आदमी की बलि देते थे और उसका मांस खाते थे। और भू देवी की पूजा करते थे तथा इनके

देवता का नाम मतिदेव था जिसकी मूर्ति एक पेंड के नीचे स्थापित की जाती थी ये लोग अपने विवाह लडकियो को अपहरण करके किया करते थे यह प्रथा गौडों में विशेष प्रकार की थी इसी प्रकार बैगा लोग भी बुन्देलखण्ड मे अपनी परम्परा क अनुसार अपना कार्य करते थे तथा ये लोग बिना हल बैल के सहारा के कृषि कार्य करते थे मुख्य रूप से प्रकृति जो पैदा करती थी उसी पर गुजारा करते थे।[145]

भील जाति अपना असितित्व झाँसी क `आस-पास बनाये रही इस जाति का अपना खुद का एक मुखिया होता था जो इन पर नियन्त्रण रखता था। ये लोग भी शिकार के माध्यम से बनो मे रहकर अपनी जीविका उपार्जन करते थे जैसे वृक्ष गिरते गये और कृषि योग्य भूमि तैयार होती गयी ये लोग नये जंगलो मे जाते रहे इन लोगो के मकान बाँस लकडी और घाँस फूस के होते थे और जगली उपज माध्यम से अपनी जीविका चलाते थे।[146]

बुनदेलखण्ड मे एक अन्य जंगली जाति पुलिन्द रहती थी इन लोगो पर उनका सरदार नियनत्रण रखता था इनकी सभ्यता भी थोडे बहुत अन्तर के साथ अन्य आदिवासियो जैसी थी इनमे से कुछ जातिया भोजन एकत्र करने के लिए इधार-उधार भ्रमण किया करती थी और कुछ जातियो ने अपने स्थायी आवास बना लिए थे इन जातियो ने जंगलो मे आग लगाकर जंगलो को नष्ट कर दिया और जंगल की भूमि को कृषि योग्य बनाकर वहां कृषि करने लगे धीरे-धीरे इन्होने कुटीर उद्योगो को अपना लिया।

आदि वासियो की लोक संस्कृति आर्यो से भिन्न थी ये लोग अपने लोकोत्सव जंगलो मे विशेष अवसरो पर किया करते थे जहाँ ये लोग एकल बिगुल और सामूहिक नृत्य करते थे। इन नृते मे स्त्री पुरूष दोनो ही भाग लेते थे मुख्य रूप से कोलहाई कर्मा नृत्य ददरिया नृत्य आदि ये लोग किया करते थे तथा इन लोगो के यंत्र भी विशेष प्रकार के होते थे आज भी विभिन्न निम्न जातियो मे अपना खुद का लोक संगीत है मुख्य रूप से ये लोग प्रकृति उपासक थे चाँद, सूरज, नक्षत्र, वृक्ष, सरिता, पशु, पक्षी, नाग, आदि की पूजा करते थे कालान्तर मे इन्होने ग्रामीण देवता स्थपित कर लिए थे ये लोग खेरमाता, मिडोहिया, घटोइया, नागदेव, गौडबाबा, पोरियाबाबा, मसानबाबा दीद या रकसा, बढई, देवी, गोरइया बाबा, आदि ग्रामीण देवता की पूजा करते हैतथा नाना प्रकार के

अन्धा विश्वास और झाँड फूँक के सिकार है।

आर्यो की सभ्यता एवं संस्कृति– आर्यो का आगमन यहाँ ईसा से 3 हजार वर्ष पूर्व हुआ और इन्होने अपने निवास स्थल बुन्देलखण्ड के विभिन्न क्षेत्रो मे बनाये जब ये लोग भारत वर्ष में आये उस समय इनहोने अपने क्षेत्र का विस्तार किया और नये–नये मार्ग भी खोजे गंगा तट होते हुए ये बुन्देलखण्ड में आर्य और यहाँ से होकर दक्षिण की ओर बढे इन्होने अपनी सबस्तिया ऐरण महेश्वर त्रिपुरी और नर्मदा के तट पर बनाई महाभरत के नलउपख्यान मे ग्वालियर से होकर दक्षिण की ओर जानेवाले विदर्भ आदि मार्गो का उल्लेख है।यें लोग गोदावरी नदी को पार कर दक्षिण की ओर गये लगता है कि आर्यो ने अनार्यो से इस क्षेत्र को जीता और यहाँ अपना राज्य स्थापित किया मौर्य सम्राज्य से लेकर गुप्त साम्रज्य स्थापित होने तक आर्यो का प्रभाव परे बुन्देलखण्ड मे हो गया था।

सम्पूर्ण आर्य सभयता के लोग चार वर्णो मे विभाजित थे ये वर्ण, ब्रहाण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा सूद्रो, में विभाजित थे इस बात को ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते है कि धीरे–धीरे जातीय व्यवस्था सूदृढ़ होती गयी पहले जातियाँ कर्म पर आधारित थी बाद में यह जातिया वंश परम्परा के अनुसार हो गई समाज मे ब्राहाणो को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था ये लोग यज्ञ धर्मिक संस्कार के माध्यम से अपनी जीविका उपार्जन करते थे इनके सन्दर्भ मे एक ताम्र पत्र पाली भाषा में उपलब्ध हुआ हैजिसके अनुसार महाराजा लक्ष्मण ने रेवती स्मामिन जो कौशिक गोत्र का था भूमि दान मे दी थी [147]

ब्रहाण के बाद समाज मे क्षत्रियो का सम्मान था ये लोग शसन करते थे समाज मे रहनेवाले व्यम्तियो की रक्षा करते थे उसके पश्चात वैश्यो का सम्मान था ये लोग व्यवसाय कृषि और पशुपालन किया करते थे इनका स्थान ब्रहाण क्षत्रियो से नीचा था इस जाति का चौथा वर्ण सूद्र के नाम विख्यात था ये लोग सेवा मजदूरी के माध्यम से अपनी जीविका उपार्जन करते थे ब्राहण और उच्च कुल के लोग इनका स्पर्श करना भी पसन्द नही करते थे शुंगकाल मे चण्डाल सबसे छोटी जाति मानी जाती थी जातियो का व्यारण ग्रह सूत्र धर्म सूत्र और स्मृति ग्रन्थो मे विस्तार से मिलता है।

कालान्तर मे कुछ विस्त्रित जातियो का उदय हुआ ये जातियाँ प्रथक उद्योगो और अन्तर जातीय विवाह के कारण बनी ऐसा

प्रतीत होता है कि अन्य लोग और प्रति लोग पद्यतियो के कारण विवाह के माध्यम से गुप्त युग मे विभ्निन जातियो का उदय हुआ।

समाज मे स्त्रियो की स्थित— आर्य सभ्यता में स्त्रियों को पर्याप्त स्वतन्त्रता उपलब्ध थी भरहुत और साँची अभिलेखों मे स्त्रियों की स्थित का उल्लेख हैअशोक की प्रिय पत्नी चारू ने बौद्व भिक्षु को कौशाम्बी में दान दिया था।[148] मौर्यकाल के अनेक स्त्रियों के नाम अभिलखो मे उपलब्ध होते है। यद्यपि स्त्रियों के लिए अलग कोई शिक्षा संस्थाये नही थी फिर भी स्त्रियाँ घर मे रहकर विविध प्रकार की शिक्षाये गृहण करती थी और अनेक कलाये सीखती थी बाण भट्ट के अनुसार हर्ष की बहन राज श्री ने संगीत विद्या की शिक्षा ग्रहण की थी और नृत्य करना सीखा था।[149]

स्त्रियो के विकास में उस समय धक्का लगा जब बाल विवाह की प्रथा प्रचलित हो गई उस समय स्त्रियाँ पति के समर्पित रहने लगी और उच्च कुल की स्त्रियाँ अपनी पती के मुत्यु के साथ सती होने लगी ऐरण अभिनेख से यह ज्ञात होता है कि जब भानु गुप्त उस समय उसकी पत्नी सती हुई।[150]

भोजन एवं पेय पदार्थ— आर्य लोग अपने भोजन मे चावल, गेहूँ , जौ, दाल, तेल, तथा विभिन्न प्रकार के बीजो का प्रयोग करते थे। मुख्य रूप से उबला हुआ गेहूँ और चावल बुन्देलखण्ड क्षेत्र में उनका प्रिय भोजन था इसके अतिरिक्त वे दूध दही मक्खन और घी का पेयोग मक्खन मे करते थे भरहुत अभ्लिेख से यह ज्ञात होता है कि ये लोग पेड़ो की पत्तियाँ और फल तथा मिठाइयाँ और सत्तू मेहमानो को खिलाया करते थे।[151] ज्यादातर लोग साकाहारी भोजन करते थे किन्तु अनेक परिवारो मे मांसाहार भोजन करने की अनुमति थी इनमे पक्षियो और जानवरो का मांस बनाया जाता था जिसे लोग अभिरूचि के साथ खाते थे शुंग और गुप्त काल मे मदिरा पान करने का भी निवास था।

भेष भूषा एवं आभूषण— मौर्य काल में शुंग काल के ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार उच्च कुल के ब्यक्तियो और सामान्य ब्यक्तियों के वस्त्रो मे अन्तर था उच्च कुल के लोग विशेष प्रकार के वस्त्र धारण करते थे। एक मूर्ति बोधि वृक्ष की पूजा करती हुई पुरूष की उपलब्धि हुई हैयह मूर्ति राजा धान की मूर्ति है जिसमे भरहुत मे मुख्य द्वार का निर्माण कराया था वह एक लम्बा कोट पहने हुए है और एक साफी डाले हुए है जो उसके पीछे लटक रही है लोग कमर के नीचे धोती या पट्टा पहनते थे पैरों

मे जूता धारण करते थे।[152] इस प्रकार के लोग उच्च वर्ग के पहना करते थे ।

सामान्य व्यक्तियो का पहनावा घुटने तक की धोती कमर केचारो ओर पहनी जाती थी वह कमर अथवा फेटा से बन्धी होती थी कभी–कभी यही कमर बन्द
धनुष आकार के होते थे जो एक ओर लटके रहते थे। कमर के उपर कोई बस्तु पहले का रिवाज नही था छाती एक लम्बे चादर से ढकी रहती थी यह चादर दोनो ओर लटकता था सिर मे साफा बाधने का रिवाज था यह साफा दो प्रकार का होता था एक मे गाँठ उपर होती थी दूसरे मे गाँठ सिर के पीछे होती थी इससे उनका पूरा सिर ढ़का रहता था।

निम्न श्रेणी की स्त्रियो की पोषाक पुरूषो से कुछ–कुछ मिलती थी स्त्रियो को पहने वाली साडी को धोती कहते थे इसके साथ–साथ कभी पटका भी पहना जाता था।[153] स्त्रियां शरीर के उपरी भाग मे एक चादर ओढ़ती थी जिसका किनारा कढ़ा होता था सिर ढका होता था और चादर कमर` चारो ओर लपटा रहता था।

इनका केस विन्यास अधिक सुन्दर था स्त्रियाँ सिर के बाल को सजाती थी चोटी बाँधती थी और जूडा बाँधती थी। गुप्त युग मे केश विन्यास कला मे परिवर्तन हुआ और बालों में अल्के निकालने के लिए उन्हें घोघराला किये जाने लगा सम्भवता इस समय कंघी का प्रयोग होने लगा था विदेशी जातियों के प्रभाव के कारण पहनावे मे काफी परिवर्तन हुआ सिले सिलाये कपडे पहने जाने लगे कुषाण राजाओ के प्रभाव से पैजामा पहने का रिवाज बना उँची एँडी के जूते पहने जाने लगे स्त्रियाँ पोलका या ब्लाउज पहनने लगी यहाँके पहनावे मे ग्रीड मे ग्रीक और सीथियन लोगो का प्रभाव पडा।

गुप्त युग के आगमन तक कपडे के सिलाई ग्रह कला के रूप मे पर्णित हो गई नाना प्रकार के वस्त्रो का निर्माण हुआ। पतले और पारदर्शी कपडे पहने जाने लगे कौशाम्बी भीटा देवगढ, भुभरा, गुरवा, और एरण्य, इस प्रकार की वस्त्रधारण की हुई मूर्तियाँ उपलब्ध हुई। स्त्रियाँ लम्बी धोती पहनती थी जो कमर के उपर बँधी रहती थी। पवायाँ मे उपलब्ध मूर्ति से यह प्रतीत होता है कि स्त्रियाँ घुटनो मे उपलब्ध मूर्ति से यह प्रतीत हाता है कि स्त्रियाँ घुटनो तक नीचे लटकने वाली साडी धारण करती थी।[154] इस समय जो औरते गायन वादन करती थी वे स्त्रियाँ साडी पहनती थी जो घुटनो के नीचे तक लटकी रहती थी।[155] कोसम

मे उपलब्ध शिव पार्वती की मूर्ति से यह बोध है कि भगवान शिव धोती पहने हुए है और पार्वती पटका पहने हुए है किसी इसी प्रकार की कई मूर्तियाँ महत्मा बुद्व की उपलब्ध हुई है जो वस्त्र धारण की हुई है भूमरा के मन्दिर से नर्तकियो और संगीतज्ञों की मूर्तियाँ उपलब्ध हुई है ये लोग कोट पैजामा और जैकट पहने हुए है और सिर मे टोपी ढ़के हुए हैं।[156]

आभूषण— ऐतिहासिक साक्ष्यो के आधर पर यह ज्ञात होता है कि बुन्देलखण्ड मे आभूषण स्त्रियां मौर्य काल से और उसके पहले से धारण किया करती थी कुछ आभूषण पुरूष भी धारण करते थे कर्ण आभूषण आर बाजूबन्ध ब्रेसलेट कडे शुंग काल मे स्त्री पुरूष दोनो पहनते थे स्त्रियाँ सिर के उपर भी बेदी धारण किया करती थी नाक मे नथनी और कील पहने का रिवाज था या आभूषण कीमती धातु से बने हुए थे। और इनमे कीमती रत्न जडे जाते थे धनी ब्यक्ति कीमती आभूषण धारण करते थे और गरीब ब्यक्ति सामान्य धारण करते थे बुन्देलखण्ड मे आभूषण धारण करने का रिवाज हजारो वर्ष पुराना है,।[157] संस्कृति ग्रन्थो से यह ज्ञात होता है कि इस समय स्त्रियाँ बेंदी पहना करती थी इसी प्रकार कनो में कर्ण आभूषण पहनने का भी भरहूत तथा अन्य स्थलों में आभूषण धारण किये हुए मूर्तियाँ मिली इसमे तद युगीन आभुषणों का बोध हाता हैं[158] । स्वर्ण एवं रत्नजडें आभूषण ज्यादा रत्न प्रिय थे शुंग काल मे कमर मे जंजीर पहने का प्रचलन हुआ इसके अलावा लाल रंग के रत्नो का माला भी पहनने का रिवाज बढा शुंग काल मे आभूषण बनाने की तकनीक का विकास हुआ गुप्त काल मे नई विधि अपनाई गई गले मे पहनने जाने वाले आभूषण और जंजीर आदि ज्यादा लोक प्रिय हुई इस सनदर्भ मे अनेक एतिहासिक ग्रन्थो मे अल्लेख है कनिघंम के अनुसार दोनो स्त्री और पुरूष आभुषण पहनते थे जो विशेष कला शैली के होते थे [159] ।

आवासीय व्यवस्था— मौर्य काल तक बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र मिट्टी और लकडी की सहायता से मकानो का निर्माण किया जाता था 400 ईसा पूर्व तक यह परम्परा जारी थी इस समय के माकानो के मध्य मे आँगन होता था जिसके चारो ओर कमरे होते थे [160] कमरो के मध्य मे खिडकियाँ होती थी और ऊपर कच्ची छत होती थी इससे रोशनी और हवा आती थी।

समय परिवर्तन के साथ माकान निर्माण मे कच्ची और पक्की ईटो का प्रयोग किया जाने लगा और पत्थरो के माकान बनोने लगे दरबाजो को बन्द करने के लिए लोहे की कुण्डी और साकरो का प्रयोग होने लगा।

आवागमन के संसाधन— व्यक्ति के आवागमन के लिए और सामान लाने और ले जाने के लिए आवागमन के साधनो का प्रयोग होता था भरहुत मे उपलब्ध मूर्तियो से ज्ञात होता है कि उच्च वर्ग के लोग घोडे और हाथी मे सवारी किया करते थे। सामान्य वर्ग के लोग बैलगाडी को वाहन के रूप मे प्रयोग करते थे और भीटा कोषम मे खिलौने के रूप मे मिट्टी की बैलगाडियाँ उपलब्ध हुई बडे लोग रथो का प्रयोग करते थे इन बैल गाडियो मे दो पहिये होते थे। जिनमे दो बैल जोते जाते थे तथा रथो मे चार घडे जोते जाते थे कुछ लोग आने जाने के लिए पालिकियो का प्रयोग करते थे नदियो को पार करने के लिए नावों का प्रयोग होता नावे बास लकडी की बनी होती थी[161]।

आमोद प्रमोद के संसाधन— अशोक के लेख से यह प्रकट होता है कि ब्यक्तियो का मुख्य मनोरंजन और मेलो और तीज त्योहारो से होता था इस अवसर पर संगीत और नृत्य का प्रदर्शन करके ब्यक्तियो का मनोरंजन करते थे। ये नृत्य एकत्र और सामूहिक होते थे भरहुत इस प्रकार की अनेक मूर्तियाँ मिली है इसके अतिरिक्त शिकार खेलना अस्त्र शस्त्रो का प्रदर्शन करना मल्य युद्व अथवा कुस्ती का प्रदर्शन करना ये मनोरंजन के साधन थे कभी—कभी पशुओ की लडाइयाँ भी कराई जाती थी[162] इसके अतिरिक्त जुआ खेलना पासा खेलना चौपड खेलना और सतरंज खेलने का रिवाज था कभी —कभी जादू के खेल प्रहशन और नाटक भी लोगो का मनोरंजन करते थे।

स्वाध्याय एवं शिक्षा— शिक्षा के सन्दर्भ मे कोई विशेष ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नही होते केवल यह पता लगता है कि कौशाम्बी और भीटा के ऐसे क्षेत्र थे जहाँ अध्यात्म की शिक्षा दी जाती थी क्योंकि इस क्षेत्र मे अनेक बौद्व विहारो के अवशेष उपलब्ध हुए है। जब फाहियान और ह्वेनसांग यहाँ आकर ठहरे थे उन्होने इस क्षेत्र मे अनेक बौद्व विहारो की चर्चा की विद्यार्थियो को शिक्षित करने के लिए गुरूकुल भी थे उपलब्ध एक दृष्टि अध्यापक द्वारा शिष्यो को पढाया जाना दर्शाया गया इसमे शिष्य एक पड के नीचे खुले मैदान मे बैठे थे पुरूष विद्यार्थि घुटने के बल बैठे है और लडकियाँ फलथी मार कर बैठी है और उनको पढ़ाने वाला गुरू उचे आसन पर मृगछाला पर बैठा हुआ है 200 ईसा पूर्व स्त्रिी और पुरुष साथ—साथ शिक्षा ग्रहण किया करते थे।

बैदिक धर्म के अनुयायी ब्राहाण शिष्य बैदिक साहित्य दर्शनशस्त्र, तकशास्त्र, व्याकरण, नीतिशस्त्र, सिद्वान्त, शास्त्र गणित ज्योतिष,

समुद्रशासत्र, रसायनशस्त्र, औषधिविज्ञान, और विज्ञान की शिक्षा दी जाती है क्षत्रिय विद्यार्थी को राजनीति, दण्डनीति, कानून, प्रशासन, युद्व, विज्ञान, सैन्य संगठन, हाथी की सवारी, रथ संचालन, और अस्त्र–शस्त्र चलाने की शिक्षा दी जाती थी इस के अतिरिक्त राजकुमारो को इतिहास, धर्मशास्त्र, और अर्थशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी वैश्यो को अलग प्रकार की शिक्षा दी जाती थी इन्हे रत्न मोती मणिक कीमती धातु वस्त्र विज्ञान सुगंधित तेल इत्र कृषि एवं व्यवसाय की शिक्षा दी जाती थी निम्न जाति के लोगो का उनके वंश परम्परा के अनुसार विविध प्रकार की कलाये अभिनय चित्रकारी वस्त्र विज्ञान और दूसरे विज्ञानो की शिक्षा दी जाती थी ये शिक्षा संस्थाये अलग अलग धर्म की थी भाषा की दृष्टि मे बुनदेलखण्ड की प्राकृतिक भाषा पढाई जाती थी ईसा की पहली शताब्दी तक इस भाषा का पठन–पाठन जारी रहा क्योकि यहाँ अनेक अभिलेख पाली भाषा के उपलब्ध होते है इसके बाद यहाँ संस्कृति भाषा का प्रभात पड़ा और ब्राह्मी भाषा का प्राचार प्रसार हुआ एरण मे उपलब्ध समुद्र गुप्त के अभिलेख से भाषा सम्बधित जानकारी उपलबध होती है।

रिता नृपतयः पृथु – राधवाद्याः
बभूव धानदान्तक–तुष्टि–कोप–तुल्यः
न–पायेन समुद्रगुप्तः – 1
प्य पत्थिव–गणास्सकलः पृथिव्याम
स्तराज्य–विभ्वन्द्व तमास्थिता–2 [163]

इसी प्रकार विदिश के निकट उदयगिरि गुफा चन्द्र गुप्त द्वितीय का एक अभिलेख उपलब्ध होता है जिसने तदयुगीन भाषा का बोध होता है, [164] भाषा के सन्दर्भ में अनेक ताम्र पत्र उपलब्ध होते है जिससे भाषा का पता लगता है।

मिश्रित संस्कृति सभ्यता का उदय– बुन्देलखण्ड क्षेत्र मे जब विदेशी जातियो का आरम्भ–प्रारम्भ हुआ उस समय से यहाँ संस्कृति क्षेत्र में परिवर्तन होने लगे मुख्य रूप से शको कुषाणो और हूणो के आगमन के पश्चात से सांस्कृतिक परिवर्तन हुए ईसा की नवी और दशवी शताब्दी में तथा उसके पश्चात महमूद गजनवी तथा अन्य मुसलमान आकमण कारियो के आक्रमण हुए जिसके कारण भेष–भूषा भाषा खान–पान और आवासीय व्यवस्था मे व्याजक परिवर्तन हुए इस प्रकार मिश्रित संस्कृति का उसय हुआ।

बुन्देलखण्ड के निवासियो की आर्थिक सिथत एवं उनके उद्योग— बुनदेलखाण्ड की आर्थिक स्थित का निर्धारण करने के लिए निम्नविषयो पर विचार किया जा सकता हैं।

कृषि— बुन्देलखण्ड की भौगोलिक संरचना और जलवायु के अनुसार यहाँ कृषि कार्य सम्पन्न होते थे यमुना सोन, केन, धसान, और बेतवा नदी के तटो की मिट्टी उपजाऊ और कृषि योग्य थी यहाँ सिचाई के लिए जन संसाधन भी उपलबध थे यहाँ के लागो की मुख्य जीविका कृषि पर आधारित थी ये लोग खुरपी, हसिया, और हल के माध्यम से कृषि करते थे [165] मुख्य रूप से यहां उत्तरी और पश्चिमी क्षेत्रो मे चना बाजरा और गेहूँ मुख्य फसले थी त्रैलोक्य वर्मा का एक ताम्र पत्र यहाँ उपलबध हुआ है। जिससे यह ज्ञात होता है ईख, कपास, सन, और आम यहाँ मुख्य रूप से पैदा होते थे [166] परमर्दिदेव का एक ताम्रपत्र पक्षार मे उपलब्धा हुआ है इससे यह उल्लेख होता है कि गरीब लोग भोजन मे कोदो का प्रयोग किया करते थे, [167] कुछ कल्चुरी अभिलेखों मे चावल का भी उल्लेख मिलता है जिससे यह ज्ञात होता है कि यहाँ चावल पर्याप्त मात्रा मे उत्पन्न होता था [168]

सिचाई के संसाधन— बुन्देलखाण्ड की कृषि वर्षा पर निर्भर थी फिर भी कही— कही नदी तालाबो से सिचाई होती थी चन्देल और कल्चुरियो के शासन मे विजय सागर, राहिल सागर, कीर्ति सागर, मदनसागर, कल्याण सागर, और बेलाताल प्रसिद्धसरोवर थे। इनसे सिचाई भी होती थी इसी प्रकार के सरोवर खाजुराहो आहार जतारा और कुढार मे भी थे उस युग मे यहाँ नहरे नही थी।

पशुपालन— कृषक लोग कृषि के साथ—साथ पशुपालन भी किया करते थे महाभारत मे इसका उल्लेख मिलता है।

पशव्यैश्चैव पुण्यश्च सुस्थिरो धानधान्यवान।
पुज्जये धुरि नो गाश्च कृशाः संधुक्षयन्ति। [169]

चेदि देश के लोग बीमार और कमजोर पशुओ को कृषि कार्य मे नही लाते थे कल्चुरि अभिलेखो मे हस्तिग्राम और अभीर पल्ली का उल्लेख मिलता है यहाँ के लोग गउ पालन किया करते थे इसके अतिरिक्त गाय, बैल, भैस, बकरी, गधा, हाथी, और घोडे, भी पालते थे

व्यापार या वाणिज्य— सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र मे पत्थर कोयला लोहा सीसा भेरू चूना और राम राज्य उपलब्ध होती है सम्पूर्ण उद्योग व्यवसाय इन्ही खनिज पदार्थो पर आधारित था, [170] इसके अतिरिक्त पन्ना

और उसके आस–पास के क्षेत्र मे चन्देल नरेशो को हीरो की उपलब्धि हुई इन हीरो को बेचकर चन्देलो ने स्वर्ण मुद्राये बनवायी और कईस्थानो पर देवालयो का निर्माण कराया उनके दान पात्रो मे हीरो का उल्लेख नही है उसके स्थान पर सोना लोहा और नमक जेसी वस्तुओ का उल्लेख मिलता है ।

इस समय एरच प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था इस सम्बन्ध मे अनेक पालि जातको मे उल्लेख मिलता है यहाँअनेक धनी स्वर्णकार रहा करते थे,[171] एरच धसान जनपद मे स्थित था यहाँ उत्तम कोटि के अस्त्र–शस्त्र बनते थे तथा उत्तम कोटि के हाथी भी उपलब्ध होते थे जिससे यहाँ हाथी दाँत से बनने वाली वस्तुओ का उद्योग विकसित हुआ [172] ।

चन्देल युग मे धनी व्यक्तयो को श्रेष्ठ या श्रेणी नाम से सम्बोधित किया जाता था इस सन्दर्भ मे खजुराहो के पार्श्व नाथ जैन मन्दिर मे एक अभिलेख उपलब्ध हुआ इसमे राहिल नाम के एक सेठ का वर्णन हैउसे धंग के दरबार मे उचित सम्मान प्राप्त था [173] ।

नागरिको को आवश्यक वस्तुओ की उपलब्धा बाजार से होती है टीकमगढ आहार से एक अभिलेख प्राप्त हुआ जिसमे बसु हाटिका का वर्णन मिलता है स्पष्ट है कि चन्देल युग मे नगरो और कसबो मे बजार की व्यवस्था थी [174] ।
जबलपुर के आस–पास जहाँ कल्चुरियों का शासन था वहाँ बाजार को मण्डपिका कहा जाता था तथा इन स्थानो मे सुपारी, सूखी मिर्च, सोंठ, नमक, आदि वस्तुये बिका करती थी तथा खण्डिका तथा षोडिषका आदि मुद्राये क्रय बिक्रय के काम मे लायी जाती थी बिलहरी अभिलेख से इनकी पुष्टि होती है, [175]तथा प्रत्येक दुकान से एक कपर्दी सब्जियो और बैगनो दूतकर्पण कर के रूप मे लिए जाते थे घास ढ़ीमर तथा टोरी बेचने वालो से सामर्थ के अनुसार कर लिया जाता था बिक्री के लिये आये हाँथी और घोडों पर चार और दो पूले भी कर लिया जाता था उस युग मे भीकर वसूलने के लिए ठेकेदारी प्रथा थी व्यापारियो को युगानामक परिचयपत्र दिया जाता था बाजार मे अलग–अलग श्रेधियो की दुकाने होती थी इसका उल्लेख अन्जनेरी ताम्र मे मिलता है [176] ।

वस्तु उत्पादन– बुन्देलखण्ड के अनेक शहर उद्योग के महा केन्द्र थे सांची स्तूप से यह ज्ञात होता है कि यहाँ रहने वाला एक वर्ग सुगन्धित तेल एवं इत्र का निर्माण करता था इसे खरीदकर अनेक लोग

अपने यहाँ ले जाया करते थे [177] इसके अतिरिक्त अनेक स्थानो पर अति सुन्दर किस्त का कपडा बना करता था तथा अनेक स्थानों पर मूर्तिकार और शिल्पकार निवास किया करते थे जो विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन किया करते थे। बाँदा जनपद के आस–पास जो विभिन्न आदि धातुओं से बर्तन तथा अन्य वस्तुओं का निर्माण करते थें, [178] यहाँ पर स्वर्णकार लोग आभूषणों का उत्पादन करतें थे। तथा ये आभूषण समाज के विभिन्न वर्गो को बेचा करते थे कुम्भकार लोग नाना प्रकार के मिट्टी के बर्तन बनाकर समाज के प्रत्येक वर्ग को बेचा करते थे ये विभिन्न सकलों के होते थे कुछ के मुख चौडे होते थे और कुछ के सकरे होते थे ये लोग भढ़िया, मटकी मटके, नाँद, मटेलनी, कूडे, कटोरे, घरो, मे छाये जाने वाले खपरे आदि बनाते थे जिनका वर्णन साँची स्तूप मे उपलब्ध होता है।

मुद्राये– बुनदेलखण्ड क्षेत्र मे विभ्नि राजाओ की अनेक प्रकार की मुद्राये चला करती थी इस क्षेत्र मे 600 ईसा पूर्व से लेकर गुप्त युग तक की मुद्राये उपलब्ध होती है इन मुद्राओ मे स्वास्तिक चिन्ह वृक्ष चक वृषभ आदि बने हुए हैइसमे कुछ मुद्राये चौकोर है ये मुद्राये कौशाम्बी, विदिशा, एरण, और त्रिपुरी, मे उपलब्ध हुई मुद्रओ की धातु स्वर्ण रजत और ताँबा है, [179] बाँदा जनपद के ओराहा गाँव मे अति प्राचीन कालीन मुद्रायें उपलब्ध हुई थी। ये मुद्राये मघ वंशीय राजाओ की है इन 77 प्रतिसत मुद्राये ताबे की 21 मुद्राये टिन की और 2 प्रतिशत मुद्राये लोहे की है इन मुद्राओ मे वृक्ष पर्वत की चोटियाँ और साड अंकित है, [180] इसी प्रकार की मुद्राये ढहाल क्षेत्र के त्रिपुरी नामक क्षेत्र मे उपलब्ध हुई गुप्त युगीन मुद्राये विदिशा साँची एरण तथा मालवा क्षेत्र मे उपलब्ध हुई इनसे यह स्पष्ट होता हैकि व्यापार मुद्रा के माध्यम से होता था और इन्हे लोग लेन देन मे स्वीकार करता था मुद्रा का वजन और मूल्य निर्धारित रहता था ग्रामीण अन्यलों मे वस्तु विनमय भी होता था।

आर्थिक दृष्टि से समाज का वर्गीकरण– बुन्देलखण्ड आर्थिक दृष्टि से समाज के निम्न वर्गो मे विभाजित था

1–कुलीन एवं सम्भ्रान्त वर्ग– इस वर्ग मे राजा सामन्त जागीर दार जमीदार इलाके दार ताल्लुकेदार और सेठ महाजन व्यक्ति आते थे आर्थिक दृष्टि से इनका सम्पूर्ण समाज मे नियन्त्रण था कृषि उद्योग वाणिज्य रूपये का लेन–देन भुमि का क्रय–विक्रय विविध प्रकार के कर और लगान तथा खनिज सम्पदा से इनको प्रचुर मात्रा मे आय

मिल जाती थी बुन्देलखण्ड की 75 प्रतिशत धनराशि पर इनका अधिकार था ये लोग इस धनराशि से अपने लिऐ विलास के संसाधन जोडते थे दुर्गो महलो जलाशयो और धर्म स्थलो का निर्माण भी करते थे कभी–कभी धर्मिक आयोजनो मे पुरोहितो निर्धन व्यक्तियो को दान देते थे। और महायज्ञो में सामूहिक भोज दिया करते थे।इस सन्दर्भ मे अनेक दान पत्र बुन्देलखण्ड मे उपलब्ध होते है,[181] बुनदेलखण्ड मे जो भी इतिहास उपलब्ध होता है वह सब इसी वर्ग का है ये सब लोग अपने यहाँ नाना प्रकार के दास रखा करते थे ये लोग निरंकुश और क्रोधी स्वभाव के थे और हर बात को प्रतिष्ठा का प्रष्ठ बनाकर आपस मे संघर्ष किया करते थे युद्व करना अनेक औरते रखना वैश्यावृत्ति करना और ब्यक्ति का शोषण करना इनका व्यवसाय था।

यथा–

बातन बातन बढ–बढ होइ गई ।
बातन बातन होई गई रार ।।
बातन बातन तेगा चलगे।
बातन चमक अठी तलवार।।

इनके चरित्र के सन्दर्भ आल्हखण्ड मे उदाहरण उतपन्न होते है ज्यादातर युद्व स्त्रिी विषयक होते है ये लोग नारियो के प्रति कुदृष्ट रखते थे और सुन्दर स्त्रिी को जबरन छीन लाते थे।

यथा– *जाके बिटिया सुन्दर दैखौं ताको तुरेते लेह विवाह*

2–मध्य एवं ब्यापारी वर्ग– ये लोग धन और सम्पत्ति की दृष्टि से सम्पन्न थे किन्तु इनका मुकाबला उच्च वर्ग से कभी भी नही हो सकता था ये लोग कृषि और ब्यापार करते थे और महाजनी का ब्यवसाय भी इन्ही के माध्यम से सम्पन्न होता था कभी –कभी ब्राहण जमीदार सामनत और राजा अपनी सम्पति सुरक्षा की दृष्टि से जमा कर देते थे और बुरा वक्त पडने पर इनसे रूपया उधार भी लिया करते थे ये लोग कृषकों और कला उत्पादको का माल खरीद लेते थे और उन्हे बेचा करते थे कभी–कभी इन्हे डकैती, चोरी और राह जनी का शिकार होना पडता था ये लोग सामन्तो और नरेशों को कर भी दिया करते थे।

3–निम्न वर्ग– इस वर्ग मे कृषक एवं उत्पादन वर्ग आता था ये लोग उतना ही कमा पाते थे जिनसे उनकी परिवार की जीविका चल जाती थी ये लोग कृषि मे उत्पन्न अनाज और कुटीर उद्योगो से तैयार किया गया माल और बन उपज पूँजी पतियो और उद्योग पतियो को बेच दिया करते थे पुँजी पति और उद्योग पति इनके द्वारा उत्पादित मूल्य का

मूल्यांकन अपनी मर्जी से किया करते थे। इसलिये हमेशा समस्या ग्रस्त रहते थे ये लोग कुटियो और झोपडीयो मे रहते थे इनके मिलने के स्थान चौराहो और दुकाने हुआ करती थी इसका उल्लेख खजुराहों मे उपलब्ध अभिलेख मे हैं,[182]

दास एवं मजदूर वर्ग– यहाँ पर एक वर्ग भी था जिसके पास अपनी निजी कोईसम्पत्ति नही थी उसे अपनी जीविका चलाने के लिए खेतो उद्योग शालाओं तथा पूँजीपतियो के यहाँ दैनिक मजदूरी करनी पडती थी मजदूरी के बदले मे इन्हे आवश्यक वस्तुये और कभी –कभी धान उपलब्ध होता था कही–कही ये लोग बधुआ मजदूर के रूप मे ब्यक्तियो की आजीवन सेवा भी किया करते थे और लोगो के पशु चराने जाते थे जब ये कोई गलती करते थे तो उन्हे दण्ड का भागी भी होना पडता था मुख्य रूप से बुन्देलखण्ड मे लोधी, अहीर, खगार, गौड, सार, भूमियाँ कोदर, बादर, गुरनदा, चमार, कोरी, कुरमी, काछी, केवट, सेजवारी, और माली, मेहनत मजदूरी और दूसरो की सेवा करके अपनी जीविका चलाते थे कुरमियो के सन्दर्भ मे दीवान प्रतिपाल सिंह का यह कथन सही प्रतीत होता है भली जाति कुर्मिनियाँ खुरपी हाथ आपन खेत निरावै पिय,[183] के साथ मुख्य रूप से निम्न वर्ग के लोग आर्थिक दृष्टि से कमजोर लोग सम्पत्ति नष्ट होने की स्थित मे मजदूरी और दास प्रथा को अपनाते थे कभी–कभी दमंगयी और गुण्डा करदी के बल से लोग इनसे काम लेते थे ये लोग दुखदायी जीवन ब्यतीत करते थे ।

5–निर्बल असहाय एवं भिखारी वर्ग– यहाँ एक ऐसा वर्ग भी है जो अनाथ है सारीरिक दृष्टि से विकलांग है जिसके सिर पर माता पिता का साया नही है इस वर्ग मे वह ब्रहाण वर्ग भी सामिल है जो पुरोहित अथवा कर्म काण्ड कराकर जजमानो से विविध प्रकार का दान प्राप्त करते है। ऐसे लोग धर्म स्थलो मे रहकर भीख और दान के माध्यम से अपना उदर पोषण करते है कुछ लोग ज्योतिष झाँड फूंक तन्त्र विज्ञान और अनेक प्रकार के अन्धविश्वासो के माध्यम से धन उपार्जित करते हे कुछ लोग सड़को मे घूम कर दरवाजे–दरवाजे भीख मागते है। ये लोग धर्म भीर ब्यक्तियो की दया भावना का नाजायज फायदा उठाते है और भीख से एकत्रित अनाज का दुर्पयोग भी करते हैं।

6–अपराधो से धन कमाने वाला वर्ग– बुन्देलखण्ड मे अपराधो की स्थित अत्यनत ज्वलन्त भी है यहाँ पर ऐसा जनपद नहीं है जहाँ धन कमाने के उददेश्य से अपराध न किये जाते हो ग्वालियर के

सन्निकट चम्बल घाटी मे ज्यादा तर अपराधियो का आवास बना रहता है इसके अतिरिक्त उरई, जालौन, बाँदा, हमीरपुर महोबा, राठ, पन्ना, जबलपुर, आदि अपराधियो के गढ़ है। ये लोग चोरी डकैती हत्या राहजनी ठगी अपहरण और तस्करी के माध्यम से तथा मादक पदार्थों की बिक्री से करोडो की सम्पत्ति अर्जित करते है ऐसे शत्रुओ को सामान्तो और दबंगो का संरक्षण प्राप्त रहता है कुछ स्त्रियाँ भी योनि व्यवसाय और वेश्या वृत्ति के माध्यम से नाजायज तरीके से धन अर्पाजन करती है कभी-कभी ये स्त्रियाँ शाहूकारो पूँजी पतियो और उन्हे संरक्षण प्राप्त करती है ।

दुखद बात यह है कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड खनिज सम्पत्ति का धनी होता हुआ भी आर्थिक दृष्टि से पिछडा हुआ है इसका मूल्य कारण आलस्य ग्यान का आभाव चरित्र हीनता और दबंगो और अपराधी का आतंक है।

(4) बुन्देलखण्ड के निवासियो का धर्म– बुन्देलखण्ड मे धर्म का उदय कब हुआ और कैसे आया इसके कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नही होते किन्तु धर्म यहाँ अति प्राचीन काल से है। इसलिए इसके असितित्व को हम नकार नही सकते यह धर्मप्रकृति पुरूष परमात्मा के असितित्व प्रकृति जीव धारी और उसकी संसार मे स्थित व्यक्तियों द्वारा किये जाने वाले कर्म उपाश्य देवता ओर मोक्ष्य गति से सम्बन्धित है। धर्म का मुख्य अद्देश्य पुरूषार्थ है जो धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष, चार भागो मे विभक्त है मनुष्य रूप मे अवतरित होने वाला जीवात्मा संसार मे सुखो की कामना करता हैकिन्तु संसाधनो के आभाव में उसे नाना प्रकार के दुखो को झेलना पडता है। कर्मो को सुनिश्चित गति देकर वह दुखो से छुटकारा प्राप्त करता है यह संसार बीज भूमि अंकुरण विकास पूर्ण विकास स्थिरता विनास की गति और पूर्ण विनाश के सिद्वान्तो पर आधरित है नृशवरता अन्तिम गति है उसके बाद वह अपनी आत्मा की सुमति की कामना करता है धर्मशास्त्रो मे परमात्मा और धर्म दोनो ही अपरभाषित है इसलिए ब्यक्ति अपनी परम्परा और अपनी विचार धारा क अनुसार यहाँ धर्म का पालन करता है बुन्देलखण्ड मे निम्नधर्मो का असितित्व था।

1–अनार्यो का धर्म– बुन्देलखण्ड के मूल निवासी अनार्य है इनका निवास स्थल जंगलो और ग्रामीण अंचलो मे है। इन्हे वर्तमान समय मे अनुसूचित जन जाति के नाम से पुकारा जाता है इन लोगो का कोई धार्मिक ग्रन्थ नही है ये लोग केवल अपनी वंश परम्परा के अनुसार धर्म का अनुपालन करते है। और उससे सम्बन्धित तीज त्योहार मनाते है

ये लोग निम्न धार्मिक कृत्य करते हैं।

प्रकृति पूजा— ये लोग सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, सहिता, वृक्ष, और भूमि, की पूजा करते है इनका मानना है कि ये लोग प्रकृति मे पैदा हुए है प्रकृति उनका अनुपालन करती है उन्हे भोजन प्रदान करती तथा सूर्य उन्हे प्रकाश देता है चन्द्रमा उन्हें शीतलता प्रदान करता है नक्षत्र उन्हे दिशा बोध कराता है। वृक्ष उन्हे ईधन शीतल छाया फल और आश्रय बनाने के लिए लकडी प्रदान करते है चरिताये उन्हे जल प्रदान करती है इसलिए ये लोग प्रकृति को परमात्मा मानते है और उपासना करते है।

पशुपूजा— आदि वासी लोग पशु पक्षियो को अपने जीवन का आधार मानते है इनसे उन्हे दूध घी मांस औषधि चर्म और चर्बी उपलब्ध होती है। इसलिए ये पशु पक्षियो को देव तुल्य मानते है मुख्य रूप से नीलकण्ठ, या मोर सर्प सुअर, उल्लू, अश्व गाय सिंह आदि पशुओ पर श्रद्वा रखते है ये कुछ पशुओ की एकल पुजा करते है और कुछ की पूजा मनुष्यो के साथ करते है मुख्य रूप से नागो की पूजा का प्रचलन अनुसूचित जनजातियो मे सर्वाधिक है सपेरा जाति लोग सर्प पालते है जानवरो के माध्यम से ये सकुन और अपसकुन का बोध करते है।

3—पशु एवं नर बलि— बुन्देलखाण्ड मे रहने वाले आदि वासी सवर कोल भील आदि लोग अपने कृतिम देवताओ के स्थान पर जिनकी स्थापना हुई किसी वृक्ष के नीचे अथवा मढिया बनाकर करते है वहाँ विविध अवसरो पर और अपनी मान्यताओ के अनुसार नर बलि तथा भैसा और बकरे का बलिदान करते है कभी—कभी मुर्गे का रक्त भी चढाते है बाद मे बलि पशु के मांस को प्रसाद के रूप मे विस्तृत करते है अथवा सामूहिक भोज मे उसे स्वतः खाते और खिलाते हैं।

4—अन्धा विश्वास का अनुसरण— यहाँ के अनार्य लोग अपनी प्राचीन परम्पराओ के अनुसार अन्धविश्वास का अनुसरण करते है ये लोग विविध कार्यो के लिए झाड फूँक जन्त्र मन्त्र तंत्र, जादू टोना, टोटका पर विश्वास करते है। तथा विविध प्रकार की बीमारियो का इलाज भी इसी माध्यम से करते है झाँड फूँक के लिए भी मदिरा मांस का प्रयोग कही—कही होता है।

5—धार्मोत्सव— ये लोग अनेक तीज त्योहारो को अपनी परम्परा के अनुसार मनाते है वे अपने देवताओ को प्रसन्न करने के लिए विविध प्रकार के नृत्य गायन और वादन कार्यक्रमो का आयोजन करते है इनमे आदि वासी लोग भी भाग लेते है कभी—कभी बाहरी ब्यक्ति भी इन कार्य

कमो को देखने के लिए भी पहुँच जाते है धार्मिक कृत्य कराने के लिए इनके यहाँ परम्परा पुरोहित और ओझा हुआ करते है जिन्हे गुनिया के नाम से पुकारा जाता है।

6—बौद्व धर्म— बुन्देलखण्ड मे बौद्व धर्म सर्वाधिक पुराना प्रतीत होता है इस धर्म का विकास मौर्य काल मे सर्वाधिक हुआ सम्राट अशोक ने कौशाम्बी मे धर्मरक्षा के लिए महामात्रो की नियुक्ति की ये लोग श्वेत वस्त्र धारण करते थे सम्राट अशोक ने कौशाम्बी में आवासीय ब्यवस्था सुलभ करायी [184] ।अशोक के समय मे बुन्देलखण्ड की जनता का नैतिक स्तर घट गया था इसलिए अशोक ने यहाँ की नैतिक स्तर को सुधारने के लिए धर्म का प्रचार किया उसने बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रो मे बौद्व विहारो क निर्माण कराया ये बौद्व विहार साँची और भरहुत मे बनाये गये तथा इन्हे स्तूपो के नाम से पुकारा गया इन स्तूयो मे महात्मा बुद्व की प्रतिमाएँ स्थापित की गयी तथा अन्य प्रतीकात्मक मूर्ति स्थापित की गयी मुख्य रूप से अश्व, वृषभ, कमल, घट, चक्र, बोधि, वृक्ष, लक्ष्मी, गणेश, इन्द्र, यक्ष, नाग, तथा वृक्षो मे रहने के वाली मूर्ति सथापित की गयी जिनका उल्लेख हमे जातक कथाओ मे मिलता है इन स्तूपो मे बुद्व भगवान की पूजा करने के लिये यक्ष यक्षणियां निवास किया करते थे और अनेक लोग इन्हे दान दिया करते थे।

सम्राट की मृत्यु के पश्चात अन्य विदेशी जातियाँ बुन्देलखण्ड मे आई इनका आगमन उत्तर से इस क्षेत्र मे हुआ प्रसिद्व संस्कृत नाटक मालविका अग्निमित्रम मे इसके उल्लेख मिलते है यह नाटक वसुमित्र के पौत्र पुष्प मित्र शुंग पर लिया गया था इसका उल्लेख वेस अभिलेख मे मिलता है इसके पश्चात शको का आगमन यहाँ हुआ।और बौद्व धर्म मे अनेक परिवर्तन हुए यह धर्म हीनयान महायान और ब्रज्रयान भी विभाजित हुआ इसमे प्रजन और करूणा के सिद्वान्त को सामिल किया गया इसके अतिरिक्त त्रिकाय सिद्वान्त भी इस धर्म मे आये ये तीन त्रिकाया 1—धर्मकाया 2—सम्भाग काया और रूप काया के नाम से प्रसिद्व हुई तथा ध्यान का सिद्वान्त भी ईसा की पाँचवी शताब्दी तक शामिल हो गया।

बौद्व धर्म मे कालान्तर मे नाग यक्ष यक्षणी भी पूजे जाने लगे जब गुप्त युग आया उस समय महात्मा बुद्व को करूण का अवतार माना गया और बौद्व धर्म चन्देलो के आगमन तक यहाँ से पिरोहित हो गया केवल उसकी स्मृतियाँ धर्म स्थलो मे शेष रह गयी जो आज भी साँची भरहुत और भीटा मे देखने को मिलती हैं।

7–हिन्दू धर्म– हिन्दू धर्म बुन्देलखण्ड मे बहुत प्राचीन है धर्म मे ब्राह्मण के हस्ताक्षेप के कारण यहाँ बैदिक धर्म भी हिन्दू धर्म के नाम से जाना गया इस धर्म के अर्न्तगत विविध देवताओ की पूजा की जाती थी धार्मिक यज्ञ किये जाते थे। और स्थयी शान्ति प्राप्त करने के लिए देवताओ की उपासना की जाती थी तथा यज्ञो मे बलि दी जाती थी जो स्तम्भ यहाँ होते थे उन्हे शब्द सोम तमासा के नाम से पुकारा जाता था ये अग्नि अति अग्नि उपाध्य तलासिन बाजपेयी अतिरात्रा अपतोरपामा के नाम से सप्रसिद्व थे इस युग का जाजा शिव दत्त यज्ञो मे बलि देने मे विश्वास करता ऐसे यज्ञो का आयोजन करता था, [185] इस समय भगवान शिव की उपासन मुख्य रूप से होती थी तथा भगवान शिव को महेश्वर के नाम से पुकारा जाता था इस सन्दर्भ मे अनेक अभिलेख और पौराणिक साक्ष्य उपलब्धा होते है सुप्रसिद्व इतिहास कार अल्तेकर के अनुसार ऐतिहासिक साक्ष्य यह तथ्य प्रस्तुत करते है ईसा की द्वितीय शताब्दी मे पौराणिक धर्म ओर वैदिक धर्म का समन्वय हो गया था इसमे वैदिक धर्म का भी पुनरूत्थान हुआ और दोनो एक हो गये, [186] ।कालान्तर मे यहाँ वैष्णव धर्म का प्रचार बढा धर्म की दृष्टि से यह विभाजन इस प्रकार किया जा सकता हैं।

नव वैष्णव सम्प्रदाय– इस धर्म का सूत्र पात्र बुन्देलखण्ड मे गुप्त युग मे चौथी शताब्दी मे हुआ और इसका विकास दसवी और बारहवी शताब्दी मे हुआ इस समय बौद्व धर्म पूरी तरह से समाप्त हो गया था विष्णु सम्प्रदाय के मानने वालो ने महत्मा बुद्व के अहिसा के सिद्वान्त को अपने धर्म मे सामिल कर लिया और महात्मा बुद्व को विष्णु को अवतार के सप मे स्वीकार किया विष्णु की उपासना राम ओर कृष्ण के रूप मे की गयी बैदिक यज्ञ जिसमे पशु बलि दी जाती थी पूरी तरह बन्द कर दिये गये वैष्णव धर्म उपासको ने मांस भक्षण का परित्याग कर दिया इस धर्म की उपासना को बढाने के लिए भगवत पुराण की सनरचना की गयी लगभग यह ग्रन्थ ग्यारवी शदी मे लिखा गया इस समय कश्मीर का राजा अवन्ति वर्मन था जो राजा धंगदेव का समकालीन था, [187] ।विष्णु उपासना कई स्पो मे होती थी मुख्य रूप से कृष्ण राम उपासना तथा गोपी और श्री कृष्ण का प्रेम सम्बन्ध इस धर्म का मुख्य आकर्षण बना।

9–नव शैव सम्प्रदाय– बुन्देलखण्ड मे भगवान शिव की उपासना भी नये रूप मे की जाने लगी महा कवि कालिदास भवभूति बाणभटट शिव भक्त थे इस समय भगवान शिव को पशुपति आदि विभिन्न

नामो से पुकारा गया तथा इनकी उपासना मे शिव मूर्ति का स्थान सान्योपासना पूजा मद्र जप ओम आदि माध्यमो से भगवान शिव को प्रसन्न किया जाने लगा मुख्य रूप से शिव लिंग की उपासना की जाती थी।

10—लिंगायत सम्प्रदाय— यह भी शिव उपासना का दूसरा स्वरूप था किन्तु लिंगायत सम्प्रदाय दार्शनिक शंकराचार्य के प्रभाव से प्रभावित था इस धर्म पर रमानुजाचार्य का भी प्रभाव पडा इसमे भगवान शिव को आराध्य और उनके भक्तो को आराधक माना गया कालान्तर मे ये लोग भी धर्म के नाम पर हिंसा के विरोधी हो गये इस धर्म के महान अराधक वासव ने जाति व्यवस्था को छोड दिया और सन्यास तप को बेकार समझा बुन्देलखण्ड मे इस सम्प्रदाय का विकास हुआ और अनेक लोग शिव उपाशक बन गये जो लोग कापालिक थे। जो लोग शरीर में भस्म रमाना मस्तक भस्म तथा बाहुओं में त्रिपुण्ड़ लगाते थे और श्यमसानों भूमि में निवास करते थे धंग्यदेव ने सर्वप्रथम शिव मंन्दिर का निर्माण कराया,[188] स्पष्ट है कि यहाँ के मुख्य आराध्य देव थे।

11—पंच देव उपासना— सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र मे ब्रह्म की उपासना घटी उसके स्थान पर महादेव विश्वनाथ मृत्युपुंज्य और नील कण्ठ के नाम से भगवान शिव की उपासना हुई कालान्तर मे ये बामदेव नाम से भी पुकारे गये,[189] शिव के पश्चात यहाँ गणेश उपासना होती,[190] थी इस क्षेत्र मे गणेश पुरातन व्रह्म का रूप दिया गया है इनका महत्व गणपति, उपनिषद, ओर गणेश संहिता, मे उपल्बध होता है सन 1280 मे वीर वर्मन के मन्त्री नगणपति बिनायक की मुर्ति स्थापित की थी यह मन्दिर खजुराहो मे था[191]।

बुनदेलखण्ड क्षेत्र मे सूर्य की उपासना अति प्राचीन काल से हो रही है इसके अनेक मन्दिर बुनदेलखण्ड मे उपलब्ध होते है सूर्य को आदि ब्रह्म परमात्मा स्वंमभू अज भूतात्मा ब्रह्म विष्णु, के नाम से पुकारा गया है[192] खजुराहो मे एक सूर्य मनिदर उपलब्ध होता है जिससे यह सिद्व हेता है कि यह सूर्य उपासना थी।

सूर्य के अतिरिक्त यहाँ शक्ति की अनेक रूपो मे उपासना हेती थी मुख्य रूप से ब्रह्म की शक्तियाँ लक्ष्मी, शारदा, दुर्गा, काली, कपालिनी, मइसासुर, मर्दनी, की उपासना यहाँ हुई लोग देवी का प्रसन्न करने के लिए असको मदिरा और पशु बलि से प्रसन्न करते है यहाँ विनध्यवासिनी देवी की पूजा भी होती है दुर्गा एवं काली के मन्दिर बुन्देलखण्ड मे अनेक जगहो मे उपलब्ध होते है ये मन्दिर खजुराहो मे भी

है,[193] पंच देवो के सनदर्भ मे आल्ह खण्ड का यह दोहा प्रसिद्व है।

सदा भवानी दहिने गौरी पुत्र गणेश।
तीन देव रक्षा करे ब्रह्मा विष्णुमहेश।।

हिन्दू के अनुयायी बेद पुराण उपनिषद समृति ग्रनथो और धर्म शस्त्रो का अनुसरण करते थे यज्ञ मूर्ति पूजा तीर्थ यात्रा दान धर्म आयोजन और तीज त्योहारो को बडी श्रद्वा से मानते थे इस समय दान देने का रिवाज धर्म आयोजन क अवसर पर था [194]।

जैन धर्म— जैन धर्म के प्रवर्तक महात्मा महावीर स्वामी थे इस धर्म का विकास बुन्देलखण्ड मे वयापक रूप से हुआ कालान्तर मे यह धर्म स्वेताम्बर और दिमम्बर दो भागो मे विभक्त हो गया यहाँ के अनेक स्थलो मे चन्देल काल मे जैन मन्दिर बने इनमे तीर्थाकांरो की अनेक मूर्तियाँ स्थापित की गयी अनेक अभिलेख जैन मन्दिरो मे उपलब्ध हुए हैं।जिनसे जैन पूजा के प्रचार का बोध होता है। महोबा उपलब्ध जैन अभिलेख से यह ज्ञात होता हैकि सन 1163 मे रत्नपाल ने अजितनाथ की मूर्ति का निर्माण कराया था इस समय पिपौरा जैनियो का प्रमुख तीर्थ स्थल था [195]।

इस समय लोग मन्दिरो मे और मूर्ति स्थापित करने मे आस्था रखाते थे विविध प्रकार के यज्ञ करते थे तीर्थ स्थलो की यात्रा करते थे और मूर्तियो मे प्रसाद चढाते थे तीर्थ स्थलो मे अस्थि विसर्जन का रिवाज था सभी तीर्थे मे प्रयाग का सर्वाधिक महत्व था कहते है कि चन्देल नरेश धंगदेव ने अपने प्राणो का विसर्जन प्रयाग मे किया था।

यं वेदान्त विदो वदन्ति मनसष्ठ सकल्पभूतं शिवम्।
ब्रह्मैकं परमक्षरं तमजरं चामरं तद्विदः।।
अन्ये तत्शिवमेव बुद्वमतं त्वन्ये जिनं वामनम।
तस्मै सर्समयेक्य कारणपते सर्वाय नित्यं नमः[196]।।

बुन्देलखण्ड मे हिन्दू धर्म के अन्तर्गत अभिब्यक्ति गऊ और ब्राह्मण की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझता था,[197] कई स्मृति ग्रनथो में इसका उल्लेख है लोग अपने घरो में गाय का पालन करते थे उन्हे पूज्य पशु मानते थे यज्ञालि संस्कारो मे गोबर गो मूत्र तथा दूध दही का प्रयोग होता था इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों को दान देने की ब्यवस्था थी।[198]।

इस्लाम धर्म— ईसा की ग्यारहवी शताब्दी के अन्त मे बुन्देलखण्ड मे आगमन हुआ इस ध्र्मा के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब थे इनके पवित्र

ग्रन्थ का नाम कुरान सरीफ था ये लोग एक ईश्वर बाद के समर्थक और मूर्ति पूजा के विराधी थे इस धर्म क अनुयायी पाँच वक्त की नमाज अदा करना कुरान सरीफ को पवित्र ग्रन्थ मानना खुदा को सर्वोपरि मानना जकात देना सभी से भाई चारे का व्योहार करना रमजान में रोजे रखना माल होने हज करना ये इनके मजहब के प्रमुख सिद्वान्त थे यह धार्म बाहरी, आक्रमण कारियो के माध्यम से बुन्देलखण्ड मे आया जिन्होने हिन्दू धर्म स्थलों को तोडकर अपने धर्म स्थल बनवाये थे सुबुक्तगीन ने और महमुद गजनवी ने बलात धर्म और परिवर्तन की नीति अपनाई थी क्योंकि दोनो इस्लाम के कट्टर धर्मावलम्बी थे इन आक्रमण कारियो की वजह से दारगाहो और मस्जिदो का निर्माण कराया गया परमार्दि देव के समय मे कुतुबुद्वीन ऐबक ने कालिंजर के अनेक मन्दिरो को ध्वस्त कर दिया था और ब्यक्तियो को मुसलमान बना लिया था।[199]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– ऋग्वेद 7–19 में विश्वययद यदवन्ति में इसी बृहस्पति के महत्तम् देव के रूप में उपासना की गयी है।

2– बुन्देलों का इतिहास–ब्रजरत्नदास –ना० प्र० सभा पत्रिका, भाग 3, पृ० सं० 420,

3– नार्थ–वेस्टर्न प्रविन्सेज, गजेटियर भाग 1, पृष्ठ 20, इलियट एण्ड डाडसन, भाग 3, पृ० सं० 45,

4– नार्थ–वेस्टर्न गजेटियर, भाग 1, पृ० 20,।

5– बुन्देलखण्ड का इतिहास प्रथम भाग – दीवान प्रतिपाल सिंह नागरी प्रचारणी सभा बनारस संस्करण 1930, पृ० सं० 1–2,

6– Cultural history of Bundel khand -M.L.Nigam - Sandeep prakashan Editon 1983, page,No 2,

7– सतपथ ब्राह्मण (xii,2.2.13,)

8– Ancient Bundelkhand - Kirit K. Shah - Gian Publishing house Delhi Jun 30- 1987 - Page No. 18

9– Sankalia . H.D. Pre- History and prato- history of india and pakistan deccan college (New Edition), Poona, 1974] P- 107]

10– The Jarai templte at parwa sagar - Dr. S.D.Trivedi Goverment museun Jhansi 1985 - Page No. 17.

11– Asir (Cunningham) vol. x. PP. 105 - 110, Agrawala. V.S. Studies in Indian art, 1956, Varanasi, PP. 220-225.

12– बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास – तिवारी गोरेलाल, काशी नागरी प्रचारणी सभा, सन 1933, पृ० – 1

13– बुन्देलखण्ड का इतिहास – डा० मोतीलाल त्रिपाठी 'अशान्त' शारदा साहित्य कुटीर, 86 पुरानी नझाई, पृ०–9,

14– राधाकृष्ण बुन्देली, बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन, प्रथम भाग संस्करण 1989, पृष्ठ – 1,

15– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक, बनारस, 14 फरवरी सन 1929, पृ०–4

16– तिवारी गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, काशीनागरी प्रचारिणी सभा सन 1933, पृ०–1,

17– Kirit , K. Shah, Ancient Bunedlkhand, Gian Publishing house Delhi. Jun 30- 1987. No.- 8

18– त्रिपाठी, माधव, प्रसाद, बुन्देलखण्ड़ की प्राचीनता, वाराणसी 1955, पृ० 23 से 34 ,

19– स्टैटिस्टकल डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्ट्रारिकल एकाउन्ट्स ऑफ नार्थ–वेस्टर्न प्राविन्सेज ऑफ इण्डिया, बाल्युम 1, बुन्देलखण्ड, पृ० 1,

20–पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, चन्देलकालीन, बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रथम संस्करण प्रयाग, 1968, पृ० 1,

21– M.L. nigam - cultural history of Bundel khand, sandeep prakashan

editon 1983, page.N. 1,

22– बुन्देली, राधाकृष्ण, बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन, भाग एक, संस्करण 1989, पृ0 13,

23– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक, बनारस, 14 फरवरी सन 1929, पृ0–5, 6, 7,

24– एस0 एम0 अली– दी जाग्रफी ऑफ दी पुराणाज, 1966 संस्करण पृ0 159–60,

25– जयचन्द्र विद्यालंकर, भारत भूमि और निवासी, संस्करण 1931 पृ0 65,

26– सिंह, आर0 एल0,–इण्डिया एरीजनल जाग्रफी संपाकद, संस्करण 1971, पृ0 597,

27– वासुदेव शरण अग्रवाल, मार्कण्डेय पौराणिक सॉस्कृतिक अध्ययन, संस्करण 1961 पृ0 152,

28– डॉ0 कामिनी, बुन्देली भाषी क्षेत्र के स्थान अभिधानों का भाषा बैज्ञानिक अध्ययन पृ0 सं0 1 से 30 तक,

29– तिवारी, उदयनारायण, भारत का भाषा सर्वेक्षण खण्ड 1, भाग 1, अनुवादक, संस्करण 1959, पृ0 24,

30– भारत का भाषा सर्वेक्षण खण्ड 1, भाग 1, पृ0 29,

31– डॉ0 ग्रियर्सन, लिग्युस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया बाल्युम 9, पृ0 86,

32– कृष्णानन्द प्रकाशित,– बुन्देलखण्डी भाषा का साहित्यक, संस्करण 1960, पृ0 सं0 2,

33– डॉ0 रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल, बुन्देली भाषा का शास्त्रीय अध्ययन 1963, पृ0 4,

34– डॉ0 एम0 पी0 जायसवाल, ए0 लिग्विस्तिक स्टेज ऑफ बुन्देली, संस्करण 1962, भूमिका पृ0 –3,

35– हिन्दी भाषा का उद्गम और बिकास, पृ0 254,

36– हिन्दी उद्भव विकास और रूप, पृ0 85,

37– टी0 ए0 फोल्डिज, पोलिटिकल जाग्रफी ऑफ फाउन्डेसन, पृ0 82,

38– डा0 काशी प्रसाद जायसवाल, अनुवादक रामचन्द्र, अन्धकार युगीन भारत संबत् 1995, पृ0 84–85,

39– ए0 कनिंघम आर्कुलाजिकल सर्वे रिर्पोट बाल्युम 21, पृ0 81,

40– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक, बनारस, 14 फरवरी सन 1929, पृ0–8,

41– शोध प्रबन्ध डॉ0 इन्दु प्रभा सचान, ''बुन्देलखण्ड का सामाजिक एवं धार्मिक दशा का ऐतिहासिक निरूपण'' सन् 1997, पृ0 9,

42– M.L. nigam - cultural history of Bundel khand, sandeep prakashan editon 1983, page.N. 4,

43– पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, चन्देलकालीन, बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रथम संस्करण प्रयाग, 1968, पृ0 7

44– महोबा शिलालेख– इपि0 इण्डि0, भाग 1, पृ0 220, श्लोक 10,
45– आर्क्योलाजिक सर्वे रिर्पोट्स , भाग 2, पृ0 98,
46– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक,
बनारस, 1929 ई, पृ0–9
47– Historical Geografay of Ancinet India, Ess publication
Delhi 1967 , page N0. 312-13,
48– E.I ,, XX VII,(27) page. No.168
49– तिवारी, गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास काशी नागरी
प्रचारणी सभा सम्बत 1990, पृ0 4, 5,
50– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक,
बनारस, 1929 ई, पृ0–10,
51– पूर्वो पृ0 10,
52– महाभारत, पुराण आरण्यक पर्व–3–85–13–15,
53– समुद्र गुप्त प्रयाग प्रसस्ति मूल अभिलेख, एन्सियन्ट इन्सकेसन्स
अभिलेख पृ0 47–48,
54– बाट भट्ट कादम्बरी
55– समुद्र गुप्त का एरण अभिलेख पृ0 49–50,
56– विष्णु धर्मोत्तर पुराण
57– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक,
बनारस, 1929 ई0, पृ0–13,
58– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक,
बनारस, 1929 ई0, पृ0–1,
59– बुन्देली, राधाकृष्ण, बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन,
प्रथम भाग, बुन्देलखण्ड प्रकाशन बाँदा (उ0 प्र0) पृ0 18–19,
60– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक,
बनारस, 1929 ई0, पृ0–16,
61– पूर्वो पृ0 16 से 21
62– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास,
बनारस, 1929 ई0, पृ0–21से 41
63– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक,
बनारस, 1929, पृ0–49
64– डॉ0 श्री मती अरूणेन्द्र चौरसिया,– बुन्देलखण्ड लोक संगीत में सामाजिक,
साहित्यक और सांस्कृतिक तत्व'' शोध प्रबन्ध इलाहाबाद विश्व विद्यालय 1993,
पृ0 50 से 52 तक,
65– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक,
बनारस, 1929, पृ0–51 से 55
66– अबुल फजल, –आइने अकबरी,
67– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक,
बनारस, 1929, पृ0–68,

68– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक, बनारस, 1929, पृ0–311,

69– इण्डियन आर्कलाजी– ए रिव्यु, 1955–56, पृ0 4,

70– Bajpai K.D. yuga- yugon men vttar fradesh, page No, 42,

71– Drake- brockman, D.L. District of the united provinces of Agra and oudh- Banda disrict, 1929, Page No, 159,

72– Banda, Gazetteers, 1977, Page No, 29,

73– Sankalia, H.D. Pre- History and frato - hostory in india and pakistan(Bombay, 1962) Page 58,

74– पन्त, पी0 सी0 प्रिहिस्टारिक उत्तर प्रदेश, दिल्ली, 1982,पृ0 88 से 130 तक,

75– kirit, K.Shah, Ancient Bundel khand, Gian Publisking house Delhi jun 30 1987, page, 18,

76– M.P.Chronicle, (Daily newspaper), Bhopal, may 14, 1975, Page, 5,

77– Ia , R; 195556, Page- 4,

78– Ibid; 1960-61 Page -35,

79– Ai, No, 17, 1961, Page -7,

80– Ii , R; 1957-58, Page 25,

81– Ibid; 1959-60 Page -69,

82– Ibid; 1956-57 Page -79,

83– गुप्त, जगदीश, प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, दिल्ली 1967 पृ0 86–87,

84– एस0 डी0 त्रिवेदी , बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, राजकीय संग्रहालय झाँसी, 1984, पृ0 10–11,

85– बाँदा गजेटियर, 1977, पृ0 29,

86– Bajpai; K.D. yuga - yugon man uttar pradesh, (Allahabad) 1955 page 42,

87– डॉ0 कन्हैया लाल अग्रवाल, बिन्ध्यक्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, सुषमा प्रेस, सतना,(म0 प्र0), 1987, पृ0 128,

88– M.L. Nigam cultural history of Bundel khand Sandeep prakashan, edtion 1983, page 174,

89– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक, बनारस, 1929, पृ0–313,

90– Banda, Gazetteer being vol. 21, of the District gozettee rs of the united provinces of agra and oudh, by drak brockman, D.L,, (Allahabad) 1924 page 29,

91– Atkinson, E.T. Statistical, Descriptive and hist orical Account of the nort-western brovinces of india, vol, i, Bundeland division, page 524,

92– beams john (Ed) memoirs on the history, folk- fore, and distribution of the Races of the north- western prouinces of india, vol -1- page 153,
93– drake- brockman, D.L. jalaun A. Gazetter. page 115,
94– M.L. nigam. cultral history of bundelkhand, sandeep sanddeep prakashan, editon 1983, page-58,59
95– kirit-k. Shah, Ancient Bundel khand - Gian publishing House Delhi, 1987 page, 21,
96– Dikshit, R.K.. the chandellas, jejabkukti page 11,
97– Epigraphica indica vil, 31, edition 1892 page, 205,
98– बाण भट्ट– कादम्बरी, काले एम0 आर0 पृ0 25,
99– Majunmdar, R.C. and pusalker, A.D History and culture of indian people, vol- 1, page 252,
100– महाजन, विद्याधर, प्रचीन भारत का इतिहास दिल्ली, 1986 पृ0 सं0 102,
101– The history and culture of the indian people vol- 1, The vedic Age page 274,
102– Majumdar. pusalker, History and culture of the Indian people, vol, 1, Editon Bombay, 1965, page 300,
103– रामायण बाल्मीकि, आरण्यकाण्ड़, अध्याय 5, श्लोक 19,
104– एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द 8, पृ0 सं0 170–76,
105– इण्डियन एण्टिक्वेरी जिल्द 8, पृ0 सं0 170–76,
106– इण्डियन एण्टिक्वेरी जिल्द 25, पृ0 सं0 207,
107– जनरल ऑफ यूनाइटेट प्राविन्स हिस्टोरिकल, सोसाइटी, खण्ड़ 23, पृ0 सं0 228 से 235 तक,
108– आर्कुलाजिकल सर्वे रिर्पोट, खण्ड 21, पृ0 सं0 75,
109– एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द 20, पृ0 सं0 136,
110– ए रिकार्ड ऑफ बुद्धिस्ट किंगडम्स, पृ0 सं0 43,
111– एपिग्राफिका इण्डिका,खण्ड 1, पृ0 सं0 177,
112– एपिग्राफिका इण्डिका,खण्ड 31, पृ0 सं0 177,
113– कार्पस, खण्ड 4, पृ0 सं0 215,
114– सैकेंड बुक्स ऑफ द ईस्ट, खण्ड 33, पृ0 सं0 340,
115– खजुराहो स्कल्पचर्स, पृ0 सं0 184,
116– वही, पृ0 सं0 185,
117– सतपथ ब्राह्मण, 5–1–2–14,
118– कार्पस, खण्ड 3, पृ0 सं0 81–87,
119– खजुराहो स्कल्पचर्स, पृ0 सं0 185,
120– वायुपुराण, अध्याय 14, श्लोक सं0 18,
121– खजुराहो स्कल्पचर्स, पृ0 सं0 186,
122– पाली, जातक, भाग 6, पृ0 सं0 22,

123– बुद्ध कालीन, भारतीय भूगोल, पृ0 सं0 453,

124– एपिग्राफिका इण्डिका,भाग 1, पृ0 सं0 153,

125– वही, पृ0 सं0 146,

126– कार्पस, खण्ड 4, पृ0 सं0 170,

127– आर्कुलाजिकल सर्वे रिर्पोट, खण्ड 21, पृ0 सं0 34,

128– नैषधचरित, 19–55,

129– एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द 20, पृ0 सं0 136,

130– वही, पृ0 सं0 136,

131– मनुस्मृति , 10–36,

132– पाली, जातक, भाग 3, पृ0 सं0 323,

133– खजुराहो स्कल्पचर्स, पृ0 सं0 180,

134– कार्पस, खण्ड 4, पृ0 सं0 215,

135– एपिग्राफिका इण्डिका, भाग 1, पृ0 सं0 175,

136– वही, पृ0 सं0 174,

137– अथर्ववेद, 27–178–81,

138– एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द 1, पृ0 सं0 176,

139– वही, पृ0 सं0 176,

140– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक, बनारस, 1929, पृ0–186–188,

141– वही, पृ0 सं0 208,

142– जनरल एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल बाल्युम 13, भाग 1, संस्करण 1844, पृ0 सं0 1,

143– के0 डी0 बाजपेयी, मध्य प्रदेश संस्कृति बाम्बे 1973, पृ0 सं0 27,

144– बाण भट्ट– कादम्बरी, काले एम0 आर0 पृ0 42,

145– Russell, R.v. and Hiralal, Trives and castes of the central provinces of india, vols,iii, publications, Delhi, 1975 page-139

146– एपिग्राफिका इण्ड़िका, जिल्द 1, अध्याय 26, पृ0 सं0 215

147– [cII, Iv, 1, page 364] cultural inscription of india, part 1, page 364

148– इण्ड़िका एण्टिक्वेरी जिल्द 18, पृ0 स0 308

149– हर्षचरित्र, बाणभट्ट, मुकर्जी आर0 के0 1926, पृ0 स0 13

150– एपिग्राफिका इण्ड़िका, जिल्द 18, पृ0 स0 92,

151– एपिग्राफिका इण्ड़िका, जिल्द 21, पृ0 स0 55,

152– Barua, B.M. Ashoka and his Inscriptions, calcutta 1934, page 8,

153– वही पृ0 सं0 78,

154– आर्कुलाजिकल सर्वे रिर्पोट, ग्वालियर राज्य, 1930–31 प्लेट सं08,

155– वही

156– Moti chandra costumes textilescosmeties and coiffure in Ancient
and mediaeval india, 1973, page 85,
157– आर्कुलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिर्पोट, 1911–12, पृ0 सं0 92–93,
158– Agrawala, V.S. studies in Indian Art 1965, page 95-97,
159– Moti chandra costumes textiles cosmeties and coiffure
in Ancient and mediaeval india 1973, page 199,
160– आर्कुलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिर्पोट, 1909, पृ0 सं0 42
161– वही जिल्द 34, फिगर 2,
162– आर्कुलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिर्पोट, 1909,
जिल्द 34 फिगर 3,
163– समुद्र गुप्त का एरण अभिलेख– उपाध्याय वासुदेव, प्राचीन भारतीय अभिलेख,
मोती लाल, वनारसी दास दिल्ली सन् 1961, पृ0 सं0 49,
164– द्वितीय चन्द्रगुप्त, उदयागिरि गुहा अभिलेख, वही, पृ0 सं0 51,
165– खजुराहो स्कल्पचर्स, पृ0 सं0 182,
166– जनरल ऑफ एसियाटिक सोसाइटी, जिल्द 23, पृ0 सं0 50,
167– एपिग्राफिका इण्ड़िका, जिल्द 10, पृ0 स0 47,
168– वही पृ0 सं0 77–80,
169– महाभारत, खण्ड 1, अध्याय 57, श्लोक सं0 8–11,
170– मेम्वायर्स ऑफ द ज्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, भाग 2, 7–21–31,
171– दी बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ0 सं0 40,
172– मजूमदार, क्लासिकल एकाउन्ट्स ऑफ इण्डिया, पृ0 सं0 308–10,
173– एपिग्राफिका इण्ड़िका, जिल्द 20, पृ0 स0 136,
174–बुलेटिन(पुरातत्व बिभाग, सागर विश्व) पृ0सं0 101–14,
175– कार्पस, खण्ड 4, पृ0 सं0 215,
176– वही पृ0 सं0 150,
177– Bajpai, K.D. Indian, Numismatic, studies .
New Delhi 1976, page 53,
178– जनरल ऑफ एसियाटिक सोसाइटी, जिल्द 64,
भाग 1,1895 पृ0 सं0 159,
179– Bajpai, K.D. Indian, Numismatic, studies.
New Delhi 1976, page- 7,
180– Jourhal of the Numismatic, society of India,
Bombay, Part 38, page 48,
181– एपिग्राफिका इण्ड़िका, भाग 4, पृ0 स0 154,
182– एपिग्राफिका इण्ड़िका, भाग 1, पृ0 सं0 147–151,श्लोक 5–6,,
183– सिंह दीवान, प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, 1929, पृ0 सं0 –206,
184– Cl l, IV, Part 1, page 158, [cultural Inscrifion
of india part 1, page 158]

185– एपिग्राफिका इण्ड़िका, जिल्द 14, 1937–38, पृ0 स0 247,
186– वही, पृ0 सं0 250,
187– हिस्ट्री ऑफ मेडिवल इण्डिया, भाग 3, पृ0 सं0 415,
188– एपिग्राफिका इण्ड़िका, भाग 1, पृ0 स0 146, श्लोक 60,
189– आर्कुलाजिकल सर्वे रिर्पोट,ऑफ इण्डिया भाग 2, पृ0 सं0 419–28,
190– याज्ञवल्क्य स्मृति, 16, 148,
191– आर्कुलाजिकल सर्वे रिर्पोट,ऑफ इण्डिया भाग 21, पृ0 सं0 52,
192– महाभारत, पर्व 7, अध्याय 82, श्लोक सं0 14–16,
193– आर्कुलाजिकल सर्वे रिर्पोट,ऑफ इण्डिया भाग 2, पृ0 सं0 424,
194– वही भाग 21, पृ0 सं0 74–75,
195– वही
196– एपिग्राफिका इण्ड़िका, भाग 1, पृ0 स0 174, श्लोक 3,
197– आपस्तम्ब स्मृति, अध्याय 10, अत्रि संहिता, श्लोक सं0 220–23,
198– इपिग्राफिका इण्ड़िका, भाग 1, पृ0 स0 129, श्लोक 49,
199– हसन निजामी, ताजुल–सा अतहर, (अनु0) इलियट, भाग– 2,

बुन्देलखण्ड की राजनीतिक व्यवस्था एवं उनसे जुडी हुई घटनाएं:— सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में राजनीतिक चेतना का उदय कब हुआ इसका कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नही होता केवल यह पता लगता है कि व्यक्ति बौद्धिक चेतना का धनी था इसलिए वह अपना हित चिन्तन भली प्रकार समझता था। प्राचीनकाल में जब संसाधनों का आभाव था उस समय व्यक्ति को संसाधन प्राप्त करने के लिए कठिन संघर्ष करना पड़ता था यह संघर्ष वह कभी भी अकेले नही कर सकता था। इस लिए उसमें सर्वप्रथम समूह में रहना प्रारम्भ किया समूह में रहने का यह कारण था कि वह अपने प्रति द्वन्दी गुटों से संघर्ष कर सकता था। संसाधन युक्त भूमि पर अधिकार कर सकता था और पृथ्वी में उपलब्ध वस्तुओं का उपभोग कर सकता था।

मनुष्यों का यह प्राथमिक समूह भाषा विहीन था वह पीड़ाओं का अनुभव अपने मस्तिष्क में करता था किन्तु वह उसकी अभिव्यक्ति किसी भी प्रकार नही कर सकता था केवल संकेतो के माध्यम से वह अपनी वेदना की अभिव्यक्ति करता था। संसाधनों के आभाव में वह नग्न रहता था किन्तु जब प्राकृतिक पर्यावरण में उसे प्रभावित किया उस समय उसमें कृतिम वस्तुओं से अपने तन को ढकना प्रारम्भ किया वह पशु चर्म और पेडों की छालों तथा तन्तुओं से अपने शरीर को ढकने लगा भोजन के रूप में वह प्रकृति द्वारा प्रदत्त फल और अपने द्वारा मारे गयें पशुओं का मांस ग्रहण करने लगा कभी—कभी भोजन के लिए संघर्ष हो जाया करते थें।

प्रारम्भिक मानवों के पास किसी प्रकार का कोई स्थायी आवास गृह नही था वह ऐसी कन्दराओं में रहता था जहाँ नजदीक कोई न कोई जलाशय होता था। जल मनुष्यों की सबसे बड़ी आवश्यकता थी जिसके बिना वह जीवित नही रह सकता था। बुन्देलखण्ड़ में मूल निवासियों के जहाँ आवासीय स्थल उपलब्ध हुए हैं। वहाँ पानी की सुलभता आवश्य है इन लोगों के आवास स्थिर नही थे ये लोग घूम फिर कर अपने लिए नये आवास खोजा करते थे इनके मध्य धीरे—धीरे सांकेतिक भाषा का उदय हुआ इसे हम शैलचित्र के रूप में देखते हैं। ये शैलचित्र बुन्देलखण्ड़ में सर्वत्र उपलब्ध होते हैं इन्हे प्रारम्भिक भाषा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है इसी समय समूह में रहने वाले व्यक्तियों के मध्य नेतृत्व की भावना का उदय हुआ इनका नेतृत्व एक शक्ति शाली मुखिया करता था सभी लोग उसके अनुशासन में रहते थे और उसका

कहना मानते थे इस मुखिया को नायक या राजा की संज्ञा कालान्तर में दी जाने लगी।

बुन्देलखण्ड में रहने वाले प्रथम निवासियों के पास अपनी रक्षा के लिए किसी प्रकार के अस्त्र–शस्त्र नही थे। वे शत्रुओं से रक्षा के लिए प्रकृति द्वारा प्रदत्त पत्थर और लकडी के टुकडे अस्त्र–शस्त्र के रूप में प्रयुक्त करते थे। धीरे–धीरे तन्तुओं की खोज की पश्चात और धातुओं के बारे में जानकारी मिल जाने के पश्चात अग्नि के प्रयोग से ये लोग धनुष बाण तथा अन्य अस्त्र–शस्त्र बनाने लगे तथा सभी व्यक्ति स्थायी आवास की खोज भी करने लगे।

धीरे–धीरे जब कृषि के सन्दर्भ इन्हे जानकारी हो गई उस समय इन्होने स्थायी रूप से नदियों और जल स्रोतों के किनारे अपने स्थायी निवास पत्थर लकडी और मिट्टी के सहयोग से बनाये और उस भूमि का सीमांकन करके उसे सुरक्षित रखने के लिए चारों ओर पत्थरों की एक कृतिम दीवाल बनायी सर्व सम्मत से उन्होने किसी व्यक्ति को अपना राजा या नायक चुना और कुछ व्यक्तियो को अपना रक्षक चुना जिन्हे आगे चलकर सैनिको के रूप में मानता मिली ये लोग बाहरी शत्रुओ से अपने क्षेत्र की रक्षा करते थे अपने यहाँ के नागरिको की रक्षा करते थे उनके लिए संसाधन जुटाते थे तथा नई–नई वस्तुओं की खोज करते रहते थे। इस तरह प्रारम्भिक राजनीतिक चेतना का उदय बुन्देलखण्ड में हुआ।

धीरे–धीरे बुद्धि जीवियों का उदय हुआ होगा तथा उन्होने इन्हीं व्यक्तियों को अनेक क्षेत्रो में सुरक्षित किया जाय उन्हे समुचित ज्ञान दिया जाय और व्यक्ति शासन और समाज में ताल मेल बनाये रखने के लिए कुछ निश्चित नियमावली या आचार संहिताओं का निमार्ण किया जाय जिनका अनुपालन करना सबके लिए अनिवार्य हो इन नियमों मे समाजिक व्यवस्था धर्माचरण राजनीतिक व्यवस्था प्रशासनिक विधि दण्ड व्यवस्था कर व्यवस्था युद्ध एवं सन्धि एवं व्यापार उद्योग के लिए सामिल किये गये पहले ये नियम मौखिक थे। बाद में भाषा लिपी के उदय के बाद इन्हे ग्रन्थो में समुचित स्थान दिया गया और लोग इनका अनुपालन करने लगे यहीं से राजनीतिक चेतना का उदय बुन्देलखण्ड में हुआ।

1–बुन्देलखण्ड़ के इतिहास से जुड़ी राजनीतिक घटनाएं पुरा पषाण युग से आर्यो तक– बुन्देलखण्ड में मानव विकास अन्य क्षेत्रो जैसा है मानव कि उत्पत्ति उसके रहन शहन

का स्तर और सभ्यता का विकास अति प्राचीन काल से है जिसका अध्ययन हम निम्न प्रकार से कर सकते है।

प्राग ऐतिहासिक काल– यहाँ मनुष्य सरिताओं के तट पर गुफाओं में अति प्राचीन काल से रह रहा है वह पशु पक्षियों का आखेट करता था और विभिन्न प्रकार के फलो से अपने उदार की पूर्ति करता था इस युग कों पूर्व पाषाण युग और उत्तर पाषाण युग दो भागो में विभक्त करते है बाँदा जनपद में केन नदी के तट पर नरैनी के शन्नीकट बरीयारी गाँव मे और राम चन्द्र पहाणी मे तदयुगीन हस्त कुठार आदि अस्त्र–शस्त्र उपलब्घ हुए है इनकी हस्त पुष्टि होती है।[1] इसी प्रकार के कुछ उपकरण ललित पुर देवगढ साधुआ में भी उपलब्ध हुए इन उपकरणो से तदयुगीन व्यक्तियों कि जीवन शैली का तो पता लगता है किन्तु इनके हदय में उत्पन्न राजनीतिक भावना का पता नही लगता ये लोग उपलब्ध अस्त्र–शस्त्रों के माध्यम से अपनी सुरक्षा करते थे टिकरिया के सन्निकट मनगवाँ भौथी में भी इस प्रकार के अस्त्र–शस्त्र मिले ऐसे ही अस्त्र–शस्त्र के0डी0 बाजपेयी ने भी सागर के सन्निकट खोजे थे।[2] उत्तर पाषाण युग में थे अस्त्र–शस्त्र नई शैली से बने इनमें कुछ अस्त्र–शस्त्र अर्ध चन्द्राकार भी थे[3]।

अस्त्र–शस्त्र या आवास स्थल मिलने से इनकी राजनीतिक व्यवस्था का अन्दाज नही लगया जा सकता केवल यह परिकल्पना की जा सकती है कि व्यक्ति समूह मे रहता था कन्दराओं में घर बनाता था और बन उपज से अपना एक जीवन व्यतीत करता था।

प्रारम्भिक जीवन और कृषि युग का शुभारम्भ– यहाँ का निवासी प्रारम्भ में आवास के लिए गृह बनाने की कला नही जानता था इसलिए उसे प्राकृतिक कन्दराओ की ही सरण लेनी पडती थी।वह चरिताओं से जल और बलो से अपना भोजन एकत्रित करता था। उसमें अपनें धरों को सजाने के लिए गुफाओं में शैल–चित्रों का निमार्ण किया बाँदा जनपद में सर्वप्रथम अन्यवेषक शिलवेराड ने इनकी खोज की,[4]। इन्होने सरहट मलवा, कुइयाकुण्ड, अमवा, अल्टन, और बरगढ़ में शैल चित्रों की खोज की थी इन शैल चित्रों में अश्वरोहियों का समूह, हाँथी, और सांभर, का आघेट, करता युवा धरोहर, पशुओ, और मानव, आकृतियाँ और बारह सिंहो के चित्र उपलब्ध हुए काक वर्ण ने चित्रकूट के सन्निकट हनुमान धारा में शैल चित्र खोजे थे,[5]। बुन्देलखण्ड़ के अनेक क्षेत्रों में ऐसे चित्र उपलब्ध होते है। इन चित्रों में समय–समय पर परिर्वतन भी होता

रहा है। यहाँ अनेक चित्र पशु पक्षियों के अतिरिक्त नृत्य गायन और घरेलू जीवन के भी मिले है। इनमें मानव आकृतियों का विशेष विधि से चित्रांकन किया है ऐसे चित्र सागर के आस–पास बहुत मिले हैं,[6]।

बुन्देलखण्ड मे आर्यो का आगमन– अनेक इतिहास कार आर्यो को भारत वर्ष का निवासी नही मानते ये लोग उत्तर पश्चिम से भारत वर्ष में आये उसके पश्चात इन्होने यहाँ की मौलिक सभ्यता का विनाश किया और अपनी सभ्यता की नीव डाली वेदो में इस जाति का नाम आर्य लिखा है इसका अर्थ श्रेष्ठ अथवा उत्तम होता है बहुत से विद्वान उन्हे भारत वर्ष का मूल निवासी मानते हैं। कुछ व्यक्ति इन्हे मध्य देश का मानते हैं कुछ लोग इन्हे काश्मीर का निवासी मानते हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान श्री एलजीकल्ल इन्हे कश्मीर अथवा हिमालय प्रदेश का निवासी मानते हैं [7]। कुछ विद्वान आर्यों को मुल्तान का मूल निवासी मानते है। जिन सात सरिताओं का वर्णन वेदों में है उससे यह स्पष्ट है कि आर्य लोग यहीं के निवासी थे किन्तु अनेक विद्वान इन्हे यहाँ का निवासी नही मानते है कुछ लोगो ने उत्तरी ध्रुव यूरोप हंग्री, दक्षिणी, रूस, मध्य एशिया, का निवासी मानते हैं। आर्य चाहे जहाँ से आये थे उन्होने भारत वर्ष में और बुन्देलखण्ड मे अपनी छाप छोडी जिनके ऐतिहासिक साक्ष्य यहाँ उपलब्ध होते हैं।

आर्यो की पहचान– आर्यो की पहचान उनकी भेष–भूषा और जीवन शैली से होती है इसका वर्णन उनके द्वारा रचित ऋग्वेद, यर्जुवेद, सामवेद और अथर्ववेद, से हो जाता है। इन वेदों की रचना ऋचाओं मे हुई है कहीं–कहीं गद्य का प्रयोग है जिसे यजुस्प कहा जाता है और कहीं–कहीं गेय पद भी हैं जिन्हें साम कहा जाता है इन वेदों की रचना का कोई एक व्यक्ति नही है बल्कि कई ऋषियों ने मिलकर इनकी रचना की है ये ऋषि निम्न लिखित है–1.गृत्समद 2. विश्वमित्र 3.वामवेद 4.अत्री 5. भरद्वाज और 6. वसिष्ठ यह विशेष की बात है कि मन्त्र रचयिता ऋषियों मे कुछ स्त्रियों के भी नाम है इन स्त्रियों में लोपामुद्रा, घोषा, शची, पैलोनी, और काक्षावृती आदि प्रमुख है [8]।

आर्यो में पाँच शाखाये थी जिनके नायक भारतीय आर्य अनेक वर्गो में विभक्त थे। इनमें 'पंचजन' विशेष प्रसिद्ध थे। इनके नाम हैं– 1. अणु 2. द्राह्यु 3. यदु 4. तुर्वस, और 5. पुरू। इनके अतिरिक्त अन्यान्य गण भी थी। इनमें भरत, किवी, और त्रिसु विशेष उल्लेखानीय हैं। इनके अलग–अलग राज्य जिनमें कुछ वे सामन्त शाही राज्य व्यवस्था भी और

कुछ वे जनतान्त्रिक शासन प्रणाली थी इनमें आपस में युद्ध होते रहते थे।

आर्यो का अनार्यो से युद्ध— आर्यो के अनार्यो से कई बार युद्ध हुए बेदो में अनार्य जातियों के नाम अज, यक्ष, किकट, और पिशाच, आदि हैं। आर्यो ने भेद नाम के एक राजा को पराजित किया था और अनेक आनार्यो को अपना दास बना लिया था अनार्य लोग काले होते थे इनकी नाक चपटी होती थी अनार्यो का धर्म आर्यो से अलग था इन्हे ंअपवित्र करने वाला समझा जाता था।

ये लोग राज्यों की रक्षा के लिए पत्थरों से दुर्गो का निर्माण करते थे, जो विशिष्ट प्रकार से बने होते थे दुर्ग के चारों ओर लकड़ी अथवा पत्थर की दीवार होती थी दीवार के चारो ओर खाइयाँ होती थी। युद्ध करने के लिए अश्व, रथ, हाँथी, और पैदल सेना होती थी, सेना का सर्वोच्च पदाधिकारी राजा होता था जो स्वतः सैन्य संचालन करता था उसकी सहायता के लिए सेनापति होता था जो राजा की परामर्श से सेना का संगठन करता था। और युद्ध की योजना बनाता था सेना के राज्य सुरोहित भी होते थे जो राजा की विजय के लिए देव स्थित स्तुति किया करते थे।

इस समय के अस्त्र—शस्त्र धनुष बाण हुआ करते थे बाणों की नोके नुकीली और लोहे की होती थी कभी—कभी रिसाक्त सींग लगे होते थे इसके अतिरिक्त बरछी, भाला, फरसा, तलवार, का भी प्रयोग होता था योद्धा लोग कवच भी धारण करते थे और उनके हाँथों में पताकायें होती थी युद्ध में रणवज्य बजा करते थे,[9]।

ऐसा प्रतीत होता है कि अवध नरेश के पुत्र यमुना नदी को पार करके चित्रकूट गिरी में कई वर्षो तक रहे उस समय यह भाग दण्डकारण्य के आधीन था पं. गोरेलाल तिवारी के अनुसार महाभारत में अगस्त्य ऋषि का आश्रम कालिंजर कहा गया। यह एक तीर्थ स्थान था। यहाँ पांडव लोग अपनी तीर्थ यात्रा करते हुए पहुँचे थे। विन्ध्य पर्वत—श्रेणी को पार करके दक्षिण में जाने का कठिन कार्य सबसे पहले अगस्त्य ऋषि ने ही किया था इनका एक आश्रम सम्भवतः कालिंजर में रहा हो, पर दण्डकारण्य में भी इनके आश्रम रहे होंगे जहाँ पर श्री रामचन्द्र गए थे[10]। जब यहाँ महाभारत का युद्ध हुआ उस समय आर्यो की यहाँ अनेक राज्य स्थापित हो चुके थे। ये राज्य निम्नलिखित थे।

1— चेदि राज्य— आर्यो का यह राज्य सबसे पुराना है इसका वर्णन ऋग्वेद में इस प्रकार मिलता है

यथा चिच्चैद्य कशु: शतमुष्ट्रानां ददत्सहस्रा दशगोनाम् ।

अधास्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मम्ना अभितोजना [11] *।*

सुप्रसिद्ध व्याकरण आचार्य पाणिनी ने भी अपनी पुस्तक अष्टध्यायी में चेदि राज्य का उल्लेख किया इसके अतिरिक्त कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में इस राज्य का वर्णन इस प्रकार किया है।

कालिंगागरजा: श्रेष्ठा: प्राच्यश्चेदिकरूषजा: ।
दाशार्णाश्चापरान्ताश्च द्विपाना मध्यमामता: [12] *।।*

सुप्रसिद्ध ग्रन्थ महाभारत में भी चेदि देश का वर्णन उपलब्ध होता है जिससे आर्यो के राज्य विस्तार का पता चलता है।

सन्ति रम्या जनपदा बह, वन्ना: परित: कुरून ।
पांचालश्चेदिमत्स्याश्च शुरसेना: पटच्चरा: ।
दशार्णा नवराष्ट्रं चमल्ला: शाल्वा: युगन्धारा: ।। [13]

इसके अतिरिक्त अनेक अभिलेख और बौद्ध साहित्य में भी चेदि देश का नाम आया है जैन धर्म में भी इस क्षेत्र का वर्णन है।

यह क्षेत्र यमुना नदी के दक्षिण में था इसके उत्तर में वत्स्य जनपद था पूर्व में काशी और दक्षिण में त्रिपुरा जनपद तथा पश्चिम में इसकी सीमायें आवन्ति देश से मिलती थी इसके उत्तर पश्चिम में मत्स्य और सूरसेन जनपद थे। सिकन्दर के आक्रमण के कारण यह जनपद असितित्व विहीन हो गया चन्देलों के शासन के समय इसका नाम भी परिवर्तित हो गया।

2—दशाण राज्य— बुन्देलखण्ड का यह राज्य भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व पूर्ण था इसका वर्णन कौटिल्य के अर्थशास्त्र और बाल्मीकि रामायण में आया है तथा महाभारत में भी इसका वर्णन इस प्रकार है [14] । इस राज्य का शक्ति शाली राजा चित्रगुप्त था जिसे अर्जुन परास्त किया था हिरण्यवर्मा भी यहाँ का नरेश था जिसकी पुत्री का विवाह सिखण्ड़ी से हुआ था पुराणो एवं बौद्ध साहत्यि जैन साहित्य में भी इसका उल्लेख मिलता है जब यहाँ चन्देलों का राज्य स्थापित हुआ तब यह क्षेत्र असितित्व विहीन हो गया अनेक इतिहास कारो का मत है। कि जहाँ दस नदियों का प्रवाह है वही इशाण देश था इसकी राजधानी विदिशा, थी एरच, इस राज्य का प्रसिद्ध नगर था मुख्य रूप से विदिशा, झाँसी, जालौन, टीकमगढ़, आदि जनपद इस भाग में आते हैं। महाभारत के

विराट पर्व के क्षेत्र की सीमा इस प्रकार निर्धारित की गई है–

उत्तेरण दशार्णस्ते पाञ्चालन्दक्षिणेन तु।
अन्तुरेण यकृल्लोमाञ्शूरसेनाश्चय पाण्ड्वाः।।
लब्धा ब्रावणा मत्यस्य विषयं प्राविशान्वनात।।[15]

इस क्षेत्र पर भीम ने विजय प्राप्त की थी।

3– करूष राज्य– महाभारत में करूष क्षेत्र की चर्चा अनेक स्थनों पर आई किन्तु इस स्थल का महत्व चेदि जनपद से कम था जब देवराज इन्द्र का युद्ध वृत्रासुर से हुआ उस समय देवराज इन्द्र अपवित्र हो गये तब उन्हे गंगा से स्नान कराकर पवित्र किया गया ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ रहने वाली जाति अनार्य थी जिसका सुद्धीकरण किया गया यह देश विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियों से धिरा था इसकी सीमाएं काशी, पांचाल और चेदि देश से मिलती थी यह भाग सोन और गंगा नदियों के मध्य में था। इसके राज्य की पूर्वोत्तर सीमाएं यमुना नदी के घेराव तक और कैमूर पर्वत श्रेणियों तक फैली हुई थी,[16]।

4–नवराष्ट्र राज्य– यह राज्य भी दशाण जनपद से धिरा हुआ था इसकी स्थापना उसी नर और नवा के पुत्र नव द्वारा की गयी थी। इस राज्य के अन्तर्गत हमीरपुर और राठ नगर आते है मदन वर्मा के ताम्रपत्र में इसका उल्लेख है,[17]

5–पटच्चर राज्य– यह भी बुन्देलखण्ड का महत्व पूर्ण राज्य था इसका उल्लेख पुराणों में कुरू पांचाल साल्ब मात्रेय, जागल्य, सूरसेन, तथा भद्रकाल, राज्यों के साथ आया यह प्रदेश सरस्वती नदी के दक्षिण में था यहाँ लुटेरे और डकैत रहा करते थे यह राज्य बाँदा जनपद और इलाहाबाद जनपद से मिला हुआ था,[18]।

6–यकृल्लोम राज्य–इस राज्य का वर्णन महाभारत मे उपलब्धा होता यह राज्य दशाण के उत्तर में और पांचाल के दक्षिण में स्थित था इसके अन्तर्गत जालौन, उरई, कोच और कालपी आदि क्षेत्र आते थे,[19]।

7–डाभाला या डहाला राज्य– बुन्देलखण्ड का यह भी एक प्रसिद्ध राज्य था चौथी, पांचवी, छठवी, शताब्दी में यह राज्य गुप्तों के आधीन था इस सन्दर्भ में एक ताम्र पत्र खोह में उपलब्धा हुआ है। इससे यह ज्ञात होता है कि हस्ती गुप्तों के आधीन था[20]। कुछ समय के पश्चात यह क्षेत्र कल्चुरियों के आधीन हो गया इसका उल्लेख आल्हा घाट प्रस्तार अभिलेख में है[21]।

8–आटविक राज्य– यह भी बुन्देलखण्ड का प्रसिद्ध राज्य था

इसका उल्लेख समुद्र गुप्त की प्रयाग प्रसस्ति में है इस परिक्षेत्र में 18, आटविक राज्य थे जो बुन्देलखण्ड तथा बघेलखण्ड में फैले हुए थे। बाणभट्ट हर्षचरित और कादम्बरी में इसका अति सुन्दर वर्णन किया है। विन्ध्य पर्वत के चम्बल और बेतवा नदियों के मध्य यह प्रदेश स्थित था तथा केन नदी के तट तक यह फैला हुआ था,[22] । इस प्रकार हम देखते हैं कि बुन्देलखण्ड में आर्यो के अनेक राज्य थे।

2—आर्यो से लेकर गुप्त युग तक की राजनीतिक व्यवस्था— आर्यो के आगमन के पश्चात यहाँ की राजनीतिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुआ तथा राज्य व्यवस्था स्मृति ग्रन्थों के अनुसार होने लगी इस समय राजा लोग अपनी प्रशासनिक व्यवस्था के लिए मन्त्रि परिषद का गठन करने लगे महाभारत काल में मंन्त्रियों की संख्या 8 होती था।[23]

अष्टानां मन्त्रिणां मध्ये मन्त्रं राजोपधारयेत्।

कालान्तर में यह मन्त्रिमण्डल 18 सदस्सीय हो गया।

1. प्रधानमंत्री 2. पुरोहित 3. युवराज 4. चमूपति 5. द्वारपाल
6. अतखोशक 7. बंदीगृहों का अध्यक्ष 8. कोषाध्यक्ष 9. व्ययनिरीक्षक
10.प्रदेष्टा 11. धर्माध्यक्ष 12. नगर का अध्यक्ष
13. राज्यसंस्था को आवश्यक सामान ला देने वाला,
14. सभाध्यक्ष (न्याय विभाग का प्रधान कर्मचारी) 15. दंडधारी 16. दुर्गरक्षक
17—सीमारक्षक
18. जंगलो का रक्षक, ये लोग रहते थे।[24]

कश्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दशपक्षा च।
त्रिभिस्त्रिर विज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः।।

महाभारत, सभापर्व 5, 38

इस समय वर्ण व्यवस्था स्थायी रूप से लागू हो गयी थी यद्यपि अर्न्तजातीय और अन्तर धर्मीय विवाह प्रचलित था। जाति व्यवस्था कर्म पर आधारित थी धीरे—धीरे ये व्यवस्था परम्परागत हो गयी कभी—कभी वर्ण भी बदल जाते थे। व्यक्तियों में आश्रम व्यवस्था लागू थी तथा कभी—कभी अनार्यो से भी इनके वैवाहिक सम्बन्ध होते थे। इस समय कहीं—कहीं प्रजातान्त्रिक व्यवस्था थी और कही—कहीं सामन्तवादी राज्य व्यवस्था थी।

ग्राम के प्रशासक को जिसे ग्राम अधिपति कहते थे उसे नगद वेतन न मिलके जंगली उपज वेतन के रूप में मिलती थी। राज्य का

खर्च चलाने के लिए भूमि पर लगान और व्यवसाय पर कर लगता था जमीन पर लगान कर क्षमता के अनुसार उपज का 1/6 से लेकर 1/10 था इस समय भूमि का स्वामी राजा नही माना जाता था जो व्यवसी और पशु और स्वर्ण का व्यवसाय करते थे। उन्हें मूल्य का पचासवाँ भाग कर के रूप में देना पड़ता था।

विक्रयं क्रयमध्वानं भक्तं च सपरिच्छदम्।
योगक्षेमं च संपेक्ष्य वाणिजां कारयेत् करान्।।
महाभारत् शान्तिपर्व 87, 13
पशूनामधिच्चाशद्धिरण्यस्य तथैव च।
धान्यस्य दशमं भागं दास्याम: कोशवर्द्धनम्।।[25]
महाभारत, शान्तिपर्व, 67, 23

कभी–कभी ऐसा भी होता था जब राज्य में युद्ध चल रहा होता था उस समय अतिरिक्त कर लगाया जाता था और ऋण लिया जाता था भूमि का स्वामी वही व्यक्ति माना जाता था। जिसका भूमि पर अधिकार होता था ये लोग भूमि को अपनी स्वेच्छा से बेच सकते थे और दान भी दे सकते थे इस समय जो मुद्रा प्रचलित थी निष्क के नाम से विख्यात थी।

1. *तस्मात्क्रीत्वा महीं दद्यात्स्वल्पामपि विचक्षणा:।*[25]

इस युग में विद्यार्थियों की शिक्षा पर बल दिया जाता था प्रत्येक राज्य में शिक्षा परिषद होती थी जिसमें ब्राह्मण लोग विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे।

मौर्यकाल– महाभारत से लेकर मौर्यो के युग तक बुन्देलखण्ड का कोई इतिहास उपलब्ध नही होता केवल यह ज्ञात होता है कि बौद्ध काल में 16 जनपद थे उनमें से कुछ का असितित्व बुन्देलखण्ड में था।[26] इनमें से चेदि जनपद महत्वपूर्ण था इस वंश के राजा हस्थिपुर, अस्पुर, सिंहपुर, उत्तर पंचाल और दद्पुर नगर बसाये,।[27] मौर्यकाल के पहले यहाँ कुछ स्थलो में नन्द वंश का शासन था उसके राज्य में चेदि साम्राज्य भी शामिल हो गया था बाद में यह मौर्य साम्राज्य का अंग बन गया।

मौर्य साम्राज्य का शक्तिशाली संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य था इसमें नन्द वंश के शासक को मारकर कौटिल्य की सहायता से सम्पूर्ण भारत वर्ष में एक छत्र राज्य स्थापित किया था। चन्द्रगुप्त के बाद उसका लड़का बिन्दुसार और बिन्दुसार के बाद उसका पुत्र अशोक राजसत्ता का अधिकारी हुआ इस सन्दर्भ में कई अभिलेख उपलब्ध होते है।[28] इस

अभिलेख में यह वर्णन मिलता है कि अशोक का साम्राज्य विस्तृत था और वह बुन्देलखण्ड का शासन अवन्ति नगरी या उज्यैनी से देखत था अशोक की मृत्यु के पश्चात यह शासन शंकुचित होने लगा वृहद्रथ की मृत्यु के पश्चात यहाँ का शासन मित्र वंशियों के हाथ में आ गया।

बुन्देलखण्ड में मित्र शासकों का आधिपत्य– ईसा पूर्व द्वितीय सती से लेकर ई0 की तीसरी सती तक मित्र वंशीय शासको का प्रभाव बुन्देलखाण्ड में रहा ये लोग कौशाम्बी में रहकर यहाँ का शासन देखते थे इन शासको के नाम इस प्रकार उपलब्ध होते है वृहस्पति मित्र, ब्रह्यमित्र, वरूणमित्र, गोमित्र, शिवमित्र, जेठमित्र, देवमित्र आदि है। कौशाम्बी से सात कुछ अन्य शासकों के नाम शुंग वर्मा, बवघोष, अश्वघोष ज्येष्ठ गुप्त, पर्वत, इन्द्रदेव, विष्णुदेव, धनदेव आदि है।,[29]

भरहुत में कुछ अभिलेख उपलब्ध हुए है जिनमें कुछ नाम मित्र वंशीय शासकों के उपलब्ध हुए है गौप्तीपुत्र (प्राकृत आगरजु) पितामह! गार्गीपुत्र विश्वदेव (प्राकृत विसदेव) पुत्र कुमार व्याधपाल (प्राकृत बाधपाल) के नाम मिलते है। भरहुत स्तूप के पूर्वी तोरण पर "वाच्छिपुत धनभूति का अभिलेख है।[30] कुछ इतिहासकार बुन्देलखण्ड में मित्र वंशी शासको का शासन क्षेत्र विवादास्पद मानते है किन्तु जब यहाँ उनके अभिलेख उपलब्ध हुए है तो उनके असितित्व को नकारा नही जा सकता,[31] किन्तु अभी तक यह ज्ञात नही हो सका कि उनकी प्रशासनिक व्यवस्था किस प्रकार की थी।

मद्य वंशीय शासको का बुन्देलखण्ड में असितित्व– 130 ई0 के लगभग कौशाम्बी में मद्य वंशीय शासको का स्वतन्त्र राज्य स्थापित हुआ था इस सन्दर्भ में बाँधवगढ़ गिरजा पहाड़ी, कौशाम्बी, और भीटा, से अनेक अभिलेख उपलब्ध हुए है। इसमें इस वंश के कौत्सीपुत्र प्रौष्ठ श्री हुआ। राजवंश का तृतीय शासक भद्रमद्य था जिसकी पहचान बाँधवगढ़ अभिलेख के भद्रदेव से की गई है।[32] इस राज्य वंश में अनेक राजा हुए है जिनकी मुद्राये भी उपलब्ध हुई शिवमद्य, शतमद्य, भीमवर्मा , विजयमद्य, जयमद्य आदि अन्य शासक हुए। वासिष्ठीपुत्र विचित्रसेन, वासिष्ठीपुत्र शिवघोष स्वामिदत्त, नव, नाविक और धनदेव, के नाम भी अनेक अभिलेखो तथा सिक्कों पर मिले है।[33]

बुन्देलखण्ड में बोधि वंशीय शासको का असितित्व– बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों मे 200 ई0 और 300 ई0 में

इनका शासन था इनके समय की मिट्‌टी की मोहरे उपलब्ध हुई जिसमें बोधि राजा का नाम अंकित है इन राजाओं में बीर बोधि, शिव बोधिक, और चन्द्रबोधि के नाम आये है ये लोग जबलपुर के सन्निकट त्रिपुरी के आस–पास शासन करते थे।[34]

बुन्देलखण्ड में नागवंशीय शासकों का अ सतित्व–

ये लोग बुन्देलखण्ड में एरण विदिशा पदमावती नगरी और क्रान्तिपुरी में राज्य करते थे इस वंश के अनेक सिक्के उपलब्ध हुए है जिनसे उनके बारे में पता लगता है।[35] नरवर के नाग वंशीय राजाओं की वंशा वली इस प्रकार उपलब्ध हुई है।

1.	भीमनाग	विक्रम संवत्	57
2.	खा (खर्जुर नाग)	"	82
3.	बा (वर्म्मा या वत्स)	"	107
4.	स्कन्द नाग	"	132
5.	वृहस्पति नाग	"	187
6.	गणापित नाग	"	202
7.	व्याघ नाग	"	227
8.	वसु नाग	"	252
9.	देवनाग	"	277[36]

इलाहाबाद प्रयाग प्रसास्ति में भी समुद्रगुप्त ने नागो का उल्लेख किया है इन राजाओं की कुछ मुद्रायें पवाया के सन्निकट उपलब्ध हुई है। ये मुद्राये गणपति नाग, देव नाग, और स्कन्दनाग, की है इस सन्दर्भ में अनेक अभिलेख भी उपलब्ध हुए है उनमें से एक अभिलेख इस प्रकार है।

1. राज्ञः स्वामिशिवनंदिस्य संवत्सरे चतुर्थ ग्रीष्मपक्षे द्वितीय दिवसे।
2. द्वादशे 102 एतस्य पूर्वी ये गोष्ठया मणिभद्रा गर्भसुखितः भगवते।
3. मणिभद्रस्य प्रतिभा प्रतिष्ठा पयन्ति गोष्ठवं मगवा आयुबलं वाच्यं, कल्याणश्यदयं
4. च प्रीतोदिशतु ब्राह्मणास्य गोतमस्य क्रमारस्य (कुमारस्य) ब्राह्मणस्य रूद्रदासस्य शिवन्दपि।
5. वस्पदा सिंधु के जल–प्रपात के पास भूमेश्वर महादेव का लिंग है। यही धूमघाट है यह पवायां के नैर्ऋत्य में 2 मील पर है। यहाँ पर एक मन्दिर भी बना हुआ है।[37]

नाग शासको के समय मे शक वंशीय शासको के आक्रमण बुन्देलखण्ड मे प्रारम्भ हो गये थे जिसके कारण नागो को काफी छति

उठानी पढ़ी तथा उनके राज्य का पतन भी हुआ।

बुन्देलखण्ड में शक शासको का असतित्व– ईसा की तीसरी और चौथी शताब्दी में विदिशा और एरण के पास शको ने अपना राज्य स्थापित किया इनके सन्दर्भ में अनेक अभिलेख सांची और एरण में उपलब्ध हुए।[38] इन्होने सर्वप्रथम उज्जैन के आस–पास अपना राज्य स्थापित किया जो मुद्राये उपलब्ध हुई है उनके यवनो की भाषा में उनके नाम अंकित है कुछ समय बाद मालवा में इनका राज्य स्थापित हुआ पं. गोरेलाल तिवारी के अनुसार जबलपुर जिले में भेड़ाघाट नामक स्थान में कुछ प्राचीन मूर्तियाँ मिली है। जिनमें लिखा है कि भूमक की लडाई ने इनकी स्थापना की इससे अनुमान होता है कि भूषक का राज्य यहाँ तक भी रहा होगा। भूमक शक लोगो का एक छत्रप्रथा इसी से जान पड़ता है कि सारे बुन्देलखण्ड में शक लोगो का अधिपत्य हो गया था किन्तु इन लोगो का राज्य बुन्देलखण्ड में बहुत दिन नही रहा।[39] शको के बारें में कुछ और उदाहरण उपलब्ध होते है मालवा में राज्य करने वाला पहला छत्रप चेष्टन था इसने विक्रमी संवत् 138 में उज्जैनी में बनायी इनके यहाँ उत्ताधिकार नियम परिवर्तित था नरेश की मृत्यु के पश्चात नरेश के भाई को उम्र के हिसाब से गद्दी मिलती थी जिनका राज्य विक्रमी संवत् 358 तक बुन्देलखण्ड में रहा।

वाकाटक वंश का बुन्देलखण्ड में प्रभाव– बुन्देलखण्ड में वाकटक का असितित्व गुप्त नरेशो के पहलें का है इनका सूत्र पात्र भी बुन्देलखण्ड से ही हुआ मुख्य रूप से ये लोग चिरगाँव जिला झाँसी से नौ किमी० दूर वाघाट गाँव कि निवासी थे के०डी० बाजपेयी इसका समर्थन करते है।[40] विन्ध्य शक्ति इस वंश का शक्तिशाली शासक था जिसमें नर्मदा के दक्षिणी तट पर अपनी सत्ता स्थापित की थी इस सन्दर्भ में व्याघ्रदेव का एक अभिलेख भी उपलब्ध हुआ है जिससे उसकी सत्ता का विस्तार का पता लगा है।[41]

बुन्देलखण्ड में गुप्तो का असतित्व– गुप्त वंश की स्थापना पाटलिपुत्र ने घटोत्कच्छ के पुत्र चन्द्रगुप्त ने की थी लिक्ष्वीराज्यवंश से सम्बन्ध स्थापित होने के पश्चात उसकी शक्ति का विस्तार हुआ तथा उसने अपने राज्य का विस्तार चारों ओर किया उसने अपने कई अभिलेख अनेक स्थानों पर खुदवाये इस वंश का शक्तिशाली राजा समुद्रगुप्त था। इसने बुन्देलखण्ड के अनेक भागों को अपने अधिकार में कर लिया था। इस समय मालवा की शक्ति कमजोर थी ग्वालियर

और झांसी के मध्य आभीर लोग राज्य करते थे ये लोग समुद्र गुप्त के आधीन हो गये थे कैमूर पर्वत के सन्निकट रहने वाले खड़परिखा जाति के लोग भी इनके आधीन हो गये थे। इसका राज्य एरण तक विस्तृत हो गय था इसने एरण मे अपना एक अभिलेख खुदवाया जिससे उसे राज्य का विस्तार मिलता है इस अभिलेख में स्वभोग नगर का उल्लेख है।[42]

चन्द्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात गुप्त साम्राज्य का पतन हुआ तथा मालवा के आस–पास गुप्तों का सम्राट सिमट कर रहा गया तथा शक शासको ने अपनी शक्ति का विस्तार किया जिसे गुप्त सम्राज्य के अन्य शासको ने समूल शक शक्ति को नष्ट कर दिया और गुप्त साम्राज्य को शक्तिशाली बनाया गुप्तशासको को एक और नुकशान पूर्ण आक्रमणकारियों से भी हुआ जब इस सम्राज्य का शासक बुद्ध गुप्त हुआ उस समय भी गुप्त साम्राज्य काफी विस्तृत था। एरण अभिलेख से यह ज्ञाता होता है कि बुद्ध गुप्त के समय में महराज सुरश्मिचन्द्र कालिन्दी और नर्मदा नदियों के मध्यवर्ती भाग का राज्य पाल था।[43] कई स्थानों पर गुप्त युग के एतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध हुए है। दमोह जनपद के हटा तहसील में शकौर ग्राम में गुप्तयुगीन 24 स्वर्ण मुद्रायें उपलब्ध हुई है। इनमें गुप्त शासको के नाम अंकित है पं. गोरलाल तिवारी के अनुसार 8 मुहरों पर महाराज समुद्रगुप्त का नाम 15 पर , महाधिराज चन्द्रगुप्त का नाम और एक स्कंदगुप्त का नाम खुदा है।[44] गुप्त साम्राज्य की विभिन्न मुद्रायें इस क्षेत्र में उपलब्ध होती है। ये मुद्राये कुमार गुप्त, बुद्धगुप्त, नरसिंह गुप्त, विष्णुगुप्त, आदि की है। इन मुद्राओं में धनुरधर चक्रध्वज, खड़ग, परशु, राज दम्पति वीणा, वादक, अश्वमेघ, अश्वरोही, छत्र, चक, मयूर, सिंहासन देवी, कमलाशन देवी, खाड़ी देवी, मंचासीत देवी, सिंह वाहिनी देवी, जल जन्तु वाहिनी देवी, पलंग में बैठी हुई देवी और कार्तिकेय आदि के चित्र हैं। तथा एक ओर राजाओं की उपाधियाँ हैं ये उपाधियाँ निम्न रूप से अंकित हैं।

श्री महेन्द्रः	धनुर्धर भॉति
अजित महेन्द्र	अश्वारोही भॉति
सिंह महेन्द्र	सिंहनिहन्ता भॉति
श्री महेन्द्रगजः	गजारूढ़ भॉति
सिंहनिहन्ता महेन्द्रगजः	गजारूढ़ सिंहनिहन्ता भॉति
श्री महेन्द्र खडगः	खड्गीनिहन्ता भॉति
श्री अश्वमेध महेन्द्र	अश्वमेध भॉति

श्री महेन्द्रादित्य अथवा महेन्द्रादित्य	छत्र भॉति
अप्रतिध	अप्रति भॉति

अन्य भॉति के सिक्कों पर और राजा का नाम कुमार गुप्त लिखा हुआ मिलता है।[45]

बुन्देलखण्ड के गुप्तकालीन अन्य राजवंश— गुप्तों के समय में यहाँ अनेक राज्य वंश थे जिनका अस्तित्व बुन्देलखण्ड में था ये निम्न लिखित थे।

1 परिव्राज महाराज— यह वंश डहाल क्षेत्र के आस-पास राज्य करता था इस वंश में निम्नलिखित नरेश थे।

देवाढ्य	(गु0 सं0 96—116)
प्रभंजन	(" 116—136)
दामोदर	(" 136—156)
हस्ती	(" 156—191,198)
संक्षोभ	(" 199, 209)[46]

इन लोगों का अस्तित्व पॉचवीं शताब्दी में था इस समय कालिंजर मण्डल में हरिगुप्त का शासन था।[47]

2 उच्चकल्प वंश— गुप्त युग में इस वंश के राजाओं का राज्य सतना और उचेहरा के आसपास था इस वंश के निम्न राजाओं के नाम उपलब्ध होते हैं।

ओधदेव, कुमार देव, जयस्वामी, व्याघ्र, जयनाथ, सर्वनाथ,[48] सूपिया में एक स्तम्भ लेख उपलब्ध हुआ है। जिसमें इस वंश की प्रमाणिकता सिद्ध होती है इस वंश का सबसे शक्तिशाली शासक जयनाथ उच्च कल्प था। गुप्त संबत 174 से लेकर 177 तक राज्य किया इसका उत्तराधिकारी सर्वनाथ था इसका शासन काल 512 ई0 से लेकर 533 ई0 तक रहा।

3 पान्डु वंश— परिब्राजकों और उच्चकल्पों के उत्तर पूर्व में पान्डु वंशीय अथवा सोम वंशी राजाओं का राज्य था इसमें निम्नलिखित नरेश हुए।

उदयन,
इन्द्रबल, अश्रात,
ईशानदेव, नन्नदेव,
तीबरदेव, चन्द्रगुप्त,
महाशिवगुप्त बालार्जुन, रणकेसरी,
शिवनंदी।
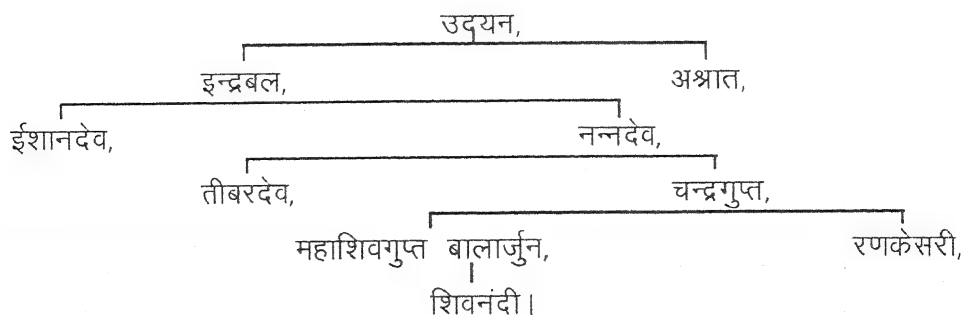
इस वंश के नरेशों ने मेकल चेस पर अधिकार कर लिया और उत्तर पश्चिम में उन्होंने कालिंजर पर आक्रमण कर उसे जीत लिया और यहाँ एक विष्णु मन्दिर का निर्माण कराया इनका अस्तित्व ईसा की पाँचवी शताब्दी में था ये लोग परिश्रजक हस्त से पराजित हुए।[49]

बुन्देलखण्ड में हूणों का अस्तत्व– हूण एक लडाकू जाति थी जिन्होंने मध्य एशिया से भारत आकर यहाँ की भूमि को रौंदा तथा गुप्त शासकों की शक्ति को कमजोर किया उन्होंने बुन्देलखण्ड में अपना राज्य यमुना और नर्मदा के मध्य स्थापित किया इस समय सुरश्मिचन्द्र यमुना और नर्मदा नदियों का और मात्र विष्णु एक का विषय पति था हूणों और गुप्तों के बीच में युद्ध हुआ इसकी पुष्टि तोरण माण के अभिलेख से होती है इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि दिवंगत मातृविष्णु के भ्राता धान्यविष्णु ने हूण शासक की अधीनता स्वीकार कर ली। ग्वालियर तथा एरण से प्राप्त अभिलेखों से ज्ञात होता हैं कि ग्वालियर से सागर तक के क्षेत्र पर कुछ समय के लिए हूणों का आधिपत्य हो गया[50]। पं. गोरेलाल तिवारी यह लिखते हैं कि इस समय तोरमाण ने अपना आधिपत्य बुन्देलखण्ड पर कर लिया था। स्तंभ से ज्ञात होता है कि मातृविष्णु गुप्त लोगों के आधीन था। परन्तु उसका भाई धान्यविष्णु तोरमाण हूण का आधिपत्य स्वीकार करके उसके आधीन हो गया था। इन हूणों से गुप्तवंशीय राजाओं का भी इसी एरण में युद्ध हुआ था। यह बात एरण के सती के चौरे से ज्ञात होती है इस चौरे पर लिखा है कि भानुगुप्त के साथ सरभ राजा का दामाद गोपराज आया था। वह यहाँ मारा गया और उसकी स्त्री (सरभ राजा की कन्या) सती हो गयी थी[51]। इस वंश के दो नरेशों के नाम उपलबध होते हैं इनमें एक नाम तोरणमाण और दूसरा नाम मेहरकुल का है ग्वालियर के सन्निकट मण्डसर में एक अभिलेख विक्रमी संबत 589 का उपलब्ध हुआ है उसमें उसका उल्लेख है हूणों ने बुन्देलखण्ड में कुल 40 वर्ष राज्य किया।[52]

3 गुप्त युग से लेकर सम्राट हर्षवर्धन तक–

बुन्देलखण्ड में गुप्त सम्राज्य का तिरोहण हूणों के शक्ति विस्तार के कारण हुआ था तोरणमाण की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र मेहर कुल हूण साम्राज्य का स्वामी हुआ जिस समय मालवा के महत्वकाँक्षी शासक यशोधर्मा और विश्ववर्धन ने मेहरकुल को पराजित किया[53]। यशोधर्मा की मृत्यु के पश्चात मेहरकुल ने अपनी शक्ति का दुबारा संगठन किया इसका युद्ध दुबारा गुप्त सम्राट नरसिंह गुप्त बालादित्य से हुआ इस युद्ध में

मेहरकुल पराजित हुआ और वह कश्मीर की ओर चला गया जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी [54]। इस युद्ध का वर्णन एरण अभिलेख में उपलब्ध होता हैं जिसमें एक महायुद्ध होने का उल्लेख है और बताया गया है कि उस युद्ध में राजा भानुगुप्त का गोपराज नामक एक अधीनस्थ मारा गया था। अनुमान होता है कि भानुगुप्त, गुप्त राजवंश के कोई सदस्य थे और वे गोपराज के साथ हूणों का प्रतिरोध करने वहाँ गये थे।[55]

हूणों के आक्रमण के परिणाम स्वरूप गुप्त शासक को आर्थिक दृष्टि से काफी नुकसान उठाना पड़ा पहले जो गुप्तयुगीन सिक्के जो निष्कासित होते थे उसमें 70 प्रतिशत सोने के थे जो पटकर 54 प्रतिशत रह गये चीनी यात्री ह्वेनसांग का कहना है कि इस समय अनेक भिक्षु राजपाठ छोडकर बौद्ध भिक्षु बन गये थे नरसिंह गुप्त का राज्यारोहण गुप्त संबत 189–90 में हुआ था और उनकी मृत्यु गुप्त संबंत 226 में हुई थी इसके पहले वे सत्ता छोड़कर सन्यासी हो गये थे [56]।

बुन्देलखण्ड में उत्तर गुप्तों का अस्तित्व– हूणों ने बुन्देलखण्ड में कुल 40 वर्ष तक शासन किया इसके पश्चात उत्तर गुप्त के शासकों का उदय हुआ और उनकी शक्ति का विस्तार हुआ जिन गुप्त शासकों ने मगध में पराभव देखा उन्होंने बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में अपने वैभव को पुनर जीवित किया लेकिन इसका श्रेय गुप्त साम्राज्य को ही दिया जाना चाहिए क्योंकि वही इनके प्रेरणा श्रोत थे इनका शासन बुन्देलखण्ड में सातवीं शताब्दी तक रहा [57]।

ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह प्रतीत होता हैं कि मेहरकुल शिव का भक्त था और उसका शासन कश्मीर तक था इस बात की पुष्टि हो जाती है मनसौर प्रसस्ति से भी मेहरकुल के हारने की पुष्टि होती है [58]।

स्थाणोरन्यत्र येन प्रणतिकृपणतां प्रापितं नोत्तमांगम्।
यस्यश्लिष्टोभुजाभ्यां वहति हिमगिरि दुर्गशब्दाभिमानम्।।
नीचैस्तेनापि यस्य प्रणति भुज बलावर्ज्जन–क्लिष्टमूर्द्धन।
चूडापुष्पैहारै भिमिहिरकुल नृपेणार्च्चित पाद–युग्मय्।।[59]

इस वंश के नरेशों में महासेन गुप्त के दो पुत्र कुमार गुप्त, और माधव गुप्त के नाम उपलब्ध होते हैं कालान्तर में माधव गुप्त महासेन का उत्तराधिकारी बना [60], इस बात की पुष्टि कामसूत्र की जयमंगला टीका से भी होती है [61], इस समय पूर्वी मालवा क्षेत्र बुल्देखण्ड का भाग था जो कभीमगध के आधीन था [62], कालान्तर में उत्तर गुप्त के शासक सर्ववर्मा मौखरी से पराजित हुए इससे उत्तर गुप्त शासन का विनाश हो

गया कुछ इतिहासकारों का मत है कि महासेन गुप्त स्वतंत्र शासक बना रहा किन्तु इस सन्दर्भ में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता।

बुन्देलखण्ड में वर्धन सम्राज्य का प्रभाव– गुप्त साम्रज्य के अन्त होने के पश्चात सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में आराजकता सी फैल गई और शासन पर कोई नियन्त्रण नही रहा गुप्त युग में शिल्पकला और वास्तुशिल्प की प्रगति हुई। अनेक स्थानों पर मन्दिरो और मूर्तियों का निर्माण हुआ जाति भेद बढ़ा जाति बन्धन कठोर हुए और अनेक उपजातियों का उदय हुआ राजा अनियन्त्रित हो गये और अपनी सेना के बल पर राज्य विस्तार करने लगे अनेक बलिशाली मन्त्रियों ने भी राज्य नियमों में अपने अनुसार परिवर्तन कराये इस समय प्रान्तों के शासक उच्च अधिकार प्राप्त थे। यमुना से लेकर नर्मदा तक का भाग सुरश्मिचन्द्र और एरण के शासक मात्र विष्णु के हाथ में था जब राजा कमजोर होता था तब प्रान्तीय शासक स्वतन्त्र हो जाते थे ग्राम संस्थाये प्राचीन प्रथा के अनुसार अपनी मुखिया के अधिकार में थी उनकी न्याय व्यवस्था मौर्य कालीन थी मनुस्मृति की रचना हो चुकी थी अन्य स्मृति ग्रन्थ भी असितित्व में आ गये जिनका प्रभाव बुन्देलखण्ड में था।

यशोवर्मन के राज्य के पश्चात पंजाब के राजाओं की शक्ति बढ़ने लगी थी। इस वंश का पहला राजा शिलादित्य हुआ उसके पश्चात हर्षबध र्न साम्राज्य का स्वामी हुआ इसकी राजधानी थानेश्वर थी। इसके पूर्व प्रभाकर वर्धन यहाँ का शासक था। उसने अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। उसके पश्चात उसका ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्धन राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। इसका युद्व गौड़ शासक शशांक से हुआ। इस युद्व में वह छल से मारा गया। परिणाम स्वरूप इसका छोटा भाई हर्षवर्धन राज्य का उत्तराधिकारी बना। उसने सर्व प्रथम बंगाल के शासक शशांक से युद्व किया। यह युद्व 6 वर्षों तक लगातार चला युद्व में विजयी होने के पश्चात उसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया।[63]

हर्ष के शासनकाल में बुंदेलखण्ड क्षेत्र उसके आधीन हो गया था। ह्वेनसांग के यात्रा वर्णन के अनुसार इस समय चित्रकूट प्रदेश में अथवा जेजाक भुक्ति से ब्राह्मण शासक का होना लिखा है। जो बौद्व धर्ममतावलम्बी था,[64] ''चिचितो'' की पहचान जेजाक भुक्ति देश से की जाती हैं तो तदयुगीन
बुन्देलखण्ड था,[65] किन्तु चीनी यात्री के वर्णन से यह साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते कि सम्राट हर्ष का शासन विस्तार बुन्देलखण्ड या विन्ध्य क्षेत्र पर

था। किन्तु खजुराहो स्थित विशाल हनुमान प्रतिमा की पाठपीठ एक अभिलेख मिला है। जो हर्ष सम्वत 306 का है। इससे यह ज्ञात होता है कि सम्राट हर्ष का यहां शासन था।इसका उल्लेख बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित में इस प्रकार मिलता है हर्ष अपनी बहन राज्यश्री को ढूंढ़ता हुआ विन्ध्यावटी गया था। यहां के आटविक सामंत ने बहन के अन्वेषण में उसकी सहायता की थी,[66] ''पं० गोरेलाल तिवारी के अनुसार हर्षवर्धन की बहन का नाम राज्यश्री था। यह कन्नौज के मौखारी राजा गृहवर्मा को ब्याही गई थी। जब मालव के राजा देवगुप्त ने कन्नौज पर चढ़ाई करके गृहवर्मा को युद्ध में परास्त कर उसे मार डाला। तब राज्यबर्धन ने इसका बदला लेने के लिए मालवा के राजा देवगुप्त ने कन्नौज पर चढ़ाई की थी। पर जब उसे नरेन्द्र गुप्त ने मार डाला तब हर्षवर्धन ने इन दोनों का बदला लेने के लिए मालवा पर चढ़ाई की इस चढ़ाई में हर्षवर्धन की विजय हुई, पर राज्य श्री हर्षबर्धन के आने के पूर्व ही वहाँ से चली गयी थी। वह पता लगाने पर हर्षबर्धन को एक जंगल में मिली थी।[67] डॉ० विशुद्धानन्द पाठक के अनुसार हर्षचरित के आठवे उच्छवास में राज्यश्री खोज के लिए विन्ध्य के जंगलों में हर्ष के घूमने बौद्ध विक्षु दिवाकर मित्र से उसकी भेट तथा उसकी सहायता से राज्यश्री की प्राप्ति के विवरण हैं। किन्तु वहीं हर्षचरित समाप्त हो जाता है। लगता है कि लेखक या तो अपने नायक के किसी तात्कालिक दुर्विपाक अथवा हीनता का वर्णन करने की इच्छा से अपना वृत्त जानबूझकर बन्द कर देता है अथवा स्वयं काल कवलित हो जाता है।[68] इस युग में लिखी गयी अन्य पुस्तको में भी यह विवरण उपलब्ध नही होता कि हर्ष का राज्य किन–किन प्रान्तों में था केवल यह ज्ञात होता है कि वह कालान्तर में बौद्ध बन गया था और प्रयाग के कुम्भ मेला मे वह दान दिया करता था[69] बाण भट्ट उसे पूरे भारत वर्ष का सम्राट मानता है।

देवस्य चतुस्समुद्राधिपतेः सकलराजचक्र चूणामणि श्रेणीशाणकोण कषपानिर्मलीः कृतचरणनखमणेः सर्वचक्रवर्तित्नां धौरेयस्य महाराजाधिराज परमेश्वर श्री हर्षस्य।[70]

जब हर्षबर्धन बौद्ध बन गया और उसका झुकाव बौद्ध धर्म की ओर हुआ उस समय उसने कन्नौज तथा दूसरे स्थलो में धर्म सभाओं का आयोजन किया तथा उसने संस्कृत विद्वानों से शास्त्रार्थ भी किया उसने प्रयाग में पंचवर्षीय दान आयोजन का उत्सव किया जिसमें अनेक विद्वानों को आमन्त्रित किया गया चीनी यात्री ह्वेनसांग भी उसमें सामिल था। इसमें 5 लाख व्यक्तियों ने भाग लिया यह उत्सव 75 दिन तक

चला उत्सव के अन्त में उसने अपने निजी आभूषण और वस्त्र दान मे दे डाले [71]। हर्षबर्धन एक चरित्र वान त्यागी और धार्मिक शासक था उसने अपने नाम पर संबत सन भी चलाया तथा तीन नाटक प्रिय दर्शिका, नागानन्द, और रत्नावली की रचना की इसके राज्य का साहित्य कार और रचनाकार बाणभट्ट था जिसमें हर्षचरित सार और कादम्बरी की रचना की इसने अनेक धर्मशालाओं का निर्माण कराया और औषधालय खोले जहाँ निशुल्क दवाइयां बांटी जाती थी हर्षबर्धन की मृत्यु विक्रमी संबत 703 में हुई।

ह्वेनसांग के यात्रा वर्णनों से यह ज्ञात होता है कि बुन्देलखण्ड में इस समय महेश्वर पुरा में ब्राह्मण राजाओं का राज्य था किन्तु यह पता नही है कि उनकी राजधानी कहाँ थी अनुमानता एरण की ही राजधानी मानी जा सकता है क्योंकि यहाँ बौद्ध धर्म चक्रान्तित कई सिक्के उपलब्ध हुए।

बुन्देलखण्ड में पडिहारों का राज्य— सम्राट हर्ष के काल में पडिहारों का असितित्व बढ़ा उन्हें गुर्जर प्रतिहार के नाम से भी पुकारा जाता था इनका राज्य दक्षिणी बुन्देलखण्ड में था पं. गोरेलाल तिवारी के अनुसार दमोह जिले के दक्षिण भाग में सिंगोरगढ़ का किला पडिहारों का बनवाया हुआ है पडिहारा लोग राजपूत थे इनकी राजधानी पहले मऊ में थी पर पीछे से उच्छकल्प (उचेहरा) में हुई यहाँ के राजाओं के पास प्राचीन वंशावली नही है। इससे उचेहरा राजधानी का समय निश्चित करना असंभव है [72]। इस वंश से सम्बन्धित सन 1838 ई0 का प्रथम वाराह ताम्रपत्र कालिंजर मण्ड से उपलब्ध हुआ है,[73] तथा दूसरा अभिलेख देवगढ़ में उपलब्ध हुआ है,[74] एक तीसरा अभिलेख ललित पुर के सन्निकट सियाद्रोणी मे मिला,[75] इससे यह सिद्ध होता है कि गुर्जर प्रतिहारों का असितित्व यहाँ था क्योंकि इन्होंने अनेक स्मारक बरूआ सागर जनपद झाँसी और मजखोरा टीकम गढ़ में बनवायें थे एस0 डी0 त्रिवेदी ने बरूआ सागर के मन्दिर के सन्दर्भ में गुर्जर प्रतिहारों की नवीन शैली का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है।

Under the patronage of the Gurjara-pratiharas a new style of plastic art was evolved in their vast kingdom which Included parts of crujarat, Rajasthan, central indea And Ganga- Yamuna valley. It has common characteristics usually devoid of domination of regional cutlooh. Several traditions of classical age were continued and artists tried their to best to emulote the aesthetics of the Gupta art. [76]

मडखेरा का सूर्य मन्दिर भी गुर्जर प्रतिहारों द्वारा निर्मित प्रतीत होता है इस मन्दिर का वर्णन इतिहास हरिविष्णु अवस्थी इस प्रकार करते है जैसे हम मड़खेरा के सूर्य मन्दिर के निकट पहुँचते जाते हैं। हमें मन्दिर का उतंग शिखर स्पष्ट दिखाई देने लगता है सामने पहुँचने पर मन्दिर का भव्य एवं अलंकृत स्वरूप दर्शक का मन मोह लेता है श्रेष्ठ स्थापत्य, मूर्तियों की स्वभाविक आकृतियों तथा भाव्यंजना, कलात्मकता, अलंकरण आदि गुणों से युक्त गुप्त काल में निर्मित मठ, मन्दिर एवं मूर्तियों को पुरातत्व विदों ने सर्वोत्कृट माना है। मडखेरा के इस सुर्य मन्दिर में यह सभी गुणधर्म विद्यमान है[77]।

गुर्जर प्रतिहार वंश में नाग भट्ट प्रथम का ककुस्थदेव राज, वत्स्यराज, नागभट्ट द्वितीय, रामभद्र, मिहिर भोज, महेन्द्र पाल प्रथम चन्द्रपाल भोजद्वितीय महिपाल, देवपाल, आदि शक्ति शाली नरेश हुए उसके बाद इस राज्य का पतन हो गया इनका शासन लगभग 1027 विक्रमी संबत तक चला इसकी विस्तृत जानकारी हमें,[78] इनका पतन राष्ट्रकूटों और चन्देलों के कारण हुआ।

<u>बुन्देलखण्ड़ में कछवाहों का राज्य–</u> बुन्देलखण्ड में कछवाहो का राज्य ग्वालियर के सन्निकट विक्रमी सम्बत 950 के पूर्व से था किन्तु इसके ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नही होते इस वंश के शासक अपने आपको रामचन्द्र के पुत्र कुश का वंशज बताते है। इस वंश का सूरजसेन नामक राजा कुन्तल पुरी के आस–पास हुआ को (पुटवार) इसने विक्रमी संबत 332 में ग्वालियर दुर्ग का निर्माण करवाया यह राजा कुष्ठ रोगी था उसे एक सिद्धि ने कुष्ठ रोग से ठीक किया था। जिसके कहने से उसे ग्वालियर दुर्ग का निर्माण करवाया और उसने अपना नाम बदलकर सूरज पाल रखालिया उस समय से इस वंश के लोग अपने नाम के बाद पाल शब्द लगाने लगें इस वंश के 83 राजाओं का कोई नाम नही मिलता इसका 84 वाँ राजा तेज कर्ण था ये लोग कन्नौज के राजा भोज के आधीन थे।[79] इस वंश में तेजकर्ण के कुछ वर्ष पश्चात बज्रदामा नामक राजा हुआ उसने ग्वालियर दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया बज्रदामा का पिता लक्ष्मण जैन धार्मावलम्बी था जबकि बज्रदामा वैश्णवधर्मावलम्बी था। इसके पश्चात इस वंश में मंगलराज और कीर्ति राज नाम के राजा हुए इनका राज्य विक्रमी संबत 1047 के लगभग होगा कीर्तिराज के पश्चात भुवनपाल इस वंश का राजा हुआ उसके पश्चात देवपाल राजा हुआ देवपाल के पश्चात पद्मपाल राजा हुआ उसके पश्चात

महिपाल हुआ अनेक अभिलेख इस बात के मिले है कि वह विक्रमी संबत 1150 तक जीवित रहा तथा उसने अनेक जैन मन्दिरों और विष्णु मन्दिरों को दान दिया इसका एक अभिलेख ग्वालियर के सास बहु मन्दिर में है। यह विक्रमी संबत 1150 का है। इसके पश्चात त्रिभुवन पाल इस वंश का नरेश हुआ इसके राज्य में कायस्थों को प्रोत्साहन दिया गया इसमें विक्रमी संबत1161 में महादेव का मन्दिर ग्वालियर में निर्मित कराया इसके पश्चात उसका पुत्र विजयपाल उत्तराधिकारी बना विजयपाल के पश्चात सूर्यपाल उत्तराधिकारी हुआ। सूर्यपाल के पश्चात अनन्दपाल हुआ तथा विक्रमी संबत 1253 में सुलेख पाल इस वंश का शासक था। ग्वालियर गजेटियर के अनुसार विक्रमी संबत 1186 में गुर्जर प्रतिहारों ने इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया था बाद में यह दुर्ग कुतुबुद्दीनऐबक के आधीन थे गया कछवाहों की एक शाखा बाद में 'इन' कुण्ड में शासन करती रही इनके दो शिला लेख उपलब्ध हुए है जिनमें युवराज अभिमन्यू ,विजयपाल,और विक्रम सिंह आदि राजाओं का उल्लेख है [80]।

बुन्देलखण्ड में चेदि अथवा कल्चुरियों का राज्य—

बुन्देलखण्ड में चेदि अथवा कल्चुरियों का राज अतिप्राचीन है इसका शक्तिशाली नरेश सहस्त्रावाहु अर्जन था जिसकी राजधानी महिष्यमति नगरी थी इसी नगरी में कभी राजा नील ने भी राज्य किया है। इस वंश में शिशुपाल नामक शक्ति राजा भी उत्पन्न हुआ था यह अपने भ्रष्ट आचरण के कारण श्रीकृष्ण के हाँथों मारा गया था।

शिशुपाल के उत्तराधिकारियों ने नर्मदा नदी के तट पर त्रिपुरी को अपनी राजधानी बनाया कालान्तर में ये लोग कल्चुरियों के नाम से प्रसिद्ध हुए जबलपुर के सन्निकट तेवर गाँव में इस वंश के राजाओं की मुद्राये उपलब्ध हुई कल्चुरियों और चेदि राजपूत की 36 जातियों में थे। इनका वर्णन चन्दबरदायी ने पृथ्वीराजरासो में किया है मैसूर में उपलब्ध अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि कल्चुरि राजा कृष्ण राज ने कालिंजर पर आधिकार जमाकर कालिंजर पुरवराधीश्वर की उपाधि धारण की। वह कालिंजर के राजा को मारकर वहाँ का अधिकारी बन गया पर कल्चुरियों राजवंश के राजाओं के शिलालेखों से इस राज्य का जमाने वाला कीर्तवीर्य राजा जान पडता है [81]।

कलचुरि राजाओं की वंशावली इस प्रकार उपलब्ध होती है।

इस वंश के राजाओं की वंशावली कोकल्ल देव के समय से मिलती है इससे सन्दर्भित अभिलेख बनारस और बिलहरी में उपलब्ध हुए

है इन अभिलेखो से यह प्रतीत होता है कि इनका युद्ध राजा भोज देव से हुआ है इनका राज्य काल विक्रमी 919 था।[83] इनका युद्ध दक्षिण से राष्ट्र कूट नरेश कृष्णराज से भी हुआ था। कोकल्ल देव का पुत्र मुग्ध तुंगा भी यशस्वी शासक था मुग्ध तुंखा के पुत्र बाल हर्ष ने कटनी के सन्निकट बिलहरी गाँव में एक मन्दिर का निर्माण कराया था इस वंश का शक्तिशाली शासक गांगेयदेव था जिसने अपने राज्य का विस्तार किया इसके पश्चात इसका पुत्र कर्ण शासक बना इसके समय मं मालवा नरेश भोज परमार था। जिसे कर्णदेव ने हराया इस नरेश को चन्देल कीर्ति भोज परमार था। जिसे कर्णदेव ने हराया इस नरेश को चन्देलकीर्ति वर्मा ने पराजित किया था। जिसका वर्णन प्रबोध चन्द्रोदयनामक नाटक में है इनके युद्ध मालवा नरेशो से बराबर चलते रहे और बाद में इनके युद्ध चन्देल से भी हुए पं० गोरेलाल तिवारी के अनुसार यहाँ पर इतना कह देना आवश्यक है कि कल्चुरियों का राज्य दमोह के पश्चिम और कालिंजर के उत्तर को नही बढ़ा। सागर जिले में कल्चुरियों का राज्य नही रहा। यह पहले मालवा प्रान्त का भाग समझा जाता था धार के परमार राजाओं के अधिकार में सागर बहुत दिनों तक रहा राहत गढ़ धार के राजाओं के समय में एक मुख्य स्थान था धार के राज्य में यह विक्रम संवत् की चौदवी शताब्दी तक रहा।[84]

4 चन्देलयुग से लेकर तुर्कों के आगमन तक—

गुर्जर प्रतिहारो के पराभव के पश्चात चन्देलो का अभ्युदय बुन्देलखण्ड में हुआ नवी शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर गौर बाहरवी शताब्दी के मध्य तक इस वंश का प्रभाव बुन्देलखण्ड में रहा। नन्नुक का उत्तराधिकारी उसके दो पुत्र जयशक्ति और विजयशक्ति हुए उसी के नाम पर इस क्षेत्र का नाम जेजाक भुक्ति पड़ा।[85] इस वंश का पांचवा शाासक शाहिल इसने चाहमान वंश की राजकुमारी कन्चुका से विवाह किया और वंश की प्रतिष्ठा बढ़ाई जब गुर्जर प्रतिहारों ने ग्रह युद्ध हो रहा था। उस समय इसने भोज द्वितीय के विरूद्ध महिपाल की सहायता की थी। यशो वर्मा के समय में इस राज्य का उत्कर्ष हुआ और यह राज्य भारत का शक्तिशाली राज्य माना जाने लगा इसने चेदि मालवा और कौशल राज्यों पर विजय प्राप्त की।[86]

इस वंश का शक्तिशाली शासक धंगदेव हुआ इसने गुर्जर प्रतिहारो से ग्वालियर दुर्ग को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया खजुराहों के लक्ष्मण मन्दिर में एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है। जो इस

प्रकार है ''खेल–खेल में ही अपनी विशाल और शक्तिमान भुजाओं से कालंजर तथा मालवनद के तट पर अवस्थित भास्वत तक यहाँ से कालिन्दी नदी तक और देश की सीमा तक और फिर गोपाद्रि तक जो चमत्कारों का पर्वत है, विजय प्राप्त की है''[87]

जब सुबुक्तगीन ने भारत वर्ष पर आक्रमण किया उस समय धंग के पुत्र गन्ड ने महमूद का विरोध किया इसके पश्चात इस वंश में विद्याधर विजयपाल और देव वर्माशासक हुए उसके पश्चात इस वंश में कीर्ति वर्मा शासक हुआ इसने सन 1060 और 64 ई0 में चेदि नरेश लक्ष्मीकर्ण को पराजित किया और राज्य पुनरोत्थान किया।[88] इसके पश्चात संरक्षण वर्मा, जयवर्मा और पृथ्वी वर्मा, शासक हुए चन्देल वंश का अन्तिम शासक परमार्दि देव था।

इसके शासनकाल में सन 1882–83 में पृथ्वीराज चौहान ने आक्रमण किया था पृथ्वीराज ने इसे पराजित किया किन्तु इसने खोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त कर ली सन् 1203 में कुतुबुद्दीन ऐबक ने इसके ऊपर आक्रमण किया और इसे पराजित किया[89]। यहाँ पर इसका दुःखद अन्त हुआ इसका उत्तराधिकारी त्रैलोक्य वर्मन था उसके पश्चात यहाँ तुर्को की सत्त स्थापित हो गई कुछ समय उपरान्त कलिंजर पुनः त्रैलोक्य वर्मा के हाथ में आ गया तथा उसके पश्चात इस वंश में वीर वर्मा, भोज वर्मा, और हम्मीर वर्मा शासक हुए[90]।

इस वंश की वंशावली पं0गोरेलाल तिवारी ने इस प्रकार दी हैं।

विक्रम संवत	राजाओं के नाम
857	नन्नुक देव
992	वाकपति
......	विजय
.....	शाहिल
.....	हर्षदेव
982	यशोवर्मा देव
1010	धांगदेव
1056	गंडदेव
1082	विद्याधरदेव
1097	विजयपाल देव
1107	देववर्मा देव
1120	कीर्तिवर्मादेव

1155	हलक्षणवर्मा देव (पहला)
1167	जय वर्मा देव
1177	हलक्षण वर्मा देव (दूसरा)
1179	पृथ्वीवर्मा देव
1186	मदनवर्मा देव
1282	परमर्दिदेव
1259	त्रिलोक्य वर्मादेव
1297	वीर वर्मा (पहला)
1309	भोज वर्मा
1357	वीर वर्मा (दूसरा)
1387	शंशाक भूप
1403	भिलमादेव
1447	परमर्दि
....	....
....	....
....	....
....	....
1577	कीरत सिंह
....	....
....	....

चन्देलो की उत्पत्ति— चन्देलो की उत्पत्ति के सन्दर्भ में चन्देलकालीन उपलब्ध अभिलेखो और इतिहास के विद्वानो में इस वंश की उत्पत्ति को लेकर काफी मतभेद है। इस सन्दर्भ में वह जन श्रति प्रचलित है चन्देलो की उत्पत्ति हेमवती के गर्भ से हुई। हेमवती काशी के गहडवार राजा इन्द्र जित के पुरोहित हेमराज की कन्या थी वह बड़ी ही रूपवती थी। एक दिन जब वह रति सरोवर में स्नान के लिए गई तो चन्द्रमा ने उसके रूप पर आकृष्ट होकर उसका आलिंगन कर लिया जब वह आकाश की ओर लौटने लगा तब हेमवती व्यस्थित होकर शाप देने के लिए उद्यत हुई। चन्द्रमा ने रोंककर कहा, ''देवी तुम शाम क्यों दे रही है। इस गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा वह धरणी का शासक होगा और उसके राजवंशो की शाखाएँ निकलेगी।''

हेमवती त्योंरी (गुस्से) बदलकर कहा, '' मैं एक अविवाहित कन्या, भला मेरे इस स्खलन का कलंक कैसे धुलेगा'' चन्द्रदेव ने कुछ

निकट आकर कहा, ''भयातुर और चिन्तन न हो तुम्हारा वह यशस्वी पुत्र कर्णवती के तट पर उत्पन्न होगा। फिर उसे तुम खजुराहों ले जाना और उसे देव-प्रसाद समझना। महोबा (महोत्सव नगर) में एक यज्ञ सम्पादित करेगा। फलस्वरूप वहाँ का शासक बनेगा तथा उसका प्रभाव भी बढ़ जायेगा। उसे एक पारस मणि प्राप्त होगी जिससे कु धातुओं को भी वह स्वर्ण बना लेगा। कालंजर के दिव्य पर्वत पर वह एक दुर्ग का निर्माण करेगा। हाँ यह ध्यान रखना कि जब तुम्हारा यह गौरवशाली पुत्र सोलह वर्ष का हो जाय तब तुम भाण्ड यज्ञ का अनुष्ठान करना जिससे तुम्हारा यह कलंक धुल जाय। तत्पश्चात तुम बनारस परित्याग कर कालंजर पर्वत पर निवास के लिए चली जाना'' यह कहकर चन्द्रमा अंतर्धान हो गयें।

यह भविष्य वाणी सत्य उतरी वैशाख शुक्ल एकादशी शुभकारी दिन सोमवार को मांगलमय मूहुर्त में कर्णावती, आधुनिक कथान या केन (यूनानियों के कैनस) के तटपर हेमवती के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह रूप और प्रतिभा में द्वितीय चन्द्रमा ही जान पडता था। पूरे देव समाज के साथ चन्द्रमा वहाँ स्पष्ट प्रकट हुए उन्होंने उस बालक की जन्म कुण्डली बनाई और उसका नाम चन्द्रवर्मा रखा सोलह वर्ष की अवस्था प्राप्त करने पर चन्द्रवर्मा ने एक दिन अकस्मात एक सिंह का बध किया इससे चन्द्रदेव बडे प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रकट होकर उस कुमार को पारस मणि प्रदान की साथ ही उसे राजनीति की शिक्षा दी। चन्द्रवर्मा ने कालिंजर में एक दुर्ग का निर्माण किया, तत्पश्चात खजूरपुर (खजुराहों) पहुँचकर और यज्ञ की प्रतिज्ञा की वहाँ उसने पचासी देवालयों का निर्माण कराया।

फिर क्या था, मंगल-बधाइयाँ बजने लगी। हेमवती सेवा में उसकी समस्त पुत्र-बधु जुटी रहती थी। अंत में चन्द्रवर्मा ने महोबा (चन्द्र-महोत्सव का एक पावन स्थान)पहुँचकर उसे अपनी राजधानी बनाया[92]। डॉ0 अयोध्या प्रसाद पाण्डेय भी उपरोक्त किमिदन्ती को स्वीकार करते हैं कि उनका मानना है कि चन्देलों की उत्पत्ति गौंड और भर जातियों के संयोग से हुई वे उपरोक्त किमिदन्ती को उपरोक्त परख नही मानते डॉ0 स्मिथ चन्देलों की उत्पत्ति भर और गौंड़ो से मानते हैं[93]। विनायक चिन्तामणि वैद्य के अनुसार चन्देल विशुद्ध चन्द्रवंशी क्षत्रिय हैं। उनकी राय है कि महाकवि चन्द्र वर्णित 36 श्रेष्ठ राजपूत कुलों में चन्देलों की गणना उनके विशुद्ध क्षत्रिय होने का प्रमाण है निसन्देह रासों में यह उल्लेख है कि ब्रह्मा ने यह घोषित किया था कि हेमवती का पुत्र महान

क्षत्रिय नरेश होगा,[94] ।

चन्देल अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि धंगदेव के ताम्र पत्र से यह प्रतीत है,[95] इस वंश का संस्थापक वृहोन्द्र मुनि का वंशज था,किन्तु गण्डदेव,[96]के शिलालेख में इस वंश का संस्थापक चन्द्रात्रेय वंशीय कहा गया है। इन दोनो अभिलेखो में हेमवती कथा का कोई निर्देश नही है। चन्देलों के गोत्र चान्द्रायण में बतलाया जाता है,[97] और उनके अभ्युदय काल में उनकी संख्या सीमित थी। उनकी केवल शासकों की जाति थी, जिन्होंने गोंड, कोल, भील आदि अनेक अनार्य जातियों का दमन करके अपने राज्य की स्थापना की थी। चन्देलों के साथ और अनेक वंशो ने नवी शताब्दी में राज्य स्थापित किये और इस कारण राजपूत कहलाये[98] ।

चन्देल नरेशों ने अपनी उत्पत्ति के सन्दर्भ में यह संकेत दिया है कि इनका वंश अत्रि के पुत्र चन्द्रात्रेय,[99] से चला जो किसी प्रकार सही प्रतीत होता है इस सन्दर्भ में दो अभिलेख उत्पन्न होते हैं जिसे सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान कीलहार्न सही मानते हैं,[100] ।

चन्देलों का मूल स्थान खजुराहों तथा महोबा था किन्तु डॉ० स्मिथ इसे मनिया गढ मानते हैं क्योंकि चन्देलों की आराध्य देवी मनिया देवी का मन्दिर मनियागढ़ में ही उपलब्ध होता है किन्तु इनका ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नही होता।

डॉ० विशुद्धानन्द पाठक भी चन्देलो की उत्पत्ति में खजुराहों स्थित चतुर्भज मन्दिर से प्राप्त होने वाले विक्रम संबत 1011 के एक अभिलेख का हवाला देते हुए कहते हैं,[101]कि विश्व की उत्पत्ति करने पुराण पुरूष से मरीचि और जैसे ऋषियों की उत्पत्ति हुई अत्रि के पुत्र चन्द्रात्रेय थे, जिन्होने अपनी तपस्या से बहुत बडी शक्ति प्राप्त की उसी ऋषि चन्द्रात्रेय ने ऐसे राजाओं (भुभजाम्) को जन्म दिया, जिनके पास पृथ्वी के संहार अथवा रक्षण की शक्ति थी। उन्ही के वंश में नृत्य नन्नुक की उत्पत्ति हुई, जो वंश का पहला राजा था[102] ।

श्री राधा कृष्ण बुन्देली के अनुसार गहरवार राजा के पुरोहित की कन्या हेमवती से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने महोबा में अपना राज्य जमाया। इस समय चन्द्रमा के पुत्र का नाम चन्द्रवर्मा था। यह कथा केवल किमदन्ती मात्र है इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नही है। इस सम्बध में राजा धंगदेव का एक शिलालेख मिला है। इस लेख से चन्देल वंश का प्रारम्भ कर्ता नन्नूक को बतलाया गया है। परन्तु कथानकों में

चन्देल वंश के आदि पुरूष चन्द्रात्रेय वर्णित हैं[103]।

चन्देलों की उत्पत्ति का सिद्धांत चाहे कुछ भी हो किन्तु यह साश्वत सत्य हैं कि बुन्देलखण्ड़ में उनका राज्य सैकडों वर्ष तक रहा तथा इन्होनें बुन्देलखण्ड़ में अपनी अमिट छाप छोड़ी इन्होने उस समय हिन्दू संस्कृत का उत्थान किया जब बाहरी आकमण कारी हिन्दू धर्म पर आघात करके उनके धर्म स्थलों और मूर्तियों को नष्ट कर रहे थे। पहले चन्देल गुर्जर प्रतिहारों के आधीन थे तथा गुर्जर प्रतिहार नरेश नागभट्ट इस वंश का शासक था सन 740 से लेकर 785 तक गुर्जर प्रतिहारें ने अपनी शक्ति का विकाश किया इससे प्रतीत होता है। कि चन्देल पहले गर्जर प्रतिहारों के माण्डलिक थे। इतिहासकार नन्नुक को प्रथम शासक मानते है इसने महोबा में अपना राज्य स्थापित किया

चन्देलों का राज्य विस्तार एवं सीमाएं– चन्देलों के राज्य विस्तार के समय सम्बन्ध म अनेक अभिलेख उत्पन्न होते है ये अभिलेख मदनपुर, अजयगढ़,खजुराहों महोबा, और नीलकण्ड में उपलब्ध हैं कालिंजर नीकण्ड मन्दिर में उपलब्ध अभिलेख इस प्रकार हैं।

आकाश प्रसर प्रसर्यत दिशस्त्वं पृथिव–पृथ्वी भव
प्रत्यक्षीकृतमादिराजयशसां मुष्माभिरूज्जृ भितम्।
अद्य श्रीपरमाद्धिपार्थिवयशो राशेर्विकाशोदयाद्–
बीजोच्छवास विदीर्ण दाडिममिव ब्रह्मांडमालोक्यते।।
कार्तिस्ते नृप दूतिका मुररिपोरंकं स्थितामिन्दिरा–
मानीय प्रददौ तवेति गिरिशः श्रत्वार्धनारीश्वरः
ब्रह्माभूच्चतुराननः सुरपतिश्रच्क्षाः सहस्रं दधौ
स्कंदो मंदमतिर्विवाहविमुखि धत्ते कुमार ब्रतम्।।
नागो भाति मदेन खं जलरूहैः पूर्णन्दुना श्वरी
शीलेन प्रमदा जवेन तुरो नित्योत्सवैर्मन्दिरम् ।
वाणी व्यारणेन हंस मिथुनैर्नद्यः सभा पंडितः
सत्पुत्रेण कुलं त्वया वसुमति लोकत्रयं विष्णुना।

इस प्रकार का एक अभिलेख कीर्ति वर्मा के समय का देवगढ़ में उपलब्ध है इस लेख से यह ज्ञात होता है कि विक्रमी सम्वत 91 में राजाभोज का अधिकार था उसके पश्चात यहाँ विक्रमी सम्वत् 1154 में कीर्ति वर्मा चन्देल राज्य स्थापित हो गया था। देवगढ़ में उपलब्ध अभिलेख इस प्रकार है।

चांदेल्लवंश कुमुदेन्दु विशालकीर्तिः
रूयातो बभूव नृपसंघनतांघ्रिपद्मः।
विद्याधरों नरपतिः कमलानिवासो।
जातस्तो विजयपालनृपों नृपेन्द्र।।[104]
तस्माद्धर्मपर श्रीमान् कीर्ति वर्मनृपोऽभवत्।
यस्य कीर्तिसुधा शुभ्र त्रिलोक्यं सौधतागात।।
अगदं नूतनं विष्णुमविर्भूतमवात्य यम्।
नृपाब्धि तस्समाकृष्टा श्रीरस्थैर्यमार्जपत।।
राजोऽग्मध्यगत चन्द्रभिस्य यस्य
नूनं युधिष्ठिर सदाशिव रामचंद्राः।
एते प्रसन्न गुणारत्ननिधौ निविष्टा
यतद्गुप्रकररत्रमाये शरीर।।
तदीयामात्य मन्त्रीन्द्रो रमणीपुरविनिर्गतः।
वत्सराजेति विख्यात श्रीमान्म मही धारात्मजः।।
ख्यातो वभूव किल मन्त्रपदैकमात्रे
वाचस्पतिस्तदिह मन्त्रगुणौरूभाश्याम्।
यो यं समस्तमपि मण्डलामाशु शत्रो–
राच्छिद्य कीर्तिगिरिदुर्ग मिदं व्यधात्ता।।
श्री वत्सराजघाट्टोयं नूनं तेनात्र कारितः।
ब्रह्ममाण्डमुज्वलं कीर्ति आरोहयतुमात्मनः।।
संवत् 1154 चैत्र वदि 2 बुधौ।

यह लेख विक्रम सम्वत 1154 का लिखा कीर्ति वर्मा चन्देल के समय का है।[105]

चन्देलो के साम्राज्य का विस्तार यशोवर्मन के शासन काल से प्रारम्भ हो गया था उसने अपने साम्राज्य की सीमा को उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम तक विस्तृत किया और कालिंजर को अपनी सैन्य राजधानी बनाया इसने अपने शासनकाल में किसी की अधीनता स्वीकार नही की इसके पश्चात धंगदेव ने सीमा का विस्तार किया इसे एक अभिलेख में कालंजराधिपत की संज्ञा दी गयी है।[106] धंगदेव ने कान्यकुब्ज नरेश को युद्ध में पराजित किया था इस वंश के शासकों ने मुस्लिम शक्तियों से भी संघर्ष किया था और प्रारम्भ में उन्हें परास्त भी किया था फरिस्ता में यह वर्णन उपलब्ध होता है। कालंजर वह शासक जिसने शाही राजा जयपाल को सम्पत्ति और सेना दी थी चन्देल शासक धंगदेव ही था इसमें नाम

मांत्र संदेह नही है। फरिस्ते के अनुसार सुबुक्तगीन और जयपाल के बीच इसे दूसरे संघर्ष का कारण यह था कि जयपाल ने उसे निर्धारित रकम को अदा करने से अस्वीकार कर दिया था, जिसे पहली बार उसने माना था।[107] जब जयपाल ने अस्वीकार कर दिया था और सुबुक्तगीन–द्वारा भेजे हुए व्यक्तियों को बन्दी बना लिया तब यह सूचना अमीर के पास पहुँची। उद्वेलित होते हुए फेनिल महाप्रवाह, की भॉति वह अपनी सेना लेकर भारतवर्ष की ओर चल पड़ा। फरिश्ता बतलाता है कि इस अवसर पर पड़ोसी राजाओं–विशेषतया–दिल्ली, अजमेर, कालंजर और कन्नौज के राजाओं ने सेना और सम्पत्ति से जयपाल को सहायता पहुँचाई लेकिन इब्नुल–अतहर और निजामुद्दीन इस विषय पर मौन रह गये है। उत्बीन इसकी चर्चा तो की है परन्तु बिल्कुल सामान्य रूप से और दूसरे कारण प्रस्तुत करते हुए।[108]

इनके राज्य में महोबा, खजराहो, कालिंजर, बांदा मड़फा रसिन, झाँसी, जालौन, आदि जनपद आते थे इनका राज्य दक्षिण में कल्चुरियों की सीमा से मिलता था, इसके अतिरिक्त, कालपी, औंगासी, इछावर, पचरा, मऊ, नन्ने ओरा बारी दुर्ग, चिल्ला, ककरेरी, दाही, मदनपुर, देवगढ़, दुधई, गढ़ाकोटा, मैहर, रीवां अजयगढ़ आदि इनकी राज्य सीमा में आते थे। कुल मिलाकर जहां चन्देलकालीन पुराव शेष उपलब्ध होते है वह सब भाग चन्देलो के आधीन था इस वंश के नरेशो ने कौशलराज और मालवा में भी अपने आक्रमण किये थे इस वंश के नरेश यशोवर्मन ने बंगाल तक अपने आक्रमण किये सन 950 ई0 से लेकर सन 1102 तक इस राज्य का विस्तार सर्वाधिक रहा धंगदेव के समय की राज्य सीमाओं से यह ज्ञात होता है कि राज गद्दी पर उसके बैठने के समय चन्देल राजसत्ता किन–किन स्थानों तक व्याप्त थी। तदनुसार, उसका राज्यक्षेत्र 'कालंजर तक, मालवा नदी के किनारे स्थित भास्वत तक, वहाँ से कालिन्दी (यमुना) नदी के किनारे तक वहाँ से चेदिवंश की सीमाओं तक वहाँ से गोप नामक पहाड़ (गोपाभिधानगिरि) तक फैला हुआ था।

आकालंजरमाचमालबन दीतीरस्थिते भास्वत:
कालिन्दीससरितस्तटादितइतोप्या चेदिदेशावधे:।
आतस्मादपिविस्मयैक निलयाद गोपाभिनाद्‌गिरे
र्यश्शास्ति क्षितिमायतोर्जिजत भुजव्यापारलीलार्जिताम ।।[109]

इस प्रकार हम देखाते है कि चन्देल राज्य की सीमाए परमार्दि देव के राज्य तक सुरक्षित एंव विस्तृत रही किन्तु परमार्दि देव के

समय में पृथ्वीराज का आक्रमण हुआ उसके कारण इसके राज की सीमाये सकुंचित हुई और आधाराज्य उसके हाथ से निकल गया बुन्देलखण्ड मे पृथ्वी राज की विजय के सन्दर्भ में विक्रमी संबत 1139 तदानुसार 1182 का एक अभिलेख मदनपुर मे उपलब्ध हुआ है इससे उसके विजय के प्रमाण मिलते है [110]। तथा इसके पश्चात त्रैलोक्य वर्मन और उसके उत्तराधिकारियो के समय राज्य सीमाये घटती गयी।

चन्देलकाल की प्रमुख घटनाएँ :– चन्देलयुग में कुछ महत्वपूर्ण घटनाए घटी जिनका प्रभाव बुन्देलखण्ड के इतिहास पर पड़ा ये घटनाए निम्नलिखित हैं।

महमूद गजनबी का चन्देलों पर प्रथम आक्रमण:–

महमूद गजनबी ने यह अनुभव किया था कि वह बिना चन्देलों को पराजित किये भारत वर्ष में अपनी सत्ता स्थापित नही कर सकता था इसलिए उसने सर्वप्रथम चन्देल नरेश विद्याधर को दबाने का प्रयत्न किया हिजरी संबत् 410 तदानुसार सन 1910 में वह विधाधर को परास्त करने के उद्देश्य से अफगानिस्तान होता हुआ भारत वर्ष में आ गया उसने अपना सैनिक शिविर यमुना नदी के किनारे गाड दिया इस समय पंजाब का राज्यपाल और शासक त्रिलोचनपाल था महमूद गजनवी आगे बढता हुआ और त्रिलोचन पाल को हराता हुआ चन्देल राज्य सीमा की ओर बढ़ा उसने अपने आक्रमण में अनेक हिन्दुओं का बध भी किया। किन्तु चन्देल शासक विधाधर बचकर वापस आ गया इसी समय 36000 घोडों एक लाख 45 हजार पैदल सैनिको और 390 हाथियों की सेना लेकर विधाधर ने महमूद गजनबी का मुकाबला किया और इस समय महमूद गजनवी उसका मुकाबला न कर सका और वापस चला गया किन्तु विश्वासघात के कारण दुबारा विजय और लूट का माल मुसलमानों के हाथ लगा इस सन्दर्भ में इतिहासकार एक मत नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि महमूद गजनबी और विधाधर के मध्य युद्ध हुआ किन्तु दूसरे मोर्चे की नियत से विधाधर की अन्यत्र चला गया किन्तु फिर भी महमूद गजनबी उससे डरता रहा कि विधाधर उसके ऊपर कही धोखे से आक्रमण न कर दे।

महमूद का चन्देलों पर दूसरा आक्रमण:– हिजरी संबत 413 तदानुसार सन् 1022 ई० में महमूद गजनबी ने दूसरा आक्रमण चन्देलों पर किया किन्तु ऐसे साक्ष्य मिलते हैं कि महमूद और चन्देलो के बीच कोई दूसरा युद्ध नही हुआ ग्वालियर के सास बहु मन्दिर में जो

अभिलेख उपलब्ध हुआ है उससे यह ज्ञात होता है कि इनके बीच युद्ध नही हुआ डाँ0 मिराशी के अनुसार सन् 1019 मे गांगेयदेव और चन्देल सम्राट गन्डदेव के बीच कोई सन्धि अवश्य हुई किन्तु महमूद गजनवी और कालिंजर नरेश के मध्य में एक सन्धि हुई थी जिसका विवरण इस प्रकार मिलता है कि पहले तो उसने नन्दा के राज्य मे स्थित ग्वालियर के किले पर चढाई की जिसके हाकिम ने 4 दिनो की घेराबन्दी के बाद 35 हाथियो की भेंट देकर अपनी रक्षा की प्रार्थना की तत्पश्चात अपनी शक्ति और अभेद्यता के लिए सारे हिन्दुस्तान मे प्रसिद्व कालिंजर की महमूद ने घेराबन्दी की जो बहुत दिनो तक चलती रही। नन्दा ने 300 हाथियो की अधीनता सूचक भेंट के बदले अपनी रक्षा की प्रार्थना की। उसे यह देखकर बडा विस्मय हुआ कि उसने जिन 300 मत वाले हाथियों को बिना पीलवानों के महमूद की सेना की ओर छोडा था उन्हे तुर्को ने महमूद की आज्ञा से बहादुरी से या तो वश मे कर लिया अथवा उन पर सवारी की या एक ओर जाने के लिए विवश कर दिया जहाँ थोडी ही देर मे वे काबू मे कर लिए गये। उसके बाद नन्दा ने हिन्दी की कविताओं (लूगात–ए–हिन्दुई) मे महमूद की प्रशंसाये लिख भेजी जिन्हे अपने साथ आये हुए कवियो ओर हिन्दुस्तान के अन्य विद्वानो को दिखा –दिखाकर सुल्तान महमूद बडा प्रसन्न हुआ और नन्दा को बधाइयाँ भेजी। साथ ही उसने अपनी ओर से अनेक उपहारो के साथ उसे 15 किलो की किलेदारी (नायकत्व) का अधिकार दिया नन्दा ने भी बहुमूल्य रत्नो सहित बहूत धन सम्पति सुल्तान स्वीकृति के लिए भेजी। उस स्थान से सुल्तान विजयी होकर गजनी लौटा।[111]

चन्देलो पर पृथ्वीराज चौहान का आक्रमण–

परमार्दिदेव ने सन 1165 से लेकर सन 1202 तक राज्य किया इसके सन्दर्भ मे अनेक अभिलेख उपलब्ध होते है। जिससे तदयुगीन राजनीतिक गति विधियो का बोध होता है। इसके अतिरिक्त चन्दबरदायी क्रत पृथ्वीराज रासो पर माल रासो और आल्ह खण्ड से तदयुगीन युद्धों का बोध होता है। इसके अतिरिक्त जन श्रुतियाँ भी प्रचलित है इस सन्दर्भ में यह कहा जाता है। कि पृथ्वीराज जब राजा पदमसेन की पुत्री का अपहरण कर लौटरहा था,तुर्को ने उसके सैनिक पर आकमण कर दिया, जो भगते हुए रास्ता भूल गए और महोबा स्थित चन्देलो के एक बाग मे जा छिपे। चन्देल रखवारो से कहासुनी से प्रारम्भ होकर बात इतनी बढ गयी कि चन्देल सैनिको ने कइयो को मार डाला तथा घायल कर दिया

परमर्दिन ने भी उन्हे धेर लेने की आज्ञा दे दी। प्रथ्वीराज यह सुनकर अत्यन्त कोधित हुआ बि0सं0 1240–1182–3 मे सेना लेकर चन्देल क्षेत्रो पर जा धमका रास्ते मे शिरषगढ़ के किले पर मलखान बनाफर सरदार बहादुरी से लडता हुआ मारा गया। वहाँ से बेतवाँ पारकर पृथ्वीराज महोबा, पहुँचा जहाँ महीनों धेरा डाले रहने के बाद उसकी चन्देल सेनाओ से भीषण मुठभेड हुई। आल्हा और उदल नामक चन्देल सेना के बनाफर सरदारो की सहायता में बनारस के गहडवाल राजा जयचन्द्र ने भी अपने सैनिक भेजे थे। परमर्दिन युद्ध की भीषणता देखकर कालंजर भागा, किन्तु चाहमानो ने वहाँ तक उसका पीछा किया। वह पकडकर प्रथ्वीराज के सामने लाया गया और दिल्ली ले जाया गया। इस प्रकार प्रथ्वीराज पूर्णतः बिजयी होकर पज्जुनराय नामक अपने एक सेनापति को महोबा का नायक नियुक्त कर अपनी राजधानी दिल्ली (?) लौटा[112]।

बुन्देलखण्ड में तुर्क राज्य का शुभारम्भः— मुहम्मद गोरी ने पृथ्वी राज चौहान को परास्त करके दिल्ली में तुर्क सत्ता का सूत्र–पात्र किया था उसके पश्चात उसकी ओर से उसका योग और उसका कुशल सेनापति कुतुबुद्धीन ऐबक यहाँ का शासक बना उसके तुर्को ने यहाँ के शासकों को परास्त किया और अपनी सत्ता बनारस तक विस्तृत की उन्होने अपनी शक्ती का संचय किया और उस शक्ति का परिचय देते हुए उसने बुन्देलखण्ड में भी कालिंजर दुर्ग पर हिजरी सन् 599 तदानुसार सन 1202 में कलिंजर दुर्ग में आक्रमण किया इसका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है। उस समय अभियान में उसके साथ साहिब–किरान शम्सुद्धीन अल्तमश भी था। कालंजर का राजा, अभिशप्त परमार, लडाई के मैदान में सामना करके पश्चात भग्नाश किले में भाग गया। बाद में आत्मसर्मपण करके उसने गले में पराधीन का कंठभूषण पहन लिया किन्तु राजभक्ति का वचन देने के पश्चात उसे उसी रूप में ग्रहण कर लिया गया जिस रूप महमूद सुबुक्तगीन द्वारा उसके पूर्वज ग्रहण किये गए थे। उसने कर और हाथी देने की शर्ते स्वीकार की किन्तु इन शर्तो में से किसी एक का भी पालन करने के पूर्व ही उसकी स्वभाविक मृत्यु हो गयी।

उसका दीवान जिसका नाम अजय देव था उतनी सरलता से आत्म समर्पण करने के लिए तैयार नही था जितनी सरलता से उसके मालिक ने कर दिया था। अपने शत्रुओं को वह परेशान करता रहा जब किले के भीतर सब जलाशय (साधनों के काट देने से)सुखा दिये गये तब अन्त

में वह आत्मसमर्पण के लिए बाध्य किया जा सकता बीसवी राजब, सोमवार को दुर्ग रक्षक सेना अत्यन्त छिन्न – भिन्न और दुर्बल रूप में बाहर आई उसे अपने स्थान को खाली करके छोड देना पडा 'कालंजर दुर्ग, जो विश्व भर में सिकन्दर की दीवार की भाँति मजबूती के लिए प्रसिद्ध था, ले लिया गया। मन्दिर मजिस्द बना दिये गये सौजन्य के स्थान, अक्षमाल के जाप करने वाले के स्वर और प्रार्थना के लिए आमंत्रित करने वालो की वाणी का अन्त हो गया। मूर्ति पूजा का नाम ही मिटा दिया गया पचास हजार आदमी गुलाम बनाये गये वह भाग हिन्दू विहीन हो गया हाथी, पशु, और अगणित शास्त्रार्थ भी विजेता के हाथ लगे । विजयी बाग डोर इसके बाद महोबा की ओर फेरी गई और कालंजर शासन हाजाब्बारूद्धीन हसन के जिम्मे किया गया'[113]।

पं0 गोरेलालतिवारी ने भी कालिजंर पर कुतुबुद्दीन ऐबक के आक्रमण के सन्दर्भ में ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत किये है। बिक्रम संबत 1260 में कुतुबुद्दीन ऐबक की चढाई चन्देल राज्य पर हुई इसने चन्देल राजा परमार्दिदेव को कालिजर के किले में आ घेरा। वह किला छोडने पर राजी हो गया, पर मन्त्री ने ऐसा करने से मना किया जब वह न माना तब परमार्दिदेव के मंन्त्री ने ही उसे मार डाला इसके पश्चात किला कुतुबुद्दीन ने ले लिया, पर पीछे से मुसलमानो ने मंत्री को भी मारवा डाला और मंदिरो को गिरवाकर उनके स्थान पर मसजिदे बनवाई।[114] डॉ0 बिशुद्धानन्द पाठक के अनुसार चन्देलो के लिए कुतुबुद्दीन के आक्रमण का प्रभाव आपातिक सिद्ध हुआ। परमर्दिन की मृत्यु (1202) चाहे स्वाभाविक हो अथवा वह अपने मंत्री अजयदेव के हाथों मारा गया कालंजर और महोबा के आसपास के क्षेत्र मुसलमानो के हाथो में चल गये।[115]

(5) बुन्देलखाण्ड में तुर्क एंव मुगल काल की राजनीतिक व्यवस्था एंव उसका प्रभाव–

1–चन्देलो का तिरोहण:– चन्देल युग को महत्वपूर्ण अस्थान दिलाने के लिए तदयुगीन वीर आल्हा–ऊदल ने महत्वपूर्ण भूमि का निभाई थी किन्तु जब राज्य शक्ति ही कमजोर हो तो दो बहादुर क्या कर सकते थे। इस समय देश की स्थित ही असन्तोष जनक और अराजकता पूर्ण थी आल्हा जिसे मदराख नाम से सम्बोधित किया जाता था वह दशरथ का पुत्र था उसकी स्त्री का नाम मचलादेवी और पुत्र का नाम ईदल तथा भाई का नाम ऊदल और माँ का नाम देवल देवी था परमाल के साले का नाम साहिल देव था। जो राजा परमार का मंत्री

भी था जिस व्यक्ति ने आल्हखण्ड की रचना की उसका नाम जगनायक भट्ट था।

कभी–कभी यह आपसी वयमनस्य और दुश्मनी पराभव का कारण बनती है परमाल का मंत्री माहिल आल्हा–ऊदल से जलता था वह चाहता था कि इन दोनो बहादुरों को राज्य से बाहर निकाल दिया जाय उसने अपनी चाल से आल्हा ऊदल को राज्य से निकला दिया। उस समय आल्हा ऊदल ने कन्नौज के राजा जयचन्द्र के राज्य में शरण में ली कुछ समय बाद पृथ्वीराज का आक्रमण बुन्देलखण्ड में हुआ पहले वह शिरषागढ़ रवाना हुआ जहाँ पर मलखान चन्देलो की ओर से शासन करता था। इस समय माहिल के भढ़काने पर मलखान को कोई सैनिक सहयोग उपलब्ध नही हुआ उसने ग्वालियर के सन्निकट पूरन जाट के नेतृत्व में एक सेना पृथ्वीराज से मुकाबला करने के लिए भेजी इसके पश्चात पृथ्वीराज की सेना सिरषा गढ़ में आई मलखान ने पृथ्वीराज का मुकाबला किया वह मारा गया और उसकी स्त्री सती हो गई।

शिरषागढ़ जीतने के पश्चात पृथ्वीराज ने महोबा पर आक्रमण किया आक्रमण की भयंकरता को देखकर परमाल ने अपने दोनो पुत्र ब्रह्मजीत और रणजीत को कालिंजर दुर्ग में भेज दिया और उसने आल्हा ऊदल को मनाने के लिए जयचन्द्र के राज्य में जगनायक भाट को भेजा आल्हा–ऊदल अपने साथ कुछ सेना लेकर परमाल की सहायता के लिए आये इसी समय परमाल और पृथ्वीराज में सुलह हो गई पृथ्वीराज का सेनापति भानूराय था। जिसने आल्हा की सेना को रोकने का प्रयत्न किया इस समय आल्हा के साथ वीर तालन नाम का एक मुसलमान एक सैनिक भी था जिसने आल्हा का साथ किया और पृथ्वीराज के सेनापति भानूराय को भगा दिया।

परमाल इस समय काफी धबड़ाया हुआ था वह आल्हा के साथ कालिंजर चला गया इसके पश्चात पृथ्वीराज का आक्रमण दुबारा नही हुआ और चन्देलो का आधा राज्य पृथ्वीराज के राज्य में मिल गया इसके पश्चात सन 1202 में कुतुबृद्दीन ऐवक का आक्रमण कालिंजर पर हुआ था।[116] जिससे चन्देलो की शक्ति विदीर्ण हो गयी और तुर्को की शक्ति का विस्तार हुआ।[117]

बुन्देलखण्ड में तुर्कों की शक्ति का विस्तार–

कुतुबुदीन ऐबक के आकमण के पश्चात त्रैलोक्य वर्मन का साम्राज्य अत्यन्त संकुचित हो गया था। किन्तु इस बात के ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते

है कि त्रैलोक्य वर्मन के समय मे विकमी सबंत 1261 के लगभग त्रैलोक्य वर्मन का युद्ध मुसलमानो से हुआ इस युद्ध मे चन्देल सेना पति मारा गाया।

जब दिल्ली में शाह सम्शुद्धीन शासक बना उस समय बिक्रमी सम्वत 1290मे उसमे बन्देलखण्ड पर आक्रमण किया उस समय इसका सेनापति नासुरुद्धीन साहशो था। उसने खजाना लूटने की वजय से कालिंजर के आक्रमण से वह यहाँ से लगभग सवाँ करोड मद्राये लूट कर ले गया था कालिजर के पूर्व दिशा मे ककरेडी नामक ग्राम मे बिक्रमी संबत 1232,1252और 1233 के अभिलेख उपलब्ध हुए है । जिनसे चन्देलो के आसितित्व का पता लगता था। डॉआशीर्वादीलाल के अनुसार बयाना और ग्वालियर के सुबेदार मलिक तयसाई को सुल्तान ने कालिंजर जीतने के लिऐ भेजा चन्देलराजा त्रैलोक्य वर्मन तुर्की सेंना का मुकाबला नही कर सका और कालिंजर को छोडकर भाग गया तुर्को ने उसे लूटा किन्तु पडोस के चन्देलो ने उन्हे इतना त्रस्त किया कि वे अधिक प्रगति न कर सके और भाग खडे हुए।[118]

जब दिल्ली का सुल्तान बिक्रमी संवत 1303 मे नाशुरुद्धीन महमूद बना उस समय उसके शासन का कार्य गयाशुद्धीन बलवन देख था इसने दिसम्बर 1247 मे कालिजर पर चढाई की इस समय कालिंजर बथेलो के राज्य मे था। और यहाँ के शासक दलकेश्वर और मलकेश्वर थे इन्होने नाशुरूद्धीन से घोर युद्ध किया किन्तु उन्हे तुर्को के हाथ पराजित होना पडा अन्त में कलिंजर मनमानी ढग से लूटा गया उसके पश्चात तुर्को ने नरवर पर चढ़ाई की नाशुरूद्धीन के समय में बुन्देलखण्ड को बहुत सा भाग तुर्को के अधिकार में आ गया था उसने बिक्रमी सबंत 1304 और बिक्रमी संबत 1308 में दुबारा कालिंजर पर चढ़ाइयाँ की किन्तु यहाँ के हिन्दू शासक तुर्को से बार–बार यहाँ की सत्ता छीन लेते थे। डॉ0 आशीर्वादीलाल के अनुसार यमुना की उपजाऊ घाटी में उसने एक प्रसिद्ध सामन्त को पराजित किया जिसको मिनहाज ने दलकी व मलकी कहा और एच0सी0राय ने चन्देल वशं का त्रैलोक्य वर्मा बताया है अनेक पुरूषो का बध कर दिया गया और स्त्रियों तथा बच्चों को गुलाम बना लिया गया। इसके उपरान्त उसने दिल्ली के दक्षिण में मेवाड की जनता के उपद्रवों को कुचलने का कार्य अपने ऊपर लिया। यहाँ पर उसने अनेक आक्रमण किये और अन्त में उसे पुनः जीत लिया 1247 ई0 में उसने कलिंजर के चन्देल राजा के विद्रोह को दबाया। 1251 ई0 उसने

ग्वालियर के हिन्दू राजा पर चढ़ाई की किन्तु मालवा और मध्य भारत में तुर्की सत्ता पुनः स्थापित करने का उसने प्रयत्न नही किया।[119]

जब दिल्ली में सिकन्दर लोदी का राज्य था उस समय वहाँ रीवाँ के बघेल राजा शालीवाहन पर यह दबाव डाल रहा था कि वह अपनी कन्या का विवाह सिकन्दर लोदी से कर दे। यह बात रीवाँ नरेश ने नही मानी इसलिए सिकन्दर लोदी ने उसके ऊपर आक्रमण कर दिया इस युद्ध में बघेल नरेश परास्त हुआ और सिकन्दर लोदी बाँदा होता हुआ दिल्ली वापस चला गया।[120]

जब दिल्ली में जलालुद्धीन खिजली का राज्य था उस समय बिक्रमी संबत 1350 में उसने माडव गढ़ पर चढ़ाई की थी उसके पश्चात उसके भतीजो अलाउद्धीन खिलजी ने भेलसा पर चढ़ाई की थी तथा उसे लूटा दमोह जनपद में बढ़ियागढ़ दुर्ग में बिक्रमी संबत 1381 का एक अभिलेख मिला है जिसमें गयाशुद्धीन का नाम अंकित है यही पर एक अभिलेख बिक्रमी संबत 1385 का मिला है इसमें मुहम्मद तुगलक का नाम अंकित है बिक्रमी संबत 1407 में फिरोज तुगलक दिल्ली का बादशाह बना इसके समय में बुन्देलखण्ड का बहुत सा भाग इनके आधीन हो गया कालपी और महोबा का प्रान्त कभी मालवा के आधीन हो जाता था तो कभी जौनपुर के आधीन हो जाता था।

कैमूर लंग के आक्रमण के समय भारतवर्ष की स्थित राजनीतिक दृष्टि से छिन्न-भिन्न हो गयी थी और अव्यवस्था फैल गयी थी बिक्रमी संबत 1461 मं ग्वालियर, झलवार, श्रीनगर की सम्मिलत सेना ने मुल्लायक बाल खाँ पर चढाई की इस युद्ध में नरेशो की पराजय हुई इसके पश्चात दौलत खाँ लोदी बादशाह बना इस समय मालवा का अधिकांश भाग हुशंगशाह के अधिकार था। बिक्रमी संबत 1458 में स्वतन्त्र हो गया और उसका कालपी पर अधिकार हो गया बाद में ग्वालियर का इलाका और चन्देरी का इलाका महमूदशाह के अधिकार में आ गया।

बहलोल लोदी की मृत्यु के पश्चात सिकन्दर लोदी दिल्ली का बादशाह बना इस समय ग्वालियर में मानसिंह तोमर का राज्य था इसके समय में सिकन्दर लोदी ने बिक्रमी संबत 1558 में धौलपुर पर आक्रमण किया यह नरेश भाग कर ग्वालियर आ गया जिससे नाराज होकर सिकन्दर लोदी ने दुबारा ग्वालियर पर आक्रमण किया अन्त में दोनो के मध्य सन्धि हुई और धौलपुर का राज्य विनायक देव को दे दिया गया इस समय मिर्जा अजीम हुमायूँ कालिंजर जीतने में लगा हुआ था तथा

जलाल खाँ ने अपने लडको बच्चो को कालपी दुर्ग में रख दिया था। बाद म वह जौनपुर का राजा हो गया तथा विक्रमी संबत 1575 में इब्राहीम ने इसे परास्त किया जलाल खाँ जब गढ़ा कोटा जा रहा था उस समय गौंडो ने उसे पकड लिया और बादशाह के पास भेज दिया गया जहाँ वह मार डाला गया इसी समय अजीम हुमायूँ शेरबानी को ग्वालियर पर चढ़ाई करने के लिये भेजा गया और वापस बुलाकर मार डाला गया।[121]

बुन्देलखण्ड में बघेलो का राज्य :– बुन्देलखण्ड में बघेलो का राज्य बारहवीं शताब्दी के लगभग प्रारम्भ हुआ इसका उल्लेख रीवाँ स्टेट गजेटियर और जनरल टॉड द्वारा रचित राजस्थान नामक पुस्तक में उपलब्ध होता है। पं० गोरेलाल तिवारी के अनुसार ये लोग अनहिल वाडा पाटन के चालुक्य या सोलकी क्षत्रिय राजाओं की एक शाखा है। इनकी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई जाती है कि उत्तरीय गुजरात मे चावड क्षत्रिय राज्य करते थे। इन्हे कल्यान के मेवाड राजा ने वि०सं० 796 के लगभग मार भगाया गया। इससे राजा की गर्भवती रानी भी अपने भाई के साथ, जंगल की ओर भाग गई। वहाँ उसे पुत्र हुआ। रानी ने इसका नाम वनराज रखा इसी वनराज ने अनहिलवाडा बसाया और इसी से चावड वंश चला इस वंश में विक्रमी संबत 998 तक राज्य पीछे से चालुक्य लोगो ने इन्हे मार भगाया।

चावड वंश के अन्तिम राजा का नाम सांमतसिंह था इसकी बहिन चालुक्य राज्य को व्याही थी। इसके लडके का नाम मूलराज था। इसने अपने चाचा को मारकर स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया इस वंश में बिक्रमी संबत 1299 तक राज्य रहा। चालुक्य राजा कुमार पाल ने राजत्वकाल में इसकी मौसी का पुत्र अरूनोराज हुआ। इसे राजा कमार पाल ने सांमत की पदवी से विभूषित किया और व्याघ्र पल्ली या बघेला जागीर में दिया इसी ग्राम में बस ने के कारण अरूनोराज का वंश बघेल कहलाया इसके पिता का नाम धवल था।

अरूनोराज के लडके का नाम लवन प्रसाद था। यह गुजरात के राजा अजयपाल के समय भेलसा और उदयपुर का सूबेदार था यह बिक्रम संबत 1229 से 1233 तक इस पद पर रहा। पर पीछे से यह भीम दूसरे का मन्त्री हो गया। इसे धावलगढ़ जागीर में मिला था यह ग्राम बघेल से 30 मील नैर्ऋत्य में है। लवन प्रसाद का विवाह मदनरजनी से हुआ था इससे वीर धवल नाम का पुत्र हुआ। इसने सुल्तान मइज्जुद्दीन

मुहम्मद गोरी से युद्ध किया था। इसके बीरम् बीसल देव और प्रताप मल्ल नाम के तीन पुत्र हुये । यह विक्रम संबत 1276 से 1295 तक रहा इसके मरने पर इन लडकों में बिक्रम संबत 1295 में युद्ध हो गया इसमें बीसल देव की जीत हुई और भीम दूसरे के उत्तराधिकारी त्रिभुवन पाल से वयमनस्य हो गया इससे बीसल देव उसे गद्दी से उतार स्वयं राजा हो गया। इसके पश्चात अर्जुन देव, सारंग देव और कर्ण देव राजा हुये। कर्णदेव ने बिक्रम संबत 1354 तक नाम मात्र के लिये राज्य किया इसे बिक्रम संबत 1355 में सुल्तान आलउद्दीन खिलजी के भाई उलगखाँ ने युद्ध में हरा दिया। इससे कर्ण देव देवागिरि के राजा रामदेव के यहाँ चला गया और वहाँ रहने लगा यह विक्रम संबत 1361 में परलोक को सिधारा।

बघेलो का कथन है कि बीर धवल के लडके का नाम व्याघ्र देव था पर इतिहास में बीरम मिलता है। यह बीर धवल का ज्येष्ठ पुत्र है यह वीसल देव से युद्ध में हार कर आया होगा।

टॉड साहब का कथन है कि व्याघ्र देव विक्रम संबत 1207 में आया था। इससे यह कल्चुरि राजा नरसिंह देव का समकालीन होता है, पर यह इतिहासों से सिद्ध नही होता।[122]

सुप्रसिद्ध ग्रन्थ राजस्थान में कर्नलजेम्स टॉड क्षत्रिय वंशावली पर विस्तार पर चर्चा की है जय सिंह सिद्धराज सोंलकी के बाद चौहानों का एक वंशज कुमार पाल अनहिलवाडा के सिंहासन पर बैठा चौहानवंशी होते हुये भी कुमारपाल सोलंकी वंश का हो गया उसके शासनकाल में मुसलमानो ने उसके राज्य में अनेक बार लूटमार की तथा उसके राजत्व को श्रीहीन बना दिया उसके बाद मूलदेव उसके सिंहासन पर बैठा 1228 ई0 में मूलदेव की मृत्यु के साथ ही अनहिलवाडा पट्टन के सोलंकी वंश का अवसान हो गया इसके बाद सोलंकी वंश की बघेल नामक शाखा के सरदार विशालदेव ने राज्य पर अधिकार कर पुनः शान्ति एवं व्यवस्था कायम की।

सोलंकी वंश की सोलह शाखाये है जो इस प्रकार है–

1. बघेल– बघेलखण्ड के राजा, जिनकी राजधानी बाधूगढ थी। पीथापर थराद और अदलज के सरदार। 2. बेहिल– मेवाड के आधीन कल्याणपुर के जागीरदार। 3. बीरापुर– लूणावाडा के सरदार। 4. भूरता। 5.कालेचा– जैसलमेर के अन्तर्गत बारूटेकरा और चाहिर में। 6.लंघा– मुल्तान के निकट रहने वाले मुसलमान। 7. तोगरू– पंचनद प्रदेश के

निवासी मुसलमान। 8. बिक्रू– पंचनद क्षेत्र के निवासी मुसलमान। 9. सोलके– दक्षिण में पाये जाते है। 10. सिखरिया– सौराष्ट्र क्षेत्र में गिरनार में आबाद्र। 11. राओका– जयपुर राज्य के अन्तर्गत टोडा क्षेत्र में आबाद है। 12. राजकरा– मेवाड के अन्तर्गत देसूरी क्षेंत्र में रहते है। 13. खारूरा– मालवा में आलोटा और जावरा के रहने वाले है। 14. तौंतिया चन्द्रीभूड सकुनबरी। 15. अलमेचा– इनका कोई विशेष स्थान नही है और 16. कलामोर– गुजरात के रहने वाले है।[123]

सर्वप्रथम बुन्देलखण्ड में व्याघ्र देव ने इस राज्य की स्थापना बिक्रमी संबत 1290 में मडफा के सन्निकट बघेला बारी और बघेलिन गाँव के समीप की थी। कालान्तर में इन्होने अपनी राजधानी मडफा में स्थापित की इनके जेष्ठ पुत्र का नाम कर्णदेव था जिन्होने टोंस नदी के आस–पास का क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिया था। इनका विवाह रतनपुर के राजा सोमदत्त की कन्या से हुआ था जिसके उपलक्ष्य में इन्हे बाधवगढ़ दहेज में मिला था।

कर्णदेव के पुत्र का नाम वीर सिंह देव था इसकी मित्रता सिकन्दर लोदी से थी यह उसके दरबार मे आया जाया करता था इसने फतहगँज के निकट बीरगढ़ दुर्ग का निर्माण भी कराया तथा गौंड वंशीय नरेश संग्राम शाह को आश्रय भी प्रदान किया।

इसके पुत्र का नाम वीर भानुदेव था यह हुमायूँ का समकालीन था जब शोरशाह सूरी ने हुमायूँ को परास्त किया उस समय वीर भानू देव ने हुमायूँ के परिवार को अपने यहाँ रखा था। इसलिये शोरशाह शूरी इससे चिढ़ता था तथा उसने रीवाँ राज्य की राजधानी रीवाँ को जलालखाँ के आधीन कर रखा था।

जब हिन्दुस्तान में मुगलो की सत्ता स्थापित हुई उस समय कलिंजर में राजाराम चन्द्र बघेल का राज्य था इसने शेरशाह के दामाद अलीखाँ अथवा बिजली खाँ से वापिस ले लिया था इस समय बिजली खाँ शोरशाह सूरी की ओर से कलिंजर का सूबेदार था विक्रमी संबत 1612 में जब राम चन्द्र बघेल गद्दी पर बैठा। उस समय रहीम सूर ने रामचन्द्र बघेल पर चढ़ाई की इस युद्ध में रहीम शूर परास्त हुआ फिर भी रामचन्द्र ने इसके साथ अच्छा व्योहार किया और इसे अपने पास रखा इसके पश्चात अकबर के शासनकाल में रामचन्द्र बघेल ने कलिंजर के आस–पास का क्षेत्र अकबर के हाथ में आ गया।[124]

उसके पश्चात रीवाँ का राजा अमर सिंह भी आया था। यह विक्रम

संबत 1681 में गद्दी पर बैठा था। इसे रतनपुर के राजा प्रताप सिंह की कन्या व्याही थी। अमर सिंह विक्रम संबत 1697 में मरा और अनूप सिंह राजा हुआ इसका विवाह मिरजापुर के पास अंगोरी में मोहन चन्देल राजा की कन्या के साथ हुआ था इस पर ओरछे के राजा पहाड सिंह ने विक्रम संबत 1707 में चढाई की पर राजा अपनी निर्बलता के कारण युद्ध न कर भाग गया और एक पहाडी में जा छिपा।[125]

बुन्देलखण्ड में तुर्को का प्रभाव :– तुर्को के आगमन के कारण बुन्देलखण्ड में अनेक परिवर्तन देखने को मिले ये परिवर्तन निम्नलिखित है–

1. युद्ध कला में परिवर्तन :– पहले बुन्देलखण्ड के प्रशासक और राजा महराजे प्राचीन युद्ध पद्धति से युद्ध किया करते थे इनके अस्त्र–शस्त्र धनुष बाण तथा धातु से निर्मित अस्त्र–शस्त्र भाला, कटार तेग, तलवार, त्रिशूल, आदि हुआ करते थे। इन्हे अग्नेय अस्त्रो का ज्ञान नही था। तुर्को के आगमन के कारण इन्हे नई युद्ध प्रणाली का ज्ञान हुआ पहले यहाँ मौर्य सैन्य प्रणाली लागू थी इस सेना का शासन 30 अधिकारियों की एक समित के हाथ में था इस समित को छोटी–छोटी 6 उपसमितियों में विभाजित कर दिया था। जिनमें से प्रत्येक के 5 सदस्य होते थे यह समितियाँ सेना के इन 6 विभागों की अलग व्यवस्था करती थी। 1. नौसेना 2. आवागमन और रसद, 3. अश्वारोही सेना, 4. पैदल सेना, 5. रथी सेना, 6. हाथी सेना। इन 6 समितियों के तीसों सदस्य रूप से सम्पूर्ण सैनिक व्यवस्था के लिये उत्तरदायी होते थे।[126]

तुर्को के आगमन के पश्चात सैन्य व्यवस्था में परिवर्तन हुआ तुर्क सैनिक भारतीय सैनिकों से अच्छे थे और उनमें फूर्ती बहुत अधिक थी। इनके अस्श–शस्त्र और तुर्क अपनी अश्वारोही सेना के बेग और शक्तिशाली आक्रमण के लिये इतने विख्यात थे कि किसी भी गति की सुसज्जित, सुनियन्त्रित, तीव्रगामी, अश्वारोही सेना के लिये साधारणतया एशियाई मुहरें (तुर्क सवार) का प्रयोग किया जाने लगा था मुसलमान आक्रमणकारियों के साधारण सैनिको का अस्त्र दो टुकडो का धनुष होता था। ये टुकडे धातु के बन्द से जुडे होते थे। ये तीर ''तलवारों ढ़ालो और लम्बे बरछों तक को सरलता से भेद जाते थे '' तुर्की अमीर और उनके अश्वारोही जिरह बख्तर पहने रहते थे और तीर कमान तथा बरछों से लडते थें। उनके पास लम्बी तेज तलवारें भी होती थी।[127]

डा0 आशीर्वादीलाल के अनुसार मध्ययुग के प्रारम्भिक काल में

मुसलमानों ने किलों के घेरे डालने में अधिक वैज्ञानिक सूझबूझ का परिचय था उन्होंने एक विशेष प्रकार के लकडी के यन्त्र बनाये थे। जिससे वे किले के भीतर घिरे हुये लोगो पर बडे भारी–भारी पत्थर के गोले फेंका करते थे। ये तीर डेला फेकने के यन्त्र मिंजनिक अर्रांडा, गारगच और संगे मगरबी कहलाते थे। वे किले की दीवारों पर चढ़ने के लिये पशीब नामक ठोस पत्थरों को ढोको से दीवार सी भी बनाते थे।[128] इस युग्म क्षद्‌म युद्ध प्रणाली लागू हुई और लोग घात लगाकर हमला करने लगे दिन रात कभी भी युद्ध होते थे।

बुन्देलखण्ड में निवास करने वाली जातियों का उत्पीडन :– बुन्देलखण्ड में आर्यों और अनार्यो की अनेक जातियाँ निवास करती थी इसमें अधिकांश हिन्दू धर्मावलम्बी व्यक्ति थे। इनमें से कुछ व्यक्ति जैन और बौद्ध भी थे। तुर्क आक्रमणकारियों ने इनके धर्म स्थलो को नष्ट किया और इन्हे बलात मुसलमान बनाया और हिन्दू धर्म स्थलो को तोडकर उनको मस्जिदों में परिवर्तित कर दिया हिन्दुओं को परेशान किया गया उनकी कला संस्कृति को नष्ट करने का प्रयत्न किये गये उन पर जजिया कर जैसा अमानवीय कर थोपा गया अनेक प्रकार के आर्थिक प्रतिबन्धा लगाये गये इस समय हिन्दुओ की आर्थिक स्थित कमजोर हुई वे तुर्को से भयभीत रहने लगे गाय जिसे हिन्दू लोग पवित्र पशु मानते थे उनका बध किया जाने लगा भगवान की प्रार्थना उपासना करने वाले को वेवजय सताया जाने लगा।

उठ गये आलम से रूजक सिपाहिन को
उठि गये बँधैया सबै वीरता को बाने को
भूषण भनत धर्म धारा से उठि गये
उठि गये सिंगार सबै राजा रावराने को
उठिगे सुकवि सुशील उठिगे पशीले डील
फैले मध्य देश मे समूह तुरकाने को
फूटे भाल भिक्षुक के जू के यशवन्तराय
अरराय टूटे कुल खाम्भ हिन्दुवाने को।[129]

बुन्देलखण्ड में मुगलो का प्रभाव :– भारतवर्ष में मुगल सामाज्य का संस्थापक जहीरूद्दीन बाबर था उसका जन्म 14 फरवरी सन् 1483 ई0 को फरगाना में हुआ था। उसके पिता का नाम उमरशेख मिर्जा था जो तैमूर का वंशज था और माता का नाम कुतलुग निगार खानम था यह चंगेज खाँ की वंशज थी यह पिता की मृत्यु के पश्चात 11 वर्ष

4 माह की उम्र में राज्य का उत्तराधिकारी बना उसने भारत वर्ष में प्रथम आक्रमण 1519 में किया उसका दूसरा आक्रमण 1519 में ही दूबारा उत्तरी भारत में हुआ उसका तीसरा आक्रमण 1520 में हुआ इस आक्रमण के कारण पश्चिमी उत्तरी भारत वर्ष का भाग उसके आधीन हो गया उसका चौथा आक्रमण 1524 में हुआ यह आक्रमण उसने दौलत के निमन्त्रण पर किया उसका अन्तिम आक्रमण भारत वर्ष में 21 आप्रैल 1526 में हुआ यह युद्ध पानीपत मे हुआ इस युद्ध भयभीत होकर दौलत खाँ और गाजी खाँ मिलावत दुर्ग में छुप गये इसके पश्चात उसका युद्ध इब्राहीम लोदी से हुआ इब्राहीम लोदी के पास सैनिको की संख्या अधिक थी और बाबर के पास सैनिको की सख्या बहुत कम थी फिर भी विजय बाबर की हुई उसके पश्चात उसने भारत वर्ष में मुगल सत्ता का शुभारम्भ किया।

बाबर ने अपनी सत्ता को मजबूत करने के लिये अनेक दुर्गो को जीतने का अभियान चलाया उसके पुत्र हुमायूँ ने अविजित नगरों, दुर्गो और जिलों को अपने प्रमुख पदाधिकारियों में वितरित करने की बुद्धिमत्तापूर्ण योजना का अनुगमन किया और उनको उनकी सेना के साथ स्थानों पर अधिकार प्राप्त करने के लिए भेज दिया यह नीति एक दम सफल हुई। हुमायूँ ने सम्भल पर विजय पाली। मुहम्मद अली जंग ने रायरी को जीत लिया मेंहदी ख्वाजाने इटावा जीता सुल्तान मुहम्मद ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया और जुब्नैद बरलास ने धौलपुर पर झण्डा गाड दिया। ग्वालियर को तो हुमायूँ ने पहले ही जीत लिया था। अब केवल दो भयानक विरोधियों से सामना करना शेष था।[130]

बाबर की मृत्यु के पश्चात हुमायूँ मुगल साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना इसके समय में अनेक स्थलों पर अराजकता वातावरण था अनेक प्रान्तीय शासक और जागीरदार स्वतन्त्र हो गये थे का इस समय पश्चिमी बुन्देलखण्ड और मालवा का भाग बहादुरशाह के हाथ में था वह भाग हुमायूँ ने जीत लिया था उसके पश्चात उसने कलिंजर दुर्ग पर चढ़ाई की किन्तु शेरशाह शूरी से युद्ध करने के कारण उसे कलिंजर अभियान अधूरा छोडकर जाना पडा डॉ0 आशीर्वादीलाल के अनुसार कलिंजर का अभियान 1531 ई0 में प्रारम्भ हुआ तथा राज्याभिषेक के पश्चात छह मास के भीतर हुमायूँ बुन्देलखण्ड के कालिंजर दुर्ग को घेरने के लिये चल पडा। दुर्ग के शासक को अफगानों का शुभचिन्तक समझा जाता था यह घेरा कुछ महीनों तक पडा रहा और अन्त में हुमायूँ को सुलह करनी पडी। उसने राजा से जन–धन की हानि का मुआवजा लिया ताकि शीघ्र ही पूर्व में

अफगानों के उपद्रव का सामना करने के लिये वहाँ से चल दे। कालिंजर का अभियान एक बडी भूल थी। राजा को पराजित न किया जा सका और हुमायूँ अपने लक्ष्य की पूर्ति में असफल रहा। राजा आसानी से अपनी तरफ मिला लिया जा सकता था और उसको मित्र भी बनाया जा सकता था।[131]

कालिंजर में शोरशाह शूरी का आक्रमण :– कुछ समय के लिये हुमायूँ से दिल्ली की सत्ता छिन गयी थी और दिल्ली का बादशाह शेरशाह सूरी हो गया था उसने अपनी स्थित सुदृढ़ करने के लिये विक्रम संबत 1600 में कालिंजर पर आक्रमण किया मुसलमान इतिहासकार अहमद यादगार के अनुसार इस समय कालिंजर दुर्ग में बीर सिंह बुन्देला छिपा था जो शोरशाह सूरी का शत्रु था। किन्तु यह बात सत्य नही है इस समय कलिंजर दुर्ग का शासक कीर्ति सिंह चन्देल था जिसकी पुत्री का नाम दुर्गावती था इस किले को शोरशाह सूरी ने जीत लिया किन्तु तोपखाने मे आग लगने के कारण शोरशाह शूरी की यही मृत्यु हो गई उसके पश्चात शोरशाह का पुत्र स्लामाशाह उत्तराधिकारी बना। उसमें अपने विद्रोहियों को ग्वालियर दुर्ग में कैद किया कुछ समय बाद हुमायूँ दुबारा दिल्ली का बादशाह बना।[132] डॉ0 आशीर्वादीलाल के अनुसार शेरशाह ने कलिंजर के राजा से प्रार्थना की थी कि राजाबीर भानु को उसे सौप दिया जाय किन्तु उसकी यह प्रार्थना ठुकरा दी गयी,जिससे अफगान बादशाह को उसके बिरुद्ध कार्यवायी करने का अवसर प्राप्त हुआ।उसे (कालिंजर के राजा को)सजा देने के लिये शोरशाह कलिंजर की ओर तेजी से बढ़ा और नवम्बर 1544 ई0 में दुर्ग पर घेरा डाल दिया। सभी सम्भव उपाय करने क बावजूद दुर्ग पर उसका अधिकार नही हुआ और घेरा लगभग एक वर्ष तक पडा रहा। अन्त में दुर्ग की दिवालों को गोला बारूद से उडा देने के सिवाय शोरशाह को कोई अन्य मार्ग दिखायी नही दिया।

गोला बारूद की ढ़ेरी में जो शोरशाह के खडे होने के स्थाने के नीचे थी आ गिरा, जिससे भयंकर विस्फोट हुआ और शेरशाह बहुत बुरी तरह जल गया शीघ्र ही उसे उसके खेमें में ले जाया गया किन्त उसने अपने आदमियों को आक्रमण जारी रखने की आज्ञा दी। आक्रमण सफल हुआ और दिन छिपने तक कलिंजर का दुर्ग अफगानो के अधिकार मं आ गया। जब दुर्ग पर अधिकार होने और दुर्ग रक्षाको के कत्लेआम का समाचार शेरशाह को सुनाया गया तो ''प्रसन्नता और सन्तोष के चिन्ह

उसके चेहरे पर प्रकट होने लगे '' इसके तुरन्त बाद ही वह मर गया (22 मई 1545ई0)[133]

बुन्देलखण्ड में गौंड वंश का प्रभाव :— बुन्देलखण्ड में गौंडवंश की स्थापना मध्य युग में हुई तथा मुगलकाल में यह प्रथक सूबे के रूप में जाना जाता था पं0 गोरे लाल तिवारी के अनुसार मुसलमानों ने इनके प्रदेश को गोड़वाना नाम लिखा है। इनके मतानुसार उडीसा और खानदेश के बीच का प्रदेश गोंडवाना कहलाता था, किन्तु आजकल जिस देश का गोंडवाना कहते है वह नर्मदा के दक्षिण और ताप्ती तथा वर्धानाम की नदियों के उत्तर में है। पूर्व काल मे गौड लोगो का राज्य उत्तर मे हैं देवगढ़ और दुहाही तक पहुँच गया था । कविवर चन्द्र के पृथ्वी राजरासो मे गौड (गोंड)लोगो का नाम आया है।[134] चन्देल युग में यह राज्य दो भागों में विभाजित था इसका एक भाग चन्देलो के आधीन था। और दूसरा भाग कल्चुरियों के आधीन था गढ़ मण्डला में एक अभिलेख मोती महल में उपलब्ध हुआ है जिसमें गौंडो की वंशावली उपलब्ध होती है इस वंश का प्रथम शासक यादव राय था यह विक्रमी संबत 415 में इस वंश का शासक बना इसके पश्चात बहुत लम्बी अवधि तक इस वंश के शासको का कोई उल्लेख नही मिलता है इस वंश में निम्नलिखित शासक हुए।

माधव सिंह, जगन्नाथ, रघुनाथ, रूद्रदेव, बिहारीसिंह, नरसिंह देव, सूरजभान, वासुदेव, गोपालशाह, भूपालशाह, गोपीनाथ, रामचन्द्र, सुल्तान सिंह, हरिदेव, कृष्ण देव, जगतसिंह, महासिंह, दुरजनमल, यशकर्ण, प्रतापदित्य, यशचन्द्र, मनोहरसिंह, गोविन्द सिंह, रामचन्द्र, करन, रतनसिंह, कमलनयन, बीरसिंह, त्रिभवनराय, पृथ्वीराज, भारतीचन्द्र, मदनसिंह, उग्रसेन, रामसिंह, ताराचन्द्र, उदयसिंह ,भानुमित्र (भानुसिंह) भवानीदास, शिवसिंह, हरिनारायण, सबल सिंह, राज सिंह, दादीराय, गोरखादास, अर्जुनदास, और संग्रामशाह।[135]

इस वंश का सबसे शक्तिशाली राजा संग्रामशाह था यह स्वाभाव का कटु और दुष्ट भी था। उसने अपने पिता की हत्या कर दी थी। रीवाँ नरेश रामचन्द्र बघेल ने इसके ऊपर आक्रमण किया था। इसने विक्रमी संबत 1572 से लेकर 1585 तक राज्य किया इसने अपने बाहुबल से 52 गढ़ो पर अधिकार कर लिया था जिसका उल्लेख राजगौंड महराजा नामक ग्रन्थ में उपलब्ध होता है ये गढ़ निम्नलिखित थे—

1. गढ़ा 2. मारूगढ़ 3. पचेंलगढ़ 4. सिगौंर गढ़ 5. अमोदा गढ़ 6.

कनोजा 7.बगमार 8. पीपागढ़ 9.रामगढ़ 10. परतापगढ़ 11. अमरगढ़ 12. देवहार 13. पाटन 14. निमुआगढ़ 15. भवरगढ़ 16. वर्गी 17. घुनसौर 18. चौराई 19. ढोंगरताल 20. करबागढ़ 21. झंझनगढ़ 22.लाकागढ 23. सान्तागढ़ 24.दियागढ़ 25. बंकागढ़ 26. पवई करही 28. शाहनगर 29.धमौनी 29. हटा 30. मढ़िया दोन 31.गढ़ा कोटा 32. शाहगढ़ 33. गढ पहरा 34. दमोह 35. रहली 36. इटावा 37.थिमलासा 38. गनौर 39. बाडी 40. चौकीगढ़ 41. राहतगढ़ 42.मकरही 43. कारोबाग 44.कुरबाई 45.रायसेन 46. भवरसो 47.भूपाल 48.उपगढ़ 49. पनागढ़ 50. देवरी 51. गौर झामर ये दुर्ग गौंड राज्य में थे।[136]

राज संग्रमशाह पहले जलबपुर के सन्निकट मदनमहल में रहते थे उसके बाद वे दमोह जिले के सिंगौर गढ़ में रहने लगे इनके पुत्र का नाम दलपतशाह था इनका विवाह चन्देल नरेश की रूपवती कन्या रानी दुर्गावती से हुआ था। विवाह के चार वर्ष के उपरान्त दलपतशाह की मृत्यु हो गई और रानी दुर्गावती अपने अल्पवश्यक पत्र वीनरायण की ओर से शासन देखती थी उसने 14 वर्ष तक कुशलता से शासन किया उसके राज्य में प्रजा बहुत सूखी थी।

मुगल बादशाह अकबर का रानी दुर्गावती पर आक्रमण :— सन् 1564 ई0 में अकबर बादशाह ने अपने सेनापति आशफ खाँ को गौंड राज्य में आक्रमण करने के लिये भेजा यह राज्य पूरब में रतनपुर पश्चिम में रायसेन उत्तर में रीवाँ और दक्षिण में नागपुर की सैराहत तक फैला हुआ था। इस समय यहाँ की शासक रानी दुर्गावती थी जो महोबा के चन्देल शासक की राजकुमारी थी वह अपने पुत्र के नाम पर शासन देखाती थी उसके पास 200 हजार घुडसवार एक हजार हाथी और काफी बडी पैदल सेना थी इसमें अपने राज्य की राज्य बाज बहादुर और अफगानों से की थी सम्राट अकबर की ओर से गौडवाने में आक्रमण करने के लिये आसफ खाँ को 50 हजार सैनिक दिये गये थे नरही नामक स्थान पर दो दिन तक घोर युद्ध हुआ घायल स्थित में रानी दुर्गावती का पुत्र युद्ध से हट गया रानी ने शत्रुओं का मुकाबला शत्रुओं से किया रानी को दो तीर आकर लगे जिससे वह घायल हो गई अन्त में छूरा भोंककर रानी दुर्गावती ने अपनी आत्म हत्या कर ली अन्त में बीर नरायण भी बहादुरी से लडा और मारा गया डॉ0 आशीर्वादीलाल के अनुसार उसके राजमहल की महिलाओं ने जौहर—ज्वाला में जलकर अपने सतीत्व की रक्षा की। आसफ खाँ के हाथो लूट का बहुत सा सामान

लगा, जिसमें सोना,चाँदी, हीरे, जवाहरात, तथा 1000 हाथी थे। उसने केवल 200 हाथी बादशाह के पास भेजे और शेष सामान सामग्री वह स्वयं पचा गया। इस समय अकबर इतना समर्थ नही था कि आसफ खाँ की इस दुष्टता के लिये उसे दण्ड देता।[137]

रानी दुर्गावती और वीर नरायन के मृत्यु के पश्चात के गौंड राज्य के असितित्व में रहा किन्तु इसमें कोई महत्वपूर्ण शासक नही हुआ।

सम्राट अकबर का कलिंजर दुर्ग पर अधिकार:—

सन् 1569 में सम्राट अकबर ने कलिंजर दुर्ग पर आक्रमण किया उत्तरी भारत में यह दुर्ग अभेद्य माना जाता था इस दुर्ग में शेरशाह शूरी का प्रणान्त हुआ इस समय यह राजा रामचन्द्र बघेल के अधिकार में था राजा रामचन्द्र ने अकबर का मुकाबला नही किया और कलिंजर अकबर को सौप दिया इसे इलाहाबाद के पास की जागीर दे दी गई और मजनूखाँ कलिंजर का शासन देखने लगा।

बुन्देलखण्ड में बुन्देलों का राज्य :— वर्तमान बुन्देलखण्ड बुन्देले शासको के नाम से जाना जाता है। उन्होने अपना राज्य यहाँ बारहवीं शताब्दी के बाद स्थापित किया जिसका वर्णन लाल कवि द्वारा रचित छत्रप्रकाश मे उपलब्ध होता है इस वंश की उत्पत्ति के सन्दर्भ में यह विवरण उपलब्ध होता है कि इनकी उत्पत्ति भगवान राम के पुत्र लव से हुई।

रामचन्द्र के पुत्र सुहाये, कुश लव भए समत ए गाये।
वंश कुल कलश भये छवि छत्र, अवधपुरी नृप घने गिनाए।।[138]

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार ये लोग सूर्य वंशी थे इस वंश में गहर देव के नाम के राजा हुए जिनसे बुन्देलो का वंश चला कृष्ण कवि के अनुसार यह वंश हरिब्रम्न के पुत्र महिपाल से चलता है। इसके पश्चात कुछ पीडियों उपरान्त इसी वंश में विहंगराज या बीतिराज नाम के राजा होते है। ओरछा के इतिहास के अनुसार बीतिराज से लेकर सन् 674 के बाद लगभग 10 राजा काशी के गद्दी पर बैठते है इसी वंश में कर्णपाल नाम के राजा होते है। जिनके तीन पुत्र वीर,हेमकरण और अदिवर्मा होते है। बीतिराज से ले करके कर्णपाल तक का समय सन् 674 से लेकर सन् 1048 के मध्य का है।[139] कुछ अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों में भी इनके उत्पत्ति और विकास के सन्दर्भ में उदाहरण मिलते है।

अ— छत्रशाल, लेखक कु0 कन्हैया जू0 संस्करण 1925

ब— उर्दू तवारीख लेखक मुंशी श्यामलाल— संस्करण 1884

स– क्षत्रप्रकाश– लेखक– लालकवि संस्करण 1714

द– तेजसिंह प्रकाश, लेखक तेजसिंह संस्करण 1839

य– ओरछा का इतिहास– लेखक अज्ञात संस्करण 1904

र– साहित्य सागर– लेखक बिहारी कवि संस्करण 1939

ल– वीर चरित्र, लेखक– केशवदास संस्करण 1607

ह– बुन्देलखण्ड गजेटियर

क्ष– राज्य प्रशस्ति महाकाव्य

इस वंश में की वंशावली इस प्रकार उपलब्धा होती है।

बुन्देलो का वंश

ओरछा के राजाओं का वंश क्रम

पंचम सिंह
|
बीर सिंह
|
करन पाल
|
अजुर्न पाल
|
सोहन पाल
|
सहजेन्द्र
|
नानकदेव
|
पृथ्वीराज
|
रामचन्द्र
|
मेदनीमल
|
अर्जुनदेव
|
मलखान

राजा रूद्र प्रताप

भारती चन्द्र उदयाजीत भूपतशाह चन्द्रहास घनश्याम भैरवदास

मधुकरशाह कीरतशाह अमानदास दुर्गादास प्रयागदास खंडेशव
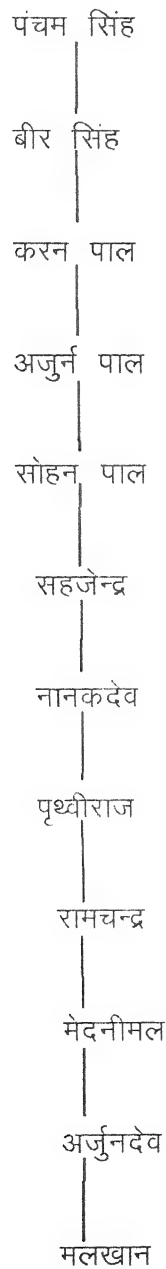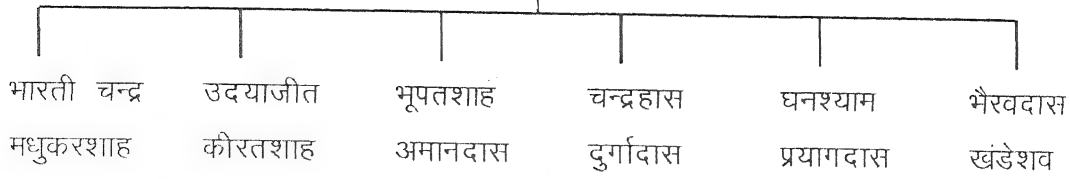
दतिया शाखा

भगवान दास (दतिया राज्य के संस्थापक) सन् 1626–164

शुभकरन (1640–1678) पृथ्वीराज धुरअंगद (130) शक्ति सिंह
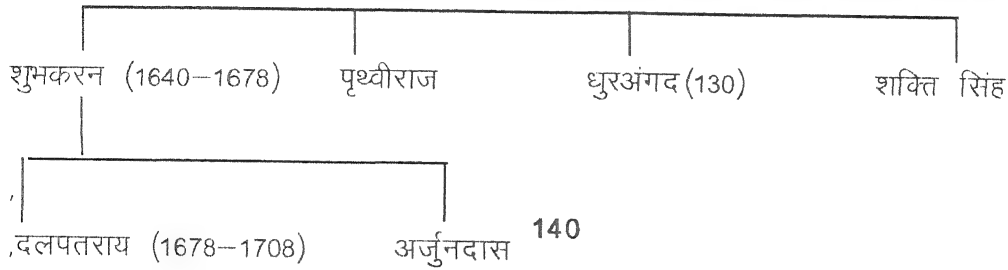
,दलपतराय (1678–1708) अर्जुनदास **140**

इस वंश में सर्वशक्ति नरेश वीर सिंह जी देव हुए है इन्हे सर्व प्रथम बरौनी की जागीर उपलब्ध हुई थी उसके पश्चात इन्हे ओरछा का राज्य उपलब्ध हुआ इन्होने अपनी शक्ती से सम्राट अकबर को आतंकित कर रखा था इस समय ईची खाँ एरच का जागीरदार था और ग्वालियर का राजा आसकरन था इनके युद्ध उनसे कई बार हुये इन्होने अबुल फजल का बध भी कराया था अकबर का पुत्र जहाँगीर इनका मित्र था। उसके नाम पर इन्होने दतिया तथा और महलो का निर्माण भी कराया बीरसिंह जी देव आजादी पसन्द करते थे उनका यह मानना था कि बुन्देलखण्ड में मुसलमानों की सत्ता नही होनी चाहिये।

बुन्देलनरेशो में शक्तिशाली नरेश चम्पतराय भी हुये थे छत्रशाल के पिता थे पहले इन्होने मुगलो को सहयोग प्रदान किया था किन्तु जब मुगलो की नियत में खोट देखी उस समय चम्पतराय ने मुगलो की मदद करना बन्दकर दी इन्होंने बराबर शाहजहाँ से युद्ध किया कई बार उन्हे बुन्देलखण्ड की सीमा से बाहर खादेडा ऐसे बीर नरेश चम्पतराय का जन्म विक्रमी सम्बत 1640 में ओरन गाँव में हुआ था। इन्हे ओरछा राज्य से छोटी सी जागीर मिली थी। जिसकी कोई खास आमदनी नही थी चम्पतराय ने अपने बाहुबल से राज्य का विस्तार किया और उनका युद्ध औंरगजेब से कई बार हुआ औंरगजेब चम्पतराय से मित्रता करना चाहता था और इसके लिये प्रयत्न भी किये गये किन्तु प्रयास असफल रहे विक्रमी संबत 1721 में चम्पतराय के शत्रुओ ने घेरा जहाँ उन्होने स्वतः

आत्महत्या प्राण त्यागे इसी समय इनकी पत्नी ने भी अपने प्राण त्याग दिये।

इस वंश के तीसरे शक्तिशाली नरेश छत्रशाल थे जो चम्पतराय के पुत्र थे ये अपने पिता के समान बहादुर और निर्भीक थे इनका जन्म विक्रमी संबत 1705 को कडेरा ग्राम से तीन कोस दूर मोर पहाडी के जंगल में हुआ था। बचपन से ही इन्होने साहसी जीवन जिया तथा पालन पोषण मामा के घर में हुआ छत्रशाल के कई बडे भाई भी थे जिनसे जिनसे उनकी मुलाकात हुई थी मुसलमानो का हिन्दुओ के प्रति दुर्व्योहार देखकर वे दुःखी हुये तथा उन्होने यह प्रयत्न किया कि वे मुगलो के विरूद्ध एक अभियान का सूत्र पात्र करे।

छत्रशाल की मुलाकात शिवाजी से हुई उनकी यह मुलाकात भीमा नदी के तटपर हुई इस अवसर पर शिवाजी ने छत्रसाल को एक तलवार भेट की और आशीर्वाद दिया छत्रशाल कवि भूषण के माध्यम से शिवाजी से प्रेरित हुये थे।[141]

महाराजा छत्रशाल ने बुन्देले शासको में एकीकरण करने का प्रयत्न किया उनकी इच्छा थी की ओरछा दतिया और पन्ना राज्य एक साथ मिलकर मुगलो का मुकाबला करे इनका युद्ध ग्वालियर में तैनात मुगल सूबेदार मुनौवर खाँ से हुआ। इसके पश्चात इनका युद्ध रणइलाखाँ से हुआ उसके पश्चात इनका युद्ध तहबर खाँ से हुआ इनकी मलाकात प्रणमी सम्प्रदाय के प्रवर्तक प्राणनाथ से हुई जो बाद में छत्रशाल के गुरू हए छत्रशाल ने अपने बाहुबल पर अनेक मुगल सरदारो से युद्ध किया इनका अन्तिम युद्ध मुहम्मद बंगस से 1728 में हुआ इस युद्ध मं मराठो ने छत्रशाल की मदद की। छत्रशाल जब तक जीवित रहे उनका युद्ध बराबर मुगलो से चलता ही रहा जब बंगस ने छत्रशाल को अपने आधीन करना चाहा उस समय उसके माध्यम से यह सन्देश तदयुगीन मुगल बादशाह के पास भेजा गया।

देवगढ़ देश नाही दाक्खिान नरेश नाही,
चाँदबाद नही जहाँ धाने महल पाई हो।
सौसागर सान नाही देखान को धान नाही
जहाँ तुम पाहुने लै बहुतक उठ धाइहो।।
मैं तो सुन चंपत को युद्ध बीच लैंहों हाथ
यही जिय जान उलटी चौथ दे पठाइहो

लिखा दौ परवाना महराजा छत्रशाल जू ने।

महाराज छत्रशाल की मृत्यु 20 दिसम्बर सन् 1731, शुक्रवार समय 4 बजे शाम पौष सुदी विक्रमी संबत 1788 को हुआ था।[142]

6. बुन्देलखण्ड की राजनीतिक व्यवस्था तुर्क और मुगलकाल के पश्चातः—

औरगजेब जब दिल्ली की गद्दी में बैठा उस समय उसने यह प्रयत्न किया कि वह एक कट्टर सुन्नी मुसलमान की भाँति हिन्दुओं को दबाये हिन्दुओं के धर्म स्थल नष्ट करे और उन्हे मुसलमान बनने के लिये मजबूर करे उसने ऐसा किया भी पं0 गोरे लाल तिवारी के असार औरगजेब हिन्दुओं को कष्ट देता था इससे हिन्दू लोग भी नाराज हो गये थे। औरगजेब के मरते ही राज्य शासन शिथिल हो गया और सूबेदार लोग स्वतन्त्र बनने का प्रयत्न करने लगे ऐसे समय में मुअज्जम ने देशी राजाओं को मिलाकर उनसे सहायता लेने में ही अपना भला समझा। उसने शाहू महाराज को कैद से छुटकारा दे दिया। शाहू महराज शिवाजी महाराज के नाती थे। इन्हे औरगजेब में दिल्ली में कैद कर लिया था।[143]

औरंगजेब और उसके उत्तराधिकारियों को बुन्देलखण्ड से हटाने के लिये एक साझा नीति की आवश्यकता थी इस साझा नीति के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड के नरेश उनकी सहायता लेना चाहते थे जो मुगलो के विरूद्ध थे।

मराठों का सहयोगः— औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात मुगलो की स्थित कमजोर होती गयी इसके विपरीत महाराष्ट्र और बुन्देलखण्ड में हिन्दू राज्य शक्ति का विस्तार होता गया बहादुरशाह की मृत्यु विक्रमी संबत 1749 में हुई उसके पश्चात फरूकशियर दिल्ली का बादशाह बना यह नाम मात्र का बादशाह था। इसकी सत्ता का संचालन अब्दुल और हुसैन अली सैय्यद वंश चलाते थे इधर सैय्यद बन्धुओ ने अपने शत्रु को मरवाने का प्रयत्न किया इस समय मराठो की शक्ति का विस्तार हो रहा था। खाडे राव दभाडे कन्ठा जी कदम और परसोजी भोसले इनके प्रमुख सरदार थे इस समय मुगलबादशाह भी चाहता था कि मराठो से उनकी सन्धि हो विक्रमी संबत 1776 में फरूक शियर का युद्ध मराठो से हुआ इस युद्ध में फरूक शियर मारा गया इस समय मुगलों ने मुहम्मद बंगस की सहायता ली उसे इलाहाबाद का सूबेदार बनाया गया उसके अधिकार में बुन्देलखण्ड के कुछ भाग भी आते थे उसने बुन्देलखण्ड में अनेक बार आक्रमण किया इस समय कोंच का जागीरदार दलेलखाँ था उसका परिवार कुछ दिन पूर्व

मुसलमान बना था और वह छत्रशाल पर श्रद्धा भी रखता था। कुछ बुन्देली शासको ने मुहम्मद बंगस की भी सहायता की थी जो गलत थी समय पर मराठों की सहायता छत्रशाल को मिल जाने के कारण छत्रशाल के सम्मान की रक्षा हो पायी थी कालान्तर में छत्रशाल ने अपने राज्य की विभाजन हृदयशाह जगतराय और मराठों के बीच में किया इस बीच पन्ना में अनेक बुन्देले राजा हुये जिनके सम्बन्ध मराठो से बने रहे।

बुन्देलखण्ड में मराठो का राज्य :– महाराजा होलकर जो बाजीराव पेशवा के सरदार थे विक्रमी संबत 1792 में आगरा में आक्रमण किया तथा वहाँ के सूबेदार मुजफ्फर खाँ तथा खान दौरान को परास्त किया जिसके कारण मुगलो का यह क्षेत्र मराठो के अधिकार में आ गया जगतराय और हृदयशाह भी मराठो को सहयोग देते रहे कुछ समय पश्चात सागर झाँसी कालपी मऊरानीपुर बाँदा और कर्वी का क्षेत्र मराठों के अधिकार में आ गया मराठों की ओर से यहाँ का शासन हरी विट्ठल गिणकर और कृष्ण जी अनत तांबे देखते थे। अनेक बुन्देलखण्ड के नरेश इन्हे चौथ भी दिया करते थे पं0 गोरलाल तिवारी के अनुसार इस समय गोपालराव बर्वे, अन्नाजी माणकेश्वर, विट्ठल शिवदेव विंजूरकर, मल्हारराव होल्कर, गंगाधर यशंवत और नारेशंकर ये मराठे प्रसिद्ध सरदार थे।

गोविन्द राव पंत ने सागर और उसके आस–पास का प्रान्त अपने लडके बालाजी गोविन्द के अधिकार में कर दिया। सागर बालाजी की सहायता के लिये रामराव गोविन्द, केशव शंकर कान्हेरे, काजीराम करकेर, रामचन्द्र गोविन्द चांदोरकर इत्यादि कर्मचारी थे। सागर की देखरेख इनके सुपुर्द करके गोविन्दराव पंत अपने छोटे लडके गंगाधर गोविन्द को साथ लेकर कालपी के समीप यमुना पर अंतर्वेद में एक बडी सेना के साथ पहुँचे उस समय अंतर्वेद में रोहिला लोगो का राज्य था। गोविंदराव पंत ने रोहिलों को हराया और मानिकपुर तथा खुरजा, अपने अधिकार में कर लिया। कोडा जहानाबाद और इलाहाबाद पर भी मराठे अपना अधिकार जमाना चाहते थे, परन्तु यहाँ पर मुसलमानों ने मराठों को रोका।[144] जिन मराठो का राज्य यहाँ रहा उनकी वंशवली इस प्रकार उपलब्ध होती है–

1—वंशावली विसाजी गोविन्द चांदोकर सागर सुबेदार अंताजीपंत ------

चान्दोरकर गोत्र भारद्धज

गोविन्द सं0 1821 | विट्ठल सरदार पानीपत मोहीय पर आए | कृष्णा जी

मा0 सु0 1—1681 सं0 1840शके

गोविन्द सं0 1821 — रामचन्द्र सं0 1740 चिटणीस; शिवाजी सन् 1757 में सागर की व्यवस्था स्री भागीरथी बाई कप्या गोविंद पंत साहेब बुन्देले

विट्ठल — सदाशिव, गणेश, व्यंबक

व्यंबक — शिवराय

गणेश — दत्तक, सिदेश्वर, विनायक राव सुभेदार सागर

दत्तक — गोविंन्द उर्फ बाबू साहेब दत्तक लिए

विनायक राव सुभेदार सागर — मेरेश्वर, गणेश, यमुना

मेरेश्वर — कृष्णराव दत्तक, व्यंकटराव

गणेश — रामचन्द्र, लक्ष्मण
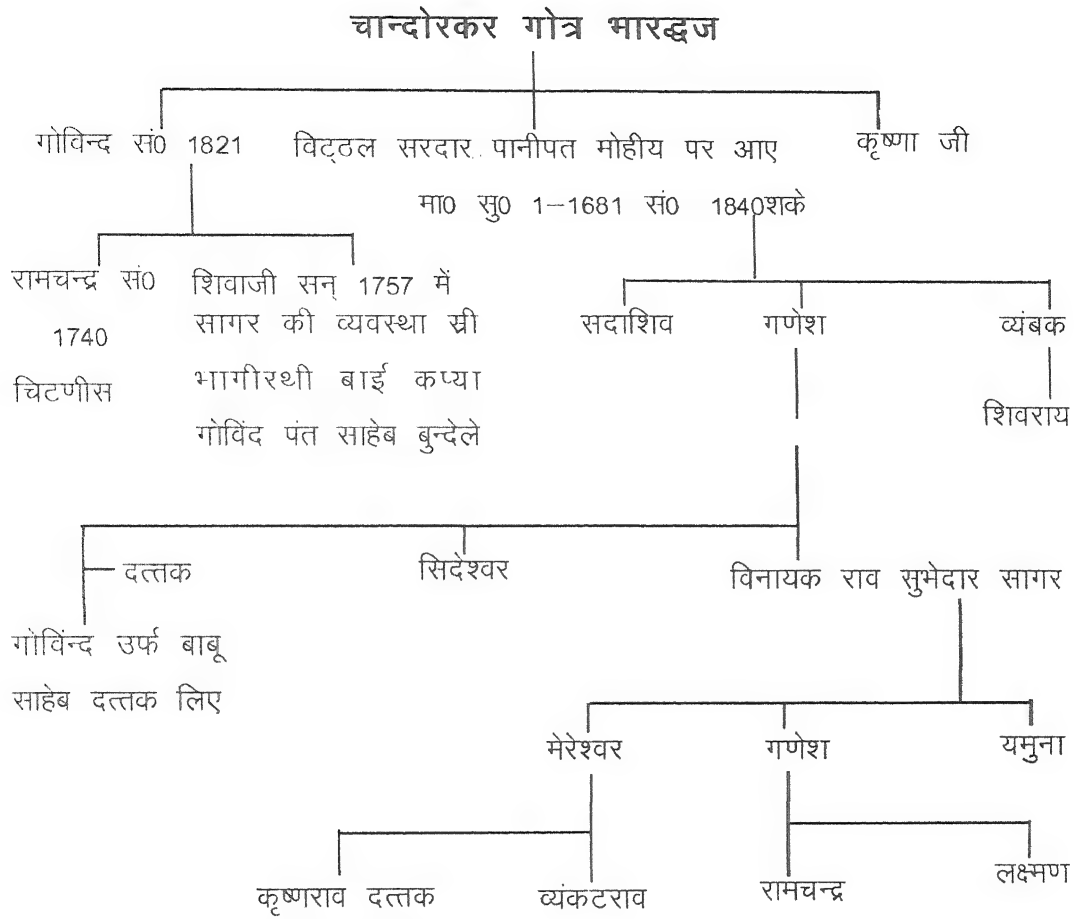
वे दिये थे रामचन्द्र राव राजा झाँसी।

यह वंशावली के सुबेदार घराने से मिली हैं।

इसी प्रकार की एक वंशावली मराठा साम्राज्य की झाँसी में उपलब्ध हुई हैं।

1—रामचन्द्र की वंशावली इस प्रकार है—

श्री

वंशावली राजे झाँसी वाले नेवालकर गोत्र गौतम

राजा हरी दामोदर नेवालकर (पान्होला के)

शिवराम राव भाऊ राजा (स्त्री सखूबाई)

कन्या भृ0 शाहोर नागपुर

कन्या भृ0 न0 गोविन्द चांदोकर

रघुनाथ राजे

कृष्णराव उर्फ छोटे भाऊ (स्त्री सरस्वती सं0 1911

गंगाधर राव राजे मृत (स्त्री महारानी लक्ष्मीबाई मृत सन् 1857 लश्कर में

रघुनाथ राजे — अलीबहादुर, वेश्यापुत्र, नसरत जंग

गंगाधर राव

दामोदर राव दत्तक (वंश इन्दौर में)

कृष्णराव

ताई ड0 गंगाबाई भृ0 मोरेश्वर राव विनायकराव सूबेदार सागर

रामचन्द्र राव राजेमृत सं0 1882

कृष्णराव सूबेदार सागर दत्तक नाजापज्ञ करार दिया गया

कृष्णराव सागर (दत्तक रामचन्द्र राव राजे झाँसी)

व्यंकटराव सूबेदार सागर
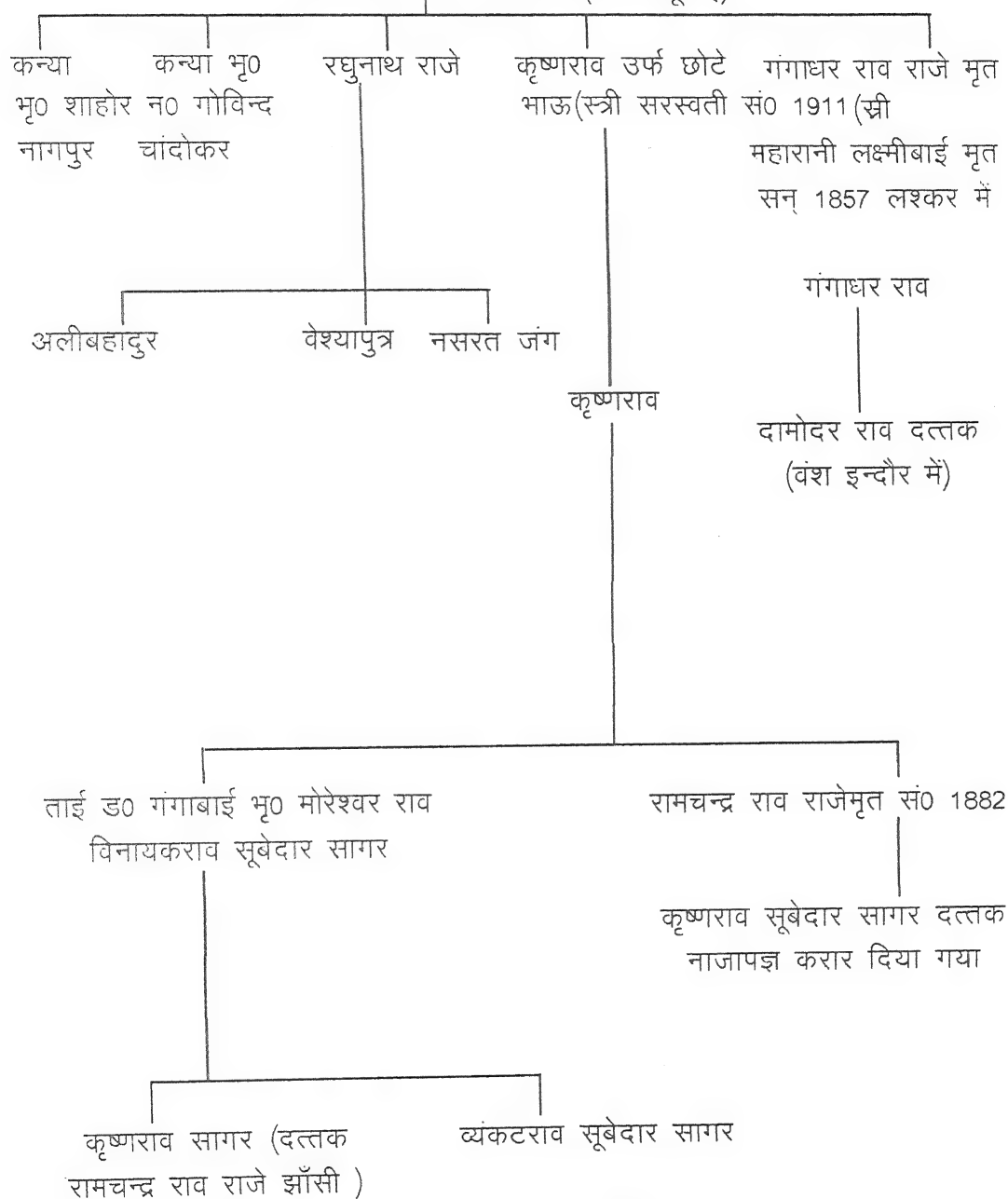
यह वंशावली सागर के सूबेदार घराने से मिली है।

बुन्देलखण्ड में मराठों का राज्य ग्वालियर, कालपी, झाँसी, सागर, बाँदा, और कर्वी में था।

बुन्देलखण्ड़ में रियासतों का उदय या आस्तित्व–

जब बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों का शासन नही स्थापित हुआ था उस समय यहाँ छोटे बडे मिलाकर 148 राज्य थे। इनमें ग्वालियर, इन्दौर, भूपाल, धार, देवास, जाबरा, ओरछा, दतिया, समथर, और रीवां, राज्य थे।इनकी अंग्रेजों से सन्धियाँ थी कहीं–कहीं पर अंग्रेज लोग अपने पोलिटकल एजेन्ट भी रखते थे इनमें निम्न लिखित राज्यों से अंग्रेजों की सन्धियाँ हुई थी।

राज्य	सन्धि	सनदी	राक्षित	योग
ओरछा, दतिया, समथर, आलमपुर (इन्दौर)	4	–	–	4
पन्ना, अजयगढ़, चरखारी, विजावर, बावनी, छतरपुर, टोडी फतेहपुर बंका पहाडी	–	6	–	6
जिगनी, लुगासी, बीहट, बेरी, अलीपुरा, गौरहार गर्रौली, और नैगुँवा, रिबई तथा खनियाधाना,	–	14	–	14
बिलहरी । –	–	–	1	1
योग	4	20	1	= 25
बरौधा, नागौद, मैहर, सुहावल, कोठी, जसो	1	3,	0	4
पालदेवा – तराव	–	8	–	8

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित जप्त हो चुके हैं।

चन्देरी, तैतपूर, शाहगढ़, चिरगाँव, झाँसी, जालौन, खड़ी, पुरवा, निजयराघौगढ़, तरौहा, हिम्मतबहादुर।[147]

बुन्देलखण्ड के रियासतों कें सन्दर्भ में पं0 गोरेलाल तिवारी यह विवरण प्रस्तुत करते हैं।

बन्देलखण्ड के देशी राज्यों का वर्गक्षेत्र , जनसंख्या, आमदनी और राजा की उपाधियाँ

नाम राज्य	वर्गक्षेत्र वर्गमील	जनसंख्या	आमदनी रूपया	राजाओं की उपाधियाँ जो अग्रेजों ने दी है
ओरछा	2079	284948	10 लाख	हिज हाइनेस
दतिया	911	148658	18 लाख	"
समथर	180	33216	3 1/2 लाख	"
पन्ना	2596	197600	10 1/4 लाख	"
चरखारी	880	123405	6 3/4 लाख	"
बिजावर	973	111723	3 लाख	"
बावनी	121	19723	2 लाख	
छत्रपुरा	73	14580	50 हजार	राजा
बॉका पहाडी	5	1613	4 हजार	दीवान
बेरी	32	4621	40 हजार	राव
बीहट	16	4786	27 हजार	राव
बिजना	8	1451	7 हजार	दीवन
धुरवाई	15	1880	14 हजार	"
गरौंली	38	4817	35 हजार	"
गौरिहार	71	9486	50 हजार	पंडित
जिगनी	20	3642	14 हजार	राव
लुगासी	45	6182	30 हजार	दीवान
नैगवाँ	12	2113	14 हजार	कुँअर
सरीला	35	6081	60 हजार	राजा
टोडी फतेहपुर	36	6580	29 हजार	दीवान

बाँदा में नवाबी की स्थापना :– छत्रशाल की पुत्री मस्तानी का विवाह सन् 1728 में बाजीराव पेशवा के साथ हुआ था उस समय बाँदा और कर्वी की जागीर बाजीराव पेशवा को जागीर के रूप में दी गयी थी। कुछ समय तक इस जागीर का शासन मराठों की ओर से कृष्ण अनंत ताँबे देखता रहा है मस्तानी के पुत्र का नाम समसेर बहादुर प्रथम था इसकी मृत्यु सन् 1761 में पानीपत के युद्ध में हुई थी। यह उस युद्ध में मराठो की ओर से लडा था समशेर बहादुर के पुत्र का नाम अली बहादुर था यह सिन्धियाँ की सहायता के लिये सन् 1785–86 में ग्वालियर आया हुआ था। यहाँ इसकी मुलाकात हिम्मत बहादुर गोसाई से हुई वह उसी के साथ सन् 1787 मे बाँदा आया और उसने यहाँ नवाबी की स्थापना की इस समय पन्ना में राजा सर्मेद सिंह का राज्य था सोनेशाह को पन्ना महराजा जी की कृपा से छतरपुर की जागीर उपलब्ध हुई थी। बीर सिंह विजावर के जागीरदार थे पृथ्वीराजशाह गढ़ की जागीर देखते थे और गढ़ा कोटा मराठों के हाथ में था नवाब अली बहादुर ने विक्रमी संबत 1846 में हिम्मत बहादुर गोसायी के सहयोग से अपनी नवाबी कायम की।

इस समय बाँदा में बखत सिंह का राज्य था गुमान सिंह ने इन्हे गोद लिया था ये दुर्गा सिंह के पुत्र थे इनकी ओर से सेनापति नोने अर्जुन सिंह राज व्यवस्था देखाते थे ये अत्यन्त बहादुर भी थे इनका युद्ध बाँदा नवाब अली बहादुर से विक्रमी संबत 1849 में हुआ इस यद्ध में हिम्मत बहादुर ने अली बहादुर का साथ दिया इस तरह से बाँदा अली बहादुर के हाथ में आ गया। बाँदा की यह नवाबी अली बहादुर द्वितीय के समय तक बनी रही किन्तु इनकी सैन्य सन्धियाँ अंग्रेजो से हो गई।[149]

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजो का आगमन :– मुगल शासन के अन्त होने के पश्चात यहाँ अराजकता का वातावरण बन गया था इधर बीर सिंह जी देव चम्पतराय और छत्रशाल जैसे शक्तिशाली नरेशो की मृत्यु के पश्चात यहाँ देशी नरेशो को स्वतन्त्र होने का अवसर प्रदान हुआ इसी समय अंग्रेजो ने भारतीय नरेशों की आपसी फूट से फायदा उठाने की बात सोची इस समय ईस्टइण्डिया कम्पनी एक व्यवसायिक कम्पनी थी। जो कभी–कभी राजनैतिक दृष्टि से हस्ताक्षेप कर दिया करती थी। विक्रमी संबत 1834 में यहाँ की राजनीतिक व्यवस्था बहुत कमजोर थी जिसका लाभ अंग्रेजो ने उठाया अंग्रेजो की एक सेना कलकत्ता से दक्षिण की ओर जाना चाहती थी जिसे कालपी होकर जाना था इस समय कालपी में

गंगाधर गोविंद का अधिकार था विक्रमी सं0 1835 में अंगेजो ने कालपी पर आक्रमण कर लिया मराठो ने इस आक्रमण का साहस के साथ मुकाबला किया इसी समय कलिंजर के किलेदार कायम जी चौबे को अपनी ओर मिला लिया तथा कर्नल डाँड़ै के नेतृत्व में अंगेजी सेना केन नदी के किनारे–किनारे दक्षिण की ओर चली गयी।

गठेवरा का युद्धः– इस समय पन्ना राज्य में उत्तराधिकार के लिये आपसी संघर्ष प्रारम्भ हुआ कायम जी चौबे ने सर्मेद सिंह का पक्ष लिया तथा बाँदा के राजा घुमान सिंह ने अपने सेनापति इन्होने अर्जुन सिंह को सर्मेद सिंह की सहायता के लिये भेजा यह युद्ध गठेवरा में विक्रमी संबत 1840 में हुआ इस युद्ध में अनेक बहादुर व्यक्ति मारे गये इतिहासकार इसे बुन्देलखण्ड का महाभारत कहते है। सारा बुन्देलखण्ड बीरों से खाली हो गया। लडते हुये नोने अर्जुन सिंह के शरीर में 18 घाव लगे। नोने अर्जुन सिंह की विजय हई। बेनी हुजूरी युद्ध में मारा गया। पन्ना का राज्य सर्मेद सिंह को मिल गया। अंग्रेजी सेना को कालपी से गुजरते समय बुन्देलखण्ड की परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान हो गया था। उन्होने समझ लिया था कि आपसी फूट का फायदा उठाकर बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासन स्थापित किया जा सकता है। [150]

बुन्देलखण्ड में 1857 की क्रान्तिः– बुन्देलखण्ड में देशी नरेशो के साथ अंग्रेजो की सन्धियाँ हुई थी ये सन्धियाँ बाँदा के नवाब अली बहादुर के पुत्र समसेर बहादुर झाँसी के सूबेदार शिवरावभाऊ ओरछा नरेश, दतिया नरेश, समपर नरेश, पन्ना नरेश, अजयगढ़ नरेश, चरखारी नरेश, विजावर नरेश, जैतपुर नरेश, छतरपुर नरेश, कलिंजर के जागीरदार, पथरापाल देव जागीरदार तराव के जागीरदार, धसौदा के जागीरदार, चौबेपुर के पहरा के जागीरदार, कामता रजोला के जागीरदार, मैहर के जागीरदार, गौरहार के जागीरदार, पाथर कछार के जागीरदार, जस्तो के जागीरदार, अलीपुरा के जागीरदार, अठभैंया के जागीरदार, चिरगाँव के जागीरदार टोरी फतेहपुर के जागीरदार, धुरवई के जागीरदार, विजना के जागीरदार, बंका पहाडी के जागीरदार बेंडी के जागीरदार, बीहट के जागीरदार, गलौली के जागीरदार, खनिया धान के जागीरदार, नयगवाँ रिवई के जागीरदार, कदौरा छावनी के जागीरदार लुगासी के जागीरदार, सरीला के जागीरदार, जिगनी के जगीरदार से हुई थी। सन् 1804 के बाद मराठो और अंग्रेजो में जो सन्धियाँ हुई उसके अनुसार अंग्रेजो की राजसत्ता यहाँ स्थापित हो गई और मराठो की राजसत्ता का अन्त हो गया बुन्देलखण्ड के मराठे जो

यहाँ शासन करते थे निशक्त हो गये।

कोई भी क्रान्ति बिना किसी कारण के नही होती जब व्यक्ति वादा खिलाफी, और झूठ से परेशान हो जाता है तब वह उग्र हो जाता है। 1857 की क्रान्ति का भी कुछ यही कारण था झाँसी के मराठा नरेश गंगाधर राव को गोद लेने का अधिकार न दिया जाना उनके राज्य को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया जाना बिठूर के नाना साहब की पेन्सन का बन्द कर दिया जाना हिन्दू और मुसलमानों के धर्म में वेबजय हस्ताक्षेप करना गाय और सुअर की चर्बी युक्त कारतूसो का दिया जाना धर्म में हस्ताक्षेप करना जो सैनिक भारतीय फौज में काम करते थे। उनके साथ अपमान जनक व्योहार किया जाना आदि क्रान्ति के प्रमुख कारण थे। इसके पहले सन् 1842 के लगभग जैतपुर के राजा परीक्षित और चिरगाँव के राजा बखतबली ने अंग्रेजो के विरूद्ध विरोध किया था इसे दबा दिया गया था।

1857 की यह क्रान्ति मेरठ छावनी से होती हुई बुन्देलखण्ड की पावन भूमि पर आई थी जिसका सुभारम्भ मेरठ में मंगल पाण्डे ने किया था बुन्देलखण्ड में यह क्रान्ति का शुभारम्भ करने के लिये झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई तात्या टोपे कालपी के राव साहब पेशवा बिठूर के नाना साहब पेशवा तथा बाँदा के नवाब अली बहादुर द्वितीय को क्रान्ति का सूत्रधार माना गया। इस समय बहादुर शाह जफर को भारतराष्ट्र का बादशाह घोषित किया गया और यह नारा दिया गया खल्क खुदा का बादशाह का और दुआ अपने अपने क्षेत्रीय नेताओ को इस अवसर पर क्रान्ति को सफल बनाने के लिये जनता के मध्य में कमल के फूल और रोटी वितरित की है। यह क्रान्ति प्रारम्भ हुई हर जगह अंग्रेजो के विरूद्ध लडाइयाँ लडी गयी बाँदा के नवाब की सेना, झाँसी की रानी की सेना, और राव साहब पेशवा की सेना तथा तात्या टोपे की सेना गोपाल पुरा होती हुई ग्वालियर पहुँची ग्वालियर में यह युद्ध लडा गया कतिपय कारणों से रानी झाँसी का बलिदान हुआ तथा सन् 1859–60 तक यह क्रान्ति पूरी तरह दबा दी गयी तात्या टोपे और बाँदा के नवाब अली बहादुर द्वितीय दक्षिण की ओर चले गये बहादुर शाह जफर का लडका अरब देश को पलायन कर गया बहादुर शाह जफर को बन्दी बनाकर वर्मा भेजा दिया गया जहाँ उनकी मृत्यु हो गयी जब क्रान्ति का सुभारम्भ नही हुआ था उस समय यहाँ के लोग यह नारा लगाते थे।

गाणियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की।

तख्ते लन्दन तक चलेगी तेग हिन्दूस्तान की।।

किन्तु जब क्रान्ति सफल नही हुई उस समय निराश होकर बहादुरशाह जफर ने यह कहा था–

दम दमें में दम नही, अब खैर मागो जान की।
अप जफर! ठण्डी हुई, शमशेर हिन्दुस्तान की ।।[151]

क्रान्ति के विफल होने के कारण यह था कि क्रान्तिकारियों में नेतृत्व की कमी थी और वे एक दूसरे के अनुशासन में नही थे दूसरी बात यह थी कि क्रान्ति का कोई निर्धारित लक्ष्य नही था यदि क्रान्ति सफल भी हो जाती तो निश्चित ये लोग आपस में लडते झगडते। एक बात यह भी थी कि क्रान्तिकारयिों को सामान्य जन का कोई सहयोग उपलब्ध नही हुआ सामन्तवादियों और जागीरदारों के उत्पीडन से जनता तृस्त थी इसलिये इस क्रान्ति से जनता का कोई लेना देना नही था। एक बात और भी थी कि बुन्देलखण्ड के देशी नरेशो ने क्रान्तिकारयिों को कोई सहयोग प्रदान नही किया बल्कि उसके बजाय अंग्रेजो का साथ दिया क्योंकि इस समय राष्ट्रीय भावना का उदय नही हुआ था।

यदि क्रान्ति के परिणामों का मूल्यांकन किया जाय तो इसके परिणाम ठीक ही निकले सबसे प्रथम बात यह हुई कि अंग्रेजो को बुन्देलखण्ड के निवासियों की वास्तविक शक्ति का बोध हो गया अतः वह यहाँ के शासको से सतर्क रहने लगे दूसरी बात यह हुई की ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन पूरे भारत वर्ष से सदैव के लिये समाप्त हो गया सन् 1860 में जो घोषणा पत्र इग्लैंड की सरकार की ओर से महरानी विक्टोरिया ने घोषणा किया गया कि किसी के साथ कोई पक्षपात नही होगा देशी राजाओं और जनता से सम्बध मधुर बनाये जायेगे इसने भावी स्वतन्त्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार की ।

राष्ट्रीय आन्दोलन आजादी की उपलब्धा तक :–

सन् 1885 में काँग्रेस की स्थापना सर डगलस ए0ओ0ह्मयूम ने की थी उस समय इसका उद्देश्य जनता और सरकार के मध्य में सामांजस्य बनाये रखना था इसी समय स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म हुआ। उन्होने हिन्दू, हिन्दी, और हिस्दुस्तान का नारा दिया बुन्देलखण्ड में आजादी का दूसरा आन्दोलन सन् 1905 से प्रारम्भ हुआ था सन् 1920 से लेकर 1929– 30 में महात्मा गाँधी पं0 जवाहरलाल नेहरू और दूसरे नेताओं का भ्रमण यहाँ पर हुआ इस समय दो प्रकार के व्यक्ति आजादी की लडाई में शामिल थे इनमें से एक वर्ग क्रान्तिकारियों का था जिनमे चन्द्रशेखर

आजाद और पं0 परमानन्द आदि शमिल थे दूसरा वर्ग गाँधीवादियों का था जो सत्य अहिंसा के समर्थक थे असहयोग आन्दोलन भारत छोडो आन्दोलन और स्वदेशी आन्दोलन बडी उग्रता से यहाँ चले जिसका परिणाम यहा हुआ कि 15 अगस्त 1947 में भारत वर्ष अंग्रेजो की दासता से मुक्त हुआ पिछले 56 वर्ष से हम आजादी का सुख भोग रहे है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– इण्डिया आर्कुलाजिकल ए रिव्यु, 1955–56, पृ0 4,

2– बाजपेयी, सागर थ्रु दि एजेज पृ0 सं0 3,

3– गुप्त, प्राचीन भारतीय चिन्तन, पृ0 सं0 86,

4– जनरल ऑफ एसियाटिक सोसाइटी, बंगाल, जिल्द 8, 1907, पृ0 सं0 86,

5– गुप्त, प्राचीन भारतीय चिन्तन, पृ0 सं0 86,

6– मध्य प्रदेश का पुरातत्व, पृ0 2–3,

7& L.G. Kall, Proceedings of the all india tal Research Institute, Poona Oriental Conference, VI P. X X, page 48,

8– पान्डेय विमलचन्द्र, प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग 1, 1988, पृ0 सं0 108,

9– पान्डेय विमलचन्द्र, प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग 1, 1988, पृ0 सं0 110–111,

10– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, प्रका0 नागरी प्रचारणी बनारस पृ0 सं0 3,

11– ऋग्वेद, 5,37,–39,

12– कौटिल्य का अर्थशास्त्र, 2; 2, 15,

13– महाभारत आदि पर्व, अध्याय 57, श्लोक सं0 258,

14– वही पृ0 सं0 419,

15– महाभारत विराट पर्व 4–5–3–4,

16– ज्याँग्राफी ऑफ द पुराणज, पृ0 159–60,

17– एपिग्राफिका इण्ड़िका, जिल्द 20, पृ0 स0 126,

18– वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारत वर्ष, पृ0 76,

19– वही पृ0 सं0 76–77,

20– कार्पस खण्ड 3, पृ0 सं0 114,

21– कार्पस खण्ड 4, पृ0 सं0 23,

22– हर्ष चरित 1, सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 189,

23– महाभारत शान्तिपर्व 85–11,

24– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 8,

25– महाभारत अनुशासन पर्व 67–34,

26– अंगुत्तर निकास, खण्ड 1, पृ0 197; दे0 इण्डि0 एण्टि0, खण्ड 20, पृ0 375,

27– मित्तल, हिस्ट्री ऑफ उडीसा, पृ0 259, उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भुगोल, पृ0 427,

28– अशोक का एक अभिलेख दतिया जिला, (म0 प्र0) के गुजर्रा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। दे0 एपि0 इण्डिका, जिल्द 31, पृ0 205–10,

29– ज0 न्यु0 सो0 इं0, खण्ड 26, पृ0 सं0 5,

30– कार्पस, खण्ड 2, भाग 2, अभिलेख संख्या 1, 2, 3, 4, 12,

31– कनिंघम, स्तूप ऑफ भरहुत, पृ0 132,

32– एपिग्राफिका इण्ड़िका, जिल्द 26, पृ0 स0 237,

33– डॉ0 कन्हैयालाल अग्रवाल, विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल सुषमा प्रेस, सतना, (म0 प्र0) पृ0 सं0 8,

34– रैप्सन केटालाग, पृ0 CL XV और पृ0 207–10,

35– सागर थ्रु दि एजेज, पृ0 9,

36– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 14,

37– माधुरी माघ, सन् 1982,

38– कार्पस, खण्ड 4, पृ0 सं0 13,

39– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 15,

40– ज0 यू0 पी0 हि0 सो0, खण्ड 18, पृ0 307,

41– एपिग्राफिका इण्ड़िका, जिल्द, पृ0 सं0 12–13,

42– कार्पस, खण्ड 3, पृ0 सं0 18–20,

43– कार्पस, खण्ड 3, पृ0 सं0 83, ''कालिन्दी नर्मदयोर्मध्यं'' पालयति'' ।

44– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलख़ण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 18,

45– गुप्त परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक इतिहास, विश्व विद्यालय वराणसी, सन् 1991, पृ0 सं0 –75,

46– कार्पस, खण्ड 3, ''गुप्तनृपराज्य भुक्तौ'' पृ0 सं0 102,

47– द क्वायनेज ऑफ दि गुप्त एम्पायर, पृ0 319,

48– कार्पस, खण्ड 3, पृ0 सं0 127,

49– स्टडीज इन इण्डोलाजी, खण्ड 1, पृ0 240,

50– ज0 यू0 पी0 हि0 सो0, 1965, पृ0 185–89,

51– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 21–22,

52– वासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, हूण नरेश मिहिरकुल का ग्वालियर शिला लेख, मोतीलाल बनारसीदास , दिल्ली, 1961, पृ0 108,

53– कार्पस, खण्ड 3, पृ0 सं0 146–148,

54– बील, खण्ड 1, पृ0 167,

55– कार्पस इन्सकेप्पसन इण्डिया, खण्ड 3, पृ0 सं0 91,

56– मंजूश्री– मूलकल्प, श्लोक 652, पृ0 109,

57– डिक्लाइन ऑफ दि किंगडम ऑफ मगध, पृ0 127–29,

58– कार्पस इन्केप्पसन इण्डिया भाग 3,

59– पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्सिएन्ट इण्डिया पृ0 सं0 596,

60– कार्पस, खण्ड 3, पृ0 सं0 206,

61– कामसुत्र, पृ0 288, ''मालव्य इति पूर्वमालव भवाः।''

62– एपिग्राफिका इण्ड़िका, जिल्द 8, पृ0 स0 284–87,

63– मुकर्जी, हर्ष, पृ0 43,

64– वार्टस, खण्ड 2, पृ0 सं0 251,

65– वही

66– हर्ष चरित, पृ0 189,

67– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 25–26,

68– डॉ0 विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर भारत का रानीतिक इतिहास (600–1200 ई0) सन् 1972 पृ0 सं0 22,

69– कीथ, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ0 सं0 314,

70– हर्ष चरित, पृ0 52,

71– डॉ0 विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास (600–1200 ई0) सन् 1972 पृ0 सं0 68–69,

72– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 27,

73– एपिग्राफिका इण्ड़िका, जिल्द 19, पृ0 स0 18,

74– वही, जिल्द 4, पृ0 309

75– वही, जिल्द 1, पृ0 162–79,

76– Dr. S.D. trivedi, the Jarai temple at Barwa Sagar, 1985, page 26,

77– डॉ0 बहादुर सिंह परमार, बुन्देली बसन्त, फरवरी 2003, पृ0 सं0 1–2,

78– त्रिपाठी, हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृ0 282,

79– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 28,

80– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 30,

81– लुइस राइस संग्रहीत ,''मैसूर के शिलालेख'' पृ0 सं0 229,

82– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 40–41,

83– एलेक्जेण्डर कनिंघम आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट ऑफ इण्डिया, जिल्ट 9, पृ0 सं0 82,

84– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 सं0 38,

85– एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द 1, पृ0 सं0221, श्लोक 10,

86– वही पृ0 सं0 122–133, श्लोक 23,

87— वही पृ0 सं0 124—134, श्लोक 45,

88— प्रबोधचन्द्रोदय , पृ0 सं0 7—8 ,

89— इलियट, जिल्द 2, पृ0 सं0 231—32,

90— एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द 1, पृ0 सं0 231—32,

91— पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 सं0 43—44,

92— केशवचन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल , संबत 2011, पृ0 सं0 35,36,

93— इण्डियन एण्टीक्वेरी , 1908 , पृ0 सं0 136

94— पृथ्वीराज रासो, भाग एक,(नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)

95— इण्डियन एण्टीक्वेरी , 1887 , पृ0 सं0 203,

96— एपिग्राफिका इण्डिका, भाग एक, पृ0 सं0137,

97— स्टैटिस्टिकल डिस्क्रिटिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउण्टस ऑफ नार्थ—वेस्टर्न प्राविन्सेज ऑफ इण्डिया, भाग 6, पृ0 सं0 52,

98— जनरल आफ दी एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, भाग 1,

99— एपिग्राफिका इण्डिका, भाग 1, पृ0 सं0 122,

100— इण्डिया एण्टीक्वेरी, भाग18, पृ0 सं0 236,

101— डॉ0 विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास (600—1200 ई0) सन् 1972 पृ0 सं0 372,

102— इण्डियन एण्टीक्वेरी जिल्द 18, पृ0 सं0 236—37,

103— राधाकृष्ण बुन्देली— बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन प्रकाशन बुन्देलखण्ड प्रकाशन बाँदा सन् 1989, पृ0 सं0 52,

104— नीलकण्ठ मन्दिर अभिलेख कालिंजर

105— देवगढ़ अभिलेख विक्रमी संबत् 1154

106— इण्डिन एण्टिक्वेरी, भाग 16, पृ0 सं0 203

107— तारीख—ए— फरिश्ता, ब्रिग्स—द्वारा अनूदित, भाग1 , पृ0 सं0 17,18

108— किताब—ए—यामिनी, मेमौयर्स ऑफ सुबुक्तगीन, पृ0 सं0 34,35

109— एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द 1, पृ0 सं0 129,

110— आर्कुलाजिकल सर्वे रिर्पोट, जिल्द 10, पृ0 18—19,

111— डॉ0 विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास (600—1200 ई0) सन् 1972 पृ0 सं0 410,

112— डॉ0 विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास (600—1200 ई0) सन् 1972 पृ0 सं0 424,

113— हसन निजामी, ताजुल या अतहर (इलियट डाउसन) भाग 2, पृ0 स0 231—32,

114— पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 सं0 60,

115— डॉ0 विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास (600—1200 ई0) सन् 1972 पृ0 सं0 426,

116– आशीर्वादी लाल श्री वास्तव, भारत का इतिहास
सन् 1979, पृ0 46,
117– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास
सन् 1933, पृ0 सं0 53–60,
118– डॉ0 आशीर्वादी लाल, भारत का इतिहास सन् 1979, पृ0 56,
119– वही पृ0 सं0 68,
120– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास
सन् 1933, पृ0 सं0 76–77,
121– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास
सन् 1933, पृ0 सं0 86–87,
122– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास
सन् 1933, पृ0 सं0 92–93,
123– कर्नल जेम्स टांड, राजस्थान का इतिहास, सन् 2000, पृ0 38,
124– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास
सन् 1933, पृ0 सं0 93–94,
125– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास
सन् 1933, पृ0 सं0 94,
126– दि एज ऑफ इम्पीरियल युनिटी, पृ0 64–65,
127– जदुनाथ सरकार– मिलिटरी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0 27–28,
128– खजान– उल– फुतूह– पृ0 सं0 48,
129– कृष्ण कवि; बुन्देलखण्ड के कवि, संबत 2025, पृ0 114,
130– डॉ0 आशीर्वादी लाल, भारत का इतिहास सन् 1979, पृ0 135,
131– डॉ0 आशीर्वादी लाल, भारत का इतिहास सन् 1979, पृ0 339,
132– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास
सन् 1933, पृ0 सं0 90,
133– डॉ0 आशीर्वादी लाल, भारत का इतिहास सन् 1979, पृ0 339,
134– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास
सन् 1933, पृ0 सं0 97,
135– वही , पृ0 सं0 99,
136– राजगौड़ महाराज, पृ0 सं0 41,
137– डॉ0 आशीर्वादी लाल, भारत का इतिहास सन् 1979, पृ0 442–43,
138– छत्रप्रकाश अध्याय 1–अष्टावदी, 6– दोहा, 6,
139– कृष्ण कवि; बुन्देलखण्ड का इतिहास, ओरछा खण्ड, पृ0 57,
140– राधाकृष्ण बुन्देली– बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन
सन् 1989, पृ0 सं0 198,
141– मराठों का प्रथम इतिहास प्रथम खण्ड, लेखक गोविन्द खाराम,
सरदेसाई 1981, पृ0 266,
142– कृष्ण कवि; बुन्देलखण्ड के कवि, बिक्रमी सम्बत 2025, पृ0 71,

143– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 सं0 205–6,

144– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 सं0 245–46,

145– वही, पृ0 सं0 252,

146– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 सं0 338–39,

147– सिंह दीवान प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रथम भाग 1929, पृ0 सं0 –245–46,

148– पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सन् 1933, पृ0 सं0 379–80 ,

149– डॉ0 भगवान दास – मस्तानी बाजीराव, और उसके वंशज बाँदा के नवाब, सन् 1983, पृ0 सं0 51,

150– राधा कृष्ण बुन्देली, बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मुल्यांकन, प्रथम भाग 1989, पृ0 सं0 139;

151– विनायक दामोदर सावरकर, 1857 का भारतीय स्वातन्त्र्य समर, सन् 1983, पृ0 सं0 485,

द्वितीय अध्याय

- केन्द्रीय शासन।
- प्रान्तीय शासन व्यवस्था।
- क्षेत्रीय शासन व्यवस्था ।
- कर प्रणाली।
- सुरक्षा व्यवस्था।
- प्रशासनिक एवं सुरक्षा व्यवस्था में बुन्देलखण्ड के दुर्गो का महत्व।
- दुर्ग की परिभाषा एवं दुर्ग की कोटि।
- प्रशासनिक द्रष्टि से दुर्गो का महत्व।
- सुरक्षा की दृष्टि से दुर्गो का महत्व।
- दुर्ग एवं सैन्य व्यवस्था।
- धर्म की दृष्टि से दुर्गो का महत्व।
- वास्तुशिल्प की दृष्टि से दुर्ग निर्माण शैली एवं उनकी विशेषताएं।
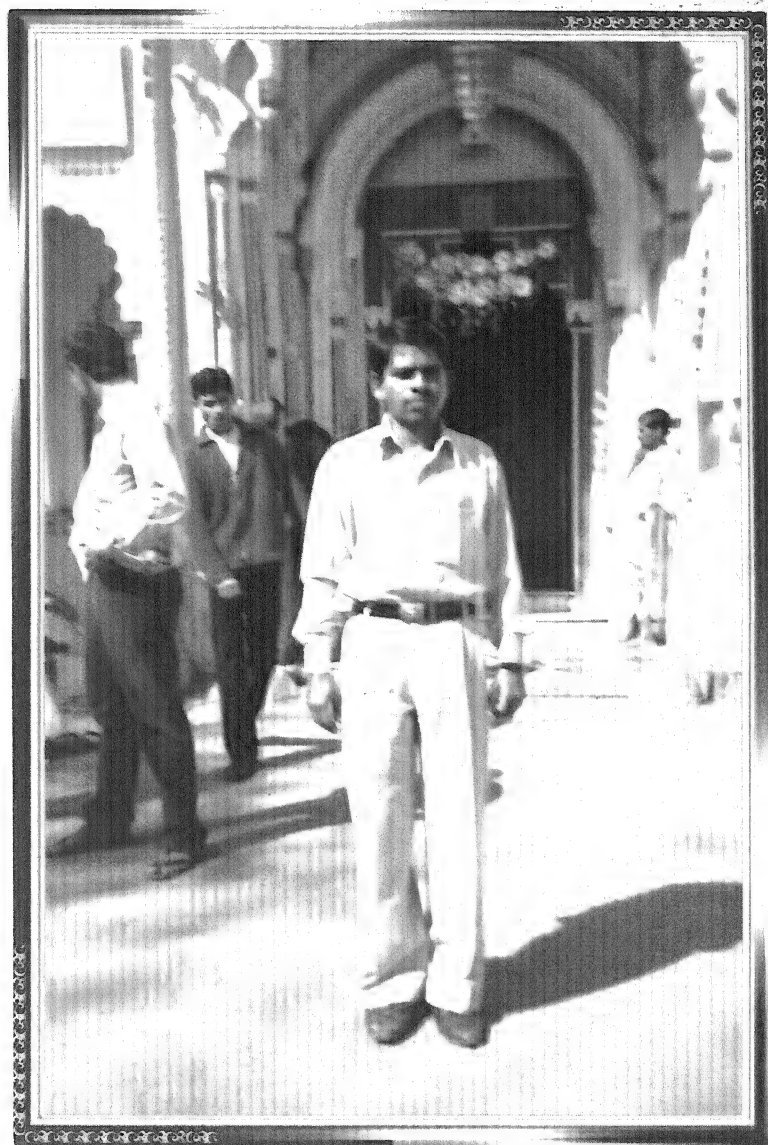
रामराजा मन्दिर का प्रवेश द्वार ओरछा

आध्याय-द्वितीय

बुन्देलखण्ड की प्रशासनिक व्यवस्था– ऐसा प्रतीत होता है कि बुन्देलखण्ड के इतिहास लेखन में कही न, कही अन्याय अवश्य किया गया है। इसलिए महाभारत काल से लेकर मौर्य युग के पहले तक का इतिहास यहाँ उपलब्ध नही होता जो भी इतिहास यहाँ उपलब्ध हुआ है।उसका आधार पौराणिक ग्रन्थ है बेद है, कलयूगीन साहित्यिक ग्रन्थ है जिनमें यहाँ के लोगो का वर्णन किसी प्रकार उपलब्ध हो जाता है किन्तु प्रश्न यह उठता है कि उपलब्ध वर्णन सत्यता की कसौटी में यह अनुकूल उतरता है अथवा नही हमारे पूर्वज कौन थे उनके आचरण क्या थे यह जानना परम आवश्यक हो जाता है। इस लिए इतिहास के मूल स्रोतो की खोज आवश्यक हो जाती है। अभी तक हमने मूल स्रोतों में पुराव शेष तदयुगीन मुद्रा अस्त्र–शस्त्र तदयुगीन साहित्य और जनश्रतियो तथा परम्पराओं को मान्यता प्रदान की है अब प्रश्न यह है क्या उपरोक्त स्रोत ही इतिहास जानने के साधन है जब विद्वान यह स्वीकार करते है कि विश्व का इतिहास लाखो वर्ष पुराना है तो वह वर्तमान समय मे कहाँ खो गया और उसकी जानकारी क्यों नही हो पाती ऐसा लगता है कि इतिहासकार परम्परागत विधियों के अनुयायी है। इसलिए वे वैज्ञानिक द्रष्टिकोण को किसी प्रकार नही अपनाते यहाँ ज्ञान की न्यूनता का घना कोहरा छाया हुआ है जो सत्यता के सूरज को और उसके प्रकास को पृथ्वी तल मे आने को रोके हुये है। यही कारण है कि यहाँ का इतिहास यर्थात बोध कराने मे असमर्थ है।

बुन्देलखण्ड भी कुछ कर्मठ ब्यक्तियो के कारण विख्यात हुआ है उसी के कारण लोगों के ह्रदयों मे यहाँ के इतिहास जानने की इच्छा भी हुई यदि इस भूमि मे बाल्मीकि, बेदव्यास ,जैसे रचनाकार न उत्पन्न हुए होते और उन्होंने अपने महानतम् ग्रन्थो की रचना की हुई होती है। तो क्या कोई व्यक्ति इस क्षेत्र को जानता अनेक तपस्वियो ने इसे अपनी तपो भूमि माना यहाँ अपने आश्रम बनाये अगस्त्य सुतीक्ष्ण मारकण्डेय सारंग दधीच बृहस्पति नारद जैसे ऋषियों के आश्रम बनाये अगस्त्य, सुतीक्ष्ण मारकण्डेय, सारंग,दध ीच, बृहस्पति नारद जैसे ऋषियों के आश्रम इस क्षेत्र में रहें जिससे यह भूमि धन्य हुई। तथा जिन्होंनें समाज और राजनीति को नवीन दृष्टि से प्रदान की यदि ये न होते तो क्या कोई व्यक्ति बुन्देलखण्ड को जानता भगवान राम, और पाण्डवों तथा कौरवों ने अपने कृत्यों के मध्यम से चित्रकूट और कालिंजर को तपो भूमि और तीर्थ स्थल के रूप में परावर्तित कर दिया आज हम इनके चरित्र को बार–बार श्रवण करते हैं उनका अनुकरण करते हैं और ऐसा

स्वीकार करते है इन्ही महापुरूषों के बदौलत बुन्देलखण्ड भूमि की लोक प्रियता बढ़ी।

मध्य युग में हमारे ऊपर विपदाओं का पहाड़ टूटा शक, हूण, कुषाणों और तुर्को ने हमारा शोषण किया एकता के न्यूनतों के कारण हमारा यहाँ कोई मौलिक राज्य नही था हम कभी मौर्यो के आधीन रहे, कभी गुप्तों के आधीन रहे, कभी हूणों के आधीन रहे, कभी सम्राट हर्ष बर्धन के आधीन रहे लगता है। कि हमारी मौलिक सत्ता उस युग तक कही नही थी हम ऐसे किसी नरेश के आधीन रहे जो मूल रूप से यही का निवासी रहा हो जो दूसरो का शासन तन्त्र था। उसी व्यवस्था से हम सन्तुष्ट होते रहे हैं यदि राजा या नायक अच्छा होता था तो प्रजा थोडी बहुत सुखी हो जाती थी अन्यथा वह शोषण की शिकार होती रहती थी।

मौलिक रूप से हम चन्देलों को बुन्देलखण्ड का शासक मानते हैं भले ही इसके प्रथम शासक गण जुर्जर प्रतिहारों के आधीन रहें होंगे किन्तु कालान्तर में जैसे ही गुर्जर प्रतिहारों की सत्ता का पतन हुआ यह लोग स्वतन्त्र शासक बन गयें इनका राज्य जितने क्षेत्र में फैला वह जेजाक भुक्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पृथ्वी राज चौहान और कुतुबुद्दीन ऐबक के समय में इस राज्य सत्ता का पतन हुआ तथा तुर्को का प्रभाव और उनकी शासन व्यवस्था यहाँ लागू हुई।

तुर्क शासन काल से लेकर मुगल शासन के अन्त तक यहाँ दो मौलिक शासक वंश उत्पन्न हुए पहला एवं बुन्देलेशासकों का था इस वंश का संस्थापक पंचम देव था इस वंश के प्रमुख शासकों में वीर सिंह जी देव चम्पत राय और छत्रशाल थे। दूसरा वंष गौंड वंशीय शासको का था जिन्होने कल्चुरियों के बाद जबलपुर के सन्निकट दक्षिणी बुन्देलखण्ड में राज्य किया इनके अधिकार में 52 दुर्ग थे। इस वंश के महत्व पूर्ण शासक संग्रामशाह, दलपति शाह, और रानी दुर्गावती थी उसके पश्चात यह वंश राजनीतिक दृष्टि से पतन की ओर गया।

यहाँ का और एक वंश जिसका सम्बन्ध गुजरात के सोलंकी वंश से था बघेलों के वंश के नाम से विख्यात हुआ इस राज्य की स्थापना बाँदा जनपद के मडफा के सन्निकट बघेला बारी और बघेलिन गाँव मे हुई थी। फतेहगंज के सन्निकट अनेक दुर्ग इस वंश के शासको के बनायें हैं। कालान्तर में राज्य की सीमाएं छोटी होती गयी तथा यहाँ का क्षेत्र अनेक छोटी–छोटी रियासतों में विभाजित हो गया जिनकी सन्धियां अंग्रेजों से हुई।

प्रसाशनिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड का अवलोकन किया जाय तो

ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ तो कोई केन्द्रीय सत्ता थी और न यहाँ का शासक किसी एक निश्चित विधि विधान के अनुसार शासन करता था। चेदिगण राज्य में भले ही गणतन्त्रात्मक शासन प्रणाली रही हो किन्तु उसके बाद यहाँ राज्य तन्त्र हावी हो गया जिस शासन का विधान राजाओं की इच्छा पर निर्भर करता था। कभी–कभी जब राजा उदार हुआ उस समय वह बेदो–शास्त्रों स्मषति ग्रन्थों तथा कौटिल्य नीति का अनुसरण पुरोहितों की सलाह पर कर लिया करता था। उसकी कोई ऐसी नीति नही थी जिसे लोक कल्याण कारी नीति की संज्ञा दी जा सके वह राज्य की समस्त आप अनेक अपने व्यक्तिगत दुखों के अतिरिक्त दुर्ग निर्माण, आवास निर्माण, जलाशय निर्माण और धर्म स्थल निर्माण में खर्च करता था इसके अतिरिक्त वह क्षेत्र विस्तार के लिए युद्ध करता था इसलिए उसका धन सैनिको अस्त्र–शस्त्रों पर भी खर्च होता था कभी–कभी वह अपात काल में जनता की सहायता भी करता था उसे दान देने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था वह दान मे भूमि और धन दोनो ही देता था। किन्तु अधिकांश दान करने वाले व्यक्ति पुरोहित और बाष्ह्यण होते थे इस सन्दर्भ मे अनेक अभिलेख और ताम्रपत्र सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में उपलब्ध हुए हैं। तथा अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों में इनका वर्णन है। इनकी शासन व्यवस्था केन्द्रीय प्रान्तीय जनपदीय और स्थानीय शासन व्यवस्था थी जिसका विवरण ऐतिहासिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

1–बुन्देलखण्ड में केन्द्रीय शासन– जब बुन्देलखण्ड में तुर्कों के आगमन के पूर्व तक कोई निजीशासन व्यवस्था नही थी । उस समय यह स्वतः दूसरी यह केन्द्रीय सत्ता के आधीन था भगवान राम के समय मे यह क्षेत्र कौसल राज्य के आधीन था। तथा दण्डिका आरण्य के नाम से विख्यात था यही पर अगस्त्य ऋषि का आश्रम कालिंजर मे था[1]। महाभारत में बुन्देलखण्ड का अधिकांश भाग चेदिराज्य के आधीन था इसकी रायधानी शुक्ति मती नगरी थी इसका प्रथम नरेश राजा कुश था जिसका वर्णन ऋग्वेद में उपलब्ध होता है,[2] कुछ समय पश्चात दशाण और चेदिराज्य में एकात्मक शासन व्यवस्था लागू हुई जिसके अनुसार राज सत्ता का संचालन राजा करता था और राजा की मृत्यु के पश्चात उसका जेष्ठ पुत्र राजा बनता था और व्यवस्था महाभारत काल में थी,[3] बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जितने भी शासकों ने राज्य किया उनकी शासन प्रणाली अपने अनुसार थी।

अनार्यों की केन्द्रीय शासन प्रणाली– डा० कन्हैया लाल अग्रवाल के अनुसार बाल्मीकि रामायण में राक्षस, शवर, आदि जनो का उल्लेख इस क्षेत्र के निवासियों के रूप में मिलता है मध्य भाग में कोल,

भिल्ल, शबर, पुलिन्द, मुण्ड और द्रविणजनों का निवास था इनमें से कुछ का उल्लेख भोजवर्मा के अजयगढ़ प्रस्तर अभिलेख में भी हुआ है। उनका रंग काला, कद ठिगना, नाक चौडी बाल घने और काले होते थे इन जनों ने विन्घ्यक्षेत्र को अपना निवास बनाया [4]। इनकी प्रशासनिक व्यवस्था इस प्रकार थी।

1– अलग–अलग जातियों का निवास स्थल अलग–अलग होना–

बुन्देलखण्ड में जो अनार्य जातियां निवास करती थी वे सब भ्रमण शील जातियाँ थी वे भोजन तथा आवश्यक वस्तुओं की तलाश में इघर–उघर भटकती रहती थी। तथा अपना निवास गिरि कन्दराओं में बनाती थी इनका एक समूह रूका था जो अपने क्षेत्र की रक्षा करता था कभी–कभी ये लोग अपने क्षेत्र को पत्थर और उसकी चट्टानों से घेर लेते थे जो दूर से दीवाल की तरह प्रतीत होता था ऐसी दीवाले मानिकपुर, सतना, कालिंजर, तथा मंडला के आस–पास जगलो में दिखायी देती है।

2– इन जातियों का एक नायक या प्रशासक होना– कितनी जातियाँ बुन्देलण्ड में निवास करती थी और वे अनार्य कुल की थी उनका एक नायक होता था वही उनका राजा होता था वही सभी आदिवासियों का नायक था तथा उसी की आज्ञा का अनुपालन सभी लोग किया करते थे जब एक स्थान का भोजन पानी समाप्त हो जाता था उस समय ये लोग दूसरे स्थान को प्रस्थान कर जाते थे।

3–आदि वासियों के अस्त्र–शस्त्र– आदि वासियो के अस्त्र–शस्त्र बनमें उपलब्ध संसाधनों से बनाते थे मुख्य रूप से धनुष बाण इनके प्रमुख अस्त्र–शस्त्र थे। इसके अलावा नुकीले पत्थर का प्रयोग भी शस्त्रुओं को भगाने के लिए किया जाता था एक प्रकार का रस्सी का फन्दा पास या फास कहाँ जाता था का प्रयोग भी ये लोग किया करते थे
धातु का प्रयोग जानने के पश्चात ये लोग कुल्हाडा, फरसा , भाला , तथा त्रिशूल का प्रयोग करते थे।

4–आदि वासियो की युद्ध पद्वति– आदिवासी लोग जब भोजन और संसाधन की तलास में एक स्थान छोड कर दूसरे स्थान की ओर जाया करते थे। उस समय इनके युद्ध दूसरी आदि वासी जातियों से हुआ करते थे।इनमेंशक्तिशाली जमात कमजोर जमात को हराकर भगा दिया करते थे। वहाँ पर कब्जा कर लेते थे।

5–मात्र सत्ता एवं मात्र कुल प्रधान– इतिहास इस बात

का साक्षी है कि पहले अनार्यो की सत्ता मात्र कुल प्रधान थी। इनके वंश माता के नाम से चलते थे और माता ही इनकी नियत्रंक थी। देवी भागवत अथवा मारकण्डेय पुराण में यह उल्लेख मिलता है कि मात्र शक्ति ने सर्वप्रथम ब्रह्मा को फिर, विष्णु को, उसके बाद शिव को उत्पन्न किया तथा शिव को तृतीय नेत्र दान में देने के पश्चात वह शक्ति स्वयं नष्ट हो गयी कहने का तात्पपर्य यह है। कि महेश के पूर्व यहाँ मात्र कुल थे और यहाँ की शक्तिशाली देवियाँ यहाँ की प्रशासिका थी जिनके युद्ध शम्भु, निसम्भु, मइषासुर, आदि से हुए इसलिऐ बुन्देल खण्ड में अनेक स्थलो में शक्ति पीठ है।

जब ये आर्यो के सम्पर्क में आये और उनके अधीनस्थ हो गये उस समय इनके यहाँ पुरूष प्रधान समाज का प्रचालन हुआ तथा स्त्री पुरूष दाम्पत्य सुत्र में बधने लगे फिर भी इनका जातीय नायक ही इनका प्रशासक रहा। ये लोग अपनी परम्पराओ का निर्वाह करते है और सर्वसम्मति निर्णय के अनुसार कार्य करते है। इनकी कोई स्वतन्त्र सत्ता बुन्देलखण्ड में स्थापित नही है। कुछ इतिहासकार यह मानते है कि गौंड और चन्देलो शासको का सम्बन्ध आदि वासियो से था। कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार कुछ जंगली जातियो को भी शासक वर्ग अथवा क्षत्रिय माना गया था।

यथा—बागरी, मेर, काबा, मीना, भील, सेरिया,(सहरिया), थोरी, खंगार, गौड, भाड, जॅवर, और सरूद।[5]

बुन्देलखण्ड में रहने वाली आदिवासी जातियाँ यहॉ शासन करने वाले प्रमुख वंशो के लिए आय का प्रमुख स्रोत थी इसलिए प्रशासक वर्ग इन्हे कभी सताता नही रहा।

बुन्देलखण्ड में आर्यो की केन्द्रीय शासन व्यवस्था—

बुन्देलखण्ड में आर्यो का आगमन ईसा से लगभग हजार वर्ष पूर्व हुआ था तभी से यहाँ के लोग आर्यो से परिचित हुए थें सम्पूर्ण आर्य वर्ग, वर्ण और आश्रम व्यवस्था में विभाजित था इन्होनें यहाँ आकर रहने वाली जन जातियों को पराजित किया और उन्हे अपना दास बना लिया तथा चतुर्थ वर्ण के रूप में मान्यता प्रदान की बैदिक युग में राज्य व्यवस्था इस प्रकार थी।

राजा— ऋग्वेद में इन्द्र को राजा के रूप में स्वीकार किया किया गया उसे प्रत्येक स्थान में राजन शब्द से सम्बोधित किया गया है। इसे प्रजा का पालक और नगरों का विजेयता कहा गया है इस समय यहाँ ऐसी जातियां निवास करती थी। इनका नायक या राजा नही था राजा वंश परम्परा के अनुसार होता था उसमें प्रजा की अनुमति आवश्यक थी विशेष परिस्थितियों मे अन्य उपयुक्त व्यक्तियों को भी राजा चुना जाता था [6]।

राजा के कार्य— राजा सम्पूर्ण राष्ट्र का स्वामी होता था इसका मुख्य कार्य प्रजा की रक्षा करना शत्रुओ का नाश करना धर्म की स्थापना करना शास्त्रोक्त विधि के अनुसार आचरण करना, निशपक्ष न्याय करना, दण्ड की व्यवस्था करना, प्रजा की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रयत्न करना, दण्ड और उदण्ड दोनो के बीच भेद करना, तथा शहस्र स्तम्भ युक्त राज प्रसाद में रहना उसका कार्य था[7]।

मन्त्रि एवं पुरोहित— ऋग्वेद मे मन्त्रि को पुरोहित अथवा पुरोध के नाम से सम्बोध किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक राजा को प्रशासनिक सहयोग देने के लिए एक मन्त्रि होता था। उसके अनेक सहायक भी होते थे।

सभा— ऋग्वेद मे सभा का उल्लेख मिलता है इस सभा के क्या कार्य थे इसका कोई उल्लेख नही मिलता प्रत्येक राजा की राजधानी में एक सभा कक्ष होता था। जिसका सदस्य योग्य व्यक्ति होता था उसे सभेव्य कहा जाता था इस सभा का उल्लेख ऋग्वेद के दसवे मण्डल मे है[8]।

समिति— ऋग्वेद मे समिति का भी उल्लेख मिलता है यह समिति राजा की सलाहकार समिति थी समिति राजा के प्रति उत्तरदायी थी और राजा समिति के प्रति उत्तरदायी था। दोनो मे एक मत होना आवश्यक है राजा समिति से सलाह करता था तदानुसार आचरण करता था और कभी—कभी इसी समिति के माध्यम से राजा का चुनाव भी होता था [9]।

सरकारी पदाधिकारी— प्रशासन का काम काज चलाने के लिए कई प्रकार के पदाधिकारी कार्य किया करते थे इन पदाधिकारियो को पुरोहित या मन्त्रि, सेनापति और ग्रामीण नाम से सम्बोधित किया जाता था सेनापति की नियुक्ति राजा स्वयं करता था ग्रामीण पदाधिकारी अपने—अपने इस क्षेत्रो की प्रशासनिक व्यवस्था देखता था गोपनीय सूचना देने के लिए पुरूष, स्पर्श, और दूत तीन प्रकार के अधिकारी होते थे। पुरूष दुर्गपति होता था जो दुर्गो की रक्षा करता था, स्पर्श गुप्तचर विभाग का अधिकारी होता था जो राजा को गोपनीय सूचनाए देता था दूत राजनीतिक गतिविधियों पर नियन्त्रण रखता था इसके अतिरिक्त दूत लस्कार, करमार आदि अन्य अधिकारी होते थे, यह तीनो अधिकारियो का सम्बन्ध व्यवसाय और उद्योग से था इनकी नियुक्ति और निलम्बान राजा के आधीन थी इनका वेतन स्वर्ण चाँदी वस्त्र अन्य आदि के रूप मे दिया जाता था।

न्याय तथा दण्ड व्यवस्था— तत्कालीन न्याय ब्यस्था के सन्दर्भ मे बहुत कम ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते है मुख्य रुप से राजा का

पुरोहित न्याय ब्यस्था का प्रमुख अधिकारी था न्याय का उपदेश सुधार लाना और आदर्श की स्थापना करना था इस समय न्याय कानूनो को धर्मन शब्द से सम्बोधित किया जाता था इस समय चोरी डकैती, ठगी, और लूटपाट, के अधिकार अधिक होते थे रात के समय गायों बैलो का अपहरण समान्य अपराध था डा0 ईश्वरी प्रसाद के अनुसार दण्ड व्यवस्था में प्रतिकार की नीति का त्याग किया जा चुका था। हत्यारे द्वारा मृतक के सम्बन्धियो को क्षतिपूर्ति की जाती थी। एक व्यक्ति को शतदम कहा गया है– क्योकी उसके जीवन को मूल्य सौ मुद्राओ के बराबर था। अपराधी को सूली पर टाँग देना सामान्य दण्ड था। दीर्धब्यास की कथा के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि अग्नि परीक्षा , जल परीक्षा, तथा गर्म परशु, या कुल्हाडी, द्वारा अपराधी की परीक्षा ली जाती थी। इन परीक्षाओं के प्रतीत भय से स्वतन्त्र होकर अपराध ी अपना अपराध स्वीकार कर लेता होगा । ऋणी को उधार देने वाले की सेवा करने का दण्ड दिया जाता था। ऋग्वेद के 'मध्यमशी' शब्द से विदित होता है। कि पंच निर्णय द्वारा भी न्याय किया जाता था।[10]

यह प्रशासनिक ब्यस्था बुन्देलखण्ड में शासन करने वाले समस्त राज्यों में लागू थी मुख्य रूप से चेदि, दशाण, करूष, नौरष्ट्र परच्चर, आदि राज्यो में यह प्रशासनिक ब्यस्था मौर्य काल के आगमन तक बराबर बनी रही कभी इन राज्यो में मंत्रियो की संख्या घटती थी। तथा कभी बढ जाती थी।

मौर्यकाल की प्रशासनिक व्यस्था– मौर्यकाल में सम्पूर्ण भारतवर्ष में 320 ईसा पूर्व से लेकर 187 ईसा पूर्व तक अपना असितित्व बनाये रखा इस युग में भारतीय संस्कषति में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए बौद्ध और जैनधर्म का विकास हुआ राज और राजनीति में परिवर्तन हुए इन परिवर्तनो का जन्म दाता चन्द्रगुप्त मौर्य का विशेष सलाहकार चाणक्य था उसमें एक पुस्तक की रचना करके राजनीति को स्थायित्व प्रदान किया सम्पूर्ण मौर्य साम्राज्य चार भागो में विभक्त था। इसका प्रथम भाग उत्तरापथ था इसके अन्तर्गत कम्बोज, गान्धार, काशमीर, पंजाब, और अफगानिस्तान, आते थे इस पथ की राजधानी तक्ष्य शिला थी राज्य का दूसरा भाग अवन्तिराष्ट्र के नाम से विख्यात था इसमे कठियावाड गुजरात मालवा, और राजपूताना के प्रदेश आते थे। इस राज्य का तीसरा भाग मध्यप्रदेश था। इसमें उत्तर प्रदेश बिहार एंव बंगाल के प्रदेश सम्लित थे। चतुर्थ प्रान्त दक्षिणा पथ के नाम से विख्यात था। इसके अन्तर्गत विन्ध्याचल के दक्षिण में सारा प्रदेश सामिल था इसकी राजधानी स्वर्णगिरी थी इन सब खेतो की सत्ता सम्राट चन्द्रगुप्तमौर्य

के हाथो में केंद्रित थी और सारी शक्ति को केंन्द्र सम्राट था।[11]

राज्य की उत्पत्ति के सन्दर्भ में कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र से यह ज्ञात होता है। कि सामाजिक समझौते के आधार पर राज्य की उत्पत्ति हुई थी।

प्रात्यस्थन्याचमिभूतः प्रजामनुं वैवस्वतं राजान् चक्रिरे।
धान्यषड्भाग पण्यदशभागं हिरण्यं चास्य भागधेयं प्रकत्पयाभासुः
तेनभक्ता राजनः प्रजानां योगक्षेमवहाः।
तेषा किल्विषं दण्डकरा हरन्ति योगक्षेमबहाश्च प्रजानम।
तस्मादुछषड भाग – मारण्यका अपि।
निवपन्ति–तस्यैतद् भागधेयं योऽस्मान गोपातीति।[12]

अर्थात जैसे छोटी मछली बडी मछली को खा जाती है, पुराषाषण (पुराकाल) काल में वैसे सही बलवान लोगो ने निर्बल लोगो का रहना दूभर कर दिया था इस अन्याय से बचने हेतु प्रजा ने मिलकर विवश्वान या बैवस्थत के पुत्र मनु का अपना राजा नियुक्त किया और तब से ही खेती की उपज का छठ भाग, व्यापार की आय का दसवां भाग तथा थोडा –सा स्वर्ण राजा के लिये रूप में निर्धारित भी कर दिया। प्रजा के द्वारा निर्धारित भाग को प्राप्त करके राजाओ ने प्रजा के योगक्षेम का सम्पूर्ण दायित्व अपने ऊपर ले लिया।[13]

मौर्यकाल में राजा की स्थित– केन्द्रीय शासन में राजा सर्व शक्तिमान पदाधिकारी था वह केंन्द्र कार्य पालिका,व्यवस्थापिका,एवं न्यायपालिका,का सर्वोच्च अधिकारी था किन्तु वह स्वेच्छाचारी नही था उसको नियन्त्रित करने के लिए मन्त्रि परिषद और जनपद तथा लोकमत थे इनका नियन्त्रण राजा को मानना पडता था।कौटिल्य के अनुसार जिस प्रकार रथ एक पहिये से नहीं चल सकता उसी प्रकार राजत्व भी सचिवों के बिना केवल राजा से नही चल सकता।राजा को चहिए कि वह सचिवों को नियुक्त करे और उनकी सम्मति पर श्रवण करे।[14]

इसी प्रकार पौर जनपद की सम्मति पर सम्राट विषेश ध्यान देता था।[15] कौटिल्य का यह मानना है कि यदि राजा ठीक से शासन न करें और राजनीति में काम,कोध,तथा अज्ञानता का परिचय दे तो उससे साधू सन्त भी नाराज हो जाते है।[16] चाण्क्य लिखाता है कि सम्राट उच्च आदर्शो का पालन करे और लोक कल्याण की भावना को रखाकर शासन करे।

''प्रजासुखो सुखां राज्यः, प्रजानां चहिते हितम्।
नात्म प्रियं हितं राज्ञः, प्रजानां तु हितं प्रियम्''।।[17]

कौटिल्य लिखता है कि यदि कोई प्रार्थी प्रार्थना करने आवे कि

राजा का कर्तव्य है कि उस पर अभिलम्ब ध्यान दे उस पर प्रतीक्षा न कराये।

मन्त्रि परिषद– केन्द्रीय शासन चलाने के लिये अनेक सहायक ब्यक्तियों की आवश्यकता पढ़ती है इसलिए राजा का कर्तव्य है कि वह सलाह कारो की नियुक्ति करे।

यथा– *''सहाय साध्यं राजत्व चक्रमेकं न वर्तते।*
कुर्वीत सचिवान्तस्मान्तेषा च जणु यान्मजम्।''[18]

मौर्य साम्राज्य में निम्न लिखित मन्त्रि होते थे 1–मन्त्रिन 2–पुरोहित 3–सेनापति 4–युवराज 5–दौवारिक 6–अन्तर्वेदिक 7–समाहर्ता 8–सन्धिाता 9–प्रशास्त्र 10–प्रदेष्टी 11–नायक 12–पौर 13–व्यवहारिक 14–कर्मान्तिक 15–मन्त्रि परिषद अध्यक्ष 16–दण्डपाल 17–दुर्गपाल 18–अन्नपाल [19] मन्त्रियों के अतिरिक्त कुछ विभागाध्यक्ष भी हुआ करते थे जो निम्नलिखित है।1–कोषाध्यक्ष 2–आकाराध्यक्ष 3–लौहाध्यक्ष 4–लक्षणाध्यक्ष 5–लवणाध्यक्षण 6–कोष्ठागाराध्यक्ष 7–पाण्याक्षाय 8–आयुधाध्यक्ष 9–पातवाध्क्ष 10–मानाध्यक्ष 11–शुल्कापध 12–सूत्राध्क्ष 13–सीताध्यक्ष् 13–सुराध्यक्ष 14–सूनाध्यक्ष 15–मुद्राध्यक्ष 16–विवीताध्यक्ष 17–द्यूतअध्यक्ष 18–बन्धानागाराध्यक्ष 19–नवाध्यक्ष 20–नौकाध्यक्ष 21–पत्तानाध्यक्ष 22–गणिकाध्यक्ष 23–संस्थाध्यक्ष 24–सैन्यविभागध्यक्ष।[20]

चाणक्य के अनुसार राज्य के स्वामी राजा के अन्दर पालन करता का गुण होना चाहिए तथ वह गुणवान हो बुद्धिमान हो उत्साही हो शिक्षित हो विनम्र हो तभी वह शासन कर सकता है। वह राज्य की सम्पूर्ण शक्तियों का उपभोक्ता, कुशल प्रशासक कानून जानने वाले और न्याय करने वाला होना चाहिए इसके अतिरिक्त उसे लोक कल्याणकरी कार्य करना चाहिए अपने सम्राज्य के विस्तार के लिए युद्ध करना चाहिए इसके अतिरिक्त राजा को निरन्तर जनता के साथ सम्पर्क बनाए रखाना चाहिए। संक्षेप में उद्योगों की स्थापना करना, यज्ञ करना, व्यवहारों का निर्णय करना, दक्षिणा देना, अनुशासन आदि भी राजा के प्रमुख कर्तव्य हैं। जिन्हे कौल्टिल्य ने ''वृत्त'' की संज्ञा दी है। जो राजा अपना वृत धार्म पूर्वक पूर्ण करता है, वह निष्कंटक पृथ्वी पर राज्य करता है अन्यथा राजा प्रजा का विश्वास एवं प्रेम खो बैठता है एवं प्रजा स्वयं उसे पदच्युत कर सकती है। अतः कौटिल्य के अनुसार राजा को सदैव अपने कर्तव्य पालन में संलग्न रहना चाहिए।[21]

बुन्देलखाण्ड में गुप्त कालीन केन्द्रीय शासन व्यवस्था– बुन्देलखाण्ड का एक बहुत बड़ा भाग गुप्तों के आधीन था जिसका पता प्रयाग 'प्रसस्ति, और एरण में उपलब्ध अभिलेखों से लगता है

अनेक इतिहासकार यह मानते है कि उनकी शासन पद्धति मौलिक शासन पद्धति नही थी उन्होने अपने परर्वरती नेरेशो का अनुकरण किया केवल व्यवस्था में कुछ संसोधन किये गये उनके शासन काल में नये प्रशासनिक द्रष्टि कोण का समावेश किया जिसके कारण सामाजिक भौतिक उन्नति पराकाष्ठा पर पहुंच गई यह शासन प्रणाली निम्न विन्दुओं पर आधारित थी।

1—राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली— इस समय सम्पूर्ण सम्राज्य का मुखिया राजा होता था प्रशासन के समस्त अधिकार उसके हांथो में केन्द्रित होते थे सुप्रसिद्ध विद्धान परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार प्रजातन्त्र से सर्वथा भिन्न शासन—प्रणाली का नाम राज तन्त्र है।इसमें प्रभुसत्ता के रूप में एक व्यक्ति अपने राज्य के समस्त भूभाग और उसकी सारी जनता पर शासन करता है।उसका आदेश सर्वमान्य होता है उसका अपने राज्य पर अधिकार या तो पैत्रिक अथवा वंशगत होता अथवा वह अपने शक्ति और बाहुबल से दूसरे के राज्य को छीनकर अपना अधिकार स्थापित करता है।इस प्रकार के राज्यों का उल्लेख संसार में सर्वत्र बहुतायत से मिलता है।भारत में इस ढंग से राज्यों का उल्लेख वैदिक काल से ही प्राप्त है साम्राज्य का रूप धारण करने से पूर्व गुप्तों का राज्य भी इसी प्रकार का था।[22]

2—सामन्त शाही पद्यति— गुप्त युग में सामन्त शाही शासन प्रणाली का उदय हो गया था सत्ता का विकेन्द्रीकरण मुश्किल कार्य था प्रान्तीय शासकों पर कभी—कभी सम्राट का अंकुश नहीं रहता था कभी—कभी सामन्त लोग सम्राट के सामने उपस्थित होकर विविध प्रकार की सूचनाएं दिया करते थे।

3—सत्ता का विकेन्द्रीकरण— गुप्तों का सम्पूर्ण साम्राज्य चार भागों में विभक्त था इनका विभाजन केन्द्रीय शासन,प्रान्तीय शासन,जिन्हें भुक्ति के नाम से सम्बोधित किया जाता था जनपदीय शासन जिन्हें विषय के नाम से सम्बोधित किया जाता था तथा ग्राम शासन आदि भागों में विभक्त था।

4—केन्द्रीय शासन— केन्द्रीय शासन सम्राट के ऊपर निर्भर था शासक वंश के अनुसार होता था राजा का जेष्ठ पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी होता था यदि जेष्ठ पुत्र अयोग्य होता था तो छोटे पुत्र को उत्तराधिकारी बनाया जाता था ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार गुप्त युग में दैवीशक्ति का सिद्धान्त मान्य था। प्रयागप्रशस्ति में समुद्र गुप्त को लोकद्याम्नों देवस्य कहा गया है। राजा को सिंहासन पर बैठने से पहले की निष्ठा, निष्पक्षता आदि की शपथ ग्रहण करनी पडती थी प्रमुख राजपदाधिकारियों की नियुक्त करना, समय—समय पर राज्य के विभिन्न भागों का निरीक्षण करना, सम्मानित

व्यक्तियों को उपाधियाँ प्रदान करना आदि कार्य राजा के अधिकार में थे। सर्वोच्च सेनानायक न्यायपालिक का न्यायाधिपति तथा कार्यपालिका का सर्वोच्च अधिकारी भी राजा ही था। सम्राट के विरूद्ध 'महाराजाधिराज' 'परमेश्वर' 'सम्राट' 'परमदेवत' तथा 'चक्रवर्तिन' आदि थे।[23]

5—मन्त्रि परिषद— राज्य कार्य में सहयोग देने के लिए गुप्त नरेशों के पास एक मन्त्रि परिषद होती थी किन्तु इसकी संख्या निश्चित नही थी ऐसा प्रतीत है कि मन्त्रियों का चयन व्यक्तिगत योग्यता के आधार पर पर किया जाता था। इसके सदस्य राजकुमार और सामन्त होते थे। कभी—कभी उंच्च अधिकारी भी मन्त्रि बनाये जाते थे इन्हे मन्त्रिन और सचिव कहा जाता था कभी—कभी राजा मन्त्रि परिषद की बैठक बुलाता था जिसमें गोपनीय विषयों पर चर्चा की जाती थी।

6—अन्य पदाधिकारी— राज्य का शासन चलाने के लिए निम्न पदाधिकारी होते थे जो अपने—अपने विभागों का कार्य देखते थे।

1— महाबलाधिकृ त— यह साम्राज्य की सेना का सेनापति था। **2— महादण्डनायक—** यह युद्ध तथा सैन्य सक्रियता से सम्बन्धित था। **3— महाप्रतिहार—** इसका कार्य सम्राट के राजप्रसाद से सम्बन्धि विषयों की देख रेख करना था। **4— महासन्धि विग्रहक—** यह पद नया एवं युद्ध तथा सन्धि के विषयों से सम्बन्धित था। **5— दण्डपाशिक—** यह पुलिस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी था। **6—भाण्डागाराधिकृत—** यह राज्य के कोष का अधिकारी था। **7—महापक्ष—पद्यलिक** यह राजकीय आयव्यय का लेखा—जोखा रखाता था। **8— विनयस्थिति—संस्थापक** डॉ0 अल्तेकर के अनुसार यह शिक्षा विभाग का अधिकारी था। **9— सर्वाध्यक्ष—** यह अधिकारी समस्त केन्द्रीय विभागों का निरीक्षण करता था। **10—महाश्वपति—** यह अश्वारोही सेना का निरीक्षण करता था। **11—महामही पीलपति—** यह गज सेना का संचालन था। **12—विनयपुर—** विभिन्न भागन्तुकों को सम्राट के समक्ष प्रस्तुत करता था। **13—युक्त पुरूष—** युद्ध आदि में हस्तगत की गई सम्पत्ति का लेखा—जोखा रखता था। **14— खाद्यात्पातिका—** राजप्रसाद के रसोई घर तथा भोजनालय का निरीक्षक था। इन पदो तथा विभागों के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण किन्तु अपेक्षाकष्त छोटे पदाधिकारियों में ध्रवाधिकरण, पुस्तपाल, गौमिल्क, अग्रहारिक, शाल्किक, कर्णिक तथा गोप आदि थे।[24]

सम्राट हर्ष बर्धन के शासन काल की केन्द्रीय शासन व्यवस्था— सम्राट हर्ष बर्धन का प्रभाव बुन्देलखण्ड के अनेक

भागों में था मुख्य रूप से मथुरा, थानेश्वर, काशीपुर, रामपुर, पीलीभीति अन्तर जीखे, अयोघ्या, हयमुख, कौशाम्बी, स्रावष्टी,विशोक, रामग्राम, वराणसी, तक उसका साम्राज्य विस्तृत था इसके अनेक अभिलेख यहाँ उपलब्ध हुए हैं। जिनसे उसके असितित्व का पता लगता हैं, बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित एवं चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा विवरण से पता चलता है कि उसके आधीनस्थ 18 नरेश थे।

सम्राट हर्ष श्रेष्ठ ही नही अपितु शान्तिकाल में शासन व्यवस्था के गुणों से भी परिचित था वह सम्राट की हैसियत से कुशल प्रशासक था और शासन को सर्वोत्तम बनाने के लिए हमेशा प्रयत्न करता रहता था वह राज्य व्यवस्था का निरीक्षण करता रहता था।

केन्द्रीय शासन— सम्राट हर्ष के केन्द्रीय शासन में सम्राट को सर्वोच्च अधिकार प्राप्त था इससे यह सिद्ध होता है कि इस समय राज तन्त्रात्मक शासन प्रणाली थी डा0 ईश्वरी प्रसाद के अनुसार वह सम्राट के गौरव की पूर्णाभिव्यक्ति करने वाले अनेक विरूद्धो से विभूषित था—यथा महाराजधिराज 'परमभट्टारक' 'परमेश्वर' मरमदेवता आदि प्रतीत होता है कि हर्ष को सम्राट के भव्यरूप से मोह था। ह्वेनसांग के अनुसार जब हर्ष निरीक्षण यात्राओं पर जाता था। तो सैकडो व्यक्ति उसके चरणों की गति के अनुसार ढोल बजाते थे। बाण के अनुसार सम्राट अपने सहचरों, अनुचरों दास—दासियों के बीच राज प्रसाद मे रहता था तथा आखेट, सैनिक, अभियानों, प्रशासकीय निरीक्षण यात्राओं एवं धार्मिक अवसरों पर राजप्रसाद से बाहर निकलता था। वह अपने राज्य के प्रत्येक भाग से परिचित था।[25]

तदयुगीन यात्री ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष के बारे में श्वान—च्वांग कहता है राजा का दिन तीन भागों मे बंटा रहता था। एक भाग में तो वह प्रशासन देखता था। और शेष दो भागों में धर्म—कार्य किया करता था।'' वह अथक था और (इन कार्यो के लिए) दिन उसे अत्यन्त छोटा पडता था। यदि नगरों के लोगों में कोई अनियमितता आ जाती थी तो वह स्वयं उनके बीच जाता था।[26]

सम्राट हर्ष का मन्त्रि मण्डल— प्रशासन में सहयोग देने के लिए वह अनेक मन्त्रियों की नियुक्ति करता था ये पद धर्मशास्त्र कारों अर्थशासत्रकारो और स्मृति ग्रन्थ के अनुसार सृजित किये जाते थे मन्त्रियों के बारे मे कोई ऐतिहासिक साक्ष्य नही मिलता किन्तु निम्न मन्त्री उसके मन्त्री मण्ड़ल मे थे। सांधिविग्रहिक, पारिपात्र, बिनिया अथवा वेत्री, सेवक, मीमांसक, पुरोहित, चामरग्राहिणी, ताम्बू, लकरकवाहिनी दीर्धाध्वग् महासामन्त, सामन्त

महाराज, ईश्वरगुप्त के नाम मिलते हैं।[27]

मन्त्रिण्डल के अतिरिक्त कुछ अन्य पदाधिकारी प्रशासनिक कार्य देखा करते थे जो निम्नलिखित थे–

1–सांधिविग्रहिक, 2–महाबलाधिकृत, 3–बृहदश्ववार, 4–कटुक, 5–दूतक महाप्रमातार महासामन्त, 6–महाप्रमातार, 7–महाक्षपटलाधिकरणाधिकृत, 8–दौस्स्थानिक, 9–कुमारमात्य, 10–चाट–भाट, सेवक।[28] मधुबन मे एक ताम्र पत्र उपलब्ध हुआ है प्रशासन की दृष्टि से केन्द्रीय शासन निम्न भागों में विभक्त था–

1–सैन्य संगठन विभाग 2–रक्षिन (पुलिस) विभाग 3–गुप्तविभाग 4–राजस्व विभाग 5–लेख विभाग, केन्द्रीय शासन इन्ही विभागों के आधार पर अपना शासन करता था। हर्ष बर्धन का सम्पूर्ण राज्य भुक्ति अथवा प्रान्त विषय अथवा जनपद पृथक अथवा तहशील, और ग्रामों में विभाजित थे इसके शासन काल में ग्राम सबसे निचली इकाई थी किन्तु सबसे शक्तिशाली इकाई थी सम्राट जहाँ भी यात्रा के लिए जाता था उसके साथ अनेक पदाधिकारी जाया करते थे। एक महाअक्ष पटल अधिकारी द्वारा इन्हे स्वर्ण मुद्रा भेट देने का उल्लेख मिलता है।[29]

बुन्देलखण्ड मे गुर्जर प्रतिहारों की केन्द्रीय शासन व्यवस्था– ये लोग विशुद्ध राजपूत थे इन्होनें बुन्देलखण्ड के अनेक भागों में सम्राट हर्ष बर्धन के बाद राज्य किया इन लोगो की उत्पत्ति आबू पर्वत के पक्ष कुण्ड से हुई थी। ये लोग विशुद्ध क्षत्रिय थे जब अनेक इतिहास कार इन्हे विदेशी क्षत्रिय मानते हैं इनका राज्य मुख्य रूप से पश्चिमी बुन्देलखण्ड में रहा ग्वालियर, ललितपुर, देवगढ़, झाँसी, बारूआ सागर, में इनका असितित्व था इन्होनें अनेक स्थलों में धार्मिक स्थलों का निर्माण कराया यह वंश नागभट्ट से प्रारम्भ होता है और अनेक वर्ष तक बुन्देलखण्ड मे अपना असितित्व बनाये रखता है। इनके संघर्ष राष्ट्रकूटों से हुए इस वंश का शक्तिशाली शासक महीपाल था जिसके आधीन कई सामन्त थे सन 916 के पश्चात इस वंश मे कोई शाक्तिशाली नरेश नही हुआ जिसके कारण इस वंश का पतन हुआ चन्देल प्रारम्भ मे इनके माण्डलिक थे बाद में स्वतन्त्र हो गये इनके समय में तुर्कों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये इनका केन्द्रीय शासन कन्नौज से संचालित होता था। तथा सम्पूर्ण उत्तरी भारत इनकी सत्ता के अन्तर्गत था इनकी शासन व्यवस्था सम्राट हर्ष बर्धन के समान थी यह भी भुक्ति विषय ग्राम आदि इकाइयों में विभाजित था इनकी सत्ता हर्ष बर्धन के समान थी।

बुन्देलखण्ड में चन्देल कालीन केन्द्रीय व्यवस्था—

बुन्देलखण्ड में चन्देलों का असितित्व गुर्जर प्रतिहारों के बाद प्रारम्भ हुआ था अजय गढ़ मे उपलब्धा ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार केन नदी तट से इस राज्य का सुभारम्भ हुआ।[30] चन्द्रवर्मा ने प्रतिहारों को विक्रमी संबत 677 अथवा 682 मे अपदस्थ करके बुन्देलखण्ड पर अपना अधिकार कर लिया था। इस सन्दर्भ मे मऊ मे एक प्रस्तर अभिलेख उपलब्धा हुआ है इस अभिलेख मे यह वर्णन है कि चन्देलों ने गुर्जर प्रतिहार नरेश जिसकी राजधानी कन्नौज में थी को पराजित किया।[31]

चन्देलयुग की शासन व्यवस्था का पता सुक्रनीति से पता चलता है इस ग्रन्थ की रचना सन् 800 से लेकर सन् 1200 के मध्य मे हुई थी इसमें तदयुगीन राजनीतिक व्यवस्था का पूरा पता लग जाता है। इस ग्रन्थ के अनुसार राजपूतो का यह कर्तव्य था कि राष्ट्र के लिए वे अपने प्राण निछावर करे सइया पर पडे-पडे मरना क्षत्रिय के लिए घोर अधर्म था।

अधार्म: क्षात्रियश्चैव पच्छयामरण भवेत्।[32]

उपरोक्त श्लोक से सिद्ध होता है कि क्षत्रिय अथवा चन्देल एक लड़ाकू जाति थी जो राज विस्तार के लिए संघर्ष करती रहती थी।

चन्देल राज सत्ता का स्वरूप— ये लोग निरकुशं और अनियन्त्रित शासक थे इनकी राज्य व्यवस्था राज्यतन्त्र पर आधारित थी तथा इनका आचरण शक्तिशाली सामान्त का आचरण था इनकी सेना व्यवथित और स्वतन्त्र थी ये अपनी महत्वा कंक्षाओ को पूरा करने के लिए अनियन्त्रित हो जाते थे। यद्यपि ये अपने आपको प्रजा का सेवक बतलाते है और परिश्रम से भूमि कर प्राप्त करते है उससे राज्य व्यय चलता है शुक्रनीति में यह वर्णन उपलब्धा होता है।

सर्वत: फलभुग्भूत्वा दासवत्स्यात्तु रक्षाणे।[33]

शुक्रनीति में यह भी वर्णन है कि राजा जनहित में कार्य नही करता तो प्रजा को उस राजा का परित्याग कर देना चाहिए किन्तु कभी -भी प्रजा राजा को हटाने का साहस नही जुटा पायी।

अधार्मशीलो नृष्पतिर्यदा तं भीषयेज्जन:।
धार्मशीलातिबलवद्रिपोराश्रत: सदा। ।।[34]

शुकनीति के अतिरिक्त नारद शुक्ति मे भी राजा की तारीफ यही है और यह कहा गया है कि उसके ह्रदय में देवता निवास करता है।

राजानि प्रहरेद्यस्तु कृष्तागस्यपि दुर्मति:।
शूले तमग्नो विपचेद् ब्रम्हाहत्याशताधिकम्।।[35]

कुल मिलाकर चन्देल युग में राजा सर्वशक्तिमान था जो शक्त्रोतविधि से शासन करता था। कभी—कभी प्रजा भी का चुनाव करती थी तथा राजा की मृत्यु के पश्चात उसकी पूजा देवता के रूप में होती थी क्योकि राजा को दैवी शक्ति से सम्पन्न बतलाया जाता है।[36]

चन्देलो का शासन विभिन्न अंगो के माध्यम से चलता था जो मनुस्मृति के अनुरूप थे ये अंग निम्नलिखित थे।

1—स्वामी (शासक)

2—आमात्य (मंत्री या मंत्रिमंडल)

3—दुर्ग (किले)

4—जनपद (राज्य और प्रजा)

5—कोष

6—दण्ड (सेना तथा न्याय—विधान)और

7—मित्र

स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डो सुहन्तथा।
सप्त प्रकृतयो ह्येता: सप्तांग राज्यमुच्यते ।।[37]

चन्देलराज्य में राज्य के सातो अंग विकसित हुए और शक्तिशाली हुए।

चन्देलराज्य में राजा की स्थित और उसका राज्यारोहण— चन्देल राज्य के अन्तर्गत राजा राज्य का स्वामी था और सभी अंगो का अध्यक्ष था समस्त अधिकार उसी में केन्द्रित थे वह सेना का सर्वोच्च सेनापति था शासन का सबसे बडा अधिकारी था और सर्वोच्च न्यायाधीश था किन्तु शास्त्रों में वर्णित राजा के लिए कर्तब्यों का अनुपालन वह नही कर पाता था किन्तु कुछ नरेश नैतिकता का अनुपालन करने से लोक प्रियता प्राप्त करते थे राजा की प्रमुख रानी प्रथम महीषी कही जाती थी कभी—कभी वह राज्य का संचालन भी करती थी उसका जेष्ठ पुत्र युवराज कहलाता था जिसे अनेक राजनैतिक अधिकार प्राप्त थे।

चन्देल युग आने तक राजा के मरने के पश्चात राज्यारोहण वंश परम्परा के अनुसार होने लगा था कभी—कभी राजा जिसे चाहता था उस राजकुमार को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर देता यदि राजा नि:सन्तान होता था उस स्थित में वह अपने रिस्तेदार पुत्र को गोद लेकर राजा बना देता था चन्देलों को मुख्य रूप से जेष्ठ पुत्र को उत्तराधिकारी घोषित करने की प्रथा थी।

जिसे राजा घोषित किया जाता था उसका राज्याभिषेक होता था उस समय जो व्यक्ति राजा का पद ग्रहण करता था उसे सपथ ग्रहण करनी

पडती थी कि वह राज्य का कार्य सत्यनिष्ठा से करेगा तथा प्रजा की रक्षा करेगा तुर्कों के आगमन तक राज्याअभिषेक की परम्परा बराबर प्रचलित रही।

इस वंश के राजा अनेक उपाधियाँ धारण करते थे केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार गुप्तों के उत्थान के साथ पदवियाँ बडी और श्रंखाला बद्ध होने लगी।'परम भट्टारक महाधिराज परमेश्वर'सम्राट चक्रवर्तित्व की पदवी के रूप में गृहीत हुआ। इसकी परम्परा इस देश मे राजपूत युग के अवसान तक चलती रही। चन्देल शासको ने भी पौरूष और राजनीतिक, सफलता के फलस्वरूप अपने को इस पदवी का अधिकारी बनाया और प्रतिहारों के बाद में वर्षों तक भारत के सम्राट पद को सुशोभित किया। इस वंश के आरम्भ के शासकों ने 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की। क्रम से इसका विकास होकर 'महाराजाधिराज परम भट्टारक' हो गया। किन्तु ज्यों-ज्यों वे अपनी उन्नति की चरम सीमा की ओर बढ़ते गये त्यों-त्यों वे महाराजाधिराज परमभट्टारक परमेश्वर' की परम्परागत पदवी धारण करते थे।[38]

मन्त्रि मण्डल— चन्देलों का मन्त्रि मण्डल कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित मन्त्रि मण्डल जैसा था राज चलान के लिए मन्त्रि मण्डल का सहयोग आवश्यक था इसलिए मन्त्रि मण्डल की नियुक्ति करता था और उनकी सम्मति से कार्य करता था।

तद्यद् भूयिष्ठाः कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयुः तत्कुर्यात।[39]

कभी-कभी आयोग्य राजा भी मन्त्रि मण्डल के सहयोग से अच्छा शासन कर लेते थे इनके मन्त्रिमण्डल में निम्न लिखित सदस्य होते है-

1-राजा मात्य, 2-पुरोहित, 3-महाधर्माध्यक्ष, 4-महासंधिविग्रहिक 5-महासेनापति, 6-महामुद्राधिकृत 7-महाक्षपाटलिक 8-महाप्रतिहार, 9-महाभोजक, 10-महापिलुपति। इन नामों के साथ 'महा' जुटा रहना यह स्पष्ट करता है कि ये विभागों के प्रधान भी थे। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कर्मचारी भी शासन चलाने के लिए हुआ करते थे हर विभाग का अपना संगठन होता था उसका एक अध्यक्ष भी होता था तथा उसका मन्त्री भी होता था एक परराष्ट्र मन्त्री भी होता था आवष्यकता पडने पर मन्त्रियों और कर्मचारियों की संख्या घटती-बढ़ती रहती थी।

तुर्क शासन काल में केन्द्रीय शासन व्यवस्था—

बुन्देलखण्ड मे तुर्कों का आगमन 11वी शताब्दी के प्रारम्भ मे हुआ महमूद गजनवी पहला तुर्क था जिसमें बुन्देलखण्ड की धरती मे सन 1019 से लेकर सन 1022 तक अपने आकमण इस धरती पर किये उसके पश्चात कुतुबुद्दीन ऐबक से लेकर इब्राहिम लोदी तक अनेक तुर्क शासको ने इस ६

ारती को प्रभावित किया इसका कुछ भाग अपने अधिकार मे रखा जहाँ उन्होने अपनी तरह की शासन व्यवस्था लागू की उनके प्रभाव मे कालिंजर, कालपी, ग्वालियर, चन्देरी आदि क्षेत्र रहे।

सल्तनतकाल की केन्द्रीय शासन व्यवस्था— सल्तनत शासन को हम धर्म निरपेक्ष राज्य की संज्ञा नही दे सकते क्योकि इसका सम्बन्ध इस्लाम धर्म से था इस लिए इन्होने स्लाम को राजा घोषित किया जिसके अन्तर्गत राजा का धर्म था कि वह स्लाम धर्म का प्रचार करे और उसकी रक्षा करे इस समय मूर्तिपूजा मुस्लिम कानून के विरुद्व थी इसलिए सुल्तानो ने हिन्दू धर्म स्थल तोडे और मूर्ति पूजा का विरोध किया क्यो कि इनके शासकों का उदेश स्लामी राज्य की स्थापना करना था।

खलीफा— विश्व भर के मुसलमान चाहे कही भी रहते हो वे खलीफा को अपना एक मात्र शासक मानते हैं कोई भी सुल्लतान खलीफा से आदेश लेकर सुल्लतान की पदवी धारण करता था किन्तु बाद में खलीफा नाम मात्र का शासक रह गया और सुल्लतान उसे प्रतीकात्मक मुखिया मानने लगे।

सुल्तान— दिल्ली में शासन करने वाला तुर्क सुल्लतान कहलाता था और ऐसा माना जाता था कि वह सम्पूर्ण सुन्नी जनता के ह्दय में निवास करता हैं। इस समय सुन्नी जनता को मिल्लत के नाम से सम्बोधित किया जाता था उसे सुल्तान को चुनने का अधिकार भी था मरने के पूर्व वह अपने उत्तराधिकार का चुनाव करता था डॉ0 आशीर्वादीलाल के अनुसार वंशानुगत उत्तराधिकारी का सिद्वांत नही था और कम से कम सैद्वान्तिक दृष्टि से प्रत्येक सच्चे मुस्लमान के लिए सुल्तान के पद का द्वार खुला हुआ था। किन्तु व्यवहार में वह विदेशी तुर्को तक ही सीमित रह गया। 15वी और 16वी शताब्दी में इस क्षेत्र में कुछ विस्तार हुआ और अरब तथा अफगान नस्ल के सुल्तान भी हुए।[40]

सल्तनत काल में सुल्तान सर्व शक्ति सम्पन्न निरंकुश शासन था उसे ईश्वर की शक्ति से सम्न्न माना जाता था वह सर्वोच्च न्यायाधिकारी थी था और हजीस की नियमों के अनुसार वह शासन करता था उसे कुरान सरीफ के नियमों का भी अनुपालन करना पडता था वह अपने सेना का भी मुखियां था।

मन्त्रि मण्डल— तुर्क सुल्तान भी अपना शासन चलाने के लिए अनेक मन्त्रियों की नियुक्ति करता था इनमें प्रधान मन्त्री को वजीर के नाम से सम्बोधित किया जाता था वह सुल्तान को शासन सम्बन्धित सलाह देता था बन्दोबस्त करता था राज्य के व्यय पर नियन्त्रण रखता था वजीर के कार्यालय

को दीवाने तिजारत कहा जाता था उसका काम काज देखने के लिए एक नायब वजीर होता था वजीर के नीचे मुश्रिफे–मुमालिक (महालेखाकार)होता था और उसके बाद मुस्तौफीए मुमालिक (महालेखा परीक्षक) मुश्रिफे–मुमालिक प्रान्तों तथा अन्य विभागो से होने वाली आय का लेखा रखता था और महालेखा–परीक्षक उसकी जाँच किया करता था। फीरोजशाह तुगलक के शासन काल में इस व्यवस्था में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया गया था। महालेखा कार आय और महालेखा परीक्षक व्यय का हिसाब रखता था।[41]

मन्त्रि मण्डल में अन्य सदस्य होते थे दीवाने–आरिज सैन्य विभाग का मन्त्रि होता था इसके अलावा दूसरा मन्त्री दीवाने इन्सा होता था यह राजकीय पत्र लेखन और राजकीय निर्देश प्रेरित करने का अधिकारी था यह यथास्थान डाक भी भेजता था इसका एक मंत्री दीवाने–रसालात कहलाता था यह धार्मिक क्रिया कलापों को देखता था फूट नीति राजदूतो की नियुक्ति और विदेश विभाग इसकी जुम्मेदारी में था एक अन्य मन्त्री सदुष–सुदूल कहलाता था ये मन्त्री धर्म तथा धार्मिक कृत्यों में निगरानी रखना इनका काम था उसका सदुपयोग तथा धार्मिक कष्त्यौं मे निगरानी रखना इनका काम था।

मुख्य रूप से मन्त्रि मण्डल को मजलिसे–खल्वत कहा जाता था कभी–कभी मन्त्रिमण्डल की बैठक होती थी जो सुल्तान को अनुकूल सलाह दिया करते थे किन्तु सुल्तान यह सलाह मानने के लिए बाध्य नही था कुछ अन्य विभाग भी होते थे डा0 आशीर्वादीलाल के अनुसार चार प्रथम श्रेणी तथा द्वितीय श्रेणी के मन्त्रियों (सद्रुस–सुदूर तथा मुख्य काजी) के अतिरिक्त राजधानी में अन्य विभागाध्यक्ष भी थे जिनके ऊपर महत्वपूर्ा कार्यो का भार था। वे इस प्रकार थे बरीदे–मुमालिक (डाक तथा गुप्तचर विभाग का अध्यक्ष) दीवाने अमीर को ही अर्थात कृषि विभाग जिसकी स्थापना मुहम्मद तुगलक ने की थी।दीवाने मुस्तखाज अर्थात वह विभाग जिसका काम किसानों तथा कलक्टरों से बकाया वसूल करना था जिसकी स्थापना अलाउद्दीन खिलजी ने की थी और दीवाने–इस्तिहकाक अर्थात पेन्शन विभाग।[42]

महलों की देख–रेख के लिए शाही ग्रह प्रबन्धक हुआ करते थे इनमें अंगरक्षक सरे–जाँदा, दीवाने–बन्दागान, आदि पदाधिकारी होते थे ये लोग महलो के अतिरिक्त कारखाने भी देखते थे पशुओं की देख–रेख भी करते थे इनका सुल्तान और वजीर से सीधा सम्बन्ध रहता था कभी–कभी ये लोग युद्ध में भी भाग होते थे और युद्ध का समान भी ढोया करते थे इनके अन्तर्गत कई कर्मचारी होते थे।

बुन्देलखण्ड में मुगल कालीन केन्द्रीय शासन व्यवस्था— मुगल शासन की स्थापना सन 1526 ई0 में भारत वर्ष में मुगल सम्राट बाबर ने की थी तभी से बुन्देलखण्ड मुगलो के प्रभाव में आया था बाबर एक कूटनीतिज्ञ और कुशल सैनिक था किन्तु उसे भारत वर्ष में शासन करने का बहुत समय उपलब्ध नही हुआ इसलिए उसके शासन का कोई प्रभाव प्रशासनिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड पर नही पड़ा इसी प्रकार हुमायूँ का कोई प्रभाव प्रशासनिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड पर नही पड पाया।

केवल शेरशाह शूरी एक ऐसा शासक है जिसका प्रशासनिक दृष्टि से प्रभाव बुन्देलखण्ड पर पडा क्योकि उसने कालिंजर दुर्ग पर विजय प्राप्त कर ली थी। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड के अनेक भाग उसके अधिकार मे थे इसके शासन में चार विभाग थे डॉ0 आर्शीवादीलाल के अनुसार ये विभाग 1—दीवाने वजारत 2—दीवाने आरिज, 3—दीवाने रसातल, और 4—दीवाने इंशा कहलाते थे। इनके अतिरिक्त बहुत से छोटे पद थे। जिनमें से दो—प्रमुख काजी और संवाद—विभागीय संचालक—का पद बहुत ऊँचा समझा जाता था कुछ लेखकों ने तो इन्हे मन्त्रियों की श्रेणी में भी रखा है। इससे ज्ञात होता है कि शेरशाह के आन्रिक केन्द्र का शासन तन्त्र ठीक वैसा ही था जैसा दिल्ली सल्तनत के गुलाम बंश के राजाओं के काल से लेकर तुगलक—वंश के राजाओं के समय में रहा।[43]।

मन्त्रियों के अतिक्ति अन्य पदाधिकारी भी होते थे जो अपने—अपने विभागों का कार्य देखते थे मुख्य रूप से न्याय व्यवस्था काजी के हाँथ में थी इसमें एक प्रधान काजी था जो उसके मताहत अन्य काजी हुआ करते थे गुप्तचर विभाग के अधिकारी अलग होते थे तथा महलों की व्यवस्था के लिए अलग अधिकारी होते थे।

सम्राट अकबर के जमाने मे शासन व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुआ अकबर के नियन्त्रक और सलाह कार पहले कट्टर पन्ती मुसलमान थे इसलिए अकबर बादशाह धर्मरक्षक कुरान सरीफ का रक्षक और ईश्वर की आज्ञाओं का पालन कराने वाला शासक माना गया समय परिवर्तन के साथ अकबर की नीतियों में परिवर्तन हुआ तथा उसने सभी धर्मो और कल्याण के लिए नियम बनायें अबुल—फजल के अनुसार ''राजपद ईश्वर का एक उपहार है और यह तब तक प्रदार नही किया जाता जब तक कि एक व्यक्ति में हजारों महान गुणों और विशेषताओं का समन्वय न हो जाय। इस महान पद के लिए जाति, धन—सम्पत्ति तथा लोगो की भीड़—भाड़ ही काफी नही है'' अकबर का विचार था कि ''राजाओं का दर्शन मात्र ही ईश्वर—भक्ति का अंग

माना गया है इन्हे सचमुच ईश्वर के रूप (जिल्ले आलही) कहकर पुकारा गया है और इनका दर्शन लाभ दिल में ही ईश्वर की याद जगाने का साधन है।[44] मुगल काल में राजा या बादशाह सर्वशक्ति माना था स्वेच्छा चारी था किन्तु वह सभ्य और उदार था वह न्याय करता था जनभावनाओं का आदर करता था और कर्तव्यों का पालन करता वह जनता की फर्याद सुनता था तथा स्वतः की नीति निर्धारित करता था वह शत्रुओं वह सतर्क भी रहता था।

अकबर का मन्त्रि मण्डल— डॉ0 आर्शीवादी लाल के अनुसार अकबर का मन्त्रिमण्डल इस प्रकार था—1—प्रधान मन्त्री (वकील) 2—वित्तमन्त्री (दीवान या वजीर) 3—मुख्य वेतनाध्यक्ष (मीर बख्शी) 4—प्रमुख सरदार (सदरूस सदर) अकबर के शासन काल के आरम्भिक वर्षो में मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधान करता था। इनकी कोई संख्या निश्चित नही थी राज्य की बागडोर अपने हांथो मे लेने पर अकबर ने प्रधान मन्त्री को इस अधिकार से वंचित कर दिया। अब वह स्वयं ही मन्त्रियों की नियुक्ति करता और इन्हे पदच्युत करता था। उनके कार्यकाल की कोई निश्चित अवधि नही थी और न इनकी तरक्की के लिए ही कोई निश्चित नियम थे।[45]

मन्त्रिमण्डल के अलावा कुछ अन्य कर्मचारी भी होते थे जो राज्य का कार्य देखा करते थे इस समय का एक अधिकारी मीरसाँमा होता था इसे भी मन्त्रि का दर्जा प्राप्त था किन्तु सम्राट अकबर के जमाने में यह दीवान और वजीर के अधीन कार्य करता था।

बुन्देलखण्ड में बुन्देले शासको की केन्द्रीय शासन व्यवस्था— बुन्देलखण्ड में बुन्देलो का राज्य तुर्को के समय से प्रारम्भ हुआ इस वंश का एक लम्बा इतिहास है।किन्तु इसका असितित्व तभी से माना जा सकता है। जब से इनकी शासन सत्ता बुन्देलखण्ड में स्थापित हुई इसके संस्थापक पंचमदेव थे इन्होने विक्रमी संबत 1313 तदानुसार सन 1526 ई0 से बुन्देलखण्ड राज्य करना प्रारम्भ किया तथा इनका स्वर्गवास सन 1214 मे हुआ इनके समय में दिल्ली में सुल्लतान नासिरुद्वीन महमूद और गयासुद्वीन बलवन का शासन था बुन्देलो का यह वंश सबसे पहले महौनी में रहा उसके पश्चात इन्होने अपनी राजधानी गढ़ कुण्डार बनायी तत्पश्चात ओरछा बनायी इसके बाद इस राज्य के दो विभाजन और हुए कालान्तर मे यह राज्य, ओरछा राज्य, दतिया राज्य, और पन्ना राज्य के नाम से जाना गया। छत्रशाल की मृत्यु के पश्चात बुन्देलो के छोटे—छोटे अनेक राज्य स्थापित हो गये जहाँ ये स्वतन्त्र रुप से शासन करते थे किसी के आधीन नही थे कभी

ये तुर्को वा मुगलो की तरफ मिल जाते थे और कभी उनका विरोध करने लग जाते थे।

सुप्रसिद्ध इतिहास कार कृष्ण कवि बुन्देलो की राज्य व्यवस्था श्रुति पुराण और बेदो के अनुसार मानते हैं।

स्वास्ति, साम्राज्यं, भौज्य, स्वराज्यं, वैराग्य, पारमेज्यराज्यं, महाराज्यं, आधियत्यमय, सामन्त पर्यायीस्यात, सार्बायुषः आन्ता हुआ परार्धात, प्रथित्यै समुद्र पर्यन्ताया एकराट इति।[46]

ऋषियों की तपस्या से उक्त आठ प्रकार के राज्यो की गणना इस प्रकार की गई थी।

1—साम्राज्य,

2— भौज,

3—स्वराज्य,

4— वैराज्य,

5— पारमेष्ठाराज्य,

6—महाराज्य,

7— आधिपत्यम,

8— समन्तपर्यायी,

इनके अतिरिक्त जनराज्य (जानराज्य) गणराज्य, राज्य इनका भी वर्णन वेद में है इस सहिता में किस प्रकार राज्य भारत वर्ष के किस भाग कें अथवा भारत वर्ष के बाहर भी किस दिशा में था इसका स्पष्ट उललेख ब्राह्मण ग्रन्थो में है आर्थात यह एक इतिहास की घटना है केवल कवि कल्पना नही है।[47]

राजा— बुन्देलों के राज्य में राज्य का प्रमुख अधिकारी राजा होता था तथा सम्पूर्ण शक्ति राजा के हाथों में केन्द्रित होती थी राजा का कार्य पालन करना, उसकी रक्षा करना, धार्म की रक्षा करना, राज्य सीमा की रक्षा करना,तथा न्याय करना था।तथा यही समस्त पदाधिकारियों की नियुक्ति भी करता था पं0 गोरे लाल तिवारी के अनुसार महाराज छत्रसाल के राज्य में प्रत्येक कार्य महाराज की ही अनूमति से होता था। सारे भारतवर्ष में इस समय शासक के कहने के ही अनुसार शासन होता था।मन्त्रि मण्डल को कोई विशेष अधिकार न थे।[48]

मंत्रिमण्डल— राजव्यवस्था में सहयोग देने के लिए एक मन्त्रिमण्डल हुआ करता था। जिसकी नियुक्ति राजा स्वंय करता था इस मन्त्रिमण्डल में प्रतिष्ठित व्यक्ति रखे जाते थे तथा प्रत्येक जाति के दो प्रतिष्ठित व्यक्ति मंन्त्रिमण्डल के सदस्य होते थे।ये लोग राजा को सलाह देने के अतिरिक्त

प्रशासन में भागीदारी भी करते थे समय–समय पर राजा मन्त्रियों से सलाह भी लिया करता था।

बुन्देलखण्ड नरेशी में महाराजा छत्रसाल सर्वाधिक लोकप्रिय थे इन्होने सर्वप्रथम अपनी राजधानी छतरपुर के सन्निकट मऊसानियाँ में बनायी उसके पश्चात इनकी राजधानी पन्ना में रही इसी प्रकार ओरछाराज्य की राजधानी ओरछा से टीकमगढ़ चली गयी किन्तु दातिया राज्य की राजधानी दतिया राज्य में बनी रही। परिस्थितियो बस कभी ये मुगलों की आधीनता स्वीकार करते थे और कभी स्वतन्त्र हो जाते थे इस प्रकार बुन्देलो की शासन व्यवस्था कभी भारतीय शासन व्यावस्था का अनुसरण करती थी। तथा कभी उन्हे तुर्को की शासन व्यवस्था का अनुसरण करना पडता था आगे जब बुन्देलों का राज्य विभिन्न रियासतो में पर्णित हुआ। तो शासन व्यवस्था छिन्न–भिन्न गयी और ये लोग निशक्त हो गये।

बुन्देलखण्ड में गौडो की केंन्द्रीय शासन व्यवस्था–

गौडों ने अपना राज्य तुर्को के समय स्थापित किया था। किन्तु इस शासन का विकास संग्रामशाह के जमाने में हुआ।इनके काल में राज्य की सीमाए विस्तृत हुई तथा राज्य का विस्तार बडा व्यापक हुआ इनके राज्य में 52 गढ़ थे।संग्रामशाह की मृत्यु के पश्चात दलपतशाह उत्तराधिकारी बना उसकी पत्नी का नाम रानी दुर्गा वती था दलपतिशाह की मृत्यु के पश्चात उसने गौडवाने को शासन कई वर्षो तक किया।

राजा (या राज्य प्रमुख)– अन्य हिन्दु राजाओ की भॉति गौड साम्राज्य में भी राज्यतन्त्रात्मक शासन प्रणाली थी।राजा शासन का प्रमुख होता था वह अपनी स्वेच्छा से शासन चलाता था सेना की व्यवस्था करता था तथा उसका प्रमुख सेनापति होता था वह प्रजा पर निगरानी रखता था न्याय व्यवस्था देखता था तथा अन्याय करने वालो को दण्ड देता था राजा जन कल्याण के कार्य भी करता था पं0 गोरेलाल तिवारी के अनुसार जब दलपतिशाह का देहान्त हुआ तब उसके पुत्र बीर नारायण की अव्यवस्था तीन वर्ष की थी इस कारण अपने अल्प वयस्क पुत्र की ओर से राज्य का काम रानी दुर्गावती सम्भालने लगी दलपतिशाह की मृत्यु के पश्चात चौदह वर्ष तक रानी दुर्गावती ने अपने पुत्र की ओर से राज–काज बुद्धिमानी से चलाया इसने राज्य प्रबन्ध बहुत अच्छा किया और राज्य कोष की खूब बृद्धि की इसकी प्रजा इससे बहुत प्रसन्न रहती थी इसका राज्य विस्तार भी बहुत था

49

मंन्त्रि मण्डल– राजा को सलाह देने के लिए एक मन्त्रि मण्डल भी हुआ करता था। इस मन्त्रि मण्ड मे अनेक सदस्य होते थे इन मन्त्रियो की

नियुक्त राजा अपनी इच्छा से करता था तथा असन्तुष्ट होने की स्थित में वह मन्त्रियों को निकाल भी सकता था प्रत्येक मन्त्री अपने अपने विभाग का कार्य देखता था। मन्त्रियों का दायित्व दुर्ग की रक्षा' सैन्य संगठन, युद्ध और सन्धि कूटनीति राजस्व वसूली, प्रशासनिक व्यवस्था, न्याय व्यवस्था और गोपनीय बातो का पता लगाना था। इनकी सहायता के लिए अनेक कर्मचारी तथा विभागाध्यक्ष गौंड़ साम्रत्य में रहते थे।मुगलों के कारण गौंड़ साम्राज्य का पतनहो गया ।

2–बुन्देलखण्ड़ में प्रान्तीय शासन का स्वरूप– सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड़ क्षेत्र वैदिक युग गणराज्यों में विभक्त था ये गण राज्य प्रशासन की दृश्टि से स्वतन्त्र थे। किसी के आधीन नही थे इन गण्राज्यों में चेंदि और दर्षाण देश आति प्राचीन थे इनका वर्णन वेदों में भी उपलब्ध होता हैं। समय व्यतीत होने के साथ–साथ यहाँ गणराज्यों का असितित्व समाप्त हो गया मौर्यकाल से लेकर हर्शवर्धन सम्राज्य तक और उसके बाद चन्देलो के पूर्व तक यहाँ सामान्त शाही शासन व्यवस्था का उदय हुआ इस समय बुन्देंल खण्ड बाहरी शासकों के
आधीन था तथा इस क्षेत्र को विन्ध्य आटवी के नाम से पुकारा जाता है इस समय प्रान्तों को भुक्ति अथवा मण्डल के नाम से सम्बोधित किया जाता था अन्त के अधिकारी को माण्डलिक सामन्त अथवा राजा के नाम से पुकारा जाता था इस समय बुन्देल खण्ड कई मण्डलो में विभाजित था इनकी प्रशासनिक व्यवस्था भारतीय धर्मशास्त्रो तथा धर्मशूत्रो के अनुसार थी किन्तु यह व्यवस्था अनार्यो द्वारा शाषित क्षेत्रो में नही थी।

1.अनार्यो की प्रान्तीय प्रशासनिक व्यवस्था– यहाँ के मूल निवासी अनार्य कोल भील गौंड बैगा सहरिा, खैरवार, सबर आदि लोग भले ही किसी समान्त के आधीन रहे हो किन्तु उनकी आन्तरिक और प्रान्तीय प्रशासनिक व्यवस्था विल्कुल अलग थी जिसका उल्लेख किसी भी धर्म सूबत्र में उपलब्ध नही होता जिस स्थान में ये बसते थे उस स्थान के ये स्वामी होते थे। तथा इनका नेता या नायक इनका राजा होता था जिसका अधिकार खनिज सम्पदा, बन सम्पदा परिपूर्ण रुपेण होता था इनकी एक केन्द्रीय सत्ता थी जिसका विभाजन अलग–अलग ग्राम मण्डलों के अनुसार था प्रत्येक ग्राम मण्डल का एक प्रमुख होता था जिसके आधीन 10से लेकर 20गाँव हुआ करते थे। इसको प्रशासनिक सहयोग देने के लिए ग्राम पतियों की एक समित होती थी मण्डल का नायक कोई भी निर्णय के लेने के लिए स्वतंत्र नही था। जो निर्णय समित करती थी मण्डल का नायक उसी के अनुसार

कार्य करता था ये लोग अपने निर्णय से केन्द्रीय नायक को अवगत करा देते थे। अन्य जातियों से संघर्श और सहमति समितियों के निर्णय के माध्यम से की जाती थी। खनिज सम्पदा का बंटवारा और कर का निर्धारण भी यहीं समित करती थी। यही समिति ग्राम निर्माण पेयजल संसाधन तथा व्यक्तियों की समस्याओं का समाधान भी करती थी। इनका कोई लिखित संविधान नही था।

2—आर्य कालीन प्रान्तीय प्रशासनिक व्यवस्था— आर्यो के समय में प्रान्तो की प्रशासनिक व्यवस्था वेदो के अनुकूल थी इस समय दो प्रकार के राज्य थे प्रथम राज्य सामन्तवादी राज्य व्यवस्था के अनुसार थे जिनका राज्य बहुत विस्तृत होता था और जो कई प्रान्तो में विभाजित होता था। अधिकांश सामन्त या शासक राज्य के सप्तांग सिद्धान्तो पर विश्वास करते थे। तथा प्रशासन व्यवस्था उसी अनुसार थी प्रशासन को नियन्त्रित करने के लिए सैन्य शक्ति का भी विशेष महत्व था इस समय नरेशों के पास सात प्रकार की सेना होती थी।

1— मौल सेना	4— मित्र सेना	7— ओत्साहिक सेना।[50]
2— भूत सेना	5— अमित्र सेना	
3— श्रेणी सेना	6— अटव सेना	

यह सेना राज्यों में शान्ति बनाये रखने का कामा करती थी और एकता बनाये रखती थी।

इस समय अनेक राज्य गणराज्यों के रूप में थे। इनमें कुछ का असितित्व बुन्देखण्ड में था इनकी शासन व्यवस्था जन प्रति निधियों अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा की जा सकती थी धर्मशास्त्र तथा अमर कोश के अनुसार यह राज्य का कृतिम संगठन था कई गणराज्यों को मिलाकर एक संघ का निर्माण होता था। यहां की शासन व्यवस्था प्रजातान्त्रिक थी मुख्य रूप से यहाँ के गणराज्यों का विकास 325 ईसा पूर्व से हुआ इन गण राज्यों का प्रशासन निम्न प्रकार से होता था।

1— गणतन्त्र प्रणाली के अन्तर्गत सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया गया था जिनके अन्तर्गत सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं को व्यापक अधिकार प्राप्त थे।

2— ये गणराज्य बहुत छोटे थे तथा इनकी अपनी अलग न्याय व्यवस्था थी।

गणराज्यों का कोई निश्चित संविधान नही था दो प्रकार के गणराज्य उपलब्ध होते है एक प्रकार के गणराज्य प्रजातान्त्रिक थे और दूसरे प्रकार के गणराज्य कुलीन तन्त्रीय थे ये लोग अपने अध्यक्ष का निर्वाचन स्वतः करते

थे जिसका अधिकार राजा के समान होता था।

जो व्यक्ति किसी गणराजय के सीमाओं में जन्म लेता था वह गणराज्य का नागरिक होता था प्रत्येक कुल का एक व्यक्ति गणराज्य समित का सदस्य होता जिनकी नियुक्ति महत्वपूर्ण पदो पर कुल पुत्रों की नियुक्ति की जाती थी। ये लोग राजा उपराजा सेनापति भण्डागारिक आदि महत्वपूर्ण पदो पर नियुक्त होते थे। शासन का अधिकार महत्वपूर्ण व्यक्तियों के हाथ में होता था जिसे नायक प्रधान राजा अथवा राष्ट्रपति माना जाता था उसका कार्य शान्ति व्यवस्था बनाये रखना था राजा का पद कभी–कभी वंश के अनुसार और कभी–कभी बुद्धि विवेक पौरूष और अनुभव के आधार पर ये पद दिये जाते थे।

मन्त्रिमण्डल– प्रशासन को सहयोग देने के लिए एक मन्त्रिमण्डल हुआ करता था इसकी संख्या सुनिश्चित नही थी बुन्देलखण्ड के चेदिराज्य में 18 मन्त्रियों का उल्लेख मिलता है ये विविध विभागों को देखते थे।

व्यवस्थापिका सभा तथा उसके कार्य– प्रत्येक गणराज्य में एक व्यवस्थापिका सभा होती थी इसके सदस्य कुलीन परिवारो से चुने जाते थे अनेक गणराज्यों में ऐसी व्यवस्थापिका सभा का उल्लेख मिलता है जिनकी सदस्यता सैकड़ों में थी यह व्यवस्थापिका राज्य के समस्त कार्यो पर नियन्त्रण रखती थी और प्रशासन भी देखती थी। राज्य के सर्वोच्च अधिकारियों का निर्वाचन भी यही समित करती थी। मुख्य रूप से प्रधान सेनापति की नियुक्ति करने का

अधिकार इसी को था यही युद्ध और सन्धि भी करते थे सर्वसम्मति से जो प्रस्ताव लागू होते थे उनका अनुपालन सब करते थे डॉ0 ईश्वरी प्रसाद के अनुसार इस समय चार प्रकार की मत प्रणाली प्रचलित थी।

1– गुह्यक (छिपे ढंग से)

2– विबृतक (खुले रूप से)

3– स्वकर्ण जलपंक (मतदाता के कान में बताकर कि कौन से शलाका चुननी है)

4– विश्वस्त– सबसे सामने प्रत्यक्ष रूप से। अधर्म, असमान व्यवहार, वर्मद्वेश तथा मतदान पर प्रभाव डालने आदि द्वारा किये जाने वाला मत अवैध माना जाता था।[51]

गणराज्यों में मुछ पदाधिकारी भी होते थे जिनमे पुरोहित राजा प्रमुख अधिकारी होते थे। इसके अतिरिक्त सैन्य अधिकारी आपत्य अधिकारी और न्याय अधिकारी होते थे इस समय न्याय करने के लिए कई स्तरीय न्यायालय हुआ करते थे जहाँ न्याय होते थे।

पौर जनपदो का शासन– वेदो में प्रान्तो का उल्लेख नही मिलता उनके स्थान पर पौर जनपद का उल्लेख मिलता है डॉ0 ईश्वरी प्रसाद के अनुसार प्रारम्भ में जनपद का षब्दार्थ और आशय भी जन या जाति का निवास–स्थान ही था परन्तु धीरे–धीरे इस शब्द का अर्थ काफी व्यापक हो गया। 'जनपद' शब्द से समस्त जाति का बोध होने लगा और यह देश का भी सूचक हो गया। अर्थशास्त्र में 'जनपद' का उल्लेख मिलता है। रामायण और जातको में भी 'जनपद– शब्द उल्लेख है। देश को जनपद भी कहते थे जिसका पर्याय राष्ट्र या देश होता था। इसी से जनपद विशेषण की उत्पत्ति होती है। जायसवाल के अनुसार, ईसापूर्व 600 और सन् 600 ई0 के बीच राज्य के दो विभाग हुआ करते थे–राजधानी और देश जातको और पालि त्रिपिटको में जनपद और निगम का उल्लेख राष्ट्रविधान की दृश्टि से निगम और नगर एक ही है। अर्थशास्त्र में जनपद और दुर्ग का उल्लेख मिलता है। रामायण में नगर, दुर्ग तथा जनपद (पौर जनपद नैगम) का उल्लेख मिलता है।[52] इन जनपदों के दो भाग हुआ करते थे। जिन्हें पुर और जनपद के नाम से पुकारा जाता था बाद में जनपदों का विस्तार होता गया और पुर छोटे होते गये महाभारत काल में दो प्रकार के जनपद उपलब्ध हुए है। जिन्हें संश्रित उपाश्रित कहा जाता था वाल्मीकि रामायण में में इसका उल्लेख मिलता है जब किसी राजा की नियुक्ति होती थी तब पौर जनपद के लोग उपस्थित रहते थे।

''उदतिष्ठिति रामस्य समग्रमभिषेचनम् ।
पौरजानपदाश्रापि नैगमश्र कृताअलिः ।।[53]

महाभारत जैसे ग्रन्थ में भी पौर जनपदो का उल्लेख मिलता है जब कभी देश में आपत्ति पड़े अथवा राजकोश में कोई कमी आ जाय उस समय पौर जनपदो से सहयोग लिया जाता था।

'' आपदर्थं न निचयान राजनो हि विचिन्वते ।
पौर जानपदान्सर्वान् संश्रितोपाश्रितास्तथा ।
यथा शक्तयनुम्पते सर्वान स्वल्पथजान्यापि ।।[54]

पौर जनपदो का शासन पौर सभा का प्रधान किया करता था जिसे महाजन अथवा श्रेष्ठिन कहा जाता था कभी–कभी नगर अथवा पुर के वृद्ध लोग भी इसका शासन देखाते थे। इसकी सभा मे छोटी जातियों के लोग भी प्रतिनिध होते थे इसमें पौर सभा का एक लेखक होता था जो मृत व्यक्ति की सम्पत्ति का प्रबन्ध करता था। नागरिकों की सम्पत्ति की रक्षा करता था तथा नगर की शान्ति ब्यवस्था देखता था यह न्याय का भी कार्य

करता था धर्म स्थलों और सार्वजानिक सम्पत्ति की सुरक्षा रखता था पौर और जनपद एक दूसरे के पूरक थे कहीं—कहीं पर ये केन्द्रीय प्रशासन को सहयोग प्रदान करते थे और कहीं—कहीं उनका विरोध करते थे एतिहासिक साक्ष्य अधिक उपलब्ध न होने के कारण इस सन्दर्भ मे विषेश उल्लेख उपलब्ध नही होता।

मौर्यकाल में बुन्देलखण्ड की प्रान्तीय शासन व्यवस्था— मौर्यकाल में बुन्देलखण्ड को विन्ध्य आटवी के नाम से पुकारा जाता था तथा सम्पूर्ण मौर्य सम्राज्य के पांच भाग थे जहां प्रान्तीय शासन व्यवस्था लागू थी ये भाग निम्नलिखित थे।

1—उदीच्य— (उत्तरापथ) इसमें पश्चिमोत्तर प्रदेश सम्मिलित था। इसकी राजधानी तक्षशिला थी।

2—अवन्तिराष्ट्र— इस प्रदेश की राजधानी उज्जयिनी थी।

3—कलिंग— यहां की राजधानी तोसलि थी।

4—दक्षिणापथ— इसमें दक्षिणी भारत का प्रदेश शामिल था जिसकी राजधानी सुवर्णागिरि थी। के0एस0 आयंगर इस स्थान की पहचान रायचूर जिले में स्थित आधुनिक कनकागिरि से करते थे।

5—प्राच्य या प्रासी— इसमें तात्पर्य पूर्वी भारत से है। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी।[55]

उपरोक्त प्रान्तों की प्रशासनिक व्यवस्था राज्यपाल के आधीन थी राज्यपाल पदो पर राजकुलो के राजकुमारो मनोनीति किये जाते थे कभी—कभी योग्य व्यक्ति भी राज्यपाल बनाये जाते थे इन्हें 1200 वार्षिक वेतन दिया जाता था प्रत्येक राज्य में एक प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल होता था जिन्हें अमात्य के नाम से पुकारा जाता था इसके अतिरिक्त विभागीय अध्यक्ष होते थे। जो मन्त्रि परिषद के सहयोग से प्रशासन चलाते थे।

सम्राट अशोक ने प्रान्तीय शासन में भी अनेक सुधार किये थे प्रशासन की देखरेख करने के लिये पदाधिकारियें की नियुक्ति की जाती थी इन पदाधिकारियें की नियुक्ति राज्यपाल करता था प्रत्येक जनपद में युक्त नाम का एक अधिकारी होता था। ये वर्तमान जिलाधिकारी जैसा होता था। इनका काम लेखा जोखा रखना राजस्व की व्यवस्था रखना तथा वरिष्ठ के अधिकारियों के निर्णयों को लिपि वद्ध कराना और उसे मन्त्रि परिषद के सम्मुख को प्रस्तुत करना था।

सम्राट अशोक के शासनकाल में एक दूसरा अधिकारी राजुक होता था यह भूमि की पैमाइस करता था तथा वर्तमान समय में इसे

बन्दोबस्त अधिकारी की संज्ञा दी जा सकती है इसे न्यायिक अधिकार भी प्राप्त था।

अशोक के राज्य में एक अधिकारी प्रादेषिक नाम का होता था इसे वर्तमान समय के मण्डलायुक्त या कमिष्नर की संज्ञा दी जा सकती है यह अर्थ व्यवस्था और न्याय दोनो देखता था तथा क्षेत्र का भ्रमण करता था।

अशोक के समय में एक अधिकारी धम्म महामात्य होता था इसका कार्य धर्म की स्थापना करना तथा दो सम्प्रदायों के बीच धार्मिक सामन्जस्य बनाये रखाना था यह धर्म दान प्राप्त करता था और उसकी व्यवस्था करता था तथा यह भी देखाता था कि किसी व्यक्ति के साथ कोई अन्याय न करें।

अशोक के राज्य में महिलाओं के लिए एक अधिकारी स्त्री अध यक्ष होता था ऐसा प्रतीत होता हैं कि यह अधिकारी सम्राट के महलो के अन्दर और बाहर धर्म प्रचार का कार्य किया करता था।

अशोक के राज्य में एक अधिकारी भूमि की देख रेख के लिए होता था इसे बृज भूमिक कहते थे जो लोग गाय, भैस, बकरी, भेड़ घोड़े, ऊँट, पशुओ को पालते थे और उन्हें चराते थे। यह अधिकारी उनका कल्याण देखाता था ताकि पशुओं की रक्षा हो और उनकी वृद्धि हो इसके अतिरिक्त अन्य अधिकारियों में नगर व्यावहारिक और अन्त महामात्य के नाम मिलते है नगर व्यवहारिक का कार्य वर्तमान सिटी मजिस्टेट जैसा था अन्त महामात्य अधिकारी सीमावर्ती प्रदेशों में धर्म प्रचार के लिए जाया करते थे तथा सम्राट की नीतियों का प्रचार जनता के मध्य में करते थे इस समय न्याय व्यवस्था अच्छी थी तथा किसी के साथ अन्याय नही होता था बिना विचार के किसी को दण्ड नही दिया जाता था मौर्य काल की प्रान्तीय व्यवस्था न्याय संगत और आदर्श का अनुपालन करने वाली थी।[56]

गुप्तकाल में बुन्देलखण्ड की प्रान्तीय प्रशासनिक व्यवस्था— समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रसस्ति लेख से यह ज्ञात होता है कि गुप्तों ने विन्ध्य आटवी क्षेत्र को नाग वंशीय शासको से प्राप्त किया था तभी से गुप्तो के शासन का प्रभाव बुन्देलखण्ड में पड़ा और उनकी ओर से यहाँ के अनेक प्रान्तों में विभाजित था इस समय प्रान्तों को भुक्ति नाम से पुकारा जाता था कहीं—कहीं प्रदेशों को प्रान्त और भोग भी कहा जाता था बुन्देलखण्ड क्षेत्र भी विन्ध्य आटवी प्रदेश के नाम से जाना जाता था डॉ0 ईश्वरी प्रसाद के अनुसार प्रान्तीय शासक की नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी तथा इन्हें 'उपरिकमहाराज' गोप्त, भोगिक 'भोगपति' तथा राजस्थानीय कहा जाता था।

इन शासकों के प्रमुख परामर्शदाता को 'कुमारमात्य' कहा जाता था। वैशाली सील में अनेक प्रान्तीय पदाधिकारियों के नाम मिलते है– जैसे – बालधिकार्णिक, दण्डपाशाधिकणिक, रणभण्डागारिक, विनयस्थिति स्थापक महादण्डनायक, महाष्वपति तथा महीपीषुपति आदि।[57]

प्रान्तीय शासक और पदाधिकारी प्रान्त में वही कार्य करते थे केन्द्र में केन्द्रीय पदाधिकारी किया करते थे बाहरी आक्रमण रोकने के लिये और विद्रोह दबाने के लिये वे अपनी स्वेच्छा से कार्य कर सकते थे। इसी प्रकार वे अपने अधीनस्थ अधिकारियों की नियुक्ति भी करते थे प्रशासन चलाने के लिये एक विशेष सभा एवं मण्डल होता था जो प्रान्तीय शासक के प्रति उत्तरदायी होता था एरण अभिलेख में प्रशासन के सन्दर्भ में अनेक निर्देश उपलब्ध होते है।[58]

सम्राट हर्षवर्धन के काल में बुन्देलखाण्ड की प्रान्तीय प्रशासनिक व्यवस्था– बाड भटट के हर्षचरित और कादम्बरी नामक ग्रन्थ से तदयुगीन शासन व्ययवस्था का पता लगता है इसके समय में ह्वेन सांग नामक चीनी यात्री भारत वर्ष आया था उसने अपने यात्रा वर्णन में हर्षवर्धन के शासन और उसकी शासन व्यवस्था का उल्लेख किया है हर्ष का प्रशासन शासन की सुविधा के लिये कई प्रान्तो मे विभजित था। इस समय प्रान्तों को भुक्ति कहा जाता था तथा प्रान्त के शासक राजस्थानीय उपरिक अथवा राष्ट्रीय कहा जाता था प्रत्येक भुक्ति कई जनपदो मे विभाजित होते थे इस समय जिलो को विषय कहा जाता था विषय कई पाठको में विभजित होते थे तथा पाठक वर्तमान तहसीलों जैसे होते थे जो अनेक ग्रामो मे बधे होते थे जो व्यक्ति अपराध करता था उसे दण्ड देने की व्यवस्था थी यह दण्ड व्यवस्था अत्यन्त कठोर थी राष्ट्रद्रोहियों का आजीवन कारा वास दिया जाता था सामजिक नैतिकता के विरुद्ध आचरण करने वालो को अंग –भंग करने का दण्ड दिया जाता था अर्थात अपराधियों के हाथ पैर आँख नाँक काट लिये जाते थे कभी –कभी अपराधि ायों को देश के बाहर निकाल दिया जाता था के0 सी0 श्रीवास्तव के अनुसार अपराधी अथवा निर्दोश सिद्ध करने के लिये कभी–कभी अग्नि जल विष आदि के द्वारा दिव्य परीक्षाये भी ली जाती थी कुछ विशेष अवसरो पर बन्दियों को मुक्त किये जाने की भी प्रथा थी हवेन सांग के अनुसार लोग नैतिक दृष्टि से उन्नति थे। वे पारलौकिक जीवन के दुखो से डरते थे और इस कारण उनके द्वारा पाप नही किये जाते थे।

देश में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के निमित्त पुलिस

विभाग की स्थापना हुई थी। पुलिस कर्मियो को चाट को 'चाट'य 'भाट' कहा गया है। दण्ड पाशिक तथा दाडिण्क पुलिस विभाग के अधिकारी होते थे।[59]

बुन्देलखण्ड में गुर्जर प्रतिहार वंश के समय की प्रान्तीय शासन व्यवस्था— गुर्जर प्रतिहार वंश का प्रभाव बुन्देलखण्ड में पश्चिमी बुन्देलखण्ड में रहा चूकि ये लोग कन्नौज से सम्बन्धित थे। इसलिए इनकी प्रान्तीय शासन व्यस्था सम्राट हर्षवर्धन के समान हुई थी इनका राज्य भी भुक्ति अथवा प्रदेशो में विभाजित था। जो कई एक मण्डलो में विभक्त रहता था। प्रशासन की दृष्टि से इन प्रान्तीय प्रशासनिक इकाइयो का महत्व था। प्रान्तीय शासन इकाइयो को चलाने के लिऐ राज्यपाल अथवा सूबेदारो की नियुक्ति की जाती थी गुप्त काल मे इन्हे भोगिक भोगपति अथवा उपरिक कहते थे।किन्तु गुर्जार प्रतिहारों के काल में इन्हे महामाण्डलिक अथवा महामाण्ड अधिपति कहा जाता है।[60] गुर्जर प्रतिहार अभिलेखो में तन्त्रपाल नामक एक पदाधिकारी का उल्लेख मिलता है जिसका अर्थ प्रशासक से लगाया जा सकता है उसका कार्य सामान्तो पर नियन्त्रण रखना सीमाओं की रक्षा करना आवश्यक होने पर युद्व करना और सम्राट के प्रतिनिधि होने के नाते राज्य के आदेशो का प्रतिशारण करना था इस समय 'कोट'शब्द किलो और नगरो के लिये प्रयुक्त होता था तथा इनके रक्षाको को कोटपाल कहा जाता था [61]। प्रान्त मे एक अधिकारी राजस्थानीयोपरिक नामक एक अधिकारी उपलब्ध होता है यह भी प्रान्त का प्रशासक अधिकारी था। महिपाल के शासन काल में राष्ट्रपति नाम का एक अधिकारी होता था। और एक अधिकारी भौगिक नाम का भी होता था।[62]
इसके अतिरिक्त महत्तर और—ग्रामपति आदि अधिकारी होते थे प्रान्तीय प्रशासन व्यवस्था इसी आधार पर चलती थी ।

बुन्देलखण्ड़ में चन्देलकालीन प्रान्तीय प्रशासनिक व्यवस्था— सम्पूर्ण चन्देल शाासन कई एक उपभागो में विभाजित था। इसका पता दान पत्रों से लगता है। सम्पूर्ण प्रशासन भुक्तियों में विभाजित था। और भुक्तियाँ मण्डल में विभाजित थी।[63] मण्ड़लों का आकार छोटा कही बडा होता था।

भुक्ति के कर्मचारी कंन्द्रीय प्रशासन के द्वारा नियुक्त किये जाते थें। मण्डलों के प्रधान कार्यालय नगरों में होते थे जहाँ उत्तरदायी और अनुभवी कर्मचारी नियुक्ति किये जोते थें ये जो राजा के नियन्त्रण में होते थें। इनके राज्य में देशाध्यक्ष देशाधिपति नाम के अधिकारी होते थें। जो देश

की व्यवस्थापिका के अध्यक्ष होते थें। मण्ड़ल प्रशासको को भोगपति कहा जाता हैं । प्रान्त की रक्षा के लिए निम्नपदाधिकारी कार्य करते थे।

1–	राजक	(सामंत शासक)।
2–	राजानक	(सरदार)।
3–	राजपुत्र	(राजकुमार – उत्तराधिकारी)।
4–	राजामत्य	(राजकीय मन्त्री)।
5–	सेनापति	(सेनाका नायक)।
6–	विशयपति	(विषय का शासक)।
7–	षष्ठाधिकृत	(उपज के षष्ठ भाग का व्यवस्थापक)।
8–	दण्ड़पासिक	(राक्षा विभाग का कर्मचारी)
9–	चौरोद्धराणिक	(चोरों से रक्षा नियोजन करने वाला पुलिस कर्मचारी)
10–	दौह साथ–साधनिक	(गाँवों का व्यवस्थापक)
11–	दूत	– – – – – – – – – – – – –
12–	खोल	– – – – – – – – – – – – –
13–	गमागमिक	– – – – – – – – – – – – –
14–	अभीत्वरमिक	– – – – – – – – – – – – –
15–	नौकाध्यक्ष	(नौ –सेना के निरीक्षक)
16–	बलाध्यक्ष	(सेना – निरीक्षण)
17–	तरिक	(चुंगी उप–निरीक्षक)
18–	शौल्किक	(चुंगी का बड़ा कर्मचारी)
19–	आटविक	(चन्देल अभिलेखो में–बन कर्मचारी)
20–	गोम्लिक	(सेना एक कर्मचारी)
21–	विनियुक्तक	– – – – – – – – – – – – –
22–	महामहत्तर	– – – – – – – – – – – – –
23–	ज्येष्ठ कायस्थ	(कागज आदि रखने वाला प्रधान कर्मचारी)
24–	महत्तर	(गाँव वृद्ध)
25–	दशग्रामिक	(दश गांवो के समूह पर रहने वाला कर्मचारी)
26–	करण	(आय–व्यय का कर्मचारी)
27–	रणक	(सामंत राजे)
28–	पुरोहित	– – – – – – – – – – – – –
29–	महाधर्माध्यक्ष	(प्रमुख विचारपति)
30–	महाक्षपटलिक	(कागज–पत्र रखने वाला बड़ा कर्मचारी)
31–	महाप्रतिहार	(प्रमुख पालक)

32–	महाभोगिक	(प्रमुख अश्वपाल)
33–	महापिलुपति	(हाथियों का प्रमुख कर्मचारी)
34–	अतरंग	(राजकीय चिकित्सक)
35–	महासर्वाधिकृत	– – – – – – – – – – – – – –
36–	कोट्टपाल	(दुर्ग का अध्यक्ष)

उपरोक्त पदाधिकारियों के अतिरिक्त भी पदाधिकारी होते थे जो अपने आपमें विभागों का कार्य देखते थे इस युग के कर्मचारी कर्तव्य निष्ट और विश्वास पात्र होते थे।[64]

बुन्देलखण्ड में तुर्ककालीन प्रान्तीय शासन व्यवस्था–

तुर्को का प्रभाव बुन्देलखण्ड मे रहा है कालपी का आस–पास का क्षेत्र तुर्को के आधीन था यह कभी मालवा प्रान्त के आधीन रहता था और कभी जौनपुर के आधीन रहता था तुर्को ने अपने शासन को प्रान्तो मे विभक्त नही किया था और न कोई अलग से प्रान्तीय शासन व्यवस्था की थी।इस समय प्रान्तो का विभाजन सैनिक क्षेत्रो के रूप मे किया गया था इन सैनिक क्षेत्रो के प्रधानो को इक्ता कहा जाता था प्रत्येक इक्ता एक मुक्ती के आधीन होता था अलाउद्वीन खिलजी ने अनेक राज्यो को विजित किये थे जिन राज्यो को विजित किया वहाँ सुवेदारो की नियुक्ति की।

दिल्ली सल्तनत मे तीन प्रकार के प्रान्त थे डा0 ईश्वरी प्रसाद के अनुसार दिल्ली सल्तनत मे तीन प्रकार के प्रान्त पाते है इक्ते के पदाधिकारी का नाम पूर्ववत मुक्ती बना रहा जिन्हे नये सैनिक प्रान्तो का भार सौपा गया वे वली और कभी–कभी अमीर कहलाते थे।मुक्ती की तुलना मे वली का पद तथा प्रतिष्ठा कही अधिक उँची थी। बाडे प्रान्तो की संख्या समयानुसार घटती–बढती रहती थी।[65] मुक्ती लोग अपनी प्रथक सेना रखा करते थे ये लोग विद्रोही जमीदारो को दण्ड देते थे और सुल्तान की आज्ञा का पालन कराते थे इनका काम इस्लाम की रक्षा करना उलेमानो की रक्षा करना न्याय व्यवस्था करना डाकुओं से सुरक्षा करना और व्यापार को प्रोत्साहन देना था इस समय धार्मिक पुरूषों की सहायता दी जाती थी और प्रजा की रक्षा की जाती थी यदि सुल्तान दुर्बल हो जाता था तो प्रान्तीय शासक स्वतन्त्र हो जाते थे प्रत्येक प्रान्त मे राजस्व वसूल करने के लिये अनेक कर्मचारी रहते थे इनमे नाजिर और वाकुफ प्रमुख होते थे।इसके अतिरिक्त साहिबे दीवान और ख्वाजा नामक पदाधिकारी होते थे इनकी नियुक्ति वजीर की सिफारिस पर सुल्तान किया करता था इसके अतिरिक्त काजी तथा अन्य छोटे–छोटे अधिकारी होते थे।

बुन्देलखण्ड में मुगलकालीन प्रान्तीय शासन व्यवस्था—

मुगलकाल मे प्रान्तीय शासन व्यवस्था अकबर ने प्रयोग की थी सन 1602 ई0 मे इनकी संख्या 15 थी इस समय बुन्देलखाण्ड का भाग इलाहाबाद और मालवा प्रान्त के अन्तर्गत आता था इन प्रान्तो का एक जैसा नही था प्रत्येक प्रान्त मे एक सुबेदार हुआ करता था यह सुबेदार अपने पास एक बडी सेना रखाता था यह सम्राट का प्रतिनिधि होता था। इसकी नियुक्ति भी सम्राट किया करता था वह सुबे की जनता के प्रति उत्तरदायी था तथा जनता के साथ न्याय करता था और शान्ति व्यवस्था बनाये रखता था उसका काम सडके बनवाना बगीचे लगवाना और अस्पताल बनवाना था तथा उसके नियंत्रण में अन्य अधिकारी रहते थे डा0 आर्शीवादीलाल के अनुसार हर सूबे मे एक राज्यपाल अथवा सिपहसलार, एक दीवान, बख्शी, सद्र, काजी, कोतवाल, मीर बहर और वाकयानवीस होते थे। इन सभी प्रान्तीय अपसरो के अलग–अलग दफतर होते थे और प्रत्येक के पास क्लर्क एकाउण्टेन्ट और चपरासी इत्यादि होते थे।[66]।

बुन्देलखण्ड मे बुन्देलो की प्रान्तीय शासन व्यवस्था— बुन्देलो का राज्य क्षेत्रफल की दृष्टि से बहुत अधिक विस्तृत नही था इसलिए इसका विभाजन प्रान्तो के रूप मे नही हो सकता था। यह राज्य तीन रियासतों मे विभक्त था ये रियासते, ओरछा, दतिया, और पन्ना, राज्य मे विभाजित थी। ये तीनो शासक स्वतन्त्र और एक दूसरे के नियन्त्रण मे नही थे बुन्देलखण्ड मे ओरछा राज्य सबसे प्राचीन था। इनका राज्य विकमी संवत 1744 से लेकर विक्रमी संवत 1788 तक रहा इस समय दिल्ली का शासक औरंगजेब था। उसकी धार्मिक नीति के विरूद्व चम्पतराय और छत्रसाल से युद्व किया और एक नवीन राज्य पन्ना राज्य की स्थापना की यह राज्य विस्तार की दृष्टि से भले ही अति विस्तृत न रहा हो कालान्तर मे यह राज्य दो भागो मे विभक्त हुआ इसका एक भाग का शासन पन्ना महाराज के बडे पुत्र ह्रदय षाह करते थे इनके अन्तर्गत दमोहहटा पन्ना आदि क्षेत्र आते थे शासन का दूसरा भाग जिसकी राजधानी बेलाताल अथवा जैतपुर थी का प्रशासन छत्रसाल के द्वितीय पुत्र जगतराय के अधिकार मे थी इनके अधिकार मे जैतपुर, महोबा, बाँदा, चरखारी, विजावर आदि क्षेत्र आते थे इसके अतिरिक्त इनका राज्य जागीरो और परगनो मे विभाजित था जिन्हे छोटी–छोटी रियासते के रूप मे जाना जाता है।

उनके राज्य मे कोई प्रान्त न होकर परगने थे इन्ही परगनो के आध ार पर उनका शासन चलता था।

महाराज छत्रसाल का राज्य उन्ही के वखात—

नवम्बर	परगना	मौजा	जमा राज्य की	आमदनी
1	2	3	4	5
1	44	ग्राम संख्या कुल 11665	2 करोड के लगभग	एक करोड छप्पन लाख की आय के ऊपर हीरन की खदाने बाहर और 44 से बिलग यह चार परगने है। 1—कोटरा 2—सैयद नगर 3—मऊ 4—महौनी

इसके अतिरिक्त 4 परगने कोटरा, सैयद नगर, मऊ, महौनी और भी थे जो सब मिलाकर 2 करोड की वार्षिक आय की भूमि थी।लूट के माल की आमदनी जो प्रायः मुगलो के प्रान्तो से आती थी और हीरों को आमदनी इसके बाहर थी।

उनके राज्य की सीमाये उत्तर मे यमुना के समीप कालपी से लेकर दक्षिण मे सिरोज, सागर, जबलपुर के समीप ''करिया आम'' के मुनारा तक जिसमे शहडोल का क्षेत्र आ जाता है, पश्चिम मे ओरछा, दतिया, चंदेरी व ग्वालियर की सीमाये छूती हुयी पूर्व मे बघेल खाण्ड के मैंहर व टौस के पश्चिम का भू—भाग वीरसिंहपुर ककरेडी आदि के परगनो से घिरा था। इस भू—खण्ड के अर्न्तगत उत्तर प्रदेश के झाँसी जिला कालपी, कौच, एरछ, जालौन, बाँदा, हमीरपुर के जिले अजयगढ, चरखारी, पन्ना, बिजावर, शाहगढ, छतरपुर , शरीला, आलीपुर,, आदि बुन्देलखण्ड एजेन्सी की कुछ छोंटी—बडी रियासते शामिल थी। छत्रसाली राज्य अधिकतर घनें जंगलो, गहरी घाटियों और पर्वत श्रेणियों से आवृत था इससे इनको डगाँई का राजा (डगँहा छत्रसाल) भी कहते थे । हीरो की उत्पत्ति इनके राज्य मे होने से इनको ''ब्रजेश'' हीरा खान का बादशाह भी कहा जाता था।[67]

इनके राज्य मे दो प्रकार की शासन व्यवस्था थी

1— खालसा प्रदेशो की भाँति जमीदारी प्रथा जिसमे शासन सीधे दरवार से होता था। इस प्रथा से समय —समय पर अपना दुख—सुख सुना सकती थी

और राजा भी स्वयं प्रजा से उनके दुख सुख का ज्ञान प्राप्त करता था और लगान की वसूली सीधे राज्य के खजाने मे जमीदारो द्वारा जमा होती थी। प्रजा इस प्रकार के बर्ताव से सुखी थी और कर्मचारी भी मनमाना न कर पाते थे–

2– जागीरदारी , मैमारीऔर पादारखी विभाग जिनको निश्चित संख्या मे सैनिक रखने पडते थे क्योंकि इनको छत्रसाल के युद्ध मे भाग लेना पड़ता था। इन लोगो को हाथी, ऊँट, घोडे, तोपे, बन्दूके व भार बरदारी एवं तम्बू सामियाना, कनात, आदि आवश्यक सामान भी रखना पडता था प्रान्त का शासन चलाने के लिये अनेक प्रकार के कर्मचारी रहते थे ये राज्य पर नियन्त्रण रखाते थे।

बुन्देलखण्ड मे गौडो की प्रान्तीय शासन व्यवस्था–

गौड राज्य की शासन व्यवस्था के सन्दर्भ मे कोई विशेष विवरण उपलब्ध नही होंते केवल इतना ही ज्ञात होता है कि सम्राट अकबर के जमाने तक इनके पास 52 गढ थे। निश्चित ही यह साम्राज्य प्रशासनिक दृष्टि से प्रान्तो अथवा मण्डलो मे विभक्त रहा होगा जिनकी प्रशासनिक व्यवस्था मण्डलाध्यक्ष और उसके आधीन कर्मचारी देखा करते थे इस राज्य के प्रान्तीय कर्मचारी अनुशासित थे जो राजा के नियंत्रण मे रहते थे प्रजा सुखी थी तथा आर्थिक स्थित अच्छी थी।

पं0 गोरेलाल तिवारी के अनुसार रानी दुर्गावती के उत्तम राज्य के कारण सारी भूमि हीरो और जवाहिरो से भर गयी थी और उसमे बहुत सुन्दर और मस्त हाथी थे वह गज भूमि और धन का दान सदा ही किया करती थी और उसके राज्य मे किसी को कुछ कमी न थी अपनी प्रजा की रक्षा के लिए वह स्वंय अपने हाथी पर सवार होकर तलवार हाँथ मे लेकर लडने जाया करती थी। गढ़ के निकट रानीताल इसी ने बनवाया है।[68]

बुन्देलखण्ड मे प्रान्तीय शासन व्यवस्था अति प्राचीन काल से रही है जब यहाँ अनार्यो का वास था तथा यहाँ कोई बाहरी जातियाँ नही आई थी उस समय अनार्यो की प्रान्तीय प्रशासन व्यवस्था अपनी परम्पराओ के अनुसार थी इन परमपराओ का निर्माण मौखिक रूप से क्षेत्रीय और जातीय पचांयते किया करते थे।उनका निर्णय सबको मान्य होता था इन पंचायते के नायक और मुखिया अलग–अलग होते थे ।

आर्यो के आगमन के पश्चात यहाँ की प्रान्तीय प्रशासनिक व्यवस्था वेद, स्मृति ग्रन्थ और धर्मशास्त्रो के अनुकूल होने लगे यह व्यवस्था थोडे बहुत परिवर्तन के साथ सम्राट हर्शवर्धन के शासन काल तक और उसके बाद गुर्जर

प्रतिहारो और चन्देलो के शासन काल तक लागू रही इस समय प्रान्तो को भोग या भक्ति अथवा मण्डल के नाम से सम्बोधित किया जाता था प्रान्त का सूबेदार जिसे भोग पति या मण्डलाध्यक्ष कहा जाता था सम्राट के प्रति उत्तर दायी होता था।

तुर्क और मुगलकाल मे प्रशासनिक व्यवस्था मे व्यापक परिवर्तन हुआ जिन प्रान्तो को तुर्क और मुगुल जीत लेते थे वहाँ वे सुबेदार, मुक्ता, और इक्ता, की नियुक्ति करते थे जो प्रान्तो की शासन व्यवस्था देखाते थे इसके अतिरिक्त भी अनेक कर्मचारी होते थे।

बुन्देलो और गौडो की राज्य व्यवस्था मिश्रित राज्य व्यवस्था थी जिनमे हिन्दू राज्य व्यवस्था और तुर्क राज्य व्यवस्था का समिश्रण था ।

क्षेत्रीय शासन व्यवस्था– बुन्देलखण्ड मे प्रान्तीय शासन व्यवस्था प्रशासन की अन्तिम इकाई नही थी बल्कि समपूर्ण प्रान्त अनेक जनपदो मे विभाजित होता था जिन्हे विभिन्न युगो मे विभिन्न नाम से पुकारा जाता था ये जनपद परगनो तहसीलों अथवा ग्राम मण्डलो मे विभाजित होते थे ग्राम मण्डल अनेक ग्रामो मे विभाजित थे इस समय ग्राम प्रशासन की अन्तिम इकाई के रूप मे माने जाते थे किन्तु इन सभी का सम्बन्ध प्रान्तीय और केन्द्रीय शासन व्यवस्था से था केन्द्रीय शासन व्यवस्था शासन की अन्तिम इकाई ग्रामो तक अपना नियंत्रण रखती थी समस्त परगना अधिकारियो मण्डल अध्यक्षों और ग्राम पतियो को राजाज्ञा का अनुपालन करना पडता था इसके अतिरिक्त अपनी समस्याओ के समाधान के लिए उच्च
अधिकारियों से सम्पर्क साधना पडता था बुन्देलखण्ड की स्थानीय शासन व्यवस्था युगानुसार निम्न प्रकार की थी।

अनार्यो की क्षेत्रीय प्रशासनिक व्यवस्था– बुन्देलखण्ड मे अनार्यो का निवास आर्यो से भी प्राचीन है आर्य लोग इन्हे जात, धान, पाराक्ष के नाम से पुकारते थे ।ये लोग सबर, कोल, भील, फिरात, सहरिया, बैगा, गौड, आदि जातियो मे विभाजित थे तथा इनका निवास स्थल जगंलो मे था मूख्य रूप से ये लोग कन्दराओ मे निवास करते थे आर्यो के आगमन के पूर्व ये लोग चर्म के वस्त्र धारण करते थे अथवा तन्तुओ से परिधान का निर्माण करते थे तथा सितार और युद्व के लिए पत्थरो के अस्त्र–शस्त्र और तीर कमान से शिकार करते थे और युद्व करते थे इनकी स्थानीय शासन व्यवस्था पंचायती शासन व्यवस्था थी ये लोग जिस स्थान मे रहते थे उस स्थान मे अपने नायक का चुनाव सर्वसम्मति से किया करते थे और समस्त नागरिक नायक के आदेशों का पालन करते थे और उसके अनुशासन में रहते

थे बल्मीकि रामयण मे विराध नामक एक दैत्य का उल्लेख मिलता है जिसका निवास स्थान बुन्देलखण्ड मे मानिकपुर के पास था इसका बध भगवान राम ने किया था यह अपने दल का नायक था ।

अवध्यंता प्रेक्ष्य महासुरस्य तौ
शितेन शस्त्रेण तदा नरर्षभौ।
समर्थ्य चात्यर्थविशारदावुभौ
बिले विराधस्य वधं प्रचक्रत:।। 30

(अर्थ)महान असुर विराध का तीखे शस्त्र से बध होने वाला नही है यह देखकर अत्यन्त कुशल दोनों भाई नरश्रेष्ठ श्री राम और लक्षमण ने उस समय गढ्ढा खोदकर उस गढ्ढे में उसे डाल दिया और उसे मिट्टी से पाटकर उस राक्षस का बध कर डाला।[69] आर्यो और अनार्यो की संस्कृति में व्यापक अन्तर था इसलिए आर्य लोग या तो इनका बध करते थे या फिर उन्हे अपने नियन्त्रण में कर लेते थे। जंगली उपज के माध्यम से ये लोग अपना प्रशासनिक कार्य चलाते थे कालान्तर में ये सामन्तों के आधीन हो गये किन्तु इन्होने अपनी प्रशासनिक व्यवस्था में परिवर्तन नही किया।

आर्यो की क्षेत्रीय प्रशासनिक व्यवस्था– आर्यो की क्षेत्रीय प्रशासनिक व्यवस्था निम्न प्रकार से की जाती थी।

पौर जनपद की प्रशासनिक व्यवस्था– प्रदेशो का विभाजन पौर जनपद में किया जाता था इस पौर जनपद का सदस्य राजा की सभा का सदस्य होता था जिसे राज्य में व्यापक अधिकार प्राप्त होते थे तथा वह अपने पौर जनपद का स्वामी भी होता था रामायण और महाभारत काल में पंचाल, कुरू, मत्स्य, अंग, वंश, मगध और पुण्ड जनपदों के नाम उपलब्ध होते हैं इन जनपदों में 500 गाँव होते थे। जिसकी राजधानी नगर हुआ करती थी कौटिल्य के अनुसार जनपद का निर्माण ऐसे ग्रामों के मिलने से होता था जिनमें 100 से 500 तक 'कुल' निवास करते थे। 800 ग्रामों को मिलाकर एक जनपद का निर्माण होता था। जनपद के अन्तर्गत प्रत्येक ग्राम को अन्योन्यारक्ष होना चाहिए। जनपद की सीमाओं पर अन्तपाल दुर्ग स्थापित किऐ जाते थे जनपद की रक्षा का मुख्य वह पुर होता था जिसे जनपद के मध्य स्थापित किया जाता था जिसकी रचना एक दुर्ग के रुप में की जाती थी।[70]

इन पौर जनपदों के निवासी वे व्यक्ति होते थे जो जनपद पर पूर्ण आस्था रखते हो जनपद में निवास करते हो तथा जिनकी आस्था इस जनपद से हो ।पौर जनपद का शासन एक महत्वपूर्ण व्यक्ति द्वारा किया

जाता था जिसका चुनाव इस जनपद के लोग ही करते थे तथा पौर अध्यक्ष अपना शासन चलाने के लिए अपनी एक समित का निर्माण करता था यह समिति पौर अध्यक्ष को सहयोग प्रदान करती थी।

नगर प्रशासन— वैदिक काल मे नगरो की सख्या बहुत कम थी किन्तु धीरे–धीरे इन नगरो का विकास हुआ और अनेक नगर बसे महाभारत में नगरो की विशेषता इस प्रकार मिलती है पुर दुर्ग सम्पन्न हो धान्य और वस्त्रो से पूरित, दृढ दीवार और परिखा से घिरा हुआ तथा हाथी, घोडे, व समूह से युक्त हो इत्यादि। शुक्रनीति के अनुसार नाना वृक्ष और लताओ से युक्त, पशु पक्षियो से व्याप्त अन्न एवं जल से सम्पन्न, वृक्ष और काश्ट से परिपूर्ण, नदिओ के समीप पर्वत के निकट, सुन्दर समतल भुमि से मनोहर प्रदेश में राजधानी निर्मित होनी चाहिए। राजमार्ग के दोनो में छः प्रमुख अधिकारियों का उल्लेख किया है। 1– मुखिया अथवा प्रधान 2– न्यायधीश अथवा दण्डध ीश 3– भूमिकर अथवा अन्य पैदावार का वसूल करने वाला 4– चुंगी शुल्क का अधिकारी 5– सन्तरी और 6– क्लर्क ।[71] इसके अतिरिक्त भी अन्य कर्मचारी प्रशासन के देख रेख के लिए रहते थे पूरा नगर बाढ़ो या मुहल्लों में विभाजित होता था। मुहल्ले के अधिकारी को गोप कहते थे। यह मोहल्ले के जनसख्या उनके वर्ण और आय व्यय पर नजर रखता था। यह लोग ध र्मशालों पर नियन्त्रण रखते थे। नगर वासियों का यह कर्तव्य था कि वह नैतिक आचरण करें नगर की सूरक्षा रखे। और गन्दगी फैलाने वालो को दण्डित कराये, अपराधियों को पकड़ायें और नगर की सुरक्षा करें इस समय नगर की व्यवस्था के लिए निगमों अथवा व्यापारिक नगरों में ऐसे संघ और गिल्ड थे स्मृतियों से पता चलता है कि निगम दो प्रकार के थे।

1– राज द्वारा स्थापित ''राजकृत समवित्त'' और

2– समूहकृत समवित्त अर्थात जनता द्वारा स्थापित उनके कर्तव्य विभिन्न और व्यापक प्रकार के होते थे। नगर धार्मिक स्थलो की भी रक्षा करता था। तथा यह जनता के कल्याण के लिए भी कार्य करती थी।

ग्राम प्रशासन— प्राचीन भारत में ग्राम सबसे छोटी ईकाई थी। राज्यों का आकार छोटा होने के कारण इनका महत्व बहुत बढ़ गया था। वैदिक काल में ग्राम अधिकारी को ग्रामणी कहते थे। यदि केन्द्रीय शासन में परिवर्तन होता था तो भी ग्राम प्रशासन में परिवर्तन नही होता था। ग्रामवासी अपना प्रशासन स्वयं देखते थे। कलान्तर में ग्राम अधिकारी को मालवा क्षेत्र में पट्टकील और उत्तरी भारत में ग्रामपति या ग्रामिक कहते थे। ग्राम के मुखिया के नीचे पंच अधिकारी होते थे। इन्हें समा हर्ता सन्नी धाता गणक

लेखक और साथी कहते थे।

प्रत्येक गांव में शासन चलाने के लिए एक सभा या महासभा होती थी तथा अनेक समितियां होती थी। उनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय तालाब समिति, बाघो की देखरेख करने वाली समिति न्याय की देखरेख करने वाली समिति, मन्दिर समिति, सामान प्रबन्ध समिति थी। अन्य समितियां जिनका उल्लेख हुआ है स्वर्ण समिति, मुद्रा समिति थी। गांव सभा और गांव समितियों की बैठक चौपालों में हुआ करती थी। इस सभा की बैठक में गांव के विशिष्ट व्यक्ति उपस्थित होते थें। जिनके निर्देशों में चुनाव होता था। यह ग्राम समितियां अथवा पंचायतें निम्न कार्य करती थी।

1— भूमिकर वसूल करना और कर लगाना।

2— आकाल तथा अन्य संकट पड़ने पर राज्य से लगान में छूट की व्यवस्था करना तथा भूमि बंधक रखकर पीड़ितो को सार्वजनिक त्रृण से सहायता देना।

3— ग्राम की उसर भूमि का स्वामित्व ग्रहण करना।

4— गांव वालो के झगड़ो का निपटारा करवाना।

5— दिवानी मामलो का फैसला करना।

6— छोटे—मोटे अपराधो का फैसला करना।

7— देवालयों और सार्वजनिक स्थानों को सुरक्षित रखना।

8— दक्षिण भारत में ग्राम पंचायते साहूकार का काम भी करती थी।

9— सार्वजनिक हितो को पूरा करना।

10— उत्पादन की वृद्धि के लिए खेतो को कृषि योग्य बनाना सिंचाई नहर, सरोवर आदि का प्रबन्ध करना और सड़को की व्यवस्था करना।

संस्कृति और साहित्यिक विकास कार्यक्रम को प्रोत्साहन देना। इन कार्यो के लिए राज्य की ओर से भी आर्थिक सहायता मिलती थी।[72]

बैदिक युग में एक कबीले के लोग स्थान पर ग्राम बसा कर रहने लगते थे हरिसहाय सिंह के अनुसार वैदिक साहित्य में प्रतिबिम्बित जनसमितियाँ शायद उस समय की सामुदायिकता एवं स्वायत्तता के एक पक्ष का ही उद्‌घाटन करती हैं। उनके अन्य पक्षो की कल्पना जनसमितयों के कुक्ष ऐसे भावी स्वरुपों के पूर्वभासो के रुप में की जा सकती है जिनकी जड़े बैदिक साहित्य में नही खोजी जा सकती उदाहरणर्थ गणतन्त्र, प्रायश्चित्त परिशद आदि।[73]

जब भारतवर्श मे सम्राज्य का उदय हुआ और सामन्तो का शासन वंष परम्परा के अनुसार स्थापित हुआ उस समय सामन्ती व्यवस्था ग्रामीण जीवन को बहुत अधिक प्रभावित नही कर सकी छठवी शताब्दी ईसा पूर्व मे एक कान्तिकारी परिवर्तन हुआ ऐतिहासिक विकास की धारा के इस

नवीन दिशा की ओर मुडने के साथ–साथ जनसमितियो की परम्परा मे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया सभा और समिति जैसी पूर्वगामी जनसंस्थाए पूर्णतया लुप्त हो गयी। गणतन्त्र पूर्णतया विकसित होकर उदीय मान राजतन्त्र से होड लेने वाले राजनीतिक संस्थाए बन गये। द्वितीय नागरिक क्रान्ति के सन्दर्भ मे उत्तर्शशील उधोग और व्यपारी विधियो सामुदायिक स्वायत्तता की अभिव्यक्ति श्रेणी संस्थओ के रुप मे हुई जाति अथवा विरादरी सभाओ के असितित्व के भी कुछ संकेत मिलने लगता है।[74]

मौर्यकाल की क्षेत्रीय प्रशासनिक व्यवस्था– मौर्यकाल मे प्रशासन की प्राथमिक क्षेत्रीय ईकाइ जनपद थी यह जनपद एक प्रकार से उप प्रान्त था। जहाँ से प्रशासन को अनेक वस्तुए उपलब्ध होती थी। कौटिल्य के अनुसार '' कोश सेना, वस्त्र, लोहा ताबाँ सेवक घोडे, ऊँट आदि सबारियाँ, अन्य तथा धृत, तेल आदि समाग्री जनपद से ही प्राप्त होती हैं।''अतः जनपद के अभाव में सुव्यवस्थित राज्य की कल्पना भी नही की जा सकती।

जनपद– जनपद से जन (व्यक्ति) और भूमि अर्थात निवासी और प्रदेश दोनो का बोध होता हैं वस्तुतः प्राचीन भारतीय नीतिशास्त्रों में जनपद देश, विशय और राष्ट्र के पर्यायवाची शब्दो के रुप में प्रयोग किया जाता था। पाणिनि ने ग्रामो के समुदाय को जनपद कहा हैं। कौटिल्य ने यद्यपि अर्थशास्त्र में जनपद को कहीं भी स्पश्टतः परिभाषित नही किया हैं। यद्यपि जनपद से उसका अर्थ केवल भू–प्रदेश से नही वरन राज्य के निवासी या जनसंख्या भी जनपद नही कहला सकता और जनपद रहित भूमि राज्य नही कहला सकती अतः यदि जनपद नही होगा तो राज्य किस पर किया जायेगा।[75]

जनपदो का निर्माण जनसंख्या वृद्वि के अनुसार होना चाहिए जनपद मे कम से कम सौ धर अधिक से अधिक पाँच सौ धर वाले अनेक गाँव बसाये जाय जिनमें अधिकांश किसान हो एक गाँव की दूसरे गाँव की दूरी दो कोस से अधिक न हो नदी, पहाड, वृक्ष, खाई तालाब तथा बरगद के वृक्ष थे ग्रामो की सीमा निर्धारित की जाय।

आठ सौ गाँवो का एक समूह को एक जनपद की संज्ञा दी जाय चार सौ गाँवों के समूह को द्रोण मुख कहा जाय दो सौ गाँवों के मध्य में एक खारवाटिक हो और दस गाँवों के समूह में संग्रहण नाम स्थानों की स्थापना की जाय।[76]

जनपद की राजधानी जनपद के मध्य मे हो और वहाँ एक दुर्ग हो विपत्ति के समय वहाँ वन पर्वत हो ताकि आत्म रक्षा की जा सके कृषि

योग्य भूमि हो हाँथियों का जंगल हो, जलवायु अच्छी हो व्यापार अच्छा हो तथा जनपद सर्व साधन सम्पन्न हो इस प्रकार जनपद का प्रशासन और संगठन मौर्य काल में होता था जनपद का प्रशासन देखने के लिए अनेक कर्मचारी रहा करते थे।

मण्डल जिला तथा नगर प्रशासन– प्रत्येक प्रान्त कई मण्डलों मे विभक्त था तथा मण्डल अधिकारी को 'प्रदेष्टा' के नाम से पुकारा जाता था अशोक के अभिलेख मे इसे प्रदेशिक नाम से सम्बोधित किया गया है। इसके आधीन अनेक कर्मचारी होते थे। मण्डल का विभाजन जनपदो में किया गया था जिन्हे आहार या विषय कहा जाता था जिले के नीचे स्थानीय होता है आठ सौ ग्राम होते थे स्थानीय के अन्तर्गत दो द्रोणमुख होते थे जिनके अन्तर्गत चार सौ गाँव होते थे इसके नीचे खारवाटिक के अन्तर्गत बीस संग्रहण होते थे इनमें अनेक कर्मचारी हुआ करते थे जिन्हे विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता था संग्रहण का प्रधान अधिकारी गोप कहलाता था ये लोग भूमि सिंचाई, कृषि बन काष्ट उद्योग धातुशालाओं खानो और सडको की व्यवस्था देखाते थे इनके अलग–अलग पदाधिकारी भी थे।

नगरों की शासन व्यवस्था नगरपालिकाओं के द्वारा चलाई जाती थी प्रत्येक नगरपालिका में एक सभा होती थी जिसका प्रमुख नगरक अथवा पुरमुख कहलाता था सभा के अन्तर्गत कई समितियाँ होती थी जिनमें पाँच–पाँच सदस्य होते थे कृष्णचन्द्र श्री वास्तव के अनुसार पहली समित विभिन्न प्रकार के औद्योगिक कलाओं का निरीक्षण करती थी तथा कारीगरों और कलाकारों के हितों की देख–रेख करती थी। दूसरी विदेशी यात्रियों के भोजन निवास तथा चिकित्सा का प्रबन्ध करती थी यदि वे देश से बाहर जाते थे तो वह उनकी अगुआई करती तथा उनकी मृत्यु हो जाने पर अंत्येष्टि संस्कार का भी प्रबन्ध करती थी। राज्य की सुरक्षा के लिए विदेशियों के आचरण एवं उनकी गतिविधियों के ऊपर कडी दृष्टि रखना भी इस समिति का कार्य था तीसरी समिति जनगणना का हिसाब रखाती थी चौथी समिति नगर के व्यापार–वाणिज्य की देख–रेख करती थी। विक्रय की वस्तुओं तथा माप–तौल का नियन्त्रण करना इसी का कार्य था। किसी भी व्यक्ति को दो वस्तुओं के बेचने की अनुमति तब तक नही मिलती थी जब तक कि वह दूना कर अदा न कर दे। पाँचवी उद्योग समिति थी जो बाजारों में बिकने वाली वस्तुओं में मिलावट को रोकती तथा मिलावट के अपराध में व्यापारियों को दण्ड दिलवाती थी। नई तथा पुरानी दोनों प्रकार की वस्तुओं को बेचने के लिए अलग–अलग प्रबन्घ था। छठी कर समिति थी जिसका काम

क्रय–विक्रय की वस्तुओं पर कर वसूलना था। वह विक्री के मूल्य का 1/10 होता था।[77]

ग्राम प्रशासन– प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम होती थी इसके अध्यक्ष को ग्रामणी कहा जाता था इसका निर्वाचन ग्रामीण जनता द्वारा होता था ग्रामों में कोई बेंतन भोगी कर्मचारी नही था इसमें ग्राम के प्रमुख व्यक्ति होते थे कष्ण चन्द्र श्रीवास्तव के अनुसार जो ग्राम शासन में ग्रामीण की मदद करते थे। राज्य सामान्यतः ग्रामों के शासन में हस्तक्षेप नही करता था ग्रामणी को ग्राम की भूमि का प्रबन्ध करने तथा सिंचाई के साधनों की व्यवस्था करने का अधिकार था। ग्रामों–वृद्धों की परिषद न्याय का भी कार्य करती थी यह ग्रामों के छोटे–मोटे विवादों का फैसला करती थी तथा जुर्माना आदि लगा सकती थी। ग्रामीणी कृषिकों से भूमि कर एकत्र कर राजकीय कोशागार में जमा करता था। ग्राम सभा के कार्यालय का कार्य 'गोप' नामक कर्मचारी किया करते थे। वे ग्राम के घरों का निवासियों का ठीक ढंग से विवरण सुरक्षित रखाते थे और उनसे प्राप्त होने वाले करों का भी हिसाब–किताब रखते थे।[78]

प्रत्येक ग्राम में सुरक्षा के लिए कोष्ठागारों का निर्माण होता था। इन कोष्ठागारों में जो अन्य कर के रूप मे उपलब्ध होता था वह रखा जाता था। जब कभी प्राकृतिक आपदा पडती थी इस समय यह अनाज जनता में विस्तृत कर दिया जाता था। ग्राम प्रशासन ग्राम वासियों के आधीन था।

गुप्त काल में क्षेत्रीय प्रशासनिक व्यवस्था– गुप्त काल में क्षेत्रिय प्रशासन इस प्रकार था।

जिला तथा नगर प्रशासन– इस समय प्रान्तो को भुक्ति कहा जाता था प्रत्येक भुक्ति में अनेक जनपद होते थे इन जनपदों को विषय कहा जाता था तथा जनपद के प्रधान

अधिकारी को विषय पति कहा जाता था विषय पति की नियुक्ति प्रान्त के उपरिक (राज्यपाल) द्वारा की जाती थी। कभी–कभी सम्राट भी उनकी नियुक्ति करता था विषय पति का एक कार्यालय होता था जहाँ वह अभिलेखों को सुरक्षित रखता था इसके लिए एक अधिकारी होता था जिसे पुस्तपाल कहा जाता था के0सी0 श्रीवास्तव के अनुसार जिला पशासन चलाने के लिए निम्न सदस्य होते थे–

1– नगर श्रेष्ठि (नगर के महाजनों का प्रमुख)

2– सार्थवाह (व्यवसायियों का प्रधान)

3– प्रथम कुलिक (प्रधान शिल्पी) तथा

4– प्रथम कायस्थ (मुख्य लेखक) फरीदपुर ताम्रपत्र संख्या 3 मे विषय समिति के सदस्यों की संख्या बीस मिलती है विषय–समिति के सदस्य विषय महत्तर कहे जाते थे।

प्रमुख नगरों का प्रबन्ध नगर पालिकायें चलाती थी। नगर प्रधान अधिकारी 'पुरपाल' कहा जाता था। वह कुमारामात्य की श्रेणी का अधिकारी होता था नगर प्रसाशन में पुरपाल की सहायता करने के लिए भी सम्भवतः एक समिति होती थी।

ग्राम प्रशासन– ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई होती थी जिसका प्रशासन ग्राम सभा द्वारा चलाया जाता था। ग्राम सभा को मध्य भारत में 'पञ्चमण्डली' तथा बिहार में 'ग्राम जनपद' कहा जाता था। ग्राम सभा सरकार के सभी कार्यो को करती थी। वह ग्राम के सुरक्षा की व्यवस्था करती, निर्माण कार्य करती तथा राजस्व एकत्रित कर राजकीय कोष में जमा करती थी।[79]

मुख्य रूप से ग्रामों में कृषक जुलाहा, कुम्भकार, बढ़ाई, तेली, सुनार आदि अन्य कारीगर रहा करते थें तथा प्रत्येक ग्राम एक निश्चित भूभाग में वसा होता था ग्राम प्रशासन के प्रशासक को ग्रामिक ग्रामेयक और ग्रामाध्यक्ष कहते थे।[80]

वह एक परिषद या समिति के माध्यम से अपना शासन चलाता था जिसे पंच मण्डली कहते थे उसके सदस्य महत्तर कहलाते थे ये ग्राम परिषद शासन सम्बन्धी सभी कार्य करती थी इसके प्रमुख कार्य गाँव की सुरक्षा करना गाँव के झगडे, निपटाना, जनकल्याण के कार्य करना राजस्व वसूल करना घर, हाटा, कुँओं, तालाबों, ऊसर, और खेतिहार, भूमि, जंगल, श्मशान, भूमि की व्यवस्था ग्राम परिषद करती थी। ग्राम परिषद के सदस्यो निर्वाचन होता था अथवा ये सदस्य मनोनीति किये जाते थे ग्रामों में निम्नलिखित अधिकारी होते थे

अष्टकुलाधिकरण, अक्षपटलिक, बलत्कौशन, सीमकर्मकार, प्रमातृ, न्यायकर्णिक कर्णिक, हट्टिक ये ग्राम से सम्बन्धित अधिकारी थे।[81]

सम्राट हर्षबर्धन की क्षेत्रीय प्रशासनिक व्यवस्था–

सम्राट हर्षवर्धन के समय में सम्पूर्ण प्रान्तीय शासन जनपदों में विभाजित था इन जनपदों को विषय कहा जाता था डॉ0 ईश्वरी प्रसाद के अनुसार विषय के शासक को' विषय पति' कहते थे। इनके कार्यालय को अधिष्ठान की संज्ञा प्राप्त थी। बसाढ़ की मुद्राओं में कतिपय अधिकरणों के नाम मिलती है प्रान्तीय पदाधिकारियों में 'भोगपति' राजस्थानीय तथा 'राष्ट्रीय' आदि भी प्रमुख पदाधि

ाकारी थे।[82]

शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी ग्राम के मुखिया को महत्तर कहा जाता था उसे ग्रामिक भी कहते थे ग्राम में निम्न लिखित पदाधिकारी होते थे– शौल्किक (चुंगी कर का अधिकारी), गौल्किक (बन सम्पदा की देखभाल रखने वाला), लेखक (क्लर्क) तथा कार्मिक (रजिस्टार) स्थानीय शासन में 'पृथक' का भी उल्लेख मिलता है। 'पृथक' आधुनिक तालुके की भाँति था। स्थानीय शासन में ग्रामीण प्रजा के प्रतिनिधि भी शासकीय कार्यों मे भाग लेते थे।

गुर्जर प्रतिहार काल में बुन्देलखण्ड की क्षेत्रीय प्रशासनिक व्यवस्था– स्थानीय प्रशासन के सन्दर्भ में कोई विशेष ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नही होते केवल एक अभिलेख गुर्जर प्रतिहार सम्राट भोज्य प्रथम का ग्वालियर मे उपलब्ध हुआ है। इस अभिलेख मे कोट्टपाल बलाधिकृत और स्थानीय नामक पदाधिकारियों के नाम उपलब्ध होते है। इस अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि कोट्टपाल नगर का प्रमुख प्रशासक था बलाधिकृत सेना अथवा पुलिस का सर्वोच्च अधिकारी था स्थानीय नगर का प्रशासनिक अधिकारी था।[83] स्थानीय शासन में व्यवसायी वर्ग का महत्वपूर्ण स्थान था मुख्य रूप से व्यवसायी वर्ग मन्दिरो के लिए व्यवसाय में अलग से कर वसूलता था प्रत्येक नगर का अपना कार्यालय था जहाँ नगर के प्रशासनिक कागजों को सुरक्षित रखा जाता था नगरों का शासन चलाने के लिए कौतिक मण्डपिका और पंचकुल आदि संस्थायें होती थी इन नगरों में कर्णिक पट्टकोल बलाधिप तलार पुराध्यक्ष और नगर रक्षक आदि कर्मचारी होते थे एक अधिकारी शेलहथ होता था जो ग्रामों की देखभाल करता था।

ग्राम शासन– ग्राम का शासन चलाने के लिए ग्रामिक महत्तक आदि अधिकारी हुआ करते थे कभी– कभी राजा लोग इन अधिकारियो से परामर्श लेते थे केन्द्रीय और प्रान्तीय प्रशासन ग्रामो पर नियन्त्रण रखता था ग्राम अधि ाकारी का कार्य केन्द्रीय शासन द्वारा उसके कार्यो का नियन्त्रण भी किया जाता था। उसका प्रधान कार्य गाँव को चोर और डाकुओं और अन्य असामाजिक तत्वो से रक्षा करना था और उस हेतु उसके नियन्त्रण और नेतृत्व में ग्रामीणो का ही एक दल पहरे दारो के रुप में रहता था। उसके अन्य कार्यो में ग्राम पर लगाये जाने वाले केन्द्रीय करो की वसूली, ग्राम के कागज पत्रो और आलेखो की सुरक्षा, ग्राम सभा की उसके अधिवेशनो के समय अध्यक्षता, भूमि आदि के हस्तानतरण सम्बन्धी अलेखो को तैयार करना

तथा गावँ की सार्वजनिक सम्पत्ति का हिसाब रखना एवं उसकी रक्षा करना था।[84] उस युग मे कुक्ष अन्य पद अधिकारी भी ग्रामीण क्षेत्रो मे कार्य करते थे। ये निम्नलिखित थे साहसाधिपति भागहर, शुल्कग्राह, प्रतीहार, ग्रामणी, महत्तक, महाजन, महत्तम, महत्तर, पन्चमण्डली, ग्रामपरिषद, महत्ताधिकारिन, अधिकारिमहत्तर, आदि कर्मचारी ग्रामो का शासन प्रबन्ध देखा करती थी।[85]

चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड की क्षेत्रीय प्रशानिक व्यवस्था – चन्देल शासन काल मे ग्राम शासन की अन्तिम इकाई थी। यहाँ लोग अपनी इच्छा से गाँव का शासन चलाते थे इस समय ग्राम अधिकारियो को पट्टलिक,ग्रामपति, ग्रामकूट, महत्तक,या महन्तक, कहाँ जाता था। इस समय गाँव का शासन शुक्रनीति के अनुसार चलता था।[86] इस समय ग्राम प्रशासको की बडी प्रतिष्ठा थी गाँव के लोग उनका आदर माता–पिता के समान करते थे।

गाँव का शासन देखने के लिये एक ग्राम सभा थी जो ग्राम पंचायत के रुप मे कार्य करती थी गाँव सभा के सदस्यो को उच्च प्रतिष्ठा प्राप्ति थी इसके सदस्य एक निश्चित आयु के हुआ करते थे तथा उनकी सदस्या अवधि निर्धारित थी। किन्तु ग्राम प्रधान का पद वंशानुकूल होने लगा था इस समय अनेक गाँव राज्य के आधीन थे तथा दूसरे प्रकार के वे गाँव जो प्रति ग्राहिकों के आधीन थे इन गाँवों मे राजा और उनके कर्मचारियो का अधिकार नही था।[87] कुछ गाँवो मे स्वायत्त शासन नही था जबकि कुछ गाँवो मे स्वायत्त शासन था और वहाँ कई उप समितियाँ थी इन्हे पन्चकुली कहाँ जाता था। मुख्य रुप से ग्राम समितियो के अधिकार ग्राम की रक्षा करना भूमि का वितरण करना उद्योगो की स्थापना करना और जनता के साथ न्याय करना था कही– कही पर ये लोग कर संग्रह भी किया करते थे और देवालयों की व्यवस्था करते थे परमार्दिदेव का एक ताम्ब्र पत्र विक्रमी संबत 1233 का उपलब्ध हुआ है। उसके अनुसार सात होता हैं कि गाँवो की व्यवस्था ऐसी सुचाउ थी कि वे सर्वथा आत्मनिर्भर थे। प्रत्येक गाँव रक्षक, दूत, वैध–चिकित्सक, ज्योतिषी, मेद और चाण्डाल आदि रहते थे।[88] गाँवो में ग्रामपति और रक्षको के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के कर्मचारियों के होने की सूचना परमार्दिदेव के महोबा–पत्र से मिलती हैं।[89]।

चन्देल युग मे अग्रहार ग्राम राजा के आधीन नही थे यहाँ कोइ राजकीय कर्मचारी नही रहता था क्योकि यहाँ के लोग शिक्षित थे इनमे ब्रम्हणो की सख्या अधिक थी गाँव के सभी शासकीय पत्र गाँव मे रखे जाते थे पत्रो को रखारखाव करने वाले कर्मचारियो को कार्णिक कहा जाता था

स्थानीय संस्थाओ और देवालयो का हिसाब किताब प्रति वर्ष केन्द्रीय शासन को भेजा जाता था। जहां उसकी जांच होती थी ।

नगरीय शासन व्यवस्था— चन्देलयुग में नगरीय शासन व्यवस्था के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नही होती किन्तु यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गांव की भॉति भी नगरों की भी व्यवस्था केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार विशेष रूप से प्रमुख नगरों की भी व्यवस्था—स्वायत्त समितियों द्वारा ही होती थी। बड़े नगरों के पास तो रक्षा के निमित्त उनकी सेना होती थी। मदनवर्मा के मऊ अभिलेख से ज्ञात होता है कि कीर्तिवर्मन का सुविख्यात अमात्य अनंत, नगर सेना का अधीक्षक भी था इससे यह सूचना तो प्राप्त होती ही है कि चन्देलो की राजधानियाँ—महोबा, खजुराहो और कालींजर का शासन स्थानीय व्यवस्था माध्यम से होता था।[90] नगरीय व्यवस्था के सन्दर्भ में अधिक कुछ ज्ञात नही है।

तुर्क कालीन बुन्देलखाण्ड की क्षेत्रीय शासन व्यवस्था— तेरहवी शताब्दी तक सल्तनत काल में इक्ता प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी डॉ0 आर्शीवादलाल के अनुसार 14 बी शताब्दी में सल्तनल के विस्तार तथा हिन्दू सामन्तो के दमन के कारण प्रान्तों को शिको में बांटना आवश्यक हो गया। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक प्रान्त में ऐसा नही किया गया। हमें ज्ञात है कि मुहम्मद तुगलक ने दक्षिण के सूबे को चार तथा दो आब को दो शिको में विभक्त किया था। शिक का अध्यक्ष शिकदार कहलाता था। सम्भवतः वह सैनिक पदाधिकारी होता था और उसका काम अपने अधिकार—क्षेत्र में कानून तथा व्यवस्था कायम रखाना था। कुछ समय उपरान्त शिक से छोटी शाससन इकाई का प्रादुर्भाव हुआ। इसे परगना कहते थे और वह कई गांवो के मिलकर बनता था। इब्नबतूता 'सादी' अथवा सौ गावों के मण्डल का शासन की ईकाई के रूप में उल्लेख करता है। परगनों के पद के नामों तथा कामों के सम्बन्ध में हमे निश्चित रूप से ज्ञात नही हैं प्रत्येक परगने में एक चौधरी तथा एक राजस्व वसूल करने वाला होता था। सबसे छोटी ईकाई गांव थी और उसकी अपनी देशी ढंग की शासन—व्यवस्था थी। प्रत्येक गांव में झगड़ो का निबटारा करने के लिए एक पंचायत हुआ करती थी गांव के लोग एक राज्य की प्रजा के रूप में संगठित होते, अपने मामलो की देखभाल करते और सुरक्षा चौकीदारी प्राथमिक शिक्षा तथा सफाई का प्रबन्ध करते थे।

साधरण समय में सुल्तान गांवो के कामों मे हस्तक्षेप नही करता था। प्रत्येक गांव मे आज की भॉति एक चौकीदार, एक लगान वसूल करने वाला तथा

एक पटवारी होता था।[91] तुर्क शासनकाल में क्षेत्रीय शासन व्यवस्था दो प्रकार की थी पहली व्यवस्था परम्परागत शासन व्यवस्था थी जो हिन्दी राज्य शास्त्र के अनुसार थी और दूसरी शासन व्यवस्था तुर्किस्तान की शासन व्यवस्था थी जो कुरान शरीफ और हदीश ग्रनथो का अनुसरण करती थी इस शासनकाल में हिन्दुओं की स्थित दैयनीय थी और जहाँ तुर्क हावी थी, वहां उनके साथ कोई न्याय न होता था।

मुगलकालीन बुन्देलखण्ड की क्षेत्रीय प्रशासनिक व्यवस्था— मुगलकाल में स्थानीय प्रशासन व्यवस्था में फेर बदल हुआ यह तुर्क शासन व्यवस्था से भिन्न थी।

जिले का शासन प्रबन्धा— प्रत्येक सूबा कई जिलो में विभाजित होता था जिन्हे सरकार कहा जाता था जिले का शासन प्रबन्धक करने के लिए एक फौजदार अमल गुजार काजी कोतवाल वितिक्ची और एक खजानदार होता था जिले का प्रमुख फौजदार और आशीर्वादीलाल के अनुसार उसके तीन प्रमुख काम थे। प्रथम, अपने शासन क्षेत्र में शान्ति और सुव्यवस्थित कायम रखाना सडकों को चोर लुटेरो से सुरक्षित रखना तथा आज्ञाओं का जनता द्वारा पालन करवाना। दूसरे, एक सैनिक अधिकारी होने के कारण अधीन एक छोटा सा सैनिक दल होता था। इस सैनिक दल को पूर्ण सुसज्जित तथा सेवाकार्य के लिए तैयार रखने की उसकी जिम्मेदारी होती थी तीसरे उसे कर वसूल करने में अमलगुजार को सहायता देनी पडती थी जिले के शासन–प्रबन्ध की सफलता बहुत कुछ वहां के फौजदार की सतर्कता तथा उसके व्यक्तिगत चरित्र पर निर्भर रहने के कारण अकबर उसके (फौजदार के) तथा अन्य जिला अधिकारियों के ऊपर सतर्क दृष्टि रखाता था केन्द्रीय सरकार इन अधिकारियों के काम का निरीक्षण करने हेतु समय–समय पर अन्य उच्चअधिकारियों को भेजती थी।[92] जो अधिकारी अपने कर्तव्य का पालन नही करता था उसे दण्डित करने की भी व्यवस्था थी।

परगने का शासन प्रबन्धा— एक जनपद या सरकार कई एक परगनों या महलों मे बटा होता था यह प्रशासन की निम्नतम वित्तीय इकाई थी प्रत्येक परगने में चार प्रमुख अधिकारी होते थे। इन्हे शिकंदर आमिल, फोतदार, और कारकुल कहते थे, इसके अतिरिक्त कानूनगो और चौधरी भी अर्धसरकारी कर्मचारी, के रूप में कार्य करते थें। परगने का प्रमुख अधिकारी शिकदार था जो परगने के प्रशासन के लिए उत्तरदायी था वह परगने में शान्ति व्यवस्था बनाये रखाता था।

नगरों का शासन— अकबर के जमाने में नगरों की प्रशासन व्यवस्था

उपलब्धा होती है आइने–अकबरी के अनुसार विशेष महत्व के प्रत्येक नगर मे एक कोतवाल नियुक्त किया जाता था जो पुलिस कार्य के अतिरिक्त नगर–प्रशासन की देखभाल भी करता था। छोटे शहरो मे जहां कोतवाल नही होता था, ये कार्य जिले के अमलगुजार को करने पडते थे और वहीं अपने अधीन कुछ ऐसे अधिकारियों को नियुक्त करता था जो उसकी देखरेख में पुलिस तथा नगर का प्रबन्ध करते रहे। कोतवाल की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार होती थी और वह नगर में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापनार्थ एक छोटे–से–सैनिक दल का अध्यक्ष होता था वह नगर रक्षकों को नियुक्त करता था और उन्हे नगर के भिन्न–भिन्न भागों में पहरा देने को तैनात करता था। कोतवाल ही सम्पूर्ण नगर को विभिन्न क्षेत्रो (वार्डो) में विभक्त करता था और प्रत्येंक वार्ड को अपने अधीनस्थ एक अधिकारी के प्रबन्ध मे रख देता था। प्रत्येंक शहर में काम करने वाले व्यक्ति (कारीगर इत्यादि) बहुत से संघो में सम्मिलित हो जाते थे।[93] नगर क्षेत्र में कोतवाल का विशेष महत्व था एक नगर कई मोहल्लों में विभाजित होता था तथा इस बात की भी निगरानी रखी जाती थी कब कौन मेहमान आया और क्यों आया कोतवाल ही नगर की सफाई की व्यवस्था करता था उसके निम्नलिखित कार्य थे–

1– शहर की रक्षा और निगरानी 2– बाजार पर नियन्त्रण 3– लावारिस सम्पत्ति की उचित देखभाग 4– अनाचारों की रोकथाम 5– बूचड खानों तथा शमसानों पर नियन्त्रण 6– अकबर के सामाजिक सुधारों को कार्यान्वित करना। ''उसे या तो चोरों का पता लगाकर चुरायी गयी चीजों को उपलब्ध करना पडता अथवा स्वयं इन वस्तुओं का मुआवजा भरना पडता था।'' वस्तुओं के दामों पर भी वह नियन्त्रण रखता था। उसे बाजारों का निरीक्षण करना पडता था और बांटो तथा गज इत्यादि को जांचना पडता था यदि कोई व्यक्ति बिना किसी उत्तराधिकारी के मर जाता था तो कोतवाल ही उसके अधिकृत उत्तराधिकारी का पता लगाकर उसे सौप देता था।[94] सम्राट अकबर ने नगरों का प्रशासन हिन्दू राज्य व्यवस्था के अनुसार किया था उसने सती प्रथा धर्म परिवर्तन बाल विवाह, और भ्रूण हत्या पर प्रतिबन्ध लगाया था दुराचारी स्त्रियों को शहर से बाहर निकाल दिया जाता था नगर के प्रशासन को चलाने के लिए अनेक पुलिस अधिकारी गुप्तचर क्लर्क और चपरासी नियुक्त किये जाते थे। कोतवाल तथा नगर के अन्य कर्मचारी लाल रंग की वर्दी पहनते थें।

ग्राम प्रशासन– प्रशासन की दृष्टि से ग्राम सबसे छोटी इकाई थी तुर्क और मुगुल शासन काल में सुल्तानों ने ग्रामों की स्वतन्त्रता बनाये रखी उसमें

किसी प्रकार का हस्ता क्षेप नही किया इस समय ग्राम के प्रमुख कर्मचारी मुखियां पटवारी और चौकीदार होते थे। ग्राम प्रशासन के सन्दर्भ में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नही होते केवल थोडा सा विवरण जान मथाई द्वारा रचित पुस्तक में उपलब्ध होता है। प्रत्येक गांव में ग्राम प्रशासन के लिए ग्राम–पंचायते थी। जिनमें गांवों में रहने वाले परिवारों के प्रमुख सदस्य रूप में सम्मिलित होते थे। यह पंचायते ही ग्राम–प्रशासन का उत्तर दायित्व संभालती थी। गांव की रक्षा, स्वास्थ्य और सफाई प्रारम्भिक शिक्षा, सिंचाई, चिकित्सक, निर्माण कार्य, न्याय तथा लोगों की नैतिक और धार्मिक उन्नति सम्बन्धि प्रबन्ध और व्यवस्था का भार ग्राम–पंचायतों को उठाना पडता था। पंचायते ही ग्राम निवासियों के खेलकूद मनोरंजन तथा उत्सव त्यौहारों का प्रबन्ध करती थीं मुकदमों का फैसला करने के लिए एक पृथक पंचायत होती थी दसवीं शताब्दी के आरम्भिक काल के एक आलेख के आधार पर ज्ञात होता है कि ग्राम पंचायते छह उप समितियों में विभाजित होती थी और प्रत्येक समिति अपना–अपना कार्य सम्पादित करती थी। ये उप समितियां इस प्रकार थी–

1– वार्षिक समिति 2– उद्यान समिति 3– तालाब समिति 4– स्वर्ण समिति 5– न्याय समिति 6– पंचवारा समिति। इन उप समितियों के सदस्यों निश्चित चुनाव विधि द्वारा निर्वाचित किये जाते थे। और ऐसा ख्याल है कि यह निर्वाचन सर्वसम्मति से होता था। इसके अतिरिक्त जाति–विरादरी की पंचायते भी थी जो विरादरी तथा कुटुम्बगत झगडों को तय करती थी। प्रत्येक गांव में एक या दो पहरेदार होते थे।[95] इसके अतिरिक्त गांव में एक पुजारी एक शिक्षक एक जोत्षी, एक बढ़ई एक लोहार, एक कुम्हार, एक धोबी, एक नाई, एक चिकित्सक, एक पटवारी, एक मुनीम, अनिवार्य रूप से रहते थे। प्रत्येक ग्राम स्वालम्बी था गांव के लोग अपनी संस्कृति की रक्षा स्वतः करते थे।

बुन्देलखण्ड में बुन्देले शासको की क्षेत्रीय प्रशासनिक व्यवस्था– महाराज छत्रसाल का शासन परगनों में विभाजित था कुल मिलाकर 44 परगनें उनके राज्य में थे इन परगनों की प्रशासनिक व्यवस्था परगना अधिकारी देखा करते थे सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में नगरों की संख्या बहुत कम थी केवल ओरछा, दतियां, चन्देरी, बीर सिंह उर्फ झाँसी, कालपी, कोच, एरच, जालौन, बांदा, हमीरपुर, अजयगढ़, पन्ना, चरखारी, बिजावर, शाहगढ़, छतरपुर, शरीला, अलीपुराद, छोटे–छोटे कस्बे थे। इनमें से कुछ पन्ना महाराज के अधिकार में थे कुछ अधिकार में नही थे परगनों की व्यवस्था अति उत्तम कोटि की थी यदि कोई मुगल सैनिक इन नगरों में

आक्रमण करता था तो उसका दृढता से मुकाबला किया जाता था कृष्ण कवि के अनुसार उनके राज्य में कोई बाहरी शत्रु अथवा मुगल शासक प्रवेश नही कर पाता था। ऐसे अवसरों पर छत्रशाल की घूमने वाली सैनिक टुकडियां एकदम से लुटेरे एवं अत्याचारी आगन्तुकों पर टूट पडते थे और उनका भली-भाँति दमन करके शान्ति स्थापना कर देते थे। सारांश यह कि शासन के सभी भागों पर छत्रशाल का व्यक्तिगत नियन्त्रण रहता था। वे प्रजा की भलाई के लिए सदैव प्रयत्न शील रहते थे। जिससे जन साधारण उनके बर्ताव से परम सन्तुष्ट और प्रसन्न थे वह दीन और गरीबों से खुलकर बाते करते थे। सीमान्तों और सरदारों को नगद बेतन कर जागीरे दी जाती थी जो पुस्त दर, पुस्त चलती थी।[96] यही जागीरदार नगरों का शासन प्रबन्ध देखते थे।

ग्राम प्रशासन— छत्रशाल के राज्य में ग्राम-प्रशासन का सर्वाधिक महत्व था यहां का प्रशासन पंचायत व्यवस्था से सम्पन्न होता था मुख्य रूप से अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति बाहुल्य ग्रामों में छत्रशाली पंचायत चबूतरों का निर्माण किया गया था जहां बैठकर व्यक्ति न्याय किया करते थे गांव में कुकृत्य करने वालों और अपराध करने वालों को उचित दण्ड दिया जाता था उनके शासन का यह आदर्श था।

त्रासियौ न कुल कों, अनाथनि विनासियों न।
हांसियों न हरि के, गुनानुवाद मदिबौ।।[97]

छत्रशाल के राज्य में ग्रामों की शासन व्यवस्था भणभट्ट द्वारा निर्मित शासन व्यवस्था के अनुकूल थी स्वतः छत्रसाल ने अपने राज्य मे एक नयी प्रथा निकाली कै गावन -गावन मे जो अपने धर्म का पक्का होवौ और सूधो सरको होवै ओई ऊगाँव को मुखिया बनांओ जाय और हरेक जाति मे ओई जाति के मातो बना दिये गये जौन जात मे झगडा होवै डांड मामले जताइ मे हो जावे रही परजात के जरूर जोरे जाय और गुप्तचर ऊ की जांच करे बडी कसौटी मे से न्याय निवेरो होवै। सलाइ दो साल मे चारो ओर समचा बधं गओ कोऊ काहू के उंगरियान उठा सके छत्रसाल चौतरा को 'अथाई' कहन लगे अथाइन पै गांव के बिना काम के जुर के बैठे और बाते करे लुगाइ उतै के पांव करकै कढै। बात-बात मे कही जाय कै जा 'छत्रसाली-आय' बतादो जा बात कैसी आप, तो डराके सांची कैहै, चाहे कितनी छिपावती बाते हौवै, गांवन-गावन मे झगडा गड गये बैठका बन गये और झगडा गड गये बजार चौधरी सब वानियन पै हो गये, सौदा लेत-देत मे कोउ काहू को ठग न पावै गुप्तचर लगे रहे और सब बातन की रैपाटे होवै भेदिया गावन-गांवन को भेद देव, सब एकता मे रहे। प्रजा मे अमन चैन

बरसान लगे।[98]

उनकी परम इच्छा यह थी कि धर्मराज की स्थापना हो स्त्रियों का सम्मान हो गांव मे गरीबो की मदद की जाय कोई किसी को सताय नही बदमाशो का दमन किया जाय प्रजा राज्य विद्रोह न करे सब लोग अच्छा काम करे गांव के लोग राज्य चलाने के लिये थथा सम्भव कर दे झगडो का निपटारा प्रेम पूर्वक हो किसी प्रकार का झगडा नहो।

छत्रसाल के गांव मे मुखिया सर्वोच्च अधिकारी था उसके नीचे प्रत्येक जात का पंच और पटेल हुआ करते थे जो लोग राज्य विद्रोही भ्रष्टाचारी घूसखोर ठग चोर बुरे करने वाला और घमण्ड करने वाले को पकडते थे उसे दण्डित करते थे और सम्भव हुआ तो उसे गांव से निकाल देते थे इनके राज्य मे पंच कोषी सभा बन्द कर दी गयी थी। पंचायत के चबूतरे मे धर्म ध्वजा फहरायी जाती थी और उसी धर्म ध्वजा के नीचे पंचायत होती थी पंचायत आकर और धर्म सभा के निर्णय से महाराजा को परिचित करा दिया जाता था इनमें पंचकोषी मण्डल उसके ऊपर परगने और परगनो के ऊपर केन्द्र की निगरानी रहती थी छत्रसाल के राज्य में बनियो पर नियन्त्रण रखा जाता था ताकि वे जनता का शोषण न कर सके गांव के लोग वर्ण व्यवस्था के अनुसार अपना कार्य करते थे छत्रशाल की तारीफ करते हुए देलवारा लेख मे यह कहा गया है। आलमगीर की दुरनीति देश छोड के भाग गई और शाह को लल्जित करके न जाने कहा हिरा गई ऐसे भयानक समय में छत्रसाल ने अपने पिता को कोई नीती भानुभट्ट द्वारा कारण ते कारज रूप मे प्रत्यक्ष संसार के सामने रख छोडी और सूक्ष्म को स्थूल रूप दैके रहे ऐसो जन्म संसार मे दुर्लभ है धान्य ऊ पिता के जो देश के लाने प्राणन की आहुति कर दई और इपने प्राण– प्यारे छोटे लल्ला के कन्धे इतना भार छोड़ के चल बसे[99]।

बुन्देलखण्ड मे पंचायत प्रथा के जन्मदाता छत्रसाल ही थे इन्होने भानुभटट के कहने पर अथाई व्यवस्था वर्तमान पंचायत ब्यवस्था का स्वरूप है उसका निर्माण इस प्रकार कियाा जाता था हर एक गाँव मे मुखिया की नियुक्ति की जाय दो–दो महतो की नियुक्ति की जाय या ग्राम रक्षको की नियुक्ति की जाय प्रत्येक गाव मे आठ पंचो की नियुक्ति हो उसके ऊपर एक सरपंच हो और हर एक परगने मे सोलह –सोलह पंचो की नियुक्ति हो और उनके ऊपर विश्वासी गुप्तचर रखो जाय और पंचायती चबूतरे मे बुन्देलखण्ड का ध्वज फहराया जाय इस ध्वज मे सूरज चांद और हनुमान जी का चित्र हो पंचायत करने के पहले डिग्गी पिटवायी जाय पंचायत चबूतरे मे

कोई भी व्यक्ति जूता पहन के न बैठे हनुमान जी को नारियल का भोग लगाया जाय और प्रसाद बाटा जाय तथा जिस दिन पंचायत हो उस दिन एक थाली में गंगा जल बेलपत्र बीच में रखा जाय और तब पंचायत की जाय अगर जरूरत पडे तो पंचायत की बैठक कई दिन तक बैठक की जाय अगर कोई निर्णय तो परगना पंचायत का सहारा लिया जाय यदि परगना मे निर्णय न हो तो केन्द्रीय पंचायत का सहारा लिया जाय देलवारा के अनुसार उसी केन्द्र मे छतरपुर बनाओ गओ उतै की पंचायत दोई फरियादी गम्म खावै। जा छतरपुरी पंचायत मशहूर भई। ईतरा छत्रसाली न्याय गावन–गावन छत्रशाल की अथैय कहाई[100]। इस प्रकार छत्रसाल की पंचायती व्यवस्था ग्राम प्रशासन के लिये एक महत्व पूर्ण व्यवस्था थी जो प्राचीन हिन्दू राज्य व्यवस्था के अनुकूल थी तथा मुगलो के शासन के विपरीत थी इस पंचायती व्यवस्था का प्रभाव यह पडा कि वर्तमान ग्राम प्रशासन इसी आधार पर व्यवस्थित है तथा सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश मे इस व्यवस्था का प्रचार प्रसार हुआ हैं।

बुन्देलखण्ड में गौंड राज्यों की क्षेत्रीय प्रशासनिक व्यवस्था— ऐतिहासिक साक्ष्यों के आभाव में इस राज्य की शासन व्यवस्था के बारे कुछ भी नही कहा जा सकता ऐसा प्रतीत होता है कि गौंड़ राज्य कई प्रान्तों में विभाजित था जब इस राज्य का विस्तार हुआ उस समय यह राज्य कई सूबों में विभाजित था अनेक प्रान्तों में गुर्जर प्रतिहार वंशीय क्षत्रीय इनके सूबेदार थे ये सूबे परगनों में विभाजित थे परगने उस युग में मण्डल के नाम से विख्यात थे इसकी शासन व्यवस्था मण्डल अधिपति किया करते थे गौंड़ राज्य मैं जो नगर थे उनकी शासन व्यवस्था नगर अधिपति और उससे जुड़ें कर्मचारी किया करते थे।

गांव की शासन व्यवस्था गाँव के प्रमुख कर्मचारियों और पदाधिकारियों के हाथ में थी ये पदाधिकारी गांव की व्यवस्था के अतिरिक्त कर वसूली का भी कार्य किया करते थे किन्तु ग्रामीण शासन व्यवस्था का कोई ऐतिहासिक साक्ष्य नही है। पं0 गोरेलाल तिवारी के अनुसार चन्देलो के राज्य का आरम्भ और गौंड़ों के राज्य की नींव संभवतः समकालीन ही हो, पर प्रमाणभाव के कारा निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। चन्देल पहले बढ़े और पहले ही गिरे। गौंड़ लोगो का राज्य रानी दुर्गावती के राज्यकाल में उन्नति के सिखार पर पहुँचा। परन्तु रानी दुर्गावती के मरने के बाद अवनति आरम्भ हुई। अकबर ने रानी दुर्गावती को हराने के पश्चात भोपाल का प्रदेश लिया।[101]

बुन्देलखण्ड में क्षेत्रीय शासन व्यवस्था का विशेष महत्व रहा है प्रान्त केन्द्र के नियन्त्रण में रहें है मण्डल अथवा जनपद प्रान्त के नियन्त्रण में रहे है। परगने जनपद के नियन्त्रण में हरे है और ग्राम परगनों के नियन्त्रण में रहे है ग्राम के लोग अपना प्रषासन चलाने के लिए सदैव से स्वतन्त्र रहे है। आवागमन के संसाधनो के आभाव के कारण केन्द्रीय शासन का शहज नियन्त्रण ग्रामों पर नही हो पाता था किन्तु विशेष परिस्थितियों में उन्हें केन्द्रीय शासन और प्रान्तीय शासन का नियन्त्रण मानना पड़ता था।

4— बुन्देलखण्ड में शासको द्वारा निर्धारित और उसका स्वरूप— व्यक्ति की मूलभूत समस्याओं का समाधान धन अथवा मुद्रा से होता है धन व मुद्रा के माध्यम से कोई भी व्यक्ति अपनी आवश्यकता अनुसार वस्तुंए एवं सेवायें प्राप्त कर लेता है यह धन उसे सुलभ प्राप्त नही होता उसे इस धन को प्राप्त करने के लिए खानिज एवं वन सम्पदा का दोहन कृषि उद्योग अथवा श्रम करना पड़ता है तब श्रम के पारतोशिक के रूप में अथवा मुनाफे के रूप मैं उसे यह धन उपलब्ध होता है कहने को तो पहधन सोना, चाँदी, ताँबा , और कौडियों के टुकड़े मात्र है किन्तु इनमें जो क्रय शक्ति छुपी होती है उसी से इसका महत्व बढ़ जाता है बुन्देल खण्ड में मुद्रा प्रणाली अति प्राचीन है।

बुन्देलखण्ड के अनेक भागों में उत्खान कार्य हुआ था उस उत्खानन कार्य में अनेक युगों के सिक्के यहाँ उपलब्ध हुए है ये सिक्के कल्चुरि शासनकाल के 300 ईसा पूर्व के है इनमें ब्राह्मी लिपि में कुछ लिखा है इसके अतिरिक्त कुछ सिक्के 11 वीं शताब्दी के उपलब्ध हुए है। ये गांगेय देव कल्चुरि नरेश के है इनमें 12 राजाओं के नाम है तथा रूपये के दूसरी ओर चतुर्भुज देवी की भूति है।

बुन्देलखण्ड में बैक्ट्रियन युग के कुछ सिक्के हमीरपुर जनपद के पचखुरा गाँव में उपलब्ध हुए है ये सिक्के मिनेण्डर अपोलो डोटस , ऐन्टीमेकस निकेफोरस यूके टाइडस के है इसके अतिरिक्त इंडोससानियन सिक्के उपलब्ध हुए है जो छठवीं शताब्दी के है इन्हें हूण यहां लाये थे।

कुछ सिक्के चन्देल शासको के भी उपलब्ध हुए ये सिक्के कीर्तिवर्मन और वीर वर्मन के है ये सोने चांदी और तांबे के है मुसलमानों के भी सिक्के यहां उपलब्ध हुए है ये सिक्के 1311 ई0 से लेकर 1553ई0 तक के है ये सिक्के सोने और चांदी के है इसके अलावा गुप्त युग की कुछ मुद्रायें भी यहां उपलब्ध होती है जोएरण के आस—पास उपलब्ध होती है इन मुद्रओं से तदयुगीन मुद्रा प्रणाली का बोध होता है तथा व्यापार उद्योग और कृषि के

सन्दर्भ में व्यापक जानकारी उपलब्ध होती है।

बुन्देलखण्ड में आय के मुख्य स्रोत खनिज सम्पदा से भी थे यह सम्पूर्ण क्षेत्र विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ है इन पर्वत श्रेणियों में नाना प्रकार की खनिज सम्पदा छिपी हुई है। इनमें मुख्य रूप से इमारती पत्थर, ग्राइनेट पत्थर चूने का पत्थर होते है इन पत्थरों से नाना प्रकार का सामान निर्मित होता है जो बुन्देलखण्ड के अतिरिक्त बाहर भी भेजा जाता है पत्थरों के अतिरिक्त यहाँ लोहा ताँबा तथा अन्य धातुए भी उपलब्ध होती है धातुएं के अतिरिक्त यहाँ कीमती पत्थर और रत्न भी उपलब्ध होते है। कीमती पत्थरों में हीरा सबसे कीमती उपज है इसके अतिरिक्त भवन निर्माण में काम आने वाली बालू भी यहाँ उपलब्ध होती है कुछ कीमती वस्तुओं में मैगनीज एल्यूमीनियम, फिटकरी, सोना, चांदी, और सीसा यहाँ उपलब्ध होता है इस खनिज सम्पदा से यहाँ के शासको को पर्याप्त मात्रा में कर की उपज होती थी।

यहाँ पर वन सम्पदा से भी शासन को बहुत अधिक लाभ होता था यहाँ के पहाड़ों मे नाना प्रकार के वृक्ष उपलब्ध होते है। जिसकी, लकड़ी, छाल, पत्ती, और फलो से नाना प्रकार की वस्तुए बनती है इन्हीं बनो में नाना प्रकार की औषधियों के वृक्ष भी है जिनसें दवाइयाँ बनती है महुआ, और ताड़ के वृक्षों से मदिरा का निर्माण होता है खैर, से कत्था, बनता है इसके अलावा लाल चन्दन और आचार के पेड़ो से चिरौंजी आदि उपज उपलब्ध होती है इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार की झाडियाँ भी उपलब्ध होती है यहाँ की जंगली उपज से लाख गांद, मोम, शहद, बैचादी, सफेद, मूसली वंश लोचन , लक्ष्मन कन्द, विलाईकन्द साभर सींग, चमड़ा, है हड्डी, महुआ, ऑवला हर्र, बहेरा, आदि वस्तुए उपलब्ध होती है इनसे भी शासन को पर्याप्त मात्रा में कर उपलब्ध होता है।

वनों में उपलब्ध जंगली जानवर शेर, तेंदुआ चीता, भालू, जंगली खरगोश, सुअर, हिरण, नीलगाय, आदि से भी शासन को अच्छी आय हो जाती है इसके आलावा अनेक पक्षी भी वनों में उपलब्ध होते है तथा जलाशयों में अनेक प्रकार की मछलियां उपलब्ध होती है इनके माध्यम से भी शासन को अच्छा कर मिलता था।

बुन्देलखण्ड में कृषि उपज भी शासन की आय का मुख्य स्रोत था यहाँ पर रवी, खरीब, और जायद, तीन प्रकार की फसले होती थी इनमें कोदो, राली, कुटकी, बसारा, समा, काकुन, मटा, ज्वार, बाजरा, उरद, मूँग लौसा और धान उत्पन्न होते थे गेंहूँ मटरा चना, जौं, के अतिरिक्त तिली,

सरसों, अलसी, अण्डी, यहाँ उपलब्ध होती थी इसके अलावा, ईख, कपास, सिघांड़ा सन, नाना प्रकार के फल और सब्जी तथा फान यहाँ उपलब्ध होते थे जिनकी उपज पर शासन कर वसूलता था।

बुन्देलखण्ड का समाज आर्थिक दृष्टि से निम्न भागों में विभक्त था।

1— सामान्त एवं शासन वर्ग— यह वह वर्ग था जो सम्पूर्ण विन्ध्लखण्ड में सत्ता का उपभोग करता था और सम्पूर्ण जनता पर प्रशासनिक नियन्त्रण रखता था केन्द्रीय शासन से लेकर ग्रामीण शासन तक इनके नियन्त्रण में रहता था ये शक्ति सम्पन्न थे इनके नियन्त्रण में एक बड़ी सेना रहती थी। तथा अनेक कर्मचारी रहा करते थे ये अपने शासन को चलाने के लिए अनेक प्रकार के कर जनता पर लगाते थे ओर उसे वसूलते थे। यह कर नगर और कृषि उपज के रूप में लिया जाता था। कर का निर्धारण वार्शिक छमाही, तिमाही, मासिक, वदैनिक हुआ करता था।

2—सेठ या महाजन वर्ग— यह वह वर्ग था जो सामान्त और शासक वर्ग की तरह पेसे से धनी था वह यह शासक और जनता दोनो को धन से सहयोग प्रदान करता था रूपये का देन, लेन, रहन धरी, कृषि उपज की खरीद और विक्री तथा उद्योगो से तैयार माल की खरीद भी ये लोग किया करते थें। ये लोग शासक वर्ग को अपनी आय का एक निश्चित प्रतिशसत कर के रूप में दिया करते थे किन्तु इनके ऊपर आरोप यह था कि वे कृषिकों और छोटे—छोटे उद्योग कर्ताओं का शोषण करते थें।

3—कृषक एवं उद्योगी वर्ग— यह वर्ग खेती करता था खेती के माध्यम से विभिन्न वस्तुएं उत्पन्न करता था तथा अपना जीविका उपार्जन कृषि के माध्यम से ही करता था कृषि उपज का एक निश्चित भाग उसे कर के रूप में शासन को देना पडता था कृषिकों हालत बुन्देलखण्ड मे बहुत अच्छी नही थी अधिकांश सामन्तों और महाजनों ने अवसर का लाभ उठाकर इनकी भूमि को अपने अधिकार में कर लिया था। इनका जीवन यापन बडी मुश्किल से चलता था यदि कभी प्राकृतिक आपदा आ जाती थी तो उनका जीवन संकट में पड जाता था इसी प्रकार यहां धातु उद्योगी मिट्टी का काम करने वाले लडकडी का काम करने वाले तथा वस्त्र का काम करने वाले तथा भवन निर्माण करने वाले अनेक प्रकार की वस्तुएं बनाते थे। वे अपना उत्पादित माल खरीद दार के आभाव में बहुत सस्ता महाजनों के हांथ मे बेच देते थे इनकी आर्थिक हालत भी ठीक नही थी ये लोग महाजनों के कर्जी बने रहते थे फिर भी इन्हे शासकीय कर देना पडता था।

4—मजदूर वर्ग— बुन्देलखण्ड में एक ऐसा वर्ग था जो बुद्धि विहीन साधन बिहीन और निराश्रित था इनमें वे लोग बहुसंख्यक थे जो अनुसूचित जन जाति, अनुसूचित जाति, और पिछडी जाति के थे जिनके पास कृषि के लिए न तो भूमि और न उद्योग के लिए पैसा इनमें से कुछ लोग बधुआ मजदूर बनकर सामन्तो महाजनो के यहां मजदूरी करते थे। तथा नाना प्रकार के अत्याचार उनके ऊपर होते रहते थें कभी—कभी महाजन वर्ग उन्हे आर्थिक सहयोग देकर भारी भरकम व्याज की अदायगी की सर्त पर उन्हें बंधुआ मजदूर बना लेता था। क्योंकि श्रमिक उनका कर्ज अदा करने में अपने आपकों असमर्थ पाता था दूसरे वे लोग थे जो घूम फिर कर के मजदूरी कर लिया करते थे किन्तु ये लोग दैनिक मजदूरी पाते थे इसलिए काम समाप्त होने पर इन्हे मजदूरी की तलास करना पडती थी। ये लोग कर से मुक्त थे ये लोग राजाओं के यहाँ रसद ढ़ोने बैलगाडी चलाने पल्लेदारी करने तथा सफाई आदि का कार्य करते थे भवन निर्माण की स्थित में ये लोग रेजागिरी और बेलदारी का कार्य करते थे बंहगे में सामान ढ़ोते थे।

5—अपराधी वर्ग— बुन्देलखण्ड में एक ऐसा वर्ग भी था जो ठगी चोरी डकैती लूटपात आदि से अपना पेट पालता था अपराध करना इस वर्ग का पुस्तैनी पेसा था। अक्सर ये आने—जाने वाले राह गीरों के साथ ऐसी हरकत करते थे। बुन्देलखण्ड की कर व्यवस्था अलग—अलग युगों में अलग—अलग थी।

बुन्देलखण्ड में अनार्यो की कर प्रणाली— बुन्देलखण्ड में आनार्य अति प्राचीन काल से रह—रहे हैं। जबकि यहाँ सभ्यता का विकास नही हुआ था किन्तु सबसे बडी विशेषता यह थी कि ये लोग संगठित और समूह में रहते थे। ये लोग अपना जीवन खनिज सम्पदा और बन सम्पदा के माध्यम से व्यतीत किया करते थे ये लोग अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए एकत्रित सामाग्री की दूसरों के हांथों में सौप देते थे और उसके बदलें में अपने उपयोग का समान प्राप्त कर लिया करते थे। ये लोग आवासीय व्यवस्था जल व्यवस्था जंगली पशुओं से सुरक्षा शत्रुओं से सुरक्षा करने के लिए सामूहिक बैठके करते थे और वहाँ कर के रूप में सभी व्यक्तियों से खनिज सम्पदा और बन सम्पदा एकत्रकिया करते थे यही उनकी कर प्रणाली थी जिसका विवरण ऐतिहासिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

कालान्तर में जब आर्य जातियां यहाँ आई और उनके इनसे युद्ध हुए आर्यो ने इन्हे युद्ध में हराया और दास के रूप में इन्हे मान्यता प्रदान की और इन्हे चतुर्थ श्रेणी और सूद्रो की कोटि में रखा आर्यो से परचित होने के

पश्चात ये लोग धातु से बने अस्त्र–शस्त्र और मुद्रा से परिचित हुए डॉ0 कन्हैयालाल अग्रवाल के अनुसार विन्ध्य क्षेत्र का वर्णन प्राचीन भारतीय साहित्य और अभिलेखों में प्रायः अटवी या महाटवी के रूप में मिलता है। इससे स्पश्ट होता है कि विन्ध्यक्षेत्र का अधिकांश जंगली क्षेत्र था। जिसमें शबर, पुलिन्द, भिल्ल, आदि जातियां रहती थी वन्य तथा शैल गृह–जीवन के अतिरिक्त ग्राम्य एवं नागरिक जीवन का भी असितित्व इसमे था।[102]
आर्यो के सम्पर्क में आने के पश्चात ये लोग धातु वस्त्र और मुद्रा से परिचित थे जो वस्तु ये लोग शासको महाजनों उद्योगों को सौपते थे उसके बदले मे इन्हे धातु मुद्रा उपलब्ध होती थी। जिसका उपयोग ये लोग अपने अनुसार करते थे ये अपने शासक को जिनकी दासता ये स्वीकार करते थे करकं रूप में खनिज सम्पदा दिया करते थे यदि कही विद्रोही की स्थित पैदा हो जाती थी तो सेना के माध्यम से इनके विद्रोह के दबाया जाता था इनके कर की आदायगी और उसका निर्धारण नरेशों के द्वारा किया जाता था जहाँ ये लोग स्वतन्त्र थे वहाँ ये अपने उपयोग के लिए आदि वासियो से भी कर के रूप में भी खनिज व बन सम्पदा लिया करते थे।
बुन्देलखण्ड मे आर्यो की कर प्रणाली– आर्यो के समय में कर प्रणाली के कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते हैं यह कर राज्य को कृषि शिल्प उद्योग ओर व्यापार से उपलब्ध होता था 600 ईसा पूर्व से लेकर 200 ईसा पूर्व तक व्यापार तथा उद्योगो की स्थित में पर्याप्त सुधार हुआ जिसके माध्यम से शासक वर्ग को अनेक प्रका का कर उपलब्ध होता था किन्तु इसके ऐतिहासिक साक्ष्य 600 ई0 के ही उपलब्ध होते हैं डॉ0 ईश्वरी प्रसाद के अनुसार इस सम आय के प्रमुख साधन थे– उंद्रक–(भूमि शुल्क), उपरिकर–(यह कर उन कृषकों से लिया जाता था जिसका भूमि पर स्वमित्व नही होता था), धान्य– (यह शुल्क कुछ विशेष अनाजो के ऊपर लगाया जाता था), हिरण्य– (यह वह शुल्क था जो खनिज पदार्थो पर लगाया जाता था), शारीरिक श्रम– (जो व्यक्ति राजकीय कर नही दे पाते थे उनसे कर के बदले निश्चित ढंग से शारीरिक श्रम लिया जाता था), न्यायालय शुल्क तथा अर्थदण्ड। हर्श की कर सम्बन्धी नीति उदार थी और जनता पर हलके कर लगाये जाते थे। भूमि की उपज का 1/6 भाग राज्य को मिलता। अन्य करों की दर के बारे में कुछ पता नही लगता। राज्य की सर्वाधिक आय भूमि से होती थी। भूमि का पर्यवेक्षण और माप होता था। पर्यवेक्षण–विभाग के मुख्य अधिकारी को 'प्रमाता' (नापने वाला) कहते थे। उसके अतिरिक्त 'सीमा–प्रदाता' और 'न्यायकर्णिक' होते थे।[103] आर्यो की कर प्रणाली का

वर्णन वेदो और स्मृति ग्रन्थो में भी उपलब्ध होता है।

बुन्देलखण्ड की मौर्य कालीन कर प्रणाली— मौर्य कालीन वित्तीय्र प्रशासन का वर्णन कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उपलब्ध होता है राज्य को धन की आवश्यकता राज्य की व्यवस्था के लिए होती थी जो कर्मचारी राज्य में काम करते थे उन्हे राज्य द्वारा वेतन दिया जाता था देवकान्त शर्मा के अनुसार वित्त को एक अपरिहार्य आवश्यकता मानने के साथ ही भी आवश्यक है कि राजा वित्त एकत्रित करते समय सावधान रहे क्योंकि अन्यायपूर्ण ढंग से एकत्रित किये गए धन का जनता के द्वारा विरोध किया जाता है और राजा को जन– विद्रोह का सामना करना पड सकता है। अतः राजा भी नये कर लगाये तब जनता को उसकी आवश्यकता से परिचित करा दें।[104] करो से उपलब्ध धन विविध कार्यो मे किया जाता था राज्य के आय के निम्नलिखित स्रोत थे।

1—विभिन्न प्रकार के भू—कर यथा अनाज —उत्पादन करने वाली भूमि पर कर राजा को दिया जाने वाला अन्न भाग आदि।

2—दूसरे राज्य से आने वाले पदार्थो तथा दूसरे राज्य मे जाने वाली वस्तुओं पर कर।

3—जल एवं थल भागो पर यात्रा करने वालों से प्राप्त कर।

4—विभिन्न बाजारो पर कर।

5— गणिकाओं द्यत—ग्रहो मधुशालाओं आदि पर कर।

6— बनो एव वनो से उत्पादित साम्रागी (जैसे लकडी)पर कर।

7—विविध धातुओं का निर्माण करने वाली फक्ट्रियों पर कर ।

8—न्यायालयों से प्राप्त शुल्क ।

9— आकस्मिक आय उदाहरणतःकिसी सम्पाति के स्वामी की अकस्मात म्रत्यु पर सम्पूर्ण सम्पाति राजा को सुपुर्द कर दी जाती थी खोये हुए विभिन्न पदार्थो की प्राप्ति होना भी आकस्मिक आय थी ।

10—अनियमित कर जो विभिन्न उत्सवों पर अवसर के अनुसार लगाया जाता था ।

11—जनता को दिये जाने वाले ऋण पर ब्याज से होने वाली आय।[105]

मौर्य युग में भूमि से प्राप्त होने वाला राजस्व आय का प्रमुख स्रोत था भूमि पर अधिकार रखने वाला व्यक्ति भू स्वामी अवश्य था किन्तु वह भूमि का विक्रय नही कर सकता था ऐसा करने के लिए उसे राजा से आज्ञा लेनी पडती थी इस समय कुछ अन्य कर इस प्रकार थें।

1—ब्राह्य शुल्क— अपने देश मे ली जाने वाली चुंगी को ब्राह्य शुल्क

कहा जाता हैं।

2—आभ्यान्तर— दुर्ग अथवा राजधानी के भीतर उत्पन्न हुई वस्तुओं पर प्राप्त कर को 'आभ्यान्तर' शुल्क कहा गया हैं।

3—आतिथ्य— विदेशो से आयातित वस्तुओ पर लगाई गई चुंगी को आतिथ्य शुल्क कहते है।

उक्त तीनो प्रकार के शुल्क को भागो मे विभक्त पर किया गया है ।

निश्क्राम्य— अपने राज्य से बाहर जाने वाली वस्तुओं पर लगाई गई चुंगी 'निश्क्राम्य शुल्क' कहा जाता है।

प्रवेश— देश के भीतर आने वाली सामाग्री पर लगाये गये कर को 'प्रवेश शुल्क' कहा जाता है।

कौटिल्य ने उक्त प्रकार के शुल्कों के माध्यम से प्राप्त राजस्व को निम्नांकित वर्गो में निरूपित किया है।

1— बाहर से आने वाले पदार्थों पर उनके मूल्य का 1/5 वां भाग शुल्क लिया जावे,

2— फल, फूल, शक, मछली, मांस, आदि का 1/6,

3— सण की सामग्री सूत के रेशे से निर्मित वस्त्र, सुरमा, पारा आदि का 1/5 से 1/19,

4— हांथी दांत का 1/2 एवं

5— चमड़ा, धातु, धान्य, चावल, तेल आदि पर 1/20 से 1/25,

कौटिल्य के अनुसार ''द्धारदेयं शुल्क पंचभागम् आनुगाहिकं व यथा देशोषकार स्थापयेत'' अर्थात सब प्रकार की चुंगी और द्धार आदि के टैक्स को इस प्रकार से नियुक्त किया जाये, जिससे कि अपने देश का सदैव उपकार होता रहा।[106] विभिन्न करो के अतिरिक्त विशेष परिस्थितियों में राजा जनता के करों को माफ कर सकता था यदि कोई व्यक्ति जन सुधार के कार्य कर वा रहा है तो उसको पांच वर्षो के लिए कर माफ कर दिया जाता था।

संकट काल में राजा कुछ विशेष कर लगाकर कर वसूल सकता था और धन प्राप्त कर सकता था।

1— राज्य के जिन भागों में पर्याप्त वर्षा होती थी और जहां अन्न पर्याप्त मात्रा में उत्पादित होता था उनसे राजा अन्न का एक तिहाई या एक चौथाई भाग मांग सकता था।

2— उत्पादित अनाज में से बीज व अन्य आवश्यकताओं को छोडकर अवधि अनाज को खरीदा जा सकता था।

3– समाहर्ता किसानों के समझाकर ग्रीष्म ऋतु में फसल कटवा सकता था।
4– व्यापारियों से संकट का सामना करने हेतु धन मांगा जा सकता था।
5– पशु रखने वालों से उनके पशुओं की आधी आय राज्य को देने के लिए कहा जा सकता था।
6– धन एकत्रित करने के लिए गुप्तचरों की सहायता ली जा सकती थी।
7– धार्मिक संस्थाओं के अध्यक्ष धन–संग्रह में राज्य की सहायता कर सकते थे।

संकट–काल में राजकोष में उक्त प्रकार से वृद्धि के प्रयास के साथ ही राज्य की स्थित ऐसी होनी चाहिए कि प्रजा सदैव राज्य का सहयोग करने को तत्पर रहे।[107]

मौर्यकाल में जो धन राजस्व से उपलब्ध होता था वह राजा के व्यक्तिगत व्यय कर्मचारियों का बेतन सेना का व्यय उद्योगों पर व्यय पेन्सन पर व्यय सार्वजनिक कार्यो पर व्यय अस्पताल विद्यालयों के निर्माण पर व्यय अनुदान और सामाजिक कार्यो में व्यय होता था। धन का दुर्पयोग जरा भी नही होता था प्रशासनिक दृष्टि से और करो की दृष्टि से मौर्य काल सर्वोत्तम था इस समय कोई ऐसे कार्य नही किये जाते थे जिसमें धन का अपव्यय हो या दुर्पयोग हो।

बुन्देलखण्ड में गुप्त कालीन कर प्रणाली– गुप्त काल में भू–राजस्व आय का प्रमुख स्रोत था इसका निर्धारण कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार होता था।[108] इस समय भूमि निर्विवाद रूप से राजा के स्वामित्व थी इसलिए राजा भूमि पर कर लगा सकता था गुप्त काल में यह परम्परा जारी रही और राजा भूमि से राजस्व प्राप्त करता रहा।[109] भूमि की विक्री करते समय राजाज्ञा लेना आवश्यक था इस समय दो प्रकार के कर भूमि पर लगाये जाते थे तथा इसे भूकर के नाम से पुकारा जाता था। ये इस प्रकार थे–

1– सित–राज्य अधिकृत भूमि का उत्पादन और 2– भाग– वैयक्ति अधिकार वाली भूमि के उत्पादन का अंश गुप्त काल में सित नामक किसी राजस्व की चर्चा नही पायी जाती है। हाँ गुप्तों के सामन्तो के अभिलेखों में भाग का उल्लेख एक अन्य शब्द भोग के साथ मिलता है।[110] भाग–भोग को संयुक्त रूप से एक मानकर फ्लीट ने उनका अर्थ "भाग अथवा अंश का उपभोग।[111] किया है और वे इसका तात्पर्य कर का उपभोग मानते है।[112] ऊपर यह उल्लेख किया जा चुका है कि कौटिल्य के समय में भाग भू–कर के रूप में प्रचलित था।[113] स्मृतियों में भी भाग और उसका समानार्थी अंश

का उल्लेख भूकर के ही रूप में हुआ है।[114] शुक्रनीति के अनुसार भी भाग राज्य को प्राप्त होने वाले राजस्व के नौ साधनों में से एक था।

भूराजस्व के अतिरिक्त आय का प्रमुख स्रोत चुंगी कर था जो नगर में आने –जाने वाली वस्तुओं पर लगाया जाता था किसी–किसी स्थान पर भूतोपात्तप्रत्याय कर भी लगाया जाता था यह कर जमीन में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं पर लगता था।[115] इसके अतिरिक्त व्यापारिक वस्तुओं चारागाहो बनो तथा नमक पर कर लगाया जाता था कर कामन्द के नीतिसार के अनुसार लगता था।

आददीत धनं तेभ्यो भास्वानस्त्रैरिवोदकम।
यथा गौः पाल्यते काले दुह्यते च तथा प्रजा।
सिच्यते चीयते चैव लतापुश्पफलार्थिनः ।।[116]

बुन्देलखण्ड में हर्श वर्धन कालीन कर प्रणाली– हर्श बर्धन कालीन अनेक ताम्रपत्र उपलब्ध हुए है इनमें तीन करो का उल्लेख मिलता है कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव के अनुसार, भाग, हिरण्य तथा बालि प्रथम अर्थात भाग भूमिकर था। यह राज्य की आय का प्रधान साधन था तथा कृषको से उनकी उपज का छठाँ भाग लिया जाता था। हिरण्यकर नकद लिया जाता था जिसे सम्भवतः व्यापारी देते थें। बालिकर के विषय में कुछ भी ज्ञात नही है सम्भव है यह एक प्रकार का धार्मिक कर रहा हो। व्यापारिक मार्गो, घाटो, बिक्री की वस्तुओं आदि पर भी कर लगाते थे। जिससे राज्य को पर्याप्त धन प्राप्त होता था।[117] प्राचीन काल में निम्नप्रकार के करो की व्यवस्था थी, भूमिकर, खानों पर कर, वाणिज्य कर एवं उद्योगों से प्राप्त कर, क्रय –विक्रय कर, उत्पादन कर, आयात एवं निर्यात कर, प्रत्यक्ष कर, राज्य द्वारा अधिकृत व्यवसाय, अर्थदण्ड के रूप में आय, आपात–काल में अतिरिक्त, इन करों के अतिरिक्त राजाओं को जुर्बाने के रूप में और भेट के रूप में भी धन उपलब्ध होता था युद्ध में विजय प्राप्त करने पर विजेयता पराजित पक्ष से हरजाना वसूल करता था।[118]

गुर्जर प्रतिहार कालीन कर प्रणाली– पश्चिमी बुन्देलखण्ड में गुर्जर प्रतिहारों का असितित्व था इनकी कर प्रणाली स्मृति और पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार थी इस सन्दर्भ में एक दान पत्र भी उपलब्ध हुआ है जिसमें करों का वर्णन हैं।[119] समकालीन अभिलेखों में राजकीय आय के रूप में अनेक प्रकार के करों की जानकारी प्राप्त होती है। उनमें प्रायः निम्न लिखित के अभिलेखक उल्लेख प्राप्त होते हैं।

उद्रंग, भाग अथवा दानी– इनमें से प्रथम दो भूमि पर लगाये

जाने वाले नियमित कर थे, जो किसी भी प्रकार की खेती पर उपज के 1/6 के रूप में लिये जाते थे सम्भावतः इन्हे ही कही–कही धान्य की संज्ञा दी गयी है। दानी सम्भवतः नगद लिये जाने वाले उसी कर की संज्ञा है।

हिरण्य– नगदी दिया जाने वाला भूमि कर।

भोग– राजा को परम्परा वस्तुओं के रूप में–फल, दूध, दही, घी, शाक–सब्जी,

ओढ़न– बिछावन आदि के रूप में दिया जाने वाला कर।

दान– मण्डपिका द्वारा वसूल किया जाने वाला शुल्क।

दण्ड– अदालतों में अपराधियों पर लगाये जाने वाले अर्थदण्ड।

इन दण्डों में दशा–अपराध अथवा दशापचार (दस प्रकार के अपराधों पर लगाये जाने –वाले) अर्थदण्ड सम्मिलित थे।[120] कभी–कभी ऐसा भी होता था जो व्यक्ति कर देने योग्य नही होता था उनसे शारीरिक श्रम या बेगार कर के रूप में ली जाती थी इसके अतिरिक्त अन्य कर भी थे जिनसे राज्य को आय होती थी इनमें स्कन्धक, मार्गणक, और अभाव्यों अदि कर थे जो नागरिको से वसूले जाते थे इसके अतिरिक्त भी खलभिक्षा आदि अलग–अलग प्रकार के कर थे एक प्रकार का कर चोल्लक भी था इसके अतिरिक्त भी बेडी वैगिक कोश्य, मयुत, आदि कर लिये जाते थे। डॉ0 विशुद्धानन्द पाठक के अनुसार दुर्भाग्यवश राजस्व प्रशासन के सम्बन्ध में इस युग के बारे में कुछ और विशेष जानकारियां नही प्राप्त होती। यह ज्ञात नही है कि राज्य की आय का खर्च किस प्रकार किन–किन कार्यो के सम्पादन में किया जाता था। किन्तु यह निश्चित है कि नागरिक और सैनिक प्रशासन में लगे हुए कर्मचारियों–अधिकारियों के बेंतन सहित अन्य व्ययों में उसका अधिकांश भाग लगाया जाता था। मन्दिरों तीर्थों और महलों के निर्माण व्यय और विद्वानों को आश्रय भी उसी से प्राप्त थे।[121]

बुन्देलखण्ड में चन्देल कालीन कर प्रणाली–

चन्देलकालीन कर व्यवस्था शुक्र नीति के अनुसार थी कर वसूलने का प्रधान कर्मचारी महाअक्ष पाटलिक कहलाता था। इसके आधीन कई वित्तविभाग होते थे। इसे कोशाध्यक्ष और 'वित्ताथिप' भी कहते थे।[122] यह अधिकारी व्यक्ति की आर्थिक स्थित भूमि उधोग; कार्य; क्षमता; माल का अवागमन आदि को ध्यान मे रखकर कर का निर्धारण किया करता था। किसी के साथ अनीत नही होने देता था।

केशवचन्द्र के अनुसार आय के साधन विविध थे। जलाशय परती; भूमि; पत्थर; पहाड; नदियां; बन; आम; और महुये के वृक्ष;खनिज; नमक आदि सभी उत्तम

आय के साधन थें।और इन पर राजकीय प्रभुसत्ता स्थापित थी। परन्तु प्रमुख एवं प्रभावकारी आपका माध्यम भूमि थी करो के लिए जिन शब्दो का सामान्यतया प्रयोग हुआ वे है भाग–भोग कर और हिरण्य। भूमिकर परम्परा–विहित क्रम से ही लिया जाता था उपज का छठा भाग जो अधिकतर अन्न, तेल ईंधन के रुप मे ही राजकोष मे संग्रह होता था।स्थान–स्थान पर राज्य की विशाल खत्तिया या कोठिया होती थी जहां भूमिकर मे मिले अन्य आदि का संचय किया जाता था।[123] कर वसूलने के लिये और खत्तियो की देखभाल करने के लिए अनेक अधिकारी रहते थे। इन्हे कोष्ठागाराध्यक्ष कहते थे इस समय भूमि की पैमाइस होती थी इसका उल्लेख मदनवर्मा के दान पत्र मे उपलब्ध होता है।[124]

इसके अतिरिक्त जलाशय गढ्ढे न जोतने योग्य भूमि पशुचारा गाह कर से मुक्त थे। सन 1116 के परमार्दिदेव के एक अभिलेख से यह पता लगता है कि गन्ना, कपास, सनई आम और महुये मे किसी प्रकार का कर नही लगता था।[125] पशुपालन इस समय प्रमुख उद्योग था इस उद्योग पर 6से18 प्रतिशत तक कर लिया जाता था। कर का दूसरा साधन खनिज सम्पदा थीं पत्थर, लोहा, जवाहरात, एंव नमक सरकारी सम्पति थी इनकी खुदाई का काम ठेकेदारो से कराया जाता था। इन पर सोने और हीरो पर 50 प्रतिशत चांदी और ताबें पर 33 प्रतिशत अन्य धातुओ पर 16 से 25 प्रतिशत कर दिया जाता था कारीगरो को महीने मे दो दिन सरकार के यहाँ निशुल्क कार्य करना पडता था।[126]

चन्देल काल मे वन और पर्वत आय के प्रमुख स्रोत थे इनकी देखरेख के लिये एक उप विभाग था जिसके अधिकारी को तारिख कहा जाता था इनके अधीनस्थ कर्मचारी को 'चाट कहा जाता था एक अन्याधिकारी जो भूमि और वनस्पतियो से कर वसूलता था षष्ठाधिकृत कहा जाता था ।[127]

राज्य की प्रमुख आय का स्रोत चुंगी कर के अतिरिक्त निम्न कर थे, सोद्वेग, सोपरिकर, सदशापराध, सभतवाट–प्रत्याय, सोत्पद्यमानविष्टिक, साधन्यहिरण्योदक शिक्के के रूप में जोडकर लिए जाते थे उन्हें हिरण कहते थे। यह कर उत्पादित वस्तुओ के क्रय विक्रय और लाभ पर लगता था ।नगरो और बडी ग्रामीण बाजारो के बाहरी भागो पर इसके निमित्त मंडपिक (चुंगी घर)बने थे । यहाँ लाभ का लगभग पचासवाँ भाग लिया जाता था सरकार जो पचासवाँ भाग लेती थी उसके अलावा सार्वजनिक हितो तथा दान खातो के लिये अन्य छोटे–छोटे कर लगते थे । इसी प्रकार क्रय द्रव्यो पर भी शुल्क लिया जाता था । प्रत्येक विषय और मण्डल मे एक महत्व का

कर्मचारी शौल्किक रहता था इन विस्व्रत व्यवस्थाओ का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि अर्थविभाग प्रबन्ध उत्तमोत्तम था न्यायालय मे अर्थदण्ड भी सजा देने का एक ग्रहीत माध्यम था ।इस प्रकार से प्राप्त सम्पत्ति राजकीय कोश की नियमित आय थी।[128]

आय का एक अन्य शाधन युद्व से जीती हुयी सम्पत्ति भी थी इसके अतिरिक्त जो राज्य और सामन्त इनके आधीन कार्य करते थे वे उन्हे भेंट और उपहार दिया करते थे। मुद्रा अस्त्र–शस्त्र के निर्माण मे राज्य का एकाधिकार था चन्देल शासको को अगणित सखंया मे प्राप्त सभी अभिलेख इस बातको घेषित करते है कि चन्देलो ने कभी भी प्रजापर अनुचित एंव अप्रिय कर नही लगाए। कर के संग्रह मे भी कभी कठोरता नही बरती जाती थी।उनमे इस बात की सदभावना सर्वदा बनी रही कि केवल उचित कर ही लगाए जाएँ।[129]

बुन्देलखण्ड मे तुर्ककालीन कर प्रणाली– बुन्देलखण्ड मे तुर्को की कर प्रणाली गजनवियो के अनुसार थी इनके ग्रन्थ सरा मे जो राजस्व के साधन बताये गये है। वे निम्नलिखित है। 1– उश्र 2–खराज 3–खाम्स 4–जकात और 5– जजिया। इनके अतिरिक्त आय के कई अन्य साधन भी थे जैसे खानो से आय भूमि मे गडा हुआ धन निस्सान्तान लोगो की सम्पत्ति, बहिः शुल्क आबकारी–कर इत्यादि। उश्र भूमि–कर था और मुसलमान भूमि धारो की उस भूमि पर लगाया जाता था जिसकी सिचाई प्राकृतिक साधनों से होती थी। यह उपज के 1/10 की दर से वसूल किया जाता था। खराज भी भूमि–कर था जो गैर–मुसलमानों की भूमि पर लगाया जाता था। इस्लामी कानून के अनुसार इसकी दर 1/10 से 1/2 तक होती थी। खाम्स उस लूट के धन के 1/5 को कहते थे जो काफिरों के विरूद्ध युद्ध में प्राप्त होता था उसका 4/5 सेना में बांट दिया जाता था। जकात धार्मिक कर था जो केवल मुसलमानों से वसूल किया जाता था। यह कर कुछ निश्चित मूल्य से अधिक की सम्पत्ति पर ही लगता था। सम्पत्ति का वह भाग जो इससे मुक्त था, निसाब कहलाता थां इसकी दर $2^{1}/2$ प्रतिशत थी।[130]

कुछ अन्य कर भी लगाये जाते थे यह कर आयात–निर्यात मकानों चारागाहों तथा पानी के प्रयोग से कर वसूल किये जाते थे जिसका कोई उत्तराधिकारी न होता था उसकी सम्पत्ति राज्य की हो जाती थी।

भू–राजस्व– दिल्ली सल्तनत के आदेशानुसार बुन्देलखण्ड की आय का सबसे महत्वपूर्ण साधन भू–राजस्व था और युद्ध में प्राप्त लूट के धन के बाद

उसी का स्थान था। राजस्व–शासन की दृष्टि से भूमि के चार मुख्य वर्ग थे–1– खालसा भूमि 2– क्लोम–विभक्त, भूमि, जो मुखियो को कुछ निश्चित वर्षो अथवा जीवन भर के लिए दे दी जाती थी, 3– हिन्दू सामन्तों के राज्य जिन्होंने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली थी और 4– मुसलमान विद्वान तथा सन्तों को इनाम अथवा मिल्क अथवा वक्त के रूप मे दी गयी भूमि। खालासा भूमि का केन्द्रीय सरकार द्वारा होता किन्तु किसान से सीधा प्रबन्ध सीधा नही बल्कि चौधरी मुकदमा आदि स्थानीय राजस्व पदाधिकारियों द्वारा भूमि कर वसूल करती थीं। उपर्यक्त पदाधिकारी किसानों से लगान वसूल करते थे और प्रत्येंक उपक्षेत्र में (सम्भवतः, शिक में) आमिल नाम का एक पदाधिकारी रहता था। जो इनसे राजस्व इकट्ठा करके राजकोश में जमा करता था। राजस्व की दर वास्तविक उपज के आधार पर सावधानी से हिसाब लगाकर नही, बल्कि अनुमान से ही निश्चित कर दी जाती थी।[131] अलाउद्दीन खिलजी ने राजस्व प्रणाली पर कुछ परिवर्तन किया था जिसका उद्देश्य राज्य की आय में वृद्धि करना और व्यक्तियों की आर्थिक तंगी बनायें रखना था उसमें अमीरों के स्वामित्व निशुल्क भेट को दी गयी थी भूमि पर अधिकार कर लिया मकानों और चारागाहों पर कर लगने लगा जबकि उसके उत्तराधिकारी ने राजस्व वसूली की कठोर प्रणाली को समाप्त कर दिया किन्तु कुछ कर ज्यों के त्यों रहे फिरोज तुगलक ने करों का कुछ परिवर्तन किया जिसका विरोध हुआ जब सत्ता लोदी वंश के हांथ में आई उस समय सरकारी भूमि अफगान परिवार के हांथ में बांट दी सुल्तानों ने नहरों तालाबों और कुओं से सिंचाई करने वालों पर कर लगाया पहले भूमि उपज का 1/4 भाग कर के रूप में लिया जाता था बाद में इसे बढ़ाकर 1/2 कर दिया गया इस समय जो कर वसूल होता था उसे राजकोष में जमा किया जाता था। किन्तु इस समय भृष्टाचार बढ़ गया था इसलिए राजस्व पदाधिकारी सूबेदार मन्त्री उस रकम को हडप देते थे किसानों का शोषण करो के माध्यम से किया जाता था तथा कर का कोई निश्चित निर्धारण नही था।

बुन्देलखण्ड में मुगल कालीन कर प्रणाली– सम्राट अकबर के जमाने में टोडरमल तथा मुजफ्फर खाँ जैसे अर्थशास्त्री रहा करते थे अकबर की सम्पूर्ण कर व्यवस्था इन्ही व्यक्तियों के प्रयासों से निर्धारित की गयी थी अकबर स्लामधर्म के करारोपण सिद्धान्त पर विश्वास नही करता था स्लाम के अनुसार खराज, खम्स, जकात, और जजिया चार प्रकार के कर थे जिनमे अन्तिम दो धार्मिक कर थे अकबर बादशाह ने उपरोक्त कर सिद्धान्त

में परिवर्तन किया अबुल फजल के अनुसार जानना पडता है। 'कर' सिद्धान्त का निरूपण करते हुए अबुल फजल ने लिखा है कि ''जनता की जान–माल, इज्जत–आबरू तथा आजादी की रक्षा के लिए एक न्याय प्रिय राजा का होना आवश्यक है और उसकी इन सेवाओं के लिए जनता को उसे धन भी देना आवश्यक है। देश–देश की जमीन में फर्क होने के कारण प्रत्येंक राजा के शासन–तन्त्र को इन बातों को ध्यान में रखना चाहिए और तदनुकूल ही कर लगने चाहिए''।[132] अकबर की कर व्यवस्था भारतीय कर नीति के अनुसार थी दो प्रकार के कर लगाये जाते थे– 1– केन्द्रीय कर 2– स्थानीय कर था केन्द्रीय कर और उससे उपलब्ध आय व्यापार टक्साल, उपहारों उत्तराधिकारों नमक चुंगी तथा जमीन पर कर लगा कर वसूली जाती थीं भू–कर से सर्वाधिक लाभ होता था जजिया कर पूरी तरह समाप्त कर दिया गया था। सरकार बारूद सीसा और सोडा का व्यापार करती थी इासे भी सरकार को आय होती थी विदेशी यात्रियों सामन्तों से भी सम्राट को उपहार उपलब्ध होते थे। यदि किसी की सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी नही होता था वह सम्पत्ति सरकार की हो जाती थी।

सर्वाधिक आय राज्य को भू–राजस्व से उपलब्ध होती थी भूमि की पैदावार के आधार पर भूमि कर लगाया जाता था भूमि कर पहले अनाज के रूप में वसूला जाता था बाद में उसे नकदी में बदला जा सका भूमि कर वसूलने के लिए भूमि को निम्न श्रेणी में विभाजित किया गया था। 1– पोजल भूमि, प्रथम श्रेणी भूमि के अन्तर्गत आती थी और इस पर सदैव कास्त होती थी। 2– परौती भूमि भी लगभग सदैव ही कास्त करने योग्य थी, लेकिन पुनः उर्वराशक्ति को प्राप्त करने के लिए एक–दो वर्ष के लिए यह खाली पडी रहती थी। 3– छच्छर भूमि पर तीन अथवा चार वर्ष के लिए कास्त नही होती थी 4– बंजर भूमि पाँच वर्ष अथवा और अधिक समय तक बिना कास्त के छोड दी जाती। उपर्यक्त पहली तीन प्रकार की प्रत्येक भूमि तीन श्रेणियों में और विभक्त की जाती थी और इन तीनों श्रेणियों की भूमि की औसत पैदावार निकाली जाती थी, जो प्रत्येक प्रकार की भूमि की स्टैण्डर्ड पैदावार समझी और मानी जाती थी। तीसरें: पिछले दस वर्षो की पैदावार के आधार पर प्रत्येक फसल की प्रति बीघा पैदावार का औसत निकाला जाता था। सरकार औसत पैदावार का एक–तिहाई वसूल करती थी।[133] मुगल काल में कास्त कारों पर कर लगाया जाता था ऐसा प्रतीत होता है कि औसत पैदावार के आधार पर यह कर लगाया जाता था। प्रत्येक कास्तकार के नाम भूमि का पट्टा भी किया जाता था जब प्राकृतिक आपदा में पैदावार

नही होती थी उस समय कर माफ कर दिया जाता था।

बुन्देलखण्ड में बुन्देले शासको की कर प्रणाली–

बुन्देले शासकों के आय का प्रमुख स्रोत भूमि की मालगुजारी थी यह माल गुजारी प्रथा भारतीय कर विधान के अतिरिक्त तुर्कों और मुगलों के कर विधान से मेल खाती थी यह इस प्रकार थी–

1– कनकूति और 2– ठेका पर निर्धारित थी। इसमें रबी फसल को पंचों द्वारा कूत अथवा निश्चित रकम ठेका, म्यादी देने की प्रथा थी। प्रत्यके गाँव में पटवारी और गाँव के मुखियां पटेल या जिमीदार जमीन सम्बन्धी मामलों को निपटाने को नियत थे। फसल का मूल्यांकन पटवारी व जिमीदार द्वारा पंचों द्वारा कराते थे। फसल का चौथा अथवा छटवां भाग राज्य को मालगुजारी के रूप में दिया जाता था शेष किसान के लिए छोड़ दिया जाता था पटवारियों के ऊपर कानूनगों और उनके ऊपर निरीक्षक तहसीलदार लोग परगनों में होते थे।[134] प्रत्येक परगने में एक लेखक (मुसद्दी) और एक फौजदार रखा जाता था।

मालगुजारी के अतिरिक्त बुन्देली शा7सन के आय का एक अन्य स्रोत हीरा की खानों और खनिज सम्पदा से भी था अनेक द्रव्य और लूट पाट का समान उन्हे सदैव उपलब्ध होता रहता था। वह दुश्मन के राज्यों से भी कर वसूलते थे। कभी–कभी अपने सीमा प्रान्तों के राजा रहीस सूबेदारों जागीरदारों से उस समय की प्रथा के अनुसार चौथ भी वसूल करते थे। चारों ओर आतंक जमाने के विचार से उनकी सैनिक टुकडियां इन कामों में अधिक उपयोगी।[135]

बुन्देलखण्ड मे गौंड़ शासको की कर प्रणाली– गौंड वंशीय राजाओं के आय के स्रोत के सन्दर्भ में कोई विशेष एतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नही होते जहां गौंड़ो का राज्य रहा है वहां विविध प्रकार की खनिज सम्पदा उपलब्ध होती है। इस खनिज सम्पदा में इमारती पत्थर तथा अनेक प्रकार की धातुयें शामिल थी। जिनसे राज्य को पर्याप्त धन उपलब्ध हो जाता था खजिन सम्पदा पर व्यापक कर लगाने का विधान था इसके अतिरिक्त यहाँ वन सम्पदा भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती थी जिसका उल्लेख विविध ग्रन्थों में मिलता है। वेत, धन्वन (इन्द्र जौ) बीजक और अनार के वृक्ष बहुत मात्रा में होते थे। महाभारत,[136] में भी बेतवा नदी के दोनो तटो पर बेंतो के जंगल होने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त यहाँ अशोक, चम्पा, आम, अतिमुक्तक (माधवीलता), पन्नाग, (नागकेसर) कनरे, मौलसिरी, दिव्यपाटल नारियल, चन्दन तथा अर्जुननादि वृक्षो के गहनवन थे। बाण [137] ने समस्त

विन्ध्याभूमि को वेतो से युक्त बताया है विन्ध्यवाटी की वनस्पति का रोचक वर्णन करते हुये बाणभटट ने अनेक वृक्ष लताओ मे कर्णिकार, चम्पक, नमेरू, सल्यकी (नलद), नारिकेल, नागकेसर,(हरिकेसर) सरल, कुर्वक, रक्ताशोक, वकुल, केसर, तिलक, हींग, सुपारी, प्रियंगु, मुचुकुन्द, तमाल, देवदारू, नागवल्ली,(तांबूली),जामुन, मम्भीरी, नीबू (जंबीर) धूलि –कदम्ब [138] (ग्रीशम में फूलने वाला विषेश प्रकार का कदम्ब), कुटज, पीलु, सीतफल, (सदाफल), कटफल (कटहल), शेफलिका, लवलीवता, लकुच (बडहर), जायफल (जातिफल), आदि की चर्चा की है ।[139] इसी प्रकार कालिदास,[140] ने दशार्ण देश में जम्बू (जामुन)के बनो का वर्णन किया है उपरोक्त वस्तुए खनिज और वन सम्पदा के रूप में अति प्राचीन काल से गौड राज्य मे उपलब्ध होती रही है जो आय का प्रमुख स्रोत थी।

इन वस्तुओं के अतिरिक्त कृषि और व्यापार से भी शासन को लाभ होता रहा है जहाँ कृषि योग्य भूमि थी वहाँ उपज का 1/4 अथवा 1/6 कर के रूप मे लिया जाता था इसी प्रकार बाजार और हाट मे जो भी वस्तुये बिकी के लिये आती थी उन पर भी कर लगाया जाता था इससे राज्य को अच्छी आय हो जाती थी ।

जंगली एवं पालतू पशुओं उनके चर्म अस्थि और उनसे निर्मित वस्तुओ को भी राज्य को पर्याप्त आय होती थी गोंड राज्य की अपनी मुद्रा व्यवस्था भी थी ये मुद्राये व्यापार और लेन–देन की प्रमुख संसाधन थी मुख्य रूप से स्वर्ण रजत और ताबें के सिक्के प्रयोग मे लाये जाते थे गोंड राज्य से पूर्व इस क्षेत्र मे कल्चुरियों का राज्य था कल्चुरियों की कर प्रणाली भी गौड राज्य में भी प्रचलित रही कलचुरि अभिलेख न केवल बाजारो का अपितु विक्रयार्थ आई वस्तुओ का अधिक स्पष्टता से उल्लेख करते है। नगरो और ग्रामो मे बिकी के लिये 'मण्डपिका' होती थी । विक्रयार्थ आई वस्तुयें पहले वहाँ ले जाई जाती थी । वहाँ पर उनका मुल्यांकन होने पर बिकी कर निर्धारित किया जाता था । बिलहरी अभिलेख [141] से ज्ञात होता है कि नमक की प्रत्येक खण्डिका पर एक शोडशिका, प्रत्येक कोल्हु पर एक षोडशिका मासिक, सुपाडी, सूखी मिर्च, सोठ और वस्तुओ पर एक पौर प्रत्येक दुकान पर एक कपर्दी
और सब्जियो तथा बैगनो पर द्यूतकपर्द कर रूप मे लिये जाते थे । रस विकेताओं से घास के पूले धीमर(मछलियों की टोकरी)या जो कुछ भी सम्भव हो लेने की व्यवस्था थी विकयार्थ आये हाथियों और घोडो पर क्रमशः प्रत्येक पर चार और दो पौर (पूले)लिए जाते थे उक्त अभिलेख[142] से यह भी ज्ञात

होता है कि जिस प्रकार आजकल नगरपालिकाओं की ओर से ठेलो या छोटी दुकानो से प्रतिदिन कुछ पैसे कर के रूप में लिए जाते है उसी प्रकार कल्चुरियुगीन बाजार में वस्तुएं बेचने के लिए युगा नामक एक परिचयपत्र दिया जाता था।

किसी भी राज्य का शासन चलाने के लिए संसाधन अथावा धन प्रमुख अंग होता है क्योंकि राज्य में राजा के व्यक्तिगत व्यय के अतिरिक्त उसका प्रशानिक व्यय बहुत अधिक होता है उसे राज्य कर्मचारियो का वेतन देना होता है। बाहरी शत्रुओ से रक्षा के लिए संगठित सेना का एक दल रखना होता है उसके लिए अस्त्र-शस्त्र रसद की व्यवस्था करनी होती है आन्तिरिक विद्रोह को दबाने के लिए और बाहरी शत्रुओं से रक्षा करने के लिएा सेना की प्रमुख भूमिका होती है उस पर भी राज्य पर्याप्त धन व्यय करता है।

कभी-कभी प्रशासक अथवा राजा प्राकृतिक आपदाओं के समय जनकल्याण के कार्यो मे धन व्यय करता है। वह धन भी उसे करों के माध्यम से प्राप्त होता है दुर्गो का निर्माण आवासीय भवनों का निर्माण जलाशयों का निर्माण और धार्मिक स्थलो का निर्माण भी कभी- कभी शासक वर्ग को कराना होता है। वह धन भी शासक को कर के माध्यम से उपलब्ध होता है शासक को कर देने वाले व्यक्ति कृषक व्यापारी और उदमी हुआ करते है खनिज सम्पदा भी राजकीय आय का बहुत बडा स्रोत रही है।

बुन्देलखण्ड की प्रशासनिक सुरक्षा व्यवस्था- कोई भी व्यक्ति और समाज चाहे उसका असतित्व कही भी हो उसे अपने शरीर सम्मान और सम्मपत्ति को सुरक्षित रखने की अवश्यकता पडती है। जब वह इनकी सुरक्षा स्वतः नही कर पाता तो उसे समूह की अवष्यकता पडती है मनुश्य का शरीर जिसे वह अपनी माँ से प्राप्त करता है सर्वाधिक सुरक्षा उसी की करनी पडती है। बालक पन मे इस शरीर की सुरक्षा माता पिता करते है परिवार के लोग करते है युवा वस्था में व्यक्ति स्वालम्बी होकर स्वतः अपने शरीर की सुरक्षा करता है इस शरीर की सुरक्षा के लिये उसे भोजन वस्त्र और आवास की अवशयकता होती है जिसे वह अपने संसाधन बाहुबल और बुद्वि से प्राप्त करता है जो व्यक्ति उसके आश्रित होते है मुख्य रूप से स्त्री और बालक वह उनकी भी रक्षा करता है उसका यह शरीर बुद्वि ससंाधन आवश्यक वस्तुओ की आपूर्ति और श्रम के माध्यम से होती है वह वास्तव मे पराश्रित होता है उसे दूसरों का सहारा देना पडता है और दूसरों से सहारा लेना पडता है।

व्यक्ति जब समूह मे रहने लगा उसमे अपनी बुद्धि और योग्यता के

अनुसार अपने –अपने कार्य बाट लिये जो व्यक्ति बुद्दि का धनी था और अनुभवी था उसने बुद्दि और अनुभव के आधार पर अपने लिये बौद्दि कार्य चुना जो लोग बाहुबली थे और जिनका शरीर स्वस्थ एवं ताकत वर था उन्होने अपने उपर समूह की सुरक्षा का भार ग्रहण किया। इनमें कुछ लोग राजा व सामन्त कहलाते और कुछ लोग सेनापति और सैनिक कहलाये।ये लोग मानव समाज की जंगली पशुओ से रक्षा करते थे। अन्दर के विद्रोह को दबाते थे और शत्रुओं से रक्षा करते थे समाज का तीसरा वर्ग था जो आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति किया करता था मुख्य रूप से भोजन सामग्री भवन निर्माण सामग्री वस्त्र –तथा अस्त्र– शास्त्रों की आपूर्ति यही वर्ण किया करता था। एक अन्य वर्ग भी था। जों श्रमिक वर्ग के नाम से विरूयात था। यह एक समान को दूसरे स्थान पर ले जाना तथा अन्य वस्तुओं के निर्माण में शारीरिक श्रम से सहयोग प्रदान किया करता था समाज का यह संगठन प्राकृतिक नियमों पर आधारित था। तथा यह वर्ग अपने आप उत्पन्न हुआ था। जिसे बाद में ब्रह्मकृत की संज्ञा दी गयी।

हर एक ब्यक्ति के हृदय में महत्वाकांक्षा का उदय होता है इस महत्वाकांक्षा के वशी भूत होकर वह अपनी शक्ति और संसाधन बढ़ाने की बात सोचता है और उसकी आपूर्ति के लिए संसाधन शक्ति और बुद्धि का सहारा लेता है कभी–कभी इन महत्वा कांक्षाओं को पूरा करने में गतिरोध और ब्यवधान उत्पन्न होते है जब स्वार्थ और अहम के कारण महत्वाकाक्षायें पूरी नही होती उस समय संघर्ष जन्म लेता है और संघर्ष करना व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का प्रश्न बन जाता हैं व्यक्ति यह संघर्ष अकेले या समूह के माध्यम से करता है। जो समूह या व्यक्ति उसके लिये संघर्ष करते हैं वे सेनापति अथवा सैनिक होते है ये अपने नायक अथवा राजा के महत्वाकाँक्षा के पूरा करने के लिए संघर्ष करते हैं इस संघर्ष में शक्तिशाली व्यक्ति जीतता हैं और कमजोर व्यक्ति पराजित होता है। जब दो व्यक्तियों की शक्तियाँ समान होती है तो उनके मध्य में समझौता भी होता है यह समझौता कई शर्तो का होता हैं जिसे सन्धि का नाम दिया जाता है।

संघर्ष और आत्म रक्षा के लिये अस्त्र–शस्त्रों की आवश्यकता पढ़ती हैं प्रारम्भिक अस्त्र–शस्त्र के रूप में व्यक्ति पत्थर के टुकड़ो लकड़ी के डंडो और तन्तुओं का प्रयोग किया करता था जब धातुओं का प्रयोग होने लगा उस समय फर्शा, कुल्हाड़ी, भाला, तलवार, एक, और धनुष वाण, का प्रयोग होने लगा तथा इन्हीं के माध्यम से युद्ध अथवा सैन्यकला का विकास हुआ कालान्तर में यह विकास अग्नेय अस्त्रों के रूप में हुआ।

राजा उसकी प्रजा और उसके सैनिको के लिए स्थान सुनिश्चित किये गये और उनका सीमांकन किया गया इन्हें पत्थरों की दीवालों से घेरा गया इनके अन्दर प्रवेश करने के लिए अनेक प्रवेश द्वारों का निर्माण किया गया कालान्तर में सुरक्षा की इस विधा को दुर्ग के नाम से पुकारा गया इन दुर्गों में राजा अथवा सामन्त उसकी सेना उसके विविध कर्म चारी और उसकी प्रजा निवास किया करती थी राजा को प्रशासनिक सलाह देने के लिए पुरोहित एक मन्त्रि मण्डल और सभा होती थी राजा को शक्ति सम्पन्न बनाये रखने के लिये सैन्य व्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

अनार्यों का सैन्य संगठन एवं सुरक्षा व्यवस्था—

बुन्देलखण्ड़ में अनेक आर्य जातियां निवास करती थी दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार प्रचीन अनार्य कुलों की कितनी ही असभ्य जंगली नंगी–धड़ंगी जातियाँ कौंदर,सौर आदि कई स्थलों पर इस समय भी मौजूद हैं जो इस भूभाग के सम्बन्ध में आर्यो से पहले का स्पष्ट पता दे रही है। द्रविड कुल में माने जाने वाले दक्षिणी ब्रह्मण तथा गौंड़,अथवा कोयत्तुर भी यहाँ हैं। नाग भी नर,वर आदि में होना कहे जाते हैं इसी प्रकार महिसासुर आदि के सम्बन्ध में भी यहाँ किबदंतियाँ हैं।

सभ्य ढ़ंग के किले, गढ़ी, मन्दिर, बैठकों आदि के सिवाय यहाँ अति प्राचीन भद्दे ढ़ंग के विशाल किले, आदि भग्नडौल भी सभ्यता से बहुत पहले का इतिहास प्रकट कर रहे हैं।[143] यहाँ के प्रचीन बडे–बडे पहाडी, किले, मनियागढ़, कालिंजर, मडफा, मैहर, आदि कदाचित इन्हीं कोल द्रविडों के हैं कदाचित इन कोल–द्रविडों में भी समय आ पडने पर, देवियों (द्रविड महिलाओं) ने मुख्यकर इसी भूभाग में अनार्यो के विरूद्ध विकट युद्ध किया थे। यहाँ देवियों शत्रुओं को अनुगागी बनाकर छोड दिया था [144]

अनार्यो के सैन्य संगठन के सन्दर्भ में अनेक पुराणो। में विवरण उपलब्ध होता है बाह्रय आक्रमण, आन्तिरिक सुरक्षा तथा अन्य राज्यों पर आकमण करने के लिए सुसंगठित थी सेना, के चार विभाग थे तथा इनके संयुक्त नाम चतुरंगिणी सेना का उल्लेख रामायण तथा महाभारत में मिलता हैं। पदाति (पैदल) अश्वारोही (धुडसवार) गजरोही (हाथी पर सवार) तथा रथी (रथ पर सवार) सैन्य संगठन के अंग थे। सेना के अनेक छोटे पदाधिकारी भी होते थे परन्तु मुख्य पदाधिकारी सेनापति तथा सर्वोच्च सैन्य संचालक स्वयं राजा होता था। युद्ध में अनेक प्रकार के व्यूह रचे जाते थे। महाभारत में अभिमन्यु को चक्रव्यूह मे घुसने का ज्ञाता बताया गया है परन्तु इससे बाहर निकले के तरीके से वह अनभिज्ञ था। युद्व के अनेक नियम थे। शस्त्रहीन

कवचहीन भयग्रस्त नपुंसक, अप्रशस्त तथा स्त्री पर शस्त्र प्रहारी करना या उससे युद्व करना नियम के विरुद्व तथा निन्दनीय था। सूर्यास्त के पश्चात युद्व बन्दी हो जाती थी तथा चिकित्सक बेरोक–टोक किसी भी युद्व रत दल मे घायलो की चिकित्सा तथा कुशल क्षेम के लिये जा सकता था।[145]

अग्निपुराण मे भी युद्व के सन्दर्भ में यह विवरण उपलब्ध होता है जब कोई आश्रित सामन्त पराजित कर दिया जाय तब उस राजा से बदला लेने के लिए युद्व की तैयारी करना चाहिए इसमे यह बात दृश्टव्य है कि सैनिको की संख्या अधिक हो सैनिक बलवान हो युद्व मे यदि वरसात का मौसम हो उस समय पैदल और हाथियो की संख्या अधिक हो, यदि युद्ध जाड़े में हो तो घोडों की संख्या अधिक हो और रथ अधिक हो, यदि युद्व वसन्त मे हो तो चतुरंगिणी सेना साथ मे ले जाय जिसमे पैदल सेना की संख्या अधिक हो।[146]

जब राजा युद्व के लिये प्रस्थान करे उस समय शुभ वा अशुभ लक्षणो का विचार करे जब कोई शत्रु राज्य के सातअ अगों पर विध्न डालने का प्रयत्न करे उस समय उसका विनास करना चाहिए। अपना मण्डल ही यहाँ सबसे पहला मंण्डल हैं। सामन्त नरेशो को ही उस मण्डल का शत्रु जानना चहिए। विजिगीशु राजा के सामने का सीतावर्ती सामन्त उसका शत्रु है। उस राज्य से जिसकी सीमा लगी है। वह उक्त शत्रु का शत्रु होने से विजिगीशु का मित्र है। इस प्रकार शत्रु, मित्र अतिरिक्त, मित्रमित्र तथा अरिमित्र मित्र–ये पाँच मण्डल के आगे रहने वाले है।[147] जब कोई नरेश जब कोई युद्ध के लिए जाय तो वह परमात्मा का ध्यान करे फिर धनुष बाण हाथ ले और हाथी आदि पर सवार होकर युद्ध के लिए जाय तब उसके पास सैनिकों की संख्या कम हो और शत्रुओं के सैनिक अधिक है उस समय वह सूची मुख व्यूह के अनुसार युद्ध में उसे नौ व्यूहों का सहारा लेना चहिए गरुडव्यूह, मकरव्यूह, चक्रव्यूह, श्येनव्यूह, अर्धचन्द्रव्यूह, वज्रव्यूह, शटकव्यूह, सर्वतोभद्रमण्डलव्यूह, और सूचीव्यूह, ये नौ व्यूह प्रसिद्व है युद्व मे राजा का यह कर्तव्य है कि वह युद्व से भागे नही पैदल हाथी सवार और घुडसवारों का उत्साह वर्धन करता रहे जो बीर युद्व भूमि में मारे जाय और घायल हो उन्हे वहाँ से हवा दो यदि यह देखो कि हमारे शत्रु भाग चले और मित्रो की सेना हमारी मदद के लिए आ गयी है और शत्रुओ का सेना पति मारा गया है तो समझो युद्व मे हमारी विजय हो गयी।[148]

आर्यो के समय मे सेना के छै भेद होते थे अग्नि पुराण के अनुसार पैदल घुड़सवार, रथ, हाथी सवार, सेना के चार प्रमुख अंग है यदि इनके

साथ मन्त और कोष इन दो अंगो को जोड दिया जाय तो सेना के छैं अंग हो जाते है जब कोई राजा कहीं युद्ध करने जाता है तब वह उक्रष्ट बीरों के साथ संसाधन कोष और श्रमिक ले जाता है इन्हें बीच में रखा जाता है कभी–कभी सेना विचित्र प्राकृतिक परिस्थितियों में फंस जाती है उस समय अपनी सेना की रक्षा करनी चाहिए जब सेना आकमण करने के लिए कहीं जा रही हो और शत्रु अवरोध उपस्थित कर दे उस समय हाथियों की सहायता से अवरोध समाप्त कर देना चाहिए आगे–आगे कुछ सैनिकों को मार्ग का पता लगाना चाहिए पैदल सैनिक घुड सवारों और हाँथी सवारों को हथियार पहुँचाये जो सैनिक सत्र पक्ष के राजा का वध करें उसे एक लाख मुद्रायें इनाम देना चाहिए।

आर्य लोग कुछ अस्त्र–शस्त्र प्रयोग करते थे ये अस्त्र शस्त्र, चामर, धनुषबाण खंग कहलाते थे सर्वोत्तम धनुष की लम्बाई चार हाथ मानी गयी है। ये धनुष लोहे के, सीगं के और मिश्रित धातुओ के बनवाये जा सकते है। धनुष मे किसी प्रकार का छिद्र नही होना चाहिये धातुओ मे सुवर्ण, रजत, ताम्र एवं कृष्ण लोहे का धनुष के निर्माण मे प्रयोग करे। शार्ङधनुषों में–महिष, शरभ, एवं रोहिण मृग में ऋगों सें निर्मित चाप शुभ माना गया है।चप्दन,बेतस,साल,धव तथा अर्जुन वृक्ष के काष्ट से बना हुआ दारूमय शरासन उत्तम होता है।[149] धनुष बाण के अतिरिक्त खंग व खडग, एक अन्य अस्त्र था जिसे पहले नन्दक कहते थे खटी खटटर देश मे निर्मित खंग दर्शनीय माने गये है। ऋषीक देश के खंग शरीर को चीर डालने वाले तथा शूर्पारक देशीय खंग अतयन्त दृढ होते है बगं देश के खंग तीखे एवं आघात को सहन करने वाले तथा अंग देशीय खंग तीक्ष्ण कहे जाते है । पचास अगुंल का खंग श्रेष्ठ माना गया है। इससे अर्धपरिणाम का माघ्यम होता है। इससे हीन परिणाम का खंग धारण न करे ।[150]

आर्य लोग युद्ब करने मे साम, दाम, दण्ड, भेद का सहारा लेते थे तथा राज्य विस्तार के लिये राजसू यज्ञ, अश्व मेघ यज्ञ, और बाजपेय यज्ञ, किया करते थे जो भी इनके अश्वो को पकडता था उनसे इनके युद्व होते थे युद्वो मे विजयी होने के पश्चात ही उसे चकवर्ती राजा के नाम से पुकारा जाता था युद्व मे अस्त्र शस्त्र चलाने की अपनी विधा थी जिस विधा से वे शत्रुओ पर प्रहार करते थे ।

मौर्यो का सैन्य सगंठन एवं सुरक्षा व्यवस्था– मौर्यो का सैन्य सगठन कौटिल्य द्वारा निर्धारित सैन्य व्यवस्था पर आधारित है क्योकि राज्य मे सैन्य संगठन ही एक ऐसा संगठन है जो राज्य की सुरक्षा व्यवस्था

कर सकता है इसके ऐतिहासिक साक्ष्य इस प्रकार उपलब्ध होते हैं सैनिक वंश परम्परागत, अनुशासित, प्रशिक्षित, वीर, स्वाभिमानी युद्व कुशल तथा राष्ट्रप्रेमी होने चाहिए सैनिकों के प्रति राजा का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह सैनिकों के यथोचित वेतन एवं उनके परिवारो की सुख सुविधाओं का पूर्ण ध्यान रखकर उन्हे सन्तुष्ट तथा प्रसन्न रखे कौटिल्य ने छः प्रकार की सेनाओ का वर्णन किया है जो निम्नाकित है।

1–मौल सेना अर्थात, नागरिको से निर्मित सेना।

2–भृत अथवा किराये पर ली गई सेना।

3–श्रेणि अथवा विभिन्न प्रदेशो मे रखी गई सेना।

4–आटविक अर्थात जंगल में निवास करने वाली जातियो की सेना।

5–मित्र सेना

6–शत्रु सेना।[151]

इनके अतिरिक्त कौटिल्य ने हस्ति सेना, अश्वसेना, रथ सेना और पैदल सेना का उल्लेख भी किया है इनमे वह हस्ति सेना को सर्वश्रेष्ठ बताता है क्योकि शत्रु सेना, दुर्ग छावनी, व्यूह आदि के मदद करने मे हस्ति सेना सर्वाधिक कुशल होती है।

अधिकांश राज्य यह चाहा करते थे कि किसी प्रकार युद्व न हो इसलिये वे विशेष शर्तो के साथ सन्धि किया करते थे सन्धि की शर्ते निम्नलिखित थी।

1–सन्धि के द्वारा एक राजा उत्तम कार्यो के सम्पादन के साथ साथ शत्रु के उत्तम कार्यो से भी लाभ उठा सकता है।

2–शत्रु से सन्धि करने के पश्चात शत्रु का विश्वास अर्जित करके राजा गुप्तचरों और विष प्रयोग से शत्रु का नाश कर सकता है।

3–शत्रु से सन्धि करने के पश्चात शत्रु का विश्वास अर्जित करके राजा गुप्तचरों और विष प्रयोगो से शत्रु का नाश कर सकता है।

4–सन्धि के द्वारा राजा शत्रु पक्ष के व्यक्तियो पर कृपा दिखाकर उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है।[152]इस समय निम्न प्रकार की सन्धिया हुआ करती थी ।

1–हीन सन्धि 2–उपग्रह सन्धि 3–सुवर्ण सन्धि 4–कपाल सन्धि इसके अलावा कुछ सन्धिया और हुआ करती थी ।1–आदिष्ट सन्धि 2–उच्छिन सन्धि 3–अपक्रय सन्धि 4–परदूषण सन्धि इसके आलावा कुछ अन्य सन्धिया और भी है 1–पण बन्धा सन्धि 2–मित्र सन्धि 3–भूमि सन्धि 4–कर्म सन्धि 5–अनवसित सन्धि।[153]

आवश्यकता पडने पर कलयूगीन नरेश युद्व किया करते थे कौटिल्य के अनुसार विग्रह नीति का अनुसरण करने से पूर्व राजा के द्वारा राज्य मण्डल के मित्र राज्यो की सहायता प्राप्त कर लेने की व्यवस्था करनी चाहिए । कौटिल्य का मानना है कि राजा को अपने देश की परिस्थित को दृष्टिगत रख कर विजय के प्रति आश्वस्त होने पर ही विग्रह अर्थात युद्व का रास्ता अपनाना चाहिए । यदि विजिगीषु राजा को सन्धि एवं विग्रह अर्थात युद्व का रास्ता अपनाना चाहिए।यदि विजिगीषु राजा को सन्धि एवं विग्रह दोनो से समान लाभ की प्राप्ति हो तो उसे विग्रह का त्याग कर सन्धि की नीति अपनानी चाहिए क्योकि विग्रह से धन एवं जन शक्ति का ह्रास होता है।[154]

आक्रमण– जब राजा देख ले कि परिस्थित उसके अनुकूल है और शत्रु सेना आकमण के उसके बस मे नही हो सकता तभी वह आक्रमण करे।

''यदि वा मान्येत............यान साध्यं कर्मोंव्‌द्यातः शत्रोः प्रतिविहीत स्वकमरिशचास्मीति यानेन वृद्विमातिष्ठेत''।[155]

अर्थात यदि राजा यह समझे कि शत्रु के कर्मो का नाश पान से हो सकता है और मैने अपने कर्मो की रक्षा का प्रबन्ध अच्छी तरह कर दिया है, तो यह समझकर राजा पान के द्वारा अपनी उन्नति करे । यान किस परिस्थित मे किया जाय उसका स्पष्ट वर्णन करते हुये कौटिल्य ने लिखा है–जब राजा देखे कि शत्रु व्यसनी हो गया है या उसके अमात्यादि पृकतियो का व्यसन शेष पृकतियो के द्वारा नही हटाया जा सकता अपनी सेनाओ से पीडित प्रजा राजा के प्रति विरक्त हो गयी है। इसलिये उत्साह हीन है इनको लालच दिया जा सकता है तथा शत्रु जल अग्नि व्याधि व दुभिक्ष आदि विपत्तियो के कारण अपने वाहन कार्मिक और कोष की रक्षा न कर सकने से क्षीण हो चुका है, तो उसके साथ विग्रह करके यान का आवलम्बन करे ।[156]

अस्त्र–शस्त्र– युद्व के लिये अनेक प्रकार के अस्त्र–शस्त्रो का प्रयोग होता था ये अस्त्र–शस्त्र धनुष बाण, खडग, भाला, फरसा, कुल्हाडी, त्रिशूल, और पास इत्यादि होते थे। सम्पूर्ण सेना, सेनापति की नियन्त्रण मे रहती थी तथा सेना के प्रत्येक अंग का भी एक अध्यक्ष होता था कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे सेनापति के कार्यो का व्यापक विश्लेषण है।

स्वभूमि युद्वकालं प्रत्यनीकमभिन्नभिद्‌नं भिन्नससानं
सहतभेदन भिन्न वधं दुर्गवधं यात्राकालं च पश्चेत,[157]

अर्थात सेनापति के यह आवश्यक कार्य है कि वह अपनी भूमि युद्व के समय शत्रु की सेना शत्रु की सेना, शत्रु के व्यूह तोडना, बिखरी हुई अपनी सेना को एकत्रित करना, एक– दूसरे की रक्षा हेतु एकत्रित शत्रुबल को तोडना शत्रु

के दुर्ग को तोडना और यात्रा के समय आदि पर अच्छी तरह विचार करे एवं फिर उनके अनुसार कार्य करे ।सैनिको की शिक्षा, अवस्थान, अभियान, आक्रमण,आदि विषयक सूर्यध्वनि ध्वजा–पताका, व्यूह रचना आदि संकेत में पारंगत करने की शिक्षा सैनिकों को प्रदान करना भी सेनापति का कर्तव्य हैं।

राज्य की सुरक्षा का समस्त दायित्व सेना का होता है तथा सेना का संचालन सेनापति पर निर्भर करता है। अतः सेना पति को योग्य, वीर, कुशल होना चाहिए। उसे समय–समय पर अपने सैनिको को नवीन युद्व– कौशल का प्रशिक्षण प्रदान करते रहना चाहिए।

गुप्तो का सैन्य संगठन एवं सुरक्षा व्यवस्था– गुप्तों का राज्य विस्तार बहुत अधिक था मुख्य रूप से पशिचम बुन्देल खण्ड में इनका असितित्व था और यहाँ उनकी सेना रहती थी। ऐतिहासिक साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए यदि कामन्दकीय नीति सार को प्रमाण माना जाय तो कहा जा सकता है कि गुप्त सेना के पारम्परिक चार अंग रथ, पदाति, अश्व, और हस्ति, रहे होगे[158] ।, किन्तु कालिदास के ग्रन्थों में सैनिक प्रसंग में रथ का कोई उल्लेख नही है मिलता । समुद्रगुप्त के नालन्दा और गया ताम्रपत्र के शासनों म भी स्कन्धावार के उल्लेख में रथ की कोई चर्चा नही है।[159] किन्तु कतिपय सम्राटों ने अपने को अपनें शिक्को पर अति प्रवर कहा हैं। इनसे ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त काल में युद्व की दृष्टि से रथ का महत्व कम हो गया था। पर उसका असितित्व मिटा न था। साथा ही गुप्त काल में सेना को एक नये अंग नौ सेना के विकसित होने की बात कालिदास के ग्रन्थों से ज्ञात होती है उनमें पदाति,[160] अश्व,[161] और हस्ति,[162] कें साथ नौ,[163] का भी उल्लेख हैं।

गुप्त सेना एक सेनापती के आधीन रहती थी उसके अन्तर्गत पैदल सेना अश्वरोही, और गज सेना होती थी उनका मुख्य अस्त्र धनष वाण था तथा प्रमुख सैन्य अधिकारी अश्व पति महा अश्व पति और भटश्वपति होते थे इसी प्रकार हाथियों की सेना नायक महा पीलुपति कहलाता था।[164]

ये लोग परशु, शर, शंकु, तोमर, भिन्दिपाल, नाराच आदि अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग करते थे जिसका विवरण समुद्र गुप्त के प्रयाग प्रसास्ति में उपलब्ध होता है।[165]

हर्षवर्धन का सैन्य संगठन एवं सुरक्षा व्यवस्था–

सम्राट हर्षवर्धन का युग एक ऐसा युग था जब सम्पूर्ण भारत वष में अराजकता का विस्तार हो रहा था भरत वर्ष की उत्तरी पशिचमी सीमा में

अनेक विदेशी आक्रमण कारी शाक्रिय हो रहे थे। देश के अनेक प्रान्तो मे अनेक सामन्त सम्राट के नियन्त्रण में थे जिन्हें महा सामन्त, महासामन्तअधिपति, अथवा महादण्ड़नायक के नाम से पुकारा जाता था। इनके आधीन सैनिक अर्ध सैनिक पुलिस, अधिकारी व कर्मचारी होते थे डा0 विशुद्धानन्द पाठक के अनुसार निम्न पदाधिकारी सेना में होते थे। महादण्ड नायक,दण्डनायक, बलाधिकृत महायुधपति, पीलुपति, अश्वपति, पैक्काधिपति, कोट्टपाल, और मार्यादाधुर्य। उनमे महादण्दनायक, महादण्डाधिपति, वाहितीपति, दण्डाधिपति, सेनाधिपति, सैन्यपति, दण्डनायक और दण्डपति भी कहा गया है। [166]

ऐतिहासिक साक्ष्य के अनसार हर्षवधन के पास एक विशाल सेना थी बाण के हर्षचारित तथा हएेनसांन के विवरण से इसकी पुष्टि होती है। हर्षचारित से पता चलता है। कि दिग्विजय के लिए कूच करने के समय हर्ष के सैनिको की संख्या इतनी बडी थी कि अपने सामने एक विशाल सैन्य समूह को देखकर वह आश्चर्य चकित रह गया । हुऐनसांन के अनुसार उसकी सेना में 60 हजार हांथी तथा एक लाख घोडे थे। पैदल सैनिकों की संख्या भी काफी बडी रही होगी स्पष्टतः यह सेना सामन्तों तथा अधीन राजाओं द्वारा एकत्रित की गयी थी। ऐहोल लेख से भी सूचित होता है कि हर्ष की सेना में अनेक बैभव शाली सामन्त थे।[167]

गुर्जर प्रतिहार शासन काल में बुन्देलखण्ड का सैन्य संगठन– गुर्जर प्रतिहारों का सैन्य संगठन भी सम्राट हर्षबर्धन जैसा था इनके शासन काल में विदेशी आक्रमण होने लग गये थे राज्य का विभाजन अनेक छोटे–छोटे राज्यों में हो गया था डॉ0 विशुद्धानन्द पाठक के अनुसार किन्तु अब सेना या तो पैतृक क्रम से अथवा भृतकरूप में राज्यों में स्थायी रूप से रखी जाती हो और उसको देने के लिए वेतन अथवा भौमिक पारिश्रमिक का स्थायी प्रबन्ध हो ऐसा नही कहा जा सकता। गुर्जर प्रतिहार जैसे साम्राज्यों अथवा जयचन्द्र गहडवाल, पृथ्वीराज चौहान, विद्याधर चन्देल, भोज परमार अथवा लक्ष्मीकर्ण कल्चुरि जैसे सभी प्रभुता सम्पन्न और शक्ति शाली राजाओं के युद्धों में उनकी सामन्त सेनाएं प्रमुख रूप में भाग लेती थी।[168]

चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड में सैन्य संगठन– चन्देलों के युग में प्रत्येक सामन्त या नरेश अपने यहां स्थायी सेना रखता था वह सेना इस तरह रखता था कि वह उसके माध्यम से शत्रुओं का मुकाबला कर सके राष्ट्र की रक्षा कर सके वह अपना युद्ध व्यूह रचना और दुर्ग रचना के

अनुसार कर सके बुन्देलखण्ड के चन्देल अपने पास एक स्थायी सेना रखाते थें। क्योंकि उनके युद्ध अन्य देशी नरेशों से होते रहते थे। इस समय की सेना में रथों का महत्व नही रह गया था केसव चन्द्रमिश्र के अनुसार चन्देल सेना वस्तुतः तीन प्रकार की थी–पदाति, अश्व, और हस्ति,। हस्ति सेना को काफी सुसंगठित किया गया था। मुसलमान 'इतिहासकार बतलाते हैं कि कालंजर पर आक्रमण के समय महमूद ने अधिकतम संख्या में हांथी पकडवाये थे, पैदल सेना की स्थायी संख्या थोडी ही होती थी। आवश्यकता पड़ने पर ही अस्थायी रूप से सेना की भर्ती कर ली जाती थी।[169]

सेना का सबसे बड़ा अधिकारी महासेनापति कहलाता था उसके आधीन राज्य की सारी सेना रहती थी उसके अतिरिक्त अलग–अलग श्रेणियों के पदाधिकारी होते थे जिन्हे मासिक बेतन प्रदान किया जाता था। इसके अतिरिक्त कुछ लोगों को गॉव और भूमि बेतन के रूप में दे दी जाती थी जो सैनिक युद्ध भूमि में मरता था उसके अश्रितों को गाँव अथवा भूमि प्रदान की जाती थी ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार अन्य राज्य–वंशो के कुछ अभिलेखों से ज्ञात होता है कि विभाग में कुछ और कर्मचारी थे जो विनिमय, सैन्य–भोजनादि परिकल्प और चार प्रयोग में लगाये थे ये कर्मचारी थे– महासाधनिक, गमागमिक, और महापिलुपति। महापिलुपति हांथियों की सेना का प्रमुख रक्षक था।

चन्देलयुग में युद्ध प्रणाली में दुर्गों का विशेष महत्व था इनके पास आठ महत्व पूर्ण दुर्ग थे जिनका सामरिक महत्व था–

1– **बारीगढ़,** जो आजकल चरखारी में है।,
2– **कालंजर,** वर्तमान बांदा जिले में है।
3– **अजयगढ** कालंजर से दक्षिण पश्चिम मे 20 मील की दूरी पर।
4– **मनियागढ** छतरपुर में,
5– **मडफा** बांदा जिले में,
6– **मौधा,** हमीरपुर जिले में,
7– **गढ़ा,** जबलपुर के निकट और
8– **मैहर,** जबलपुर के उत्तर में है।[170]

इस समय की युद्ध प्रणाली परम्परागत युद्ध प्रणाली थी जिसमें धनुष बाण का प्रयोग होता था। लड़ाई में बन्दूकों का प्रयोग होता था युद्ध में हांथियों का प्रयोग बहुत अधिक होता था इसके अलावा शारीरिक शाक्ति से भी युद्ध लड़ा जा सकता था प्रबोध चन्द्रोदय ने हांथियों के युद्ध का वर्णन दिया हुआ हैं।

सज्जान्तां कुम्भभित्तिच्युतमद–मदिरा–मत्तभृंगा करीद्रा
युज्यन्तां स्पन्दनेषु प्रसभजितभरूच्चणवेगास्तुरंगा।
कुन्तैर्नीलोत्पलनां वनमिव ककुभामन्तराले सृजन्तः
पादाताः संचरन्तु प्रसभमसिलसत्याणयोऽप्यश्ववारा।।[171]

इस काल मे विदेशी आक्रमण कारियों का आक्रमण हुआ जिनकी युद्ध पद्धति भारतीय युद्ध पद्धति से भिन्न थी ये लोग अग्नेय अस्त्रों का प्रयोग करते थे तथा नैतिकता से हटकर लूटपाट भी करते थे। जबकि चन्देल सैनिको ने छलकपट का सहारा युद्ध में किसी प्रकार नही लिया यहाँ के सैनिक मर्यादा के साथ युद्ध का प्रदर्शन करते थे राष्ट्रीय एकता के आभाव के कारण शत्रु सामन्तों का शत्रु पक्ष को सहयोग देने के कारण युद्ध में पराजय का मुह देखना पडता था।

बुन्देलखण्ड मे तुर्क कालीन सैन्य संगठन– सल्तनकाल में राज्य व्यवस्थाके दृष्टिकोण, से सेना रखी जाती थी यह व्यवस्था इस प्रकार थी इस युग के अधिकतर समय में सेना के चार वर्ग होते थे–

1– वे नियम वद्ध सैनिक जो स्थानीय रूप से सुल्तान की सेना के लिए भरती किये जाते थे।

2– वे सैनिक जो प्रान्तीय सूबेदारों और अमीरों की सेवा के लिए स्थानीय रूप से भरती किये जाते थे।

3– वे रँगरूट जो मुख्यतया युद्ध के समय में भरती होते थे, और

4– मुसलमान स्वयंसेवक जो जिहाद अथवा धर्मयुद्ध लडने के लिए सेना में सम्मिलित हो जाया करते थे।[172] सुल्तान की सेना को हश्मे–कल्ब कहा जाता था और उसके सैनिकों को खास खेल कहा जाता था। अलाउद्दीन खिलजी ने एक स्थायी विशाल सेना रखी जिसमें पैदल सैनिकों के अतितिरक्त चार लाख पछत्तर हजार घुडसवार थे। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय सूबेदारों की भी सेनाएं होती थी इनका कोई प्रशिक्षण नही होता था। इनकी सेना में तुर्क, ताजिक, ईरानी, मंगोल, अफगान, अरब, हब्सी, भारतीय, मुसलमान, तथा हिन्दू सभी रहते थे। वह किरायें के टट्टुओं का एक जमघट थी जो धन के लोभ से लडते थे। अतः उनमें एकता कायम रखाने के लिए एक मात्र सूत्र सुल्तान का व्यक्तित्व ही था। इनकी सेना में अश्व रोही पैदल तथा हांथी सवार सैनिक रहा करते थे घुड़सवारों का सर्वाधिक महत्व था। ये लोग अपने पास दो तलवार एक भाला तथा एक धनुष बाण रखाते थे तथा आत्म रक्षा के लिए फौलाद के बक्तर बन्द पहनते थे घुडसवारों की सेना तीन भागों में विभक्त थी–

1— मरत्तव अर्थात दो घोडों वाला सैनिक,

2— सवार अर्थात एक घोडे वाला सैनिक, और

3— दो— अस्या जिसके पास फालतु घोडा होता था किन्तु जो वास्तव में अश्वारोही नही था। सेना का महत्वपूर्ण अंग पैदल सैनिक भी थे इन्हे पायक कहा जाता था इनमें अधिकतर भारतीय मुसलमान और हिन्दू गुलाम होते थें ये लोग तलवार भाला और धनुष बाण से युद्ध करते थे।

सेना में बहुत महत्व पूर्ण स्थान हांथियों का था एक हांथी को 500 घुडसवारो के बराबर माना जाता था हांथी के ऊपर हौदा रखा जाता था जिसके भीतर अस्त्र—शस्त्रों से सुसज्जित सैनिक बैठा करते थे हांथियों के शरीर लोहे के तवों से ढके रहते थे हांथी सेना के अध्यक्ष को शाहना—ए—फील कहा जाता था।

सल्तनत काल मे तोपे खाने का विकास बहुत अधिक नही हुआ था फिर भी अग्नेय अस्त्र प्रयोग किये जाते थे। हथगोले, पलीतों, धूरगोलों और आग लगाने गेंदों का भी प्रयोग होता था। बारूद की सहायता से गोला फेकने की भी मशीने थी। जिसके द्वारा आग के गोले आग लगाने वाले तार, पत्थर के टुकड़े और बडी—बडी चट्टानें तथा लोहे के गोले तक फेके जा सकते थें। कभी—कभी विशैले साँप और विच्छु भी शत्रु सेना में फेंक दिये जाते थे सुल्तान के अधिकार में नावों का एक विशाल बेड़ा रहता था, जिसका प्रयोग समान ढोने तथा नदियों के युद्ध में किया जाता था।

सुल्तान अपनी सेना महासेना पति होता था सम्पूर्ण सैन्य व्यवस्था उसके आधीन होती थी उसका सैन्य संगठन निम्न प्रकार होता था। अश्वारोही सेना में दस सवारों की एक टुकड़ी होती थी और उसके नेता को सरेखोल कहते थें। दस सरेखोलों के ऊपर एक सिपहसालर, दस सिपहसालारों के ऊपर एक अमीर, दस अमीरों के ऊपर एक मलिक और दस मलिकों के ऊपर एक खान होता था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह योजना केवल कागजी थी और इस युग के किसी भी सुल्तान के शासनकाल में इसकों कार्यान्वित नही किया गया। इस समय घोड़ो की दागने की प्रथा आलाउद्दीन खिलजी ने प्रारम्भ की थी सेना केन्द्रीय सेना के अतिरिक्त प्रान्तों में भी रहा करती थी हर्ष में एक बार उनका निरीक्षण हुआ करता था मुख्य रूप से सेना सामरिक महत्व के स्थानों में रखी जाती थी अधिकांश सैनिक किलों में रहा करते थे।

जब कही युद्ध होता था उस समय एक रणनीति तैयार की जाती थी वह इस प्रकार थी सुल्तान समर नीति में दक्ष हुआ करते थे।

छिपकर तथा सहसा आक्रमण करने की कला का बहुधा प्रयोग किया जाता था युद्ध आरम्भ करने से पहले सेनापति भावी युद्ध–प्रदेश की अवश्य जॉच–पडताल कर लेता और रणक्षेत्र निश्चित करने में भौगोलिक स्थितियों का ध्यान रखता था। युद्ध भूमि में सेना कई डिवीजनों मे विभक्त की जाती थी, जैसे अग्रगामी दल, केन्द्र, दक्षिण, पार्श्व, वामपार्श्व तथा संरक्षक अथवा रिजर्वदल। सामने हांथी खडे किये जाते थे और उनके आगें अश्वारोही खडे किये जाते थे।[173] इस समय कुछ अनियमित सैनिक हुआ करते थे जिन्हे गैर वजही कहा जाता था इनकी नियुक्ति थोडे समय के लिए होती थी।

बुन्देलखण्ड में मुगल कालीन सैन्य व्यवस्था– अकबर के जमाने में सेना में बनसबदारी प्रथा का उदय हुआ सम्राट अकबर की सेना में अधिकतर मंगोल तुर्क उजबेग अफगान और ईरानी सैनिक होते थे। इनके नायको को नकद बेतन न देकर जागीरे प्रदान की जाती थी। ये जागीरे सैनिको की संख्या के आधार पर दी जाती थी तथा जागीरदारों को मनसबदार के नाम से पुकारा जाता था दस हजार सैनिक रखने वाला सबसे बडा मनसबदार माना जाता था मुगलों की सेना में पैदल सैनिक घुड़सवार और हांथी सेना के सैनिक रहा करते थे। डॉ0 आर्शीवादीलाल के अनुसार मुगल सेना मे घुडसवार पैदल सैनिक तोप बन्दूकची और गजवाहक थे उसके पास जल सेना नही थी घुडसवार सेना को पुष्प के नाम से पुकारा जाता था पैदल सेना का विशेष महत्व नही था इनके अन्तर्गत बन्दूकची तीरंदाज, मेवाती, तलवार चलाने वाले, मल्य युद्ध करने वाले और गुलाम लोग रखे जाते थे। युद्ध में विशाल काय तोपे हांथियों और वैलों पर लाद कर ले जायी जाती थी बन्दूकें भी कई प्रकार की प्रयोग मे लाई जाती थी हांथी और घोड़ो को दागनें की प्रथा थी। घोड़े अच्छी किस्म के नही थे युद्ध में सेना के साथ भोग विलास की वस्तुएं अनेक, सेवक,नर्तकियां, हांथी घोड़े और ऊँट तथा बाजे चला करते थे मुगल सैनिक अनेक जातियों के थे। जिनमे राष्ट्रीय भावना और एकता का आभाव था मनसबदार को समूह के प्रति उत्तरदायी रहना पडता था सैनिको का बेतन मनसबदार द्वारा बांटा जाता था।[174]

बुन्देलखण्ड में बुन्देले शासकों का सैन्य संगठन–

छत्रशाल की सैन्य व्यवस्था काफी सुदृढ़ थी इनकी स्थायी सेना में 50 हजार पैदल और 30 हजार घुडसवार थे इनके अतिरिक्त जागीरों की सेना अतिरिक्त थी प्रत्येक परगनों और प्रत्येक दुर्ग में 500 सैनिक चार अथवा दो बड़ी तोपे और छोटे–छोटे शिप्पा और गुरावे बडी देशी बुन्दूके रहा करती थी पन्ना में जहाँ रानियों का निवास था वहाँ 20 तोपें और 10 हजार सैनिक सदैव रहते

थ इसी प्रकार जैतपुर में 3 हजार सैनिक और 20 या 25 तोंपे सदैव रहती थी कृष्ण कवि के अनुसार महाराज के पास अलग 20 हजार सैनिको की सेना और 100 तोंपो का तोंपखाना था घुडसवारों की सेना अज्ञात है। ऊँटों की सेना और हांथियों की संख्या पर्याप्त थी क्योंकि हांथी पन्ना जंगल में ही अच्छी जाति के उत्पन्न होते थे। जागीरदारो और मेमारदारों के पास भी सेना हांथी, ऊँट और तोंपे रहती थी जो आवश्यकता पडने पर राज्य के आदेश से युद्धों मे सम्मिलित होते थे।

छत्रशाली सेना में सभी वर्गो के लोग थे, उनकी कसौटी यही थी जो स्वयं युद्ध में लडने का आकांक्षित शस्त्र संचालन में निपुण और उत्साही, सच्चा सूर वीर हो चाहे जिस जाति का हो सब सम्मिलित किये जा सकते थे। उनकी सेना में हिन्दुओं के अतिरिक्त मुसलमान सैनिक भी थे जो छत्रशाल की ओर से जागीर आदि से सम्मानित किये जाते थे।[175]

बुन्देलखण्ड मे गौंड वंशीय नरेशो की सैन्य व्यवस्था— गौंडवंशीय नरेश युद्ध कला में माहिर थे इसीलिए गौंड नरेश संग्राम सिंह ने 52 गढो पर अधिकार कर लिया था गौंडो की सेना में हांथी, घोडे, और पैदल सैनिक थे, उनकी संख्या हजारों में थी ये लोग तलवार, भाला, बरछी, और तीरकमान से युद्ध किया करते थे सम्राट अकबर का युद्ध रानी दुर्गावती से हुआ था रानी दुर्गावती ने अपनी प्रजा की रक्षा के लिए वह स्वयं अपने हांथी पर सवार होकर तलवार हांथ मे लेकर लडने जाया करती थी।[176]
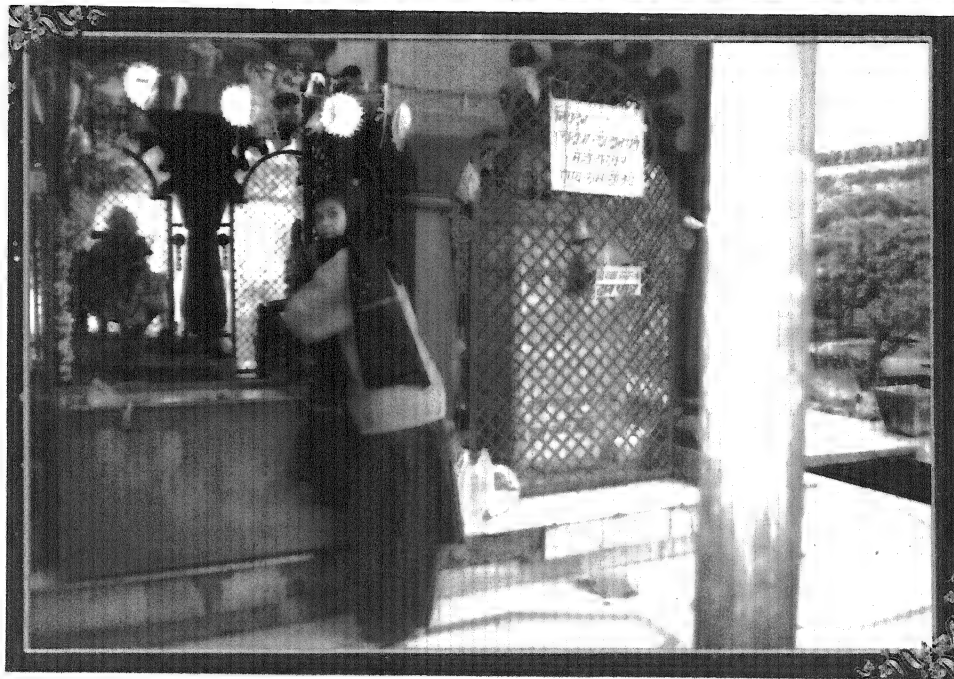
ओरछा का हरदौल मन्दिर

ओरछा महल को जाने वाला मार्ग

प्रशासनिक एवं सुरक्षा व्यवस्था मे बुन्देलखण्ड के दुर्गो का महत्व— बुन्देलखण्ड मे निवास करने वाले व्यक्ति तथा उनको अपने नियन्त्रण मे रखने वाले सामन्त और जागीरदार अपनी जनता को सुरक्षित रखने के लिये एक विशेष प्रशासनिक व्यवस्था को अपनाते थे। यह प्रशासनिक व्यवस्था विभिन्न शास्त्रो धर्म ग्रन्थो और प्रचलित सुरक्षा व्यवस्था के अनुसार संचालित की जाती थी बुन्देलखण्ड की प्रशासनिक व्यवस्था देश के अन्य भागों के अनुसार परम्परागत प्रशासनिक व्यवस्था थी यहाँ कुछ स्थानो पर गणराज्य थे और कुछ स्थानो पर साम्राज्य वादी प्रशासनिक व्यवस्था थी इनका उल्लेख विभिन्न ग्रन्थो मे उपलब्ध होता है। यह व्यवस्था चन्देल युग तक किसी न किसी रूप मे बनी रही।

कोई भी शासक अपना यह परम कर्तव्य समझता है कि वह उसके नियन्त्रण मे रहने वाली जनता को सुरक्षा प्रदान करे और स्वतः अपनी रक्षा करे यदि कोई भी नरेश शत्रुओ से रक्षा नही कर सकता उस नरेश को अच्छा नही कहा जा सकता उसे अपनी रक्षा के लिये अपने जीवन को विभिन्न प्रकार की दिनचर्या मे ढालना पडता है। कोई भी नरेश जिसे शासन का कार्य भार सौपा जाय वह अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करें विद्वानो की संगत करे गुप्तचरो की नियुक्ति करे स्वाराष्ट्र और परराष्ट्र का अध्ययन करे राजकीय नियमो का पालन कराये और प्रजा को अपने नियन्त्रण मे रखे शिक्षा का प्रचार प्रसार करे और प्रजा जनो को लोक सम्मान और लोक प्रियता बनाये रखो राज चलाने के लिये राजा और प्रजा को दोनो को आपसी तालमेल की आवश्यकता है।

1 — *तस्मादरिषड्वर्गत्यागेनेन्द्रियजयं कुर्वीत।*
वृद्धसंयोगेन प्रज्ञां, चारेण चक्षुरूत्थानेन
योगक्षेमसाधनं, कार्यानुशासनेन
स्वधर्मस्थापनं,विनयं वि_द्योपदेशेन,
लोकप्रियत्वमर्थसंयोगेन, हितेनवृत्तिम।

2 — *सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते।*
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च श्रृणुयान्मतम।।[1]

प्राचीन भारत मे राज्य व्यवस्था सप्तागं सिद्धान्तो पर आधारित थी राजा के पश्चात आमात्य अथवा मन्त्रियो का विशेष महत्व था मन्त्री गण प्रशासनिक व्यवस्था मे राजा का पूर्ण सहयोग प्रदान करते और वे निम्नलिखित कार्य करते थे।

संक्षेप में कौटिल्य ने अमात्यों के निम्नांकित कार्यो का उल्लेख किया है।

1–जनपद की कर्मसिद्धि करना।

2–विपत्तियों का प्रतिकार करना।

3–रिक्त भूमि को बसाना एवं उसका विकास करना।

4–शत्रुओं का निराकरण करना।

5–राज्य की रक्षा करना।

6–सेना की उचित व्यवस्था करना।

7–आय–व्यय (बजट) की व्यवस्था करना।

8–राजकुमारो की रक्षा करना एवं समय आने पर उनका अभिषेक करना।

9–दूसरे देशो से प्राप्त सहायता पर अनुग्रह करना।

10–अपराधियों को दण्ड देना।

(3) तत्र धर्मोपधाशुद्वान धर्मस्थीयकण्टकशोधनेषु स्थापयेत, अर्थोपधाशु द्वान समाहर्तृसन्नि–धातृनिचयकर्मसु कामोपधाशुद्वान् ब्राह्याभ्यन्तर–विहाररक्षासु, भयोपधाशुद्वानासन्न कर्येषु राज्ञः। सर्वोपधाशुद्वान् मन्त्रिणः कुर्यात्।सर्वत्राशुचीन् खनिद्रव्यहस्तिवन कर्मान्तेषूपयोजयेत।[2]

अमात्यों के पश्चात दुर्गो का सबसे महत्वपूर्ण स्थान प्रशासन में हैं क्योंकि प्राचीन काल में स्थल युद्व हुआ करते थे। इसलिये बाहरी सेना के आकमण को रोकने के लिए राजा और प्रजा दोनो के लिए यह आवश्यक था कि वह सुरक्षित स्थान पर रहे यह सुरक्षित स्थान दुर्ग के नाम पर जाना जाता था दुर्ग प्रजा की रक्षा करता था राज्य परिवार की रक्षा करता था तथा राजकोष की रक्षा करता था किस स्थान में प्रजा और राजा के अतिरिक्त सेना भी रहा करती थी। जिनके दुर्ग सुदृढ़ होते थे उन्हें युद्व में कोंई पराजित नही कर सकता था उनकी राज्य की सीमांए सदैव सुरक्षित रहती थी।दुर्ग का विस्तार भूमि एवं संसाधनो की स्थित के अनुसार होता था।

भारत वर्ष में दुर्गो का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। जब व्यक्ति जंगली अवस्था में रहता था तब उस समय उसे अपनी रक्षा का अनुभव हुआ जब वह एक स्थान में बस गया तथा ग्राम और नगरों की संरचना हुई उसी समय से बाहरी आक्रमणों को रोकने के लिए सुरक्षा की दृष्टि से दुर्गो का निर्माण किया गया और वहाँ शसस्त्र सेनायें रखी गयी।[3] वैदिक काल में यहाँ अनेक दुर्ग निर्मित हुए कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दुर्गो का सविस्तार वर्णन मिलता है। जहाँ राज्य की राजधानी होती थी वहाँ दुर्ग अवश्य होता था इसके अतिरिक्त जहाँ प्रान्तों और जनपदों की राजधानियाँ थी तथा जहाँ सामन्त, जमीदार, जागीरदार, और प्रशासक दृष्टि से वहाँ भी दुर्ग थे। ये दुर्ग

नाना प्रकार की कोटियों में विभाजित थे वैदिकाल में अनेक दुर्ग निर्मित हुए वे इनका वर्णन वैदिककल्प शास्त्र स्मृतिशास्त्र, नीतिशास्त्र, और पुराणों, में मिलता है इसके अतिरिक्त दुर्गो का वर्णन अनेक वास्तुशास्त्रों की किताबों में भी उपलब्ध होता है। अनेक वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों शत्रु की रक्षा के लिए विविध दुर्गो का वर्णन विविध ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

बुन्देलखण्ड में युद्ध परक संस्कृति होने के कारण यहाँ युद्धों का सर्वाधिक महत्व था चन्देलयुग के अन्त तक निरन्तर यहाँ युद्ध होते रहे। जिसका वर्णन आल्हखाण्ड में मिलता है।

बदलौ लैहों मै ददुआ कौ, माड़ौ खोद करैहों ताल।
सीस काटके मै कड़िया कौ, औ जम्बे को सीस उतार।।
सो टंगवाय डेउ महुबे में इनी दूर्नालूट लेउँ करवाँय।
बंस नसैहो मै कड़िया कौ, तब छाती कौ डाह बुझाय।।

बारहवीं सदी के अन्य वीर काव्यों में भी युद्ध–वर्णन की प्रधानता थी।डा० विपिन त्रिवेदी लिखते है कि रासो युद्ध–प्रधान काव्य है और तदनुसार उस समय की आदर्श वीरता का इसमें श्रेष्ठ चित्रण है[4] ।युद्ध परक संस्कृति होने के कारण यहाँदुर्गो का अत्यधिक महत्व था तथा दुर्गों की संरचना में बैज्ञानिक ढंग को अपनाया गया था यहाँ के दुर्गो में अनेक प्रंकार के दुर्ग गुप्त मार्ग बनाये गये थे।जो सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थे यहाँ पर दुर्गो की संख्या वर्तमान जानकारी के अनुसार लगभग 450थी किन्तु इनमें से अब अधिकांश दुर्ग नष्ट हो गये है।ये दुर्ग घने वनों में और पर्वत के शिखरो पर थें।इनमे ऐसी प्राकृतिक बाधायें खाडी की जाती थी इनकी वजह से शत्रु आसानी से न आ सकें कुल मिलाकर यहाँ दुर्ग महत्व पूर्ण स्थान रखते थे दुर्गो की वजह से ही यहाँ की युद्ध परख सौर्य गाथायों लोक प्रिय हुई जिससें बुन्देलखाण्ड़ का इतिहास महिमा मण्डित हुआ तथा बुन्देलखण्ड दुर्गो सें ही जुडी हुई विभिन्न गाथाओं के कारण सम्पूर्ण भारत वर्ष में जाना गया तथा बुन्देलखण्ड के अनेक दुर्ग पर्यटन की दृष्टि से लोकप्रिय हुए।

(1)दुर्ग की परिभाषा एवं दुर्ग की कोटि– किसी भी इतिहासकार तथा युद्ध विज्ञान से जुड़े हुए किसी भी विद्धान ने दुर्ग की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी प्राचीन काल मे जिस स्थान पर मानव वस्तियों बनायी जाती थीं उन बस्तियों की सुरक्षा के लिए बस्ती के चारो ओर एक ऊँची सुरक्षा दीवाल बनायी जाती थी और इस सुरक्षा दीवाल के पहले कोई गहरी खाई या नदी हुआ करती थी जो शहर अथवा राजा की राजधानी की सीमा का निर्धारण करते थे। कभी–कभी इन जलाशयों के किनारे तटबन्ध

बना दिये जाते थे ताकि नगर सुरक्षित रहे उस पर वाह्य आक्रमण का कोई असर न पड़े नगर के चारों ओर के पर कोटे में कुछ प्रवेश द्धार हुआ करते थे। जहाँ से व्यक्ति इस नगर सीमा में प्रवेश कर सकते थे और यहाँ से बाहर जा सकते थे इन्ही मार्गो के माध्यम सें आवश्यक सामान्य नगर में आया करता था और नगर में उत्पादित सामान यहाँ से बाहर जाया करता था। अनेक विद्धानो ने चाहार दिवारी से घेरे हुए स्थल को दुर्ग की संज्ञा दे दी दुर्ग का शाब्दिक अर्थ उस स्थल से लगाया हैं जहाँ ब्यक्ति आसानी से न पहुचँ सके कहने का तात्पपर्य यह है कि दुर्गम शब्द से दुर्ग का निर्माण हूआ है दुर्ग की यह परिभाषा मनोवैज्ञानिक ढग से न्याय संगत भी प्रतीत होती है क्योकि अधिकांश दुर्ग ऐसे स्थलो मे बने है जहाँ पहु्ँचना आसान कार्य नही है तो निश्चित ही यही परिभाषा दुर्ग की उचित प्रतीत होती है कि चाहार दिवारी से घिरे हुए स्थल को जहाँ राजा अथवा सामन्त अथवा प्रशासक अपने परिवार सेना प्रशासनिक अधिकारी अन्य कर्मचारियो तथा प्रशासित जनता के साथ रहता हो वह स्थल दुर्ग कहलाता है पुरातात्विक प्रमाणो से प्राचीन नगरो की चहार दिवारी के जहाँ कही भी अवशेष प्राप्त हुए हैं उनमे कई स्थलो पर तो ये नदी के किनारे तटबन्ध मात्र है जिन्हे भ्रम वश नगर की चहार दीवारी और दुर्ग का अंग मान लिया जाता है मधुकर श्रीपद मारे तथा कुछ अन्य विद्वानो ने इस ओर पुरातत्विदों का ध्यान आकर्षित किया है। [5]

कौटिल्य ने दुर्ग को महत्वपूर्ण अच्छा माना है और कहाँ है कि दुर्ग राज्य रक्षा की द्रष्टि से और आक्रमण की द्रष्टि से शक्ति का प्रतीक है दुर्ग का सामरिक द्रष्टि से एक राष्ट्र हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है यह ओस और सेना की रक्षा करता है आपत्ति के समय जनपद का आश्रय दाता है। यहाँ शक्ति और मित्र सेना की व्यवस्था उचित प्रकार से हो सकती है सूद्रढ़ दुर्ग वाला कभी पराजित नही हो सकता चाणक्य का मत है कि राजा उस स्थान पर दुर्ग का निर्माण करावे जहाँ जनपद की चारो दिशाये सुरक्षित रह सके उसे उस स्थान पर दुर्ग बनवाना चाहिए जहाँ धन उत्पादन और उद्योग के केन्द्र स्थापित हो बडे– बडे वास्तुकारो को बुलवाकर प्रदेश के श्रेष्ठ स्थान पर किसी नदी के संगम पर या कमल युक्त जलाशयो के तट पर गोल लम्बे और चौकोर दुर्ग बनाये जा सकते है। मुख्य रूप से नगर की जमीन चौरस हो आवागमन के रास्ते हो उस स्थान पर दुर्ग का निर्माण करना चाहिए ये दुर्ग ईटो अथवा पत्थरो से निर्मित किये जा सकते है।

जनपद मध्ये समुदाय स्थान स्थानीयं निवेशयेद् । वास्तुकप्रशस्ते देशे नदीसंगकडमें हृदस्य वा विशोषस्याक्कंडे सरसस्तटाकस्य वा वृत्तं दीर्घ चतुरश्रं वा वास्तुकवशेन प्रदक्षिणोदंक पण्यपुट भेदन मंवारिपथा भ्याममपेतम् तस्य परिखास्तिस्रो दण्डान्तराः कारयेत् चतुर्दश द्वादश दशेतिदण्डान् विस्तीर्णाः विस्तारादवागाधाः पादोनमर्ध व त्रिभागमूल मूले चतुरश्राः पाषाणोपहिताः पाषाणेष्टकाबद्धपार्श्र्वा वा तोयान्तिकीरागन्तुतोयपूर्णा वा सपरिवाहाः पद्मग्राहवतीः ।[6]

वास्तव मे दुर्ग प्राचीन काल मे वे स्थल थे जो रक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे इन स्थलो मे नरेश अपने समस्त अमात्यों प्रशासनिक कर्मचारियों और गणमान नागरिको के साथ रहकर अपनी प्रजा की रक्षा कर सकता था।

दुर्ग की कोटियाँ— किलो का निर्माण विशिष्ट वास्तु विधि के अनेसार होता है तथा इसका सीधा सम्बन्ध तदयुगीन युद्ध कला से है दुर्गो के सन्दर्भ विशिष्ट जानकारी धनुर्वेद मे मिलती है जिसने अनेक प्रकार के दुर्गों का वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है।

'सालिलवर्जित मतिशार्करान्वित रक्षं निरश्रयं विशमैविषकिटैश्चितं विषमप्रदेशे दुःसंचरं दलवंभिः

विषमप्रदेशे दुःसंचरं दलवंभिः पालकैरूपेतं,
रोगविनिर्म्मुक्तं धान्वदुर्गं श्रेयसे ।
वर्त्वापकरणोपेतं गुरतंचोपायसंयुतम् ।
अत्युत्सेधाड तिनिम्नंच महीदुर्ग तदिष्यते ।।
सक्षिप्तेनैकमार्गेण सविशैस्तु जलेचरैः ।
सलिलैविषमस्पर्शनरवादनवद्याप्रियैः ।।
अज्ञातमार्गं गहनं वृक्षागुल्मलतादिभिः ।
सकण्टकैर्बनं दुर्ग भूतले स्याल सुविस्तृतम् ।।
मौलं वश्यं सुसन्तुष्टं शिक्षायुक्तं सनायकम् ।
मौमंचेवाड प्रवृत्तन्च बलदुर्ग प्रशस्यते ।।
दुरारोहं परेधुरं शरपातस्य गोचरात ।
सर्वसम्पत्यमायुक्तं दुर्ग स्यात्पार्वत श्रिये ।।''[7]

सुप्रसिद्ध ग्रन्थ महाभारत मे 6 प्रकार के दुर्गों का वर्णन उपलब्ध होता है।हैं ये दुर्ग धन्वदुर्ग, महिदुर्ग, गिरिदुर्ग,गिरिदुर्ग, मनुष्यदुर्ग, अब दुर्ग, वनदुर्ग, इस प्रकार छः दुर्ग हैं।

धान्वदुर्ग, महिदुर्ग, गिरिदुर्ग, तथैव च
मनुष्य दुर्गमब्दुर्ग, वनदुर्ग च तानि षट् ।।[8]

मत्स्य पुराण में भी दुर्गों का विभाजन धन्व दुर्ग, महिदुर्ग, नृदुर्ग, वार्क्षदुर्ग, अम्बुदुर्ग, और गिरिदुर्ग के रूप में किया गया है।

तत्र दुर्ग कुर्यात्मण्णामेकतमंबुधः
धान्यवदुर्ग महीदुर्ग नरदुर्ग तथैव च।।
वाक्षं चौवाम्बुदुर्ग गिरिदुर्ग च पार्थिव।
सर्बेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्ग प्रशस्यते।।[9]

सुप्रसिद्ध ग्रन्थ मनुस्मति में भी दुर्गों का विभाजन उपलब्ध होता है ये दुर्ग धनदुर्ग, महिदुर्ग, जलदुर्ग, वृक्षदुर्ग, और गिरिदुर्ग, के रूप में विभाजित किये गयें है। इनमें राजा को अपना आश्रय बनाना चाहिएं।

धान्य दुर्ग महिदुर्ग मब्दुर्ग वार्क्षनेव वा।
नृदुर्ग गिरिदुर्ग वा समाश्रित्य वसेत्यपुरम्।।
सर्वेंण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्ग समाश्रेयेत।
एषा हि बहुगुण्येन गिरिदुर्ग विशिष्यतें।। [10]

अग्नि पुराणमें भी दुर्गों का विभाजन उपलब्ध होता है वह इस प्रकार है धन दुर्ग महि दुर्ग, नरदुर्ग, वृक्षदुर्ग, जलदुर्ग, और पर्वतदुर्ग, –ये ही छः प्रकार के दुर्ग है इन्हे पर्वत दुर्ग है। सबसे उत्तम है। वह शत्रुओं के लिए अभेद्य तथा रिपुवर्ग का भेदन करने वाला है। दुर्ग ही राजा का पुर या नगर है वहाँ हाट–बाजार तथा देव मंदिर आदि का होना आवश्यक है । इसे चारों यन्त्र लगे हो जो अस्त्र–शस्त्रों से भरा हो जहाँ जल का सुपास हो जिसके सब ओर पानी से भरी खानियां हो वह दुर्ग उत्तम माना गया है। [11]

शुक्र नीति में नौ प्रकार के दुर्गो का वर्णनउपलब्ध है। यह वर्णन इस प्रकार हैं। ऐंरिणदुर्ग, पारिखदुर्ग, पारिदुर्ग, वनदुर्ग, धन्वदुर्ग, जलदुर्ग, गिरिदुर्ग, सैन्यदुर्ग, और सहॉयदुर्ग । इनमें गिरिदुर्ग को सर्वश्रेष्टिमाना गया है।

परिवारेणं श्रेष्ठं पारिधि तु ततो बनम्।
ततो दन्वजलं तस्माद् गिरिदुर्ग ततः स्मृतम्।।[12]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दुर्गो का वर्णन मिलता हैं तथा उसने दुर्गो को चार भागों में विभाजित किया है। ये दुर्ग औदक, पार्वत, धानवन, और बन दुर्ग है।

चतुर्दिशं जनपदान्ते साम्परार्यिकं दैवकृतं दुर्ग कारयेत्' अन्तर्द्वीपं स्थलं व निम्नावरूद्धमौदकं, प्रास्तरं गुहां वा पार्वत, निरूदकस्तम्बमिरिणं वा धान्वनं, खञ्जनोदकं स्त्म्भगहनं वा वनदुर्गम्!तेषां नदीपर्वत दुर्ग जनपदारक्षस्थानं धान्वन वनदुर्वामटवी स्थानम् आपद्य पसारों वा।[13]

ऐतिहासिक साक्ष्यों क देखते हुए दुर्गो का वर्गीकरण इस प्रकार जा सकता है।

1— औदक या जल दुर्ग— औदक दुर्ग उस दुर्ग को कहते हैं जिसका निर्माण किसी टापू में किया जाता है अर्थात जिसके चारों ओर जल हो अथवा जिस दुर्ग के चारों ओर गहरे तालाब निर्मित हो और जहाँ पहुँचने के लिए कोई स्थल मार्ग न हो उस दुर्ग को औदक अथवा जल दुर्ग के नाम से पुकारा जाता है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में रनगढ़ एक ऐसा दुर्ग है जो चारों ओर केन नदी की धाराओं से घिरा हुआ है यहाँ जाने के लिए बासी देवदार से रास्ता है।

2—पार्वत या पर्वतीय दुर्ग— यह दुर्ग वह दुर्ग कहलाता है जिसका निर्माण बडी—बड़ी चट्टानों और पर्वत की कन्दराओं से हुआ है बुन्देलखण्ड में ऐसे अनेक दुर्ग है कालिंजर दुर्ग, रसिन दुर्ग, देवगढ़ दुर्ग, मडफा दुर्ग, मण्डला दुर्ग, गढ़ कुण्डार दुर्ग, आदि ऐसे दुर्ग है जो ऊँची पहाड़ियों पर बने है इनमें से कालिंजर दुर्ग सदैव से अजेय रहा है।

3—धान्वन दुर्ग— यह दुर्ग उस स्थान में निर्मित किया जाता है। जहाँ केवल बालू ही बालू हो तथा जहाँ की जमीन में कुछ भी उत्पन्न न होता हो अर्थात भूमि पूरी तरह से ऊसर हो वहाँ निर्मित दुर्ग को धान्व दुर्ग के नाम से पुकारा जाता है इन दुर्गो में शत्रु आसानी से आक्रमण नही कर पाता और उसे यहाँ जीवन उपयोगी जल जैसे साधन भी उपलब्ध नही हो पाते इसलिए कोई भी नरेश ऐसे दुर्गो पर आक्रमण करने का शाहस नही करता बुन्देलखण्ड के पठारी क्षेत्र में अनेक ऐसे दुर्ग है जो इसी कोटि के हैं मानिकपुर का कल्याण गढ़ दुर्ग इसी श्रेणी में आता है।

4— वन दुर्ग— जो दुर्ग चारो ओर से कीचड कांदौ विभिन्न प्रकार की झाँड़ियों और कांटेदार वृक्षों से घिरा हुआ हो उस दुर्ग को बन दुर्ग कहते है। बुन्देलखण्ड में चारों तरफ इसी प्रकार के बन उपलब्ध होते हैं तथा इन बनो के बीच में अनेक दुर्ग बने हुए हैं जिन्हे इस श्रेणी में रखा जा सकता है मुख्य रूप से बन दुर्ग पालो के लिए उपयोगी होते हैं तथा आपत्ति काल मे कोई भी नरेश यहाँ भाग कर अपने प्राणों की रक्षा कर सकता है।

5— मही दुर्ग— यह दुर्ग वह दुर्ग है जिसका निर्माण चौरस अथवा ढाल रहित भूमि के होता है अर्थात ऐसे दुर्गो का निर्माण मैदानों में किया जाता है ये दुर्ग चारों तरफ पत्थर की दीवारों से घेरे होते हैं तथा इनमें आने और जाने के लिए विशेष प्रकार के द्वार होते हैं बुन्देलखण्ड के अनेक दुर्ग इस कोटि में आते हैं उदाहरण के लिए झाँसी दुर्ग, ओरछा दुर्ग, भूरागढ़ दुर्ग,

आदि इसी कोटि के दुर्ग है।

6—नृ (नर) दुर्ग— इस दुर्ग में सम्भवतः परकोटे की दीवार नही होती यदि दीवार होती भी है तो उसकी रक्षा के लिए चारों तरफ गजसेन, अश्वसेना, और पैदल सेना, रहती हैं, इस दुर्ग की रक्षा मनुष्यों के द्वारा की जाती है इस दुर्ग को नर दुर्ग की कोटि में रखा जाता है।

7— वृक्ष दुर्ग— जिस दुर्ग के चारो ओर वृक्ष कटीली झाँडियाँ और लताये हो उस दुर्ग को वृक्ष दुर्ग के नाम से पुकारा जाता है सघन वृक्षों याड के कारण यह दुर्ग आसानी से शत्रु को दिखलायी नही देता कामन्दक नीतिशास्त्र में अनेक प्रकार के दुर्गो की प्रशंसा की गयी है इसमें इस कोटि के दुर्ग भी शामिल है।

''जलान्नायुधन्त्राढ्य धीरयोधैरधिष्ठितम्।
गुप्तिप्रधानमाचार्य्या दुर्ग समनुमेनिरे।।[14]''

8— भूमिगत दुर्ग— भूमिगत दुर्ग वह दुर्ग कहलाता था जिसका निर्माण जमीन के अन्दर होता था अर्थात यह दुर्ग ऊपर से मैदान जैसा दिखाता था और उसके अन्दर अनेक प्रकार के तहखाने या भूधरें हुआ करते थे इन दुर्गो में पहुँचने के लिए गुप्त मार्ग और सुरंगें होती थी इन दुर्गो मे रहने वाले सैनिक अचानक शत्रुओं पर आक्रमण करते थे। तथा आक्रमण करके पुनः भूमिगत हो जाया करते थे। इस प्रकार के आक्रमणों से शत्रु सेना आश्चर्य में पड जाती थी। या तो वह परास्त होती थी या फिर भय के कारण भाग जाती थी सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड मे अनेक दुर्गो मे भूमि गत तहखाने बने हुए है तथा वहाँ पहुँचने के लिए अनेक सुरगे और गोपनीय रास्ते हैं। किन्तु इन दुर्गो की भूमिगत श्रेणी में नही रखा जाता है।

9—सहायक दुर्ग— जिस दुर्ग मे राजा रहता था और जो उसकी प्रशासनिक राजधानी थी वह प्रमुख दुर्ग कहलाता था इसके अतिरिक्त किसी भी नरेश के आधीन जो अन्य दुर्ग हुआ करते थे इन दुर्गो को सहायक दुर्ग कहा जाता था। इन दुर्गो में किलेदार और उसके सहायक पदाधिकारी और उसके सहयोग के लिए निश्चित संख्या में सैनिक रहा करते थे ये लोग शत्रुओं के सन्दर्भ में प्रमुख दुर्ग में सूचनाएँ पहुँचाया करते थे। और वहाँ से सेना भगाकर शत्रुओं का मुकाबला किया करते थे इन दुर्गो के कर्मचारी कर वसूलते थे गुप्तचर का काम करते थे तथा राज्य की रक्षा में सहयोग प्रदार किया करते थे। बुन्देलखण्ड में सहायक दुर्गो की संख्या बहुत अधिक है लगभग 20 मील की दूरी पर एक दुर्ग अवश्य पाया जाता हैं। इस प्रकार सहायक दुर्गो की भूमिका महत्वपूर्ण है।

2— प्रशासनिक दृष्टि से दुर्गों का महत्व— प्रसाशनिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड के दुर्ग महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं सेरपुर सेवढ़ा का दुर्ग सर्वाधिक प्राचीन प्रतीत होता है। अतिप्राचीन युग मे जब यह क्षेत्र शुक्तमती नगरी के नाम से प्रसिद्ध था उस समय यदुवंश के संस्थापक राजा उारिचरि बसु का यहाँ राज्य था महाभारत महाकाव्य में इस वंश का सबिस्तार वर्णन मिलता है। इसी प्रकार दूसरा महत्वपूर्ण दुर्ग कांलिंजर दुर्ग है जिसका वर्णन भी रामायण महाभारत और विविध पुराणों में मिलता है पहले यह दुर्ग कौशल राज्य के आधीन था बाद में यह दुर्ग चेदि राज्य शासकों के आधीन हो गया उसके बाद यह दुर्ग कल्चुरियों चन्देलों मुगलों और मुन्देलों के नियन्त्रण में रहा चन्दोलों के युग में यह दुर्ग चन्देलों की सैन्य राजधानी रहा इसी प्रकार महोबा दुर्ग चन्देल काल में चन्देलों की प्रशासनिक राजधानी के रूप में विख्यात रहा एरण दुर्ग का महत्व गुप्त काल में सर्वाधिक रहा तथा यह दुर्ग उत्तर गुप्तों का प्रशासनिक केन्द्र भी रहा ग्वालियर दुर्ग भी प्रशासनिक दृष्टि से कम महत्व पूर्ण नही रहा इस दुर्ग में रहकर कुश्वाहा और तोमर वंश के शासक अपने राज्य की व्यवस्था देखा करते थे मण्डला और गढ़ा जबलपुर का दुर्ग गौंड वंशीय राजाओं के प्रशासनिक केन्द्र रहे जिसका उल्लेख महत्व पूर्ण ग्रन्थों में उपलब्ध होता है तथा यह स्पष्ट है कि दुर्ग तदयुगीन प्रशासन के महत्व पूर्ण केन्द्र थे दुर्गो से संचालित प्रशासनिक ब्यवस्था कुछ इस प्रकार थी।

राजा— दुर्ग का स्वामी राजा होता था जो दुर्ग के अतिरिक्त सम्पूर्ण राज्य का स्वामी था वह अपने दुर्ग में स्वतः निवास करता था और अपने सहयोग के लिए वैश्यों और सूद्रों को अधिक संख्या में रखता था वहाँ किसान और मजदूरों को भी आश्रय देता था अपनी जनता के लिए विशेष संसाधनों की व्यवस्था करता था वह शत्रुओं से अपनी रक्षा और जनता की रक्षा तथा वह अपराधों पर नियन्त्रण रखता था। और स्वतः की जनता की धार्मिक भावनाओं का आदर करता था समय—सयम पर वह दुर्ग में रहकर सुपात्र व्यक्तियों को धान रत्न तेल, घी, मधु, दूध, दान में देता था वह ब्रह्मणी का पालन करता था और अपराधियों को दण्ड देता था उसका व्यवहार औरतों के साथ सम्मान जनक हुआ करता था।[15]

प्रशासनिक दृष्टि से दुर्ग में रहता हुआ नरेश प्रत्यके गाँव में एक ग्राम अधिपति की नियुक्ति करता था उसके पश्चात दस गाँव का मण्डल बनाकर वहाँ मण्डल अधिकपति की नियुक्ति करता था। उसके पश्चात सौ गाँवों का महामण्डल बनाकर महामण्डल अधिपति की नियुक्ति करता था।

इसके पश्चात वह जिन कर्मचारियों की नियुक्ति करता था उनका भरण–पोषण करने के लिए उनका बेतन देता था इसके अतिरिक्त वह गुप्तचरों की भी नियुक्ति करता था वह राज्य की गति विधियों पर कडी निगाह रखते थे और राजा को हर गतिविधियों के सन्दर्भ में राजा को सूचना देता था गाँव की समस्याओं का समाधान गाँव में ही कर लिया जाता था। इस समय यह माना जाता था कि यदि राज्य में शान्ति रहेगी तो राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से उन्नत करेंगा जनता पर अधिक कर लगाने वाला राजा आलोचना का पात्र माना जाता था राजा का यह भी कर्तव्य था कि वह स्त्रियों की रक्षा करे तथा कोई आर्थिक दृष्टि से बेइमानी करे तो उसे राजा नियमानुसार दण्डित करें।

जनता का भी यह कर्तव्य था कि वह अपने राजा के प्रति वफादार रहे और राजा के द्वारा लगायें करों का भुगतान जनता इमानदारी से करे उस समय करों की व्यवस्था इस प्रकार थी। अपने राज्य के भीतर जितनी दूकाने हो, उनसें उनकी आय का बीसवाँ हिंस्सा राजा को टैक्स के रूप में लेना चाहिए। परदेश के माल मंगाने में जो खर्च और नुकशान बैठता हो, उसका व्योरा बताने वाला बीजक देकर तथा मालपर दिये जाने वाले टैक्स का विचार करके प्रत्येक व्यापारी पर कर लगाना चाहिए, जिससे उसको लाभ होता रहे, वह घाटे में न पडे आय का बीसवाँ भाग ही राजा को लेना चाहिए। यदि कोई राज कर्मचारी इससे अधिक वसूल करता हो तो उसे दण्ड देना उचित हैं राजा शूकधान्य का छठा भाग और शिम्बिधान्य का आठवाँ भाग करके रूप में ग्रहण करें। इसी प्रकार जंगली फल–मूल आदि में देश काल के अनुरूप उचित कर लेना चाहिए। पशुओं का पाँचवां और सुवर्ण का छठा भाग राजा के शाक, तृण, बांस, वेणु चर्म, बाँस कों चीरकर बनायें हुए टोकरें तथा पत्थर के बर्तनों पर और मधु, मांस, एवं घी पर भी आमदनी का छठा भाग कर लेना उचित है।16

इस युग की कर व्यवस्था ब्राह्मणों कों विशेष छूट दी गयी थी कि उनसे कर न लिया जाय इसी प्रकार असहाय और पीडित व्यक्तियों को कर से छूट दी गयी राजा का यह कर्तव्य था कि वह सदाचारी ब्राह्मण की रक्षा करे और प्रजा का पालन करें।

राजपुत्र– दुर्ग में रहने वाले राज्य परिवार से जुडे राजा के पुत्र होते थे जिन्हे राजपुत्र के नाम से पुकारा जाता था आगे चल के यही राजपुत्र राजा की उत्तराधिकारी बनकर देश का शासन चलाते थे इसलिए इनमें योग्य शासक बनने के गुण उत्पन्न किये जाते थे राजा यह कर्तव्य था कि वह

अपने पुत्रो का पालन पोषण करे उन्हे उचित शिक्षा दिलावे मुख्य रूप से धर्म शास्त्र अर्थशास्त्र कामशास्त्र और धनुर्वेद की शिक्षा राजपुत्रों को देने का निर्देश था उनको शिक्षा देने के लिए विश्वासनीय शिक्षक नियुक्त किये जाते थे तथा उनमें मानवीय गुण उत्पन्न किये जाते थे।राजकुमारों की शरीर की रक्षा के लिए कुछ सैनिको की नियुक्ति की जाती थी और जब राजकुमार शिक्षित हो जाते थे। तब उन्हें राजनीतिक अधिकार प्रदान किये जाते थे शिकार करना मध्यपान करना और जुआं खेलना उनके लिये वार्जित था।जिनका सोना ब्यर्थ का घूमना कटुभाषण करना पराई निन्दा करना कठोर दण्ड देना और अर्थ का शोषण करना उनके लिए वार्जित था उनका यह कर्तव्य था कि वे दुर्ग की मरम्मत करायें स्वर्ण आदि कीमती धातुओं की खदानों का पता लगाये काम, कोध, मद, पान, लोभ से सदैव दूर रहें तथा शत्रुओं को जीतकर नगर और राज्य का बिस्तार करें तथा मित्रों की संख्या बढायें तथा राजपुत्र राजा मंत्री जनपद दुर्ग सेना कोष और मित्र को सुदृढ करें शत्रुओं पर विजय पायें और ऐसा कार्य करें जिसकी सब प्रसंसा करें तथा राज्य के कार्य को कुछ समय तक गोपनीय रखें जब तक यह कार्य पूरा न हो जाय संग्राम में पीठ न दिखायें और प्रजा का पालन भली प्रकार करे यही राज पुत्रों का कर्तव्य था।[17]

अमात्य– अमत्य से तात्यपर्य उन ब्यक्तियों से है कि राजा जिनकी नियुक्ति प्रशासनिक कार्यो के लिये किया करता था ये राजा के मंत्री या प्रशासनिक अधिकारी ही हुआ करते थे, राजा स्वतः अकेला रहकर कोई साधन व्यवस्था न ही कर सकता था इसलिए शासन चलाने के लिए उसे विश्वासनीय व्यक्तियों की अवश्यकता पडती थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार अमात्य राज्य के दूसरे महत्व पूर्ण अंग थे। जिनका प्रशासनिक दृष्टि से महत्व था बिना इनके राज्य प्रशासन सम्भव नही था।

सहाय साध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते।
कुर्वीत सचिवास्तस्मान्तोषां च श्रृणुयान्मतम्।।[18]

आमात्य और मन्त्रीगण मुख्य दुर्ग और सहायक दुर्गो में रहा करते थे यहाँउनके आवास के लिये भवन अथवा महल बनवाये जाते थे। ये महल रारा के महल से कुछ छोटे होते थे इन महलो एवं भवनों में उनके कार्यालय भी होते थे ये अमात्य विभिन्न श्रेणियों के होते थे तथा इनके अधिकार में अलग–अलग विभाग हुआ करते थे बडा अमात्य छोटे अमात्यो पर नियन्त्रण ररखता था किसी बाहरी ब्यक्ति को अमात्य नही बनाया जाता था जो ब्यक्ति योग्य होता उन्ही को अमात्य नियुक्ति किया जाता था।

अमात्यों की योग्यता के सम्बन्ध में आचार्यों के भिन्न–भिन्न मत हैं। आचार्य भरद्धाज का मत है। कि अमात्यों की नियुक्ति राजा के द्वारा उसके सहपाठियों मे से होनी चाहिए, क्योंकि उनकी पवित्रता, कार्यशक्ति और विश्वास पात्रता का पूर्व में ही ज्ञान होता है।[19] आचार्य का पराशर का मत है,'' कठिन संकट के समय अपने प्राणो की बाजी लगाकर कार्य करने वालों को अमात्य करना चाहिए।[20] आचार्य पिशुन(नारत) का मत है कि बुद्धिमान व्यक्ति को ही अमात्य के पद पर नियुक्त करना चाहिए।[21] आचार्य वातव्याधि को मत है। कि नीति शास्त्र में निपुण व्यक्तियो को ही अमात्य नियुक्ति करना चाहिए।[22]

सभी अमात्यो को विद्धान और कर्मठ होना चाहिए और इन्हे बुद्धि देश काल परिस्थत के अनुसार कार्य करना चाहिए राजा अमात्यों की सलाह न मानकर स्वतन्त्र है यह उनकी कार्य क्षमता के अनुसार उन्हे कार्य प्रदान करें और अक्षम होने पर उन्हे कार्य मुक्त कर दे। अनेक दुर्गो में ऐसे स्थल उपलब्ध हुए है। जहाँ राजा अपने सहयोगियो अमात्यो के साथ बैठकर प्रशासनिक कार्य सम्पन्न करता था। कांलिजर, महोबा, और ग्वालियर दुर्ग, में ऐसे स्थलो के अवशेष आज भी है।

कोष या खजाना— प्रशासन को संचालित करने के लिए राजकोष को महत्वपूर्ण स्थान था किसी भी राज्य का संचालन बिना धन के सम्भव नही है। राजा के पास यह धन कर और उपहार से उपलब्ध होता था। जब कोई नरेश अपने शत्रु पर विजय प्राप्त करता था। उस समय भी उसे यह कोष अतिरिक्त धन के रूप में मिल जाता था राजा इस धन को रखने के लिए एक कोषागार का निर्माण कराता था जिसका संरक्षण कोषाध्यक्ष के माध्यम से किया जाता था कोषाध्यक्ष इस धन का लेखा जोखा रखता था। तथा उसके ऊपर अमात्य और राजा इस कोष पर अपना नियन्त्रण रखते थे। आपत्तिकाल में यह धन जमीन के अन्दर गोपनीय ढंग से गाढ दिया जाता था। विविध शास्त्रो द्वारा राजा को यह निर्देश था कि वह प्रजा को पीडा पहुँचाकर किसी प्रकार का धन एकत्र न करे कौटिल्य ने राजकोष के सम्बन्ध में यह लिखा है।

कोशमकोशः प्रत्युत्पनार्थकृ छः संग्रहीयात्''
तथा जनपद महान्तमल्य प्रमाणं वा देवमात्रकं प्रभूत धान्यम्''
धान्यस्याशं तृतीयं चतुर्थं वा याचेत''[23]

अर्थात कोष के कम होने पर अथवा अचानक अर्थ कष्ट उपस्थित होने पर राजा कोष को संचय कर सकता है। परन्तु राजा को प्रजा प्रजा की अनुमति

से कोष का संचय करना चाहिए।

कौटिल्य के अनुसार राजकोष ऐसा होना चाहिए जिसमें पूर्वजो की तथा अपने धर्म से अर्जित जीविका का संचयन हो, इस प्रकार धान्य सुवर्ण ,चाँदी नाना प्रकार के बहुमूल्य रत्न तथा हिरण्य से युक्त कोष दुर्भिक्ष एंव आपत्ति के समय प्रजा की हर प्रकार से रक्षा कर सकता है। इस प्रकार कौटिल्य ने उक्त गुणो से युक्त कोष को राज्य की सत प्रकृतियो में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। प्राचीन युग में राजकोष की सुरक्षा सुद्रढ़णा पूर्वक की जाती थी।

न्याय व्यवस्था– दुर्ग में एक न्यायलय भी होता था जहाँ शास्त्र द्वारा समर्थित विधियो के अनुसार राजा और अन्य न्यायाधीश जनता की फरियाद सुनते थे। और न्यायाशास्त्र के अनुसार न्याय किया करते थे। अनेक दुर्गो को ऐसे स्थल उपलब्ध हुए है। जहाँ राजा का दरबार लगा करता था और उस दरबार में दरबारियों के सम्मुख न्याय किया जाता था कभी –कभी इस न्याय व्यवस्था के लिये योग्य ब्राम्ह्यणो को नियुक्ति किया जाता था किसी भी विवाद का निपटारा अन्तिम रूप से राजा के द्वारा ही किया जाता था। किन्तु विद्वान ब्राम्ह्यण को न्याय समिति की सभापति बनाया जाता था।[24]

प्राचीन न्याय व्यवस्था राज्य व्यवस्था के अनुसार थी न्यायाधीश के रूप में उत्कृष्ट विद्वान की नियुक्ति की जाती थी तथा न्यायाधीश राजा के नियन्त्रण से मुक्त रहता था ये न्यायालय कई स्तर के होते थे तथा इनमें दीवानी और फौजदारी दोनो प्रकार के मुकदमें दायर किये जाते थे वादी और प्रतिवादी दोनो के साक्ष्यों को लिपिवद्व कि जाता था। और उन्ही के अनुसार निर्णय सम्भातित था साक्ष्यो के सम्बन्धो में कोटिल्य को यह कथन महत्वपूर्ण है।

स्वामिनो भृतयानामृत्विचार्या शिष्यिणां। मातापितरौ
पुत्राणा चानिग्रहेण साक्ष्य कुर्य।[25]

मुकदमो का निर्णय प्रत्यक्ष साक्ष्य अपराध की स्वीकृति वादी प्रतिवादी से बहस के बाद किया जाता था और यह ध्यान रखा जाता था कि निर्दोष व्यक्ति को दण्ड का भागी न बनना पड़े क्योंकि निर्दोष व्यक्ति को दण्ड देने से राजा अपयस का भागीदार बनता था। इस समय निम्नप्रकार के दण्ड दिये जाते है।

1–शारीरिक दण्ड़

2–आर्थिक दण्ड़

3–कारागार या जेल

उपयोक्त दण्ड विधान में विविध प्रकार की यातनाएँ अथवा प्राणदण्ड सम्पत्ति की,कुडकी एवं अर्थ दण्ड तथा कठोर कारावास की सजा दी जाती थी अनेक दुर्गो में ऐसे स्थल उपलब्ध हुए है जहाँ ब्यक्तियों को शारीरिक यातनाएैं और मृत्यु दण्ड दिया जाता था ऐसे स्थलो को फाँसी घर के नाम से पुकारा गया है। अनेक दुर्गो में जेल के अवशेष भी उपलब्ध हुए है जहाँ अनेक कोठरियाँ थी जिनमें अपराध करने वाले व्यक्तियों और शत्रुओं को बन्द करके रखा जाता था राजा यह अपना कर्तव्य समझता था कि वह प्रजा के साथ न्याय करे और असाधियो को कठोर दण्ड दे इनकी न्याय व्यवस्था में कोई कमी न रहे।

अग्नि पुराण में भी दण्ड व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है यह कोई व्यक्ति राजा से झूठ बोलता है और किसी व्यक्ति का नाम चोरी के लिये लगाता है तो राजा का यह कर्तव्य है कि वह झूठ बोलने वाले व्यक्ति से दूना अर्थ दण्ड वसूले यदि कोई व्यक्ति झूठी गवाही देता है तो उसे कठोर दण्ड देना चाहिये यदि कोई किसी की धरोहर हडप लेता है और रूपया उधार लेकर वापस नही देता तो वह भी दण्ड का भागी है यदि कोई व्यक्ति ब्राह्ण का अपमान करता है और गाय की हत्या करता है। यदि कोई स्त्री से बिना अनुमति के व्यभिचार करता है तो वह भी दण्ड का भागी है। यदि कोई व्यक्ति रक्षा के काम मे नियुक्त है और वह किसी व्यक्ति से रिसवत लेता है तो वह भी दण्ड का भागी है। यदि कोई व्यक्ति वेवजह झगडा करता है डाणी मार कर कम तौलता है जाल साजी करता है और ग्राहको को नुकसान पहुँचाता है वह भी दण्ड का भागी है। यदि कोई औरत पति को आग लगाकर या जहर देकर मारे गुरु ब्राह्मण और सन्तान की हत्या करें तो उस स्त्री के आँख कान नाक और ओंठ कटवाकर बैल की पीठ में चढ़ाकर राज्य के बाहर निकाल देना चाहिए यदि कोई व्यक्ति खेत घर गाँव जंगल नष्ट करें तथा राजा की पत्नी समागम करे तो उस व्यक्ति को आग में जला देने योग्य है जो व्यक्ति राजाज्ञा को घटा–बढ़ाकर लिखाता है तथा परि स्त्री ग्रामी पुरूषों और चोरो को बिना दण्ड किये छोड़ देता है वह व्यक्ति दण्ड का अधिकारी है जो व्यक्ति राजा के आसन पर बैठे और पराजित होकर भी अपने को अपराजित माने तथा जो व्यक्ति अनामन्त्रित व्यक्ति को बुलाकर लाये वह भी दण्ड का भागी है यदि कोई अपराधी किसी कर्मचारी के हाथ से छूटकर भाग जाता है तो वह भी दण्ड का भागी है प्राचीन काल में इसी विधि के अनुसार न्याय होता था अनेक दुर्गो में राज दरबार जेल और शारीरिक दण्ड स्थल उपलब्ध होते है उनसे इनकी पुष्टि होती है।[26]

3– सुरक्षा की दृष्टि से दुर्गों का महत्व– राष्ट्र की सुरक्षा राष्ट्र के लिए सबसे महत्वपूर्ण विषय रहा है जब से राज्य का उदय हुआ और उस राज्य में रहने वाले व्यक्तियों ने राज्य की बागडौर कुछ विशिष्ट व्यक्तियों और समूह को सौपी उसी समय से राज्य व्यवस्था से जुड़े व्यक्तियों का यह पुनीत कर्तव्य हो गया था कि वे राज्य की रक्षा सुदृढ़ता से करें अब प्रश्न उठता है कि जब समस्त मानव एक है और एक ही परमात्मा की सन्तान है तो उनमें भाई चारे की भावना होनी चाहिए वयमनुष्य और शत्रुता की भावना का उदय किन परिस्थितयों में हुआ तथा संघर्ष ने कब क्यों और कैसे जन्म लिया यह सब विचारणी विषय है क्या इनका कोई समाधान है और समाधान है तो क्या है यह सब विचारणीय विषय है।

प्राचीन ग्रन्थों का अवलोकन करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकलता है कि जब किसी व्यक्ति अथवा समूह का स्वार्थ सिद्ध नही होता उस समय वह संघर्ष प्रतिशोध की भावना से करता है इन्हीं उद्दश्यों से देवासुर संग्राम रामरावण युद्ध महाभारत युद्ध तथा अन्य संघर्ष हुए इन संघर्षो में हजारो निर्दोष व्यक्ति मारे गये उनकी सम्पत्ति नष्ट हुई युद्धों के पश्चात भी कोई परिणाम न निकला उसके पश्चात भी युद्ध निरन्तर हुए और आज भी हो रहे है।

जब कोई नरेश अपनी शक्ति का विस्तार करता है और मध से चूर होकर किसी संगठित सेना का सृजन करता है उसे अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित करता है उस समय वह अपने मित्रों की सलाह से मनोरथो को पूर्ण करने के लिए राजय विस्तार की योजना बनाता है। उस राज्य विस्तार के अन्तर्गत वह अनेक राज्यों में आक्रमण करता है वहाँ के नरेशो को परास्त करता है कभी–कभी उनसे पराजित भी होता है। नरेशो के अतिरिक्त राज्य से बगावत करने वाले व्यक्ति लूटपाट और डकैती डालने वाले व्यक्ति हिंसा पैदा करने वाले व्यक्ति एक समस्या सुरक्षा की पैदा कर देते है। इसीलिए नरेश प्रजा की रक्षा करता है और उसकी रक्षा के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न करता है।

यथा– *स राजा पुरूषो दण्डः स नेता शासिता च सः।*
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः।।
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।।

वही दण्ड राजा है, वही पुरूष हे, वही नेता और शासक है और वही चारो आश्रमों के धर्म का प्रतिभू (जामिन) कहा गया है। दंड सभी

प्रजाओं का शासन करता है, दण्ड ही सबकी रक्षा करता है, दण्ड ही सोते हुए को जगता है। इसलिए ज्ञानी पुरूष दण्ड को ही धर्म कहते है।[27]

प्राचीन काल में ज्यातदातर युद्ध स्थल मार्ग से होते थे वायु मार्ग से कोई युद्ध की आसंका नही थी इसलिए स्थल मार्ग को सुरक्षित रखने के लिए दुर्गो का निर्माण किया गया ये दुर्ग राजा की राजधानी समान्तों की राजधानी तथा प्रशासको के प्रशासन स्थल में निर्मित कराये गये तथा इन दुर्गो के अन्दर राजा एवं प्रशासको के परिवार सैनिक प्रशासनिक अधिकारी और उनके आश्रित व्यक्ति रहा करते थे। सम्पूर्ण आवासीय बस्ती को पत्थर की सूदृढ़ दीवार से घेर दिया जाता था। दुर्ग में प्रवेश के लिए उस पत्थर की दीवार में अनेक द्वार बनाये जाते थे तथा दुर्ग के अन्दर अनेक प्रकार के भवन धर्मस्थल और भण्डार ग्रह होते थे। दुर्ग राज्य के प्रति रक्षात्मक तथा आक्रमण शक्ति दोनो का प्रतीक है। दुर्ग का सामरिक दृष्टि से एक राष्ट्र हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। कौटिल्य के अनुसार दुर्ग कोष और सेना की रक्षा करता है, आपत्ति के समय यह जनपद का आश्रय स्थान है, इससे सैन्य शक्ति एवं मित्र सेना की व्यवस्था उचित प्रकार से हो सकती है। कौटिल्य का कहना है कि जिनका दुर्ग सुदृढ़ है उन्हें सरलता से पराजित नही किया जा सकता।[28]

दुर्ग मे रहने वाले व्यक्तियों की सुरक्षा और दुर्ग की व्यवस्था दोनो का महत्व था तथा राजा का यह परम कर्तव्य था कि वह दुर्ग की रक्षा करें दुर्ग की रक्षा का सम्पूर्ण कार्यभार राज्य का प्रधान सेनापति देखता था वह सम्पूर्ण सेना का नायक भी था तथा उसके आधीन चतुरंगणी सेना रहा करती थी तथा यह सेना उसी के निर्देशन में दुर्ग और राष्ट्र रक्षा किया करती थी। राजा नियन्त्रण सेनापति पर होता था सेनापति वह व्यक्ति होता था जो युद्ध कला में निपुण था युद्ध और सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाना जानता था उसे निम्नलिखित कार्य करने पढ़ते थे कौटिल्य अर्थशास्त्र में सेनापति के कार्यो का वर्णन करते हुए लिखा गया है।

स्वभूमि युद्धकाल प्रत्यनीकमभिन्दनं भिन्नसंधानं
हतभेदन भिन्न वधं दुर्गवधं यात्राकालं च पश्चेत।[29]

अर्थात् सेनापति के यह आवश्यक कार्य है कि वह अपनी भूमि युद्ध के समय शत्रु की सेना शत्रु के व्यूह तोड़ना बिखरी हुई सेना को एकत्रित करना एक दूसरे की रक्षा हेंतु एकत्रित शत्रु बल को तोडना शत्रु के दुर्ग को तोडना और यात्रा के समय आदि पर अच्छी तरह विचार करे एवं फिर उसके अनुसार कार्य करे।

सैनिको की शिक्षा, अवस्थान, अभियान, आक्रमण, आदि विषयक सूर्यध्वनि, ध्वजा–पताका, व्यूह–रचना आदि के संकेत मे पारंगत करने की शिक्षा सैनिको को प्रदान करना भी सेनापति का कर्तव्य है।

राज्य की सुरक्षा का समस्त दायित्व सेना का होता है तथा सेना का संचालन सेनापति पर निर्भर करता है। अतः सेनापति को योग्य, वीर, कुशल होना चाहिए। उसे समय–समय पर अपने सैनिको को नवीन युद्ध–कौशल का प्रशिक्षण प्रदान करते रहना चाहिए।

प्राचीन काल मे दुर्ग और राज्य की सुरक्षा व्यवस्था निम्न प्रकार से होती थी।

1–गुप्तचर– प्राचीन काल में राज्य की सुरक्षा व्यवस्था का भार राज्य के गुप्तचरों पर बहुत अधिक था ये लोग गोपनीय ढंग से राज्य की बस्तु स्थित का पता लगाते थे तथा सुरक्षा व्यवस्था के लिए तदयुगीन नरेशो को उचित सलाह दिया करते थे। रामायण और महाभारत जैसे ग्रन्थों में गुप्तचरों का उल्लेख मिलता है ये गुप्तचर एक दूसरे पक्ष की गोपनीय सूचनांए सेनापति को दिया करते थे।

प्रशासनिक व्यवस्था में गुप्चरों का महत्वपूर्ण स्थान था राजनीतिक समस्यायें अन्तराष्ट्रीय नीतियाँ गुप्चरों की सूचनाओं पर निर्भर भी और उन्हीं के निर्देशो पर बनती थी। इस समय स्थायी गुप्तचर और भ्रमणशील गुप्तचर नियुक्त किये जाते थे स्थायी गुप्तचरों को पांच श्रेणियों में विभक्त किया है।

1– कापाटिक 2– उदास्थित
3– गृहपतिक 4– वैदेहक
5– तापस

इस कोटि के गुप्तचर विभिन्न माध्यमों से राजा को गोपनीय सूचनांए देते थे तथा राजा समय–समय पर इन्हें सम्मानित भी करता रहता था।

'' अल्पलाभमाग्निदाहं चोरभयं दूष्वधं तुष्टदान विदेश प्रवृत्ति।
मानमिदमधारनी व भविष्यतीदे राजा करिष्यातीति''
तदस्यय गूढाः सन्त्रिणश्च संपादयेयुः । 30

दूसरे प्रकार के गुप्तचर भ्रमणशील गुप्तचर कहलाते थे इनकी निम्न कोटियां होती थी।

1– सत्री 2– तीक्ष्ण
3– रसद 4– परिव्राजिका

उपरोक्त कोटि के गुप्तचर भ्रमण करके गुप्त सूचनांए राजा को दिया करता था जिनकी सूचना के आधार पर राजा भविष्य के लिये सचेत हो जाता था। कुछ अन्य प्रकार के गुप्तचर भी हुआ करते थे जिन्हें उभय वेतन भोगी गुप्तचर कहा जाता था। ये लोग क्षद्म भेष में रहकर दूसरे राज्य में नौकरी कर लेते थे और वहीं की सूचनाएँ यहाँ के नरेश को दिया करते थे वाह्य शत्रुओं से रक्षा करना इन्हीं गुप्तचरों की वजय से सम्भव हो पाता था।

2— विषकन्या— यह भी एक प्रकार की गुप्तचर थी जो कन्या बचपन से सुन्दर हुआ करती थी उसका लालन पालन विष खिलाकर किया जाता था इनका उपयोग राजाकूटि निति के अन्तर्गत शत्रु का वध कराने के लिये किया करता था बुन्देलखण्ड के अनेक दुर्गों में विषकनओं रहा करती थी तथा समस्त गुप्तचर निम्न कार्य किया करते थे।

1—गुप्तचर उच्च अधिकारियों और समस्त राज्य कर्मचारियों के आचरण की शुद्वता का पता लगाकर राजा को सूचित करता है।

2—यदि कोई कार्मिक विद्रोही प्रकृति का हो तो गुप्तचर इसकी सूचना तत्काल राजा को देता है।

3—गुप्तचर ऐसे षड़यन्त्रों की सूचना राजा को देता रहता है जो प्रजा में राजा के विरूद्व बनाये जाते।

4—जनता के आचरण की शुद्वता एवं शासन के प्रति उनके मनोभावों की सुचना गुप्तचर राजा को देता रहता है।

कौटिल्य के शब्दों मे "राज्य में कर्मचारियों और प्रजा की शुद्वता जानने हेतु गुप्तचरो की नियुक्ति की जायें। राजा धन और सम्मान के द्वारा गुप्तचरों को सदा सन्तुष्ट रखें।[31]

इसके अतिरिक्त अन्य गुप्तचर भी होते थे जिन्हे अपनी सूचनाए नरेशों को देना पड़ती थी।

संस्थानामन्ते वासिनः संक्षालिपिभिश्चार संचार कुर्यः
न चान्योन्यं संस्थास्ते वा विद्युः।[32]

राज्य की सुरक्षा के लिये एक सुसंगठित गुप्तचर व्यवस्था अति आवश्यक है। आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व कौटिल्य को यह अनूभूति हो गी थी कि प्रत्येक राज्य दूसरे राज्य के साथ विस्तृत स्तर पर गुप्तचर संबन्ध स्थापित करता है।

3—दुर्गरक्षक सेना— प्रत्येक दुर्ग की रक्षा करने के लिये दुर्ग रक्षक सेना हुआ करती थी यह दुर्ग के परिकोटे के चारों ओर और रहा करती थी तथा उनके पास दुर्ग रक्षा के लिये अनेक प्रकार के अस्त्र—शस्त्र हुआ करते

थे ये सैनिक दुर्ग की प्राचीर से शत्रुओं को देख लिया करतें थे और दुर्ग रक्षा के लिये शुत्रुओं से युद्व किया करते थे यह सेना सेनापति के अतिरिक्त कोटपाल के नियन्त्रण मे रहा करती थी और उसी के निर्देशन मे कार्य किया करती थी इस सेना का परम् उद्वेश्य दुर्ग की रक्षा करना था। सैनिको को अस्त्र–शस्त्र पूर्ति के लिये आयुधागारध्यक्ष होता था यह पदाधिकारी दुर्ग निर्माण आकमण हेतु विनाशक यन्त्र और अस्त्र–शस्त्र और उनके कलपुर्जे सैनिको को प्रदान किया करते थे ये इन अस्त्र–शस्त्रों का निर्माण भी शिल्पियों से कराया करते थे और अस्त्रों की रक्षा करते थे इसके अतिरिक्त पैदल सेना का अलग अधिकारी होता था जिसे पत्यध्यक्ष कहा जाता था जिसके ऊपर दुर्ग और राज्य रक्षा दोनो का अधिकार था।

4– द्वार रक्षक– दुर्ग में प्रवेश करने के लिए अनेक द्वार हुआ करते थे ये द्वार दुर्ग की प्राचीर में अनेक दिशाओं में बने होते थे तथा ये अनेक मार्गो से जुडे होते थे दुर्ग के अन्दर अनेक प्रकार का समान आना–जाना इन्ही द्वारों के माध्यम से सम्पन्न हो पाता था। इन द्वारो में सुदृढ़ दरवाजे भी लगे होते थे जो आपत्ति कालीन परिस्थितियों में बन्द कर दिये जाते थे इन द्वारों की रक्षा के लिये विशेष सैनिक गुप्तचर और द्वारपाल नियुक्त रहते थे। तथा इनके आधीन प्रहरी भी हुआ करते थे जो दुर्ग में प्रवेश करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की सुरक्षा की दृष्टि जाँच परताल करतें थे तथा ये प्रवेश द्वारों में विविध प्रकार के अस्त्र–शस्त्रों में लैस रहते थे आपत्य काल की सूचना राजा को दिया करते थे ।

5–नागरिक– यह नगर का प्रबन्धा करने वाला अधिकारी था तथा नागरिक सुरक्षा का उत्तर दायित्व इसके उपर होता था दुर्ग में रहने वाले समस्त नागरिक इसके आधीन थे और उनकी सुरक्षा व्ययवस्था उसी के आधीन थी कहीं–कहीं इसे गोप भी कहते थे नगराध्यक्ष अर्थात नागरिक नगर का स्वामी होता हैं। उसका कर्तव्य है कि वह सदैव नगर के नदी, कुयें, तालाब स्थल, भाग सुरंग परकोटा खाई आदि की उचित देकभाल करता रहे। खोएं हुये आभूषण, सामाग्री एवं प्राणियों को नागरिको को उस समय तक रक्षा करनी चाहिये, जब तक उनके स्वामी का पता नही चल जाता ।

कारागृह मे व्ययवस्था बनाये रखने का दायित्व भी नागरिक का है। नागरिक को राज्य राजा की वर्ष गांठ,युवराज का अभिषेक होने पर एवं नयें देश को जीत लेने पर कैदियो को छोड देना चाहिये। इस प्रकार नगर के समस्त कार्यो एवं व्यवस्था के प्रति नागरिक उत्तर दायी होता हैं।[33]

6—प्रहरी या प्रतिहारी— दुर्ग रक्षा में इन कन्यों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता था मुख्य रूप से राजप्रसादों रनिवासो (रंगमहल) राजदरबारों मन्त्रियों के आवास स्थलो भण्डार गृहों कारागारों और धर्म स्थलों की सुरक्षा के लिये विशेष प्रकार के कर्मचारी नियुक्ति किय जाते थे। इन्हें प्रहरी (पहरेदार) के नाम से पुकारा जाता था ये महत्वपूर्ण स्थलों की सुरक्षा व्यवस्था देखते थे तथा आपत्तिकाल में विशिष्ट सूचनांए राजा और अन्य अधिकारियों को दिया करते थे। कभी—कभी गुप्तचर इनकी कार्य प्रणाली पर निगरानी रखते थे।

7—अंगरक्षक— राजा, राजपुत्र, राजमहसी, अमात्यों, या मन्त्रियों तथा महत्वपूर्ण अधिकारियों की शरीर की रक्षा के लिये अंग रक्षक नियुक्त किये जाते थे ये 24 घंटे महत्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ रहा करते थे तथा ये लोग जहाँ भी जाया करते थे अंगरक्षक उनके चारों ओर रहते थे दुर्ग के अतिरिक्त युद्ध अथवा आपत्तिकाल में भी अंगरक्षक महत्वपूर्ण व्यक्तियों की रक्षा करते थे दुर्ग की रक्षा व्यवस्था में उनका महत्वपूर्ण योगदान था तथा उन्हें राज्य से वेतन उपलब्ध होता था इस प्रकार दुर्ग की रक्षा और उसमें निवास करने वाले व्यक्तियों की रक्षा का भार इनके ऊपर होता था।

8—वैद्य या चिकित्सक— दुर्ग रक्षा में वैद्यो एवं चिकित्सकों का महत्वपूर्ण स्थान था ये लोग महत्वपूर्ण व्यक्तियों की स्वास्थ्य रक्षा रोगों का उपचार किया करते थे। तथा समय—समय पर खाये जाने वाले भोजन और जल का परीक्षण भी किया करते थे ताकि यह पता लग जाय कि किसी पदार्थ में विष तो मिश्रित नही किया गया है कभी—कभी शत्रु सेना को मारने के लिये खाद्य एवं पेय पदार्थो मे जहर मिलाने के लिये वैद्यो की सहायता ली जाती थी।

4— दुर्ग एवं सैन्य व्यवस्था— बुन्देलखण्ड के दुर्ग अपनी रक्षा व्यवस्था के लिये सेना के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। इस सेना का संगठन राजा और उसके प्रशासनिक अधिकारी मिलकर किया करते थे। सैन्य संगठन शासन द्वारा नियुक्त व्यक्तियों का वह समूह है जो राज्य और राष्ट्र रक्षा के लिये अस्त्र—शस्त्रों से सुसज्जित होकर रक्षा के कार्य किया करता था इसका कार्य बाहरी शस्त्रुओं से रक्षा करना और उनसे युद्ध करना युद्ध में शस्त्रुओं को परास्त करना आन्तरिक विद्रोह को नष्ट करना और सम्राज्य विस्तार के लिये किये गये अभियान में शत्रु राज्यों पर आक्रमण करना और उन पर विजय प्राप्त करना होता था। जब राज्य में कोई संघर्ष सत्ता के लिये उठ खड़ा हो उस समय सेना महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। समय—समय पर

उत्तराधिकारी के लिये जो संघर्ष होते थे। उस समय सेना निर्णायक भूमिका निभाती थी।

अग्निपुराण के अनुसार युद्ध के सन्दर्भ में राजा को यह निर्देश दिया गया है जब उसके आधीन किसी सामन्त को पराजित कर दिया जाय तो उसके विरूद्ध युद्ध करने की आज्ञा प्रदान करे इसके साथ ही साथ यह भी अन्दाज लगाना चाहिए कि उसके सैनिक बलवान है या नही और सैनिकों की संख्या उससे अधिक है या नहीं जब शत्रु के राज्य में अराजकता हो वह दैवी आपदाओं से घिरा हो और सेना उत्साहित हो यदि युद्ध वर्षा के ऋतु में किया जाना हो तो उस स्थित में हाथियों और पैदल सेना की संख्या अधिक होना चहिए यदि युद्ध शिशिर ऋतुओं में किया जाय तो इस स्थित में रथ और घोड़ो की संख्या अधिक हो यदि युद्ध बसन्त और सरद ऋतु में प्रारम्भ किया जाय तो चतुरंगणी सेना युद्ध के लिये नियुक्त करे तभी विजय की उपलब्धि हो सकती है। इसके अतिरिक्त यदि शत्रु अपने राज्य में आक्रमण करदे और दुर्ग शस्त्रुओं से घिर जाय उस स्थित में यह सेना का कर्तव्य है कि वह सम्पूर्ण शक्ति लगाकर शत्रुओं से अपनी रक्षा करें।[34]

प्राचीन काल में सैन्य संगठन निम्न प्रकार से होता था सेना को सुसंगठित रखने के लिये सेना का विभाजन निम्न प्रकार से किया जाता था उस युग में इसे बल अथवा शक्ति के नाम से पुकारा जाता था।

1— मौल बल— यह मूल स्थान अर्थात राजधानी की रक्षा करने वाली सेना होती है। यह सेना स्वामिभक्त होने के कारण शत्रुओं द्वारा फोड़ी नहीं जा सकती है।

2— भृतक बल— यह सेना सवैतनिक होती है।

3— श्रेणी बल— यह अनेक प्रकार के कार्यों में नियुक्त अस्त्र–शस्त्र निपुण सेना होती है।

4— मित्र बल— मित्र राजाओं द्वारा दी गयी सेना को मित्र कहते हैं।

5— अमित्र बल— शत्रु राजा द्वारा प्राप्त सेना को अमित्र बल कहते हैं।

6— आटवीबल— इस बल में अटवीक सेना होती हैं।

मौलभृतकश्रेणीमित्राटमित्रावीबलानं समुद्धानकालः।[35]

1— मौलबल— मौलबल उस सेना को कहते थे जो राजधानी में रहा करती थी तथा जिसका दायित्व राजधानी की रक्षा करना था यदि यह सेना अधिक हो राजा उसे युद्ध में ले जा सकता है अथवा राजा को यह सम्भावना हो कि मौल बल उसके विरूद्ध बगावत कर सकता है। कि उत्तम यही होगा कि राजा इसे युद्ध में अपने साथ ले जाय इस समय ऐसे

स्वामीभक्त सैनिको की आवश्यकता पड़ती है जो शत्रु सेना में फूट डालकर उसे परास्त कर सके यदि राजा को यह विश्वास हो कि उसकी सेना युद्ध में हार जायेगी तो उस स्थित में मौलबल की उपयोगिता बढ़ जाती है।[36]

2— भृतकबल— यदि राजा यह समझता है कि वह युद्ध में निश्चित ही विजय प्राप्त करेगा उस समय वह युद्ध के लिये भृतक बल को ले जा सकता है इस बल में घोड़ो की संख्या अधिक होती है तथा इनके बल पर शत्रु स्थल तक पहुँचने में आसानी होगी और समय भी कम लगेगा राजा को यह भी विश्वास होना चाहिए कि शस्त्रु सेना के गुप्तचर उसकी सेना में प्रवेश न करेगें और सेन में फूट नही डालेगे जब शत्रु सेना को विशेष नुकसान पहुँचाना हो उस समय इस बल का सहारा लिया जाना चाहिए।

3— श्रेणीबल— जब राजा को यह विश्वास हो कि उसका श्रेणी बल काफी शक्तिशाली है और उसे राजा की राजधानी में लगाया जा सकता है तो वह उसे युद्ध में भी ले जा सकता है जहाँ कम समय में पहुँचना हो और श्रेणी बल युद्ध करने के योग्य हो तथा वह मन्त्र प्रकाश युद्ध के माध्यम से युद्ध कर सके उस समय श्रेणी बल का सहारा लिया जा सका।

4—मित्रबल— जब राजा को यह विश्वस हो कि उसका मित्र मण्डल शसक्त हैं और वह युद्ध स्थल पर पहुँचना हैं उस समय वह प्रकाश युद्ध के लिए मित्र सेना का प्रयोग कर सकता हैं सर्वप्रथम मित्र सेना को युद्ध में लगाये तथा यह विश्वास करें कि विद्रोह करने वाली सेना को वह मित्र सेना के माध्यम से समाप्त करवा सकता है।

5—अमित्रबल— यदि कोई शत्रु सेना उसके राज्य में आक्रमण करदे उस स्थिति में राजा को कूटनीति का सहारा लेते हुए अपने दूसरे शत्रु को भड़काकर वर्तमान शत्रु को पराजित करने की योजना बना सकता है इस योजना के अन्तर्गत दो शत्रु आपसे में भिड़ जायेंगे और राजा कुत्ते और सुअर की लड़ाई में स्वतः लाभ उठा लेगा। यदि शत्रु की सेना अधिक बड़ी है और वह किसी प्रकार नरेश को मदद देने को तैयार हो गयी है तो नरेश उसे सदैव उस अपने साथ रखे और उसे नाराज न होने दे जब युद्ध समाप्त हो जाय उस स्थिति में शत्रु सेना को दूसरे शत्रु के मुकाबले भिड़ादे ऐसा करने से स्वतः की सेना नष्ट होने से बच जायेगी।

6—अटवीबल— यह सेना जंगल में रहने वाले व्यक्तियें की सेना है इस सेना का सहारा राजा को बहुत सोच समझकर लेना चाहिए क्योंकि यह सेना युद्ध कला में निपुण नही होती इस सेना का सहारा केवल पथ पृर्शाक के लिये लेना चाहिए साथ ही साथ अस्त्र—शस्त्र ढ़ोने का कार्य श्री इस सेना से

लेना चाहिए जब शत्रु अटविक सेना को लेकर युद्ध के मैदान में उतरे उस समय नरेश को भी अटविक सेना का सहारा लेना चाहिए और शत्रु से युद्ध कराना चाहिए।[37] इन छः विभागों के अतिरिक्त सेना का एक और विभाग भी था।

औत्साहिकबल— सेना के 6 अंगो के अतिरिक्त एक और बल भी था जिसे औत्साहिक बल के नाम से पुकारा जाता था यह कोई संगठित सेना का अंग नही था बल्कि भिन्न–भिन्न देशो में रहने वाले सैनिक जिनका कोई नायक नही था अथवा भिन्न–भिन्न देशो में लूटपाट करने वाले व्यक्तियों का समूह अवसर पढ़ने पर राजा को सहयोग देने को तैयार हो जाता था तो औत्साहिक बल के नाम से पुकारा जाता था। इसके दो भाग थे।

1—भेद— जो सैनिक या लूटपाट करने वाले व्यक्ति दैनिक भत्ता और मासिक वेतन लेकर शत्रु के राज्य में लूटपाट करते थे और राजा की आज्ञा के अनुसार कार्य करते थे उन्हें भेद कहा जाता था।

2—अभेद्य— किन्तु औत्साहिक सेना के ऐसे सैनिक जो एक ही देश एक ही जाति और एक ही व्यवसाय के होते थे उन्हे अभेद्य कहा जाता था इन्हे वेतन और प्रलोभन के माध्यम से फोड़ा नही जा सकता था इसलिए नरेश ऐसी सेना को संगठित करता था और उनका ध्यान रखाता था।

नरेश के पास सात प्रकार की सेनायें होती थी वह शत्रु सेना के विजय प्राप्त करने के पश्चात आटविक सेना को नियमित वेतन न देकर उसके ओढ़ने बिछाने और पहनने के वस्त्र उसे प्रदान किये जाते थे और शत्रु सेना से उपलब्ध लूटा हुआ समान इन सैनिक में वितरित कर दिया जाता था।

तेषां कुप्यभृतममित्राटवीबलं विलोपभृतं वा कुर्यात्।[38]

प्राचीन काल में सेना का संगठन इस प्रकार होता था।

सैन्य संगठन— भारतीय युद्ध शास्त्र के अनुसार चतुरंगणी सेना के सामूहिक संगठन को बल शक्ति अथवा सेना के नाम से पुकारा जाता था यह सेना छोटी–छोटी टुकड़ियों में विभक्त रहती थी इसके सबसे छोटी इकाई को 'पत्ति' कहा गया हैं। इस इकाई में एक रथ, एक हाथी, पाँच पैदल, और तीन घोड़े, हुआ करते थे। तथा इससे तिगुनी सेना की संख्या को सेनामुक्त तीन सेना मुखो का एक गुल्म और तीन 'गुल्मों' का एक 'गण' तीन गणो की एक 'वाहिनी' तीन वाहिनियों की एक 'पूतना' तीन पूतना की एक 'चम' तीन चम् की एक 'अनीकनी' और दस अनीकिनियों की एक 'अक्षौहिणी' सेना होती थी।[39]

सेना के पदाधिकारी— सेना में इस समय निम्न पदाधिकारी हुआ करते थे जिनके नियन्त्रण में निम्नलिखित सैनिक रहते थे।

अधिकारी	रथ	हाथी	घोड़े	पैदल	योग
पदिक	10	10	100	300	420
सेनापति	100	100	1000	3000	4200
नायक	1000	1000	10000	30000	42000

सैन्य संगठन उपरोक्त सारणी के अनुसार होता था किन्तु कालान्तर में इस व्यवस्था में परिवर्तन होता गया और चन्देल युग आने तक अनेक परिवर्तन होते रहे।

सेना के प्रकार या अंग— प्राचीन काल में सेना निम्न अंगो में विभाजित थी।

1— पैदल सेना— पैदल सेना का महत्व अति प्राचीन काल से हैं इसका उल्लेख वाजसनेयीसंहिता में उपलब्ध होता हैं।[40] इसके अलावा अर्थवेद महाभारत और अग्नि पुराण में भी पैदल सेना का उल्लेख मिलता हैं ये सैनिक युद्ध की अग्रिम पंक्ति में रहा करते थे और विविध प्रकार के अस्त्र—शस्त्रों से युद्ध किया करते थे किसी भी सेना में इनकी संख्या सर्वाधिक होती थी।

जब यह सैनिक युद्ध के लिये जाते थे उस समय अपने शरीर में लालरंग के कपड़े धारण करते थे और इनका प्रमुख अस्त्र धनुष वाण था इसके अतिरिक्त ये सैनिक तलवार विभिन्न प्रकार के भाले फर्सा और गदे का प्रयोग युद्ध में किया करते थे शास्त्रों के प्रहार से बचने के लिये सैनिक कवच धारण करते थे भुजाओं के चर्मपट्ट बाँधते थे तथा ग्रीवा आभरण, और मस्तक, वीरतासूचक पट्ट से शोभित रहते थे।[41] योद्धा लोग धनुष—बाण चलाते समय अलीगढ़, प्रत्यलीढ़, वैशाख, मंडल, और समपाद के नाम के आसन स्वीकार करते थे।[42] चौथी शताब्दी के पश्चात युद्ध कला में परिर्वतन हुआ और अस्त्र—शस्त्रों में व्यापक परिवर्तन हुआ पैदल सैनिक सदैव युद्ध भूमि में जाने को तैयार रहते थे इनका कार्य युद्ध अभ्यास करना अस्त्र शस्त्र चलाना घायल योद्धाओं को युद्ध से बाहर ले जाना और सैनिको को शस्त्रादि पहुँचाना।[43] मार्ग का निरीक्षण करना सिविर के लिये उत्तम स्थान खोजना तम्बू लगाना शस्त्रागार और गोदामों की रक्षा करना युद्ध क्षेत्र में व्यूह रचना करना।[44]

रथ सेना— पैदल सेना के बाद रथ सेना का महत्वपूर्ण स्थान था रथ एक विशेष प्रकार का वाहन होता था इसमें दो से लेकर चार पहिए तक

हुआ करते थे। जिसे गति अथवा खीचने के लिए घोड़ो हाथियों और बैलों का सहारा लिया जाता था तथा उसमें ऊपर की ओर योद्धाओं के बैठने का स्थान होता था तथा योद्धा विभिन्न प्रकार के अस्त्र–शस्त्र रखते थे तथा इस रथ को सारथी खींचा करता था पतंजलि के अनुसार चक्र के भी अनेक अंग होते है जिसमें युग (जुआ), नाभि, अर, अक्ष, अपधि आदि उल्लेखनीय हैं। पहिए के बीच की गोलाकार लकड़ी को नाभि कहते थे और पहिए के ब्राह्म गोलाकार काष्ठों को नभ्य। नाभि और नश्य को जोडने वाले अंग को अट कहा जाता था नाभि के मध्य छिद्र को, जिसके भीतरे अर डाला जाता था, अक्ष कहते थे। अक्ष में धुरा या धूः रहती थी। अक्ष लोहे का होता था और धुरा लकडी का।[45] पाणिनि ने धुरे को अक्ष,[46] तथा कुत्सित धुरे को 'काक्ष'[47] कहा हैं। पतंजलि ने धुरे में तेल लगाने तथा नाश्यादि के छिद्रों में तेल डालने की आवश्यकता और प्रक्रिया पर भी प्रकाश डाला हैं।[48] रथ के माध्यम से युद्ध करने वाले योद्धा विविध प्रकार के अस्त्र–शस्त्रों से युद्ध किया करते थे तथा सारथी रथ को खीचा करता था ये लोग निम्नलिखित अस्त्र–शस्त्र प्रयोग में लाया करते थे। ऋग्वैदिक काल में रथारोही सैनिकों का प्रमुख आयुध धनुष–बाण था, किन्तु आवश्यकतानुसार भाला, तलवार और कटार आदि का भी प्रयोग किया जाता था।[49] ऋग्वेद के एक प्रसिद्ध मंत्र में रथ पर सवार धनुष–बाण से सुसज्जित योद्धा का वर्णन मिलता है।[50] महाकाव्य काल में भी रथारोहियों का प्रमुख अस्त्र धनुष–बाण था। महाभारत के अनेक स्थलों पर प्रास, ऋष्टि, धनुष, तलवार, ढाल एवं पटिश आदि शस्त्रों का उल्लेख हुआ हैं।[51] रथ सेना का उपयोग वहाँ होता था जहाँ रास्ता रथ जाने योग्य होता था रथ सेना का कार्य अपनी सेना की रक्षा करना शत्रु सेना को रोकना शत्रु के बलवान सैनिको को पकड़ना, अपने गिरफ्तार सैनिको को छुढ़ाना अपनी सेना को संगठित करना, शत्रु सेना को तितर–वितर करना, भयभीत करके शत्रु की सेना को घबड़ाना,अपनी सेना का महत्व प्रकट करना और भयंकर आवाज करना आदि रथ–सेना के कार्य हैं।[52]

अश्व सेना– अश्व सेना भी अति प्राचीन सेना हैं यह प्राचीन काल में महत्वपूर्ण स्थान रखती थी वैदिक काल में और महाभारत काल में विभिन्न युद्धों में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है मौर्य काल भी अश्व सेना तथा उसकी सेना में 30,000 घुड़ सवार थे।[53] प्राचीन काल में सैनिक एक हाथ से घोड़े की लगाम पकड़ते थे और हाथ में शस्त्र लेकर युद्व किया करते थे घोड़ो के ऊपर जीन कसी जाती थी और लगाम गलेमें बधी रहती थी लगाम में पीतल के छोटे–छोटे टुकड़े लगे रहते थे किन्तु ये टुकड़े नुकीले नही होते

थे घुड़सवार युद्व में निम्नहथियारों का प्रयोग करतें थे। अशवरोही सैनिक सामन्यतया लम्बे भाले एवं तलवार का प्रयोग करते थे। महाभारत काल मे अश्वरोही सैनिक भाला (स्पीयर,लैंसर) तलवार, प्रास ऋष्टि एवं तोमर आदि आयुध धारण करते थे।[54] रामायण में उपर्युक्त हथियारों के अतिरिक्त परशु, गदा, मुद्‌गर आदि का प्रयोग वर्णित हैं।[55] अश्वरोहियों के कार्य शत्रु के मित्र सेनाका नाश करना अपनी सेना की रक्षा करना घोड़ो के लिए धान एवं घास एकत्र करना शत्रु सेना को घेरना शत्रु द्वारा गिरिफ्तार सैनिको को छुड़ाना पीछे और सामने की ओर आक्रमण करना भागी हुई शत्रु सेना का पीछा करना अपनी सेना को एकत्र करना और बक्र गति से सेना में प्रहार करना,[56]

हस्ति सेना– प्राचीन काल हस्ति सेना या गज सेना का भी महत्वपूर्ण स्थान था बड़े–बडे राजा महराजा और सामन्त हाथियों में बैठकर युद्व किया करते थे हाथी को चराने वाले को महावत कहा जाता था और बड़े–बड़े योद्वा हाथियों में बैठकर युद्व किया करते थे। इनकी पीठ में हौदा बधा रहता था जिसमें व्यक्ति बैठते थे तथा हाथियों की रक्षा के लिए चार सैनिक आगे पीछे चलते थे चन्देल युग में गज सेना का महत्व बढ गया था आल्हा–ऊदल तथा अन्य बहादुर सैनिक हाथियों में बैठकर युद्व करते थे। इसका वर्णन आल्ह खण्ड में इस प्रकार उपलब्ध होता हैं।

हाथी सजावो कजरीवन के,सिंहलद्वीपी लेउ सजाय।
बडदन्ता औ छुटदन्ता सब, हाथी तुरतै लेउ सजाय।।
इकदन्ता औ दुइदन्ता पर, हौदा धरौ सोवरन क्यार।
मेगुल भूरा हाथी साजौ, छोटे पर्वत की उनहार।।
खूनी हाथिन को सजवायो, पायन देउ जंजीर बंधाय।
भौंरागज, अंगद, पंगदगज, औ मलयगिरि लये सजाय।।
मैनकुंज, धौलागिरि साजे, भूरा हाथी लये सजाय।
मकुना हाथी सब सजवाये, मुडिया हौदा दये धराय।।[57]

हस्ति सेना को निम्न लिखित भागों में विभक्त किया गया है

1–दम्य– (शिक्षा देने योग्य): इसके अन्तर्गत स्कंधगत, वारिगत, अवपातगत और यूथगत आदि पाँच प्रकारो का उल्लेख हैं।

2–सान्नाह्म– (युद्व के योग्य): इसके अन्तर्गत उपस्थान संवर्तन संयान, बधावध, हस्तियुद्व, नगनारायण, सांग्रामिक आदि प्रकार आते हैं।

3–औपवाह्म– (सवारी के योग्य): इसके आठ प्रकार बताये गये है– आचारण, कुंजरौपवाह्म, धोरण, आधानगतिक, यष्ट्रयुपवाह्म,तोत्रोपवाह्म शुद्धोपवाह्म

मार्गायुक आदि।

4—व्याल— (घातकवृत्ति वाला): इसके चारभेद हैं, जो निम्न प्रकार है—सुब्रत, विषम, और सर्वप्रदोष—प्रदुष्ट।[58]

हाथियों से युद्व करने वाले सैनिक अंकुश तलवार, बल्लम, और धनुष का प्रयोग करते थे तथा एक हाथी में छः व्यक्ति सावारी किया करते थे और ये लोग दोनो ओर से बाण चालाया करते थे और योद्वा लोग कवच भी धारण करते थे कभी—कभी चाकू—कटार बाण और खेल के बर्तन भी रखा करते थे।[59]

हस्ति सेना का कार्य सेना के, [60]आगे चलना घाट बनाना शत्रु सेना को तितरबितर करना गहराई नापना शत्रु सेना को आगे बढने से रोकना शस्त्रु के पढ़ाव में आग लगाना बिखरी हुई सेना को संगठित करना प्रधान द्वार को नष्ट करना आदि इसके कार्य थे। दुर्गम स्थानो में प्रवेश करना परकोटे और प्रवेश द्वार को तोड़ना आदि इसके प्रमुख कार्य थे।[61]

ऊँटो की सेना— बुन्देलखण्ड़ के जो दुर्ग राजस्थान की सीमा से मिलते थे वहाँ ऊटो की सेना का गठन किया गया था ऊँट सेना युद्व में सबसे आगे होती थी तथा इनमे ध्वज और नगाढ़े रखकर प्रोत्साहन के लिए बाजा बजाने का रिवाज भी था ऊँट सवार सैनिक भालों और धनुषबाण से युद्व किया करते थे पैदल सैनिक ऊँटो की ऊँचाई के कारण ऊँटो सवार सैनिकों को आसानी से नही हरासकते थे यह सेना ग्वालियर एरण विदुषा के आस पास के दुर्गो में शक्रिय भूमिका निभाती थी अनेक भित्त चित्त इस प्रकार के उपलब्ध हुए है जिनमें ऊँटो को दर्शाया गया है और तुर्क और मुगल काल ऊँटों की सेना का महत्व था तथा अनेक विदेशी आक्रमणकारी ऊँटो मे सवार होकर दुर्गो मे आक्रमण करने आये थे।

तोपखाना— प्राचीन काल में अग्नेय अस्त्रों के सन्दर्भ में कोई जनकारी उपलब्ध नही हो पाती किन्तु बारूद का अतिष्कार होने के पश्चात अग्नेय अस्त्रों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया तुर्क और मुगल आक्रमण कारियों के पश्चात विभिन्न प्रकार के अग्नेय अस्त्र थे अग्नेय अस्त्रों में तोपो का विशेष महत्व था पूर्वमध्यकाल और उत्तर मध्य काल में कोई दुर्ग ऐसा नही था जहाँ प्राचीर के बुर्जो में तोपे नरखी हो युद्व स्थल में ये तोपे बैलगाड़ा या आदि के माध्यम से युद्व भूमि मे ले जायी जाती थी तथा दुर्ग की प्राचीर तोड़ने में तोप के गोलो की महत्वपूर्ण भूमिका रहती थी तोपो के साथ—साथ विविध प्रकार की बन्दूकों का भी युद्व में होने लगा था ऐसी बन्दूके और तोपे अनेक संगृहालयों में संगृहीत हैं।

5 —धर्म की दृष्टि से दुर्गो का महत्व— धर्म मानव जीवन का अभिन्न अंग है तथा प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी धर्म से युगो से जुडा हुआ

है विश्व का प्राचीनतम धर्म वैदिक धर्म है तथा इस धर्म के मुख्य ग्रन्थ चार वेद है इन चारो वेदो में सृष्टि सृजन धार्मिक कृति संरचना ईश्वर और देवता तथा मनुष्य और उसकी आत्मा का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है जन्म से लेकर मृत्यु तक ब्यक्ति धर्म से जुडा होता है तथा सोलह संस्कार जिनका वह अनुपालन करता है वह भी धर्म से जुडे होते है उसका यह मानना है कि पुर्व जन्मो के संस्कारो के अनुसार ब्यक्ति को मनुष्य की देह प्राप्त होती है और इस देह के पश्चात ब्यक्ति मोक्ष की गति प्राप्त करता है। तथा संसार के कष्टो से उसे छुटकारा मिल जाता है यदि धर्म न हो तो मनुष्य और पशु में इनमे कोई अन्तर नही है आहार और निद्रा भय और मैथुन मनुष्य और पशुओ मे एक से होता है किन्तु धर्म ही एक विशेष आचरण होता है।जो केवल मनुष्यो मे होता है।

सम्पूर्ण मनुष्यों का जीवन आयु के हिसाब से चार भागो में विभक्त हैं जीवन के ये विभाग बृह्माचर, गृहस्थ, बानप्रस्थ और सन्यास आश्रम कहलाते हैं। और मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन सौ वर्षो का माना गया हैं। इसी प्रकार कर्म और बन्ध के अनुसार ब्यक्तियों का जीवन चार जातियों में विभाजित हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और,सूद्र ये चार जातियाँ प्रारम्भ से ही यहाँ निवास करती हैं। इन जातियों का निर्माण कर्म के अनुसार हुआ हैं। ब्राह्मणों का कार्य विद्या लेना विद्या देना तथा धार्मिक संस्कार सम्पन्न कराना था। इन्हे धर्म का संरक्षक भी बनाया गया था क्षत्रियों का कार्य देश की रक्षा करना और देश का शासन चलाना था क्षत्रिय लोग राष्ट्र रक्षा में अपने प्राणों की आहुती दे दिया करते थे। वैश्यों का कार्य आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति व्यवसाय के माध्यम से करना था तथा सूद्रों का कार्य उपरोक्त तीनो वर्णो की सेवा करना था यह विभाजन बुद्धि कार्य क्षमता संसाधन और शारीरिक क्षमता के अनुसार किया गया था कालान्तर में यह विभाजन वंश के अनुसार हो गया।

धर्म में ईश्वर सबसे बड़ा हैं। वह सृष्टि का सृजक पलन कर्ता और संघारक है इससे बड़ा शक्तिशाली संसार में कोई अन्य नही हैं। वह दृश्य अदृश्य अजर–अमर अक्षय और सम्पूर्ण संसाधन युक्त हैं। सारा संसार उसी की मर्जी से चलता हैं। वही कर्म फल दाता सुख–दुःख का दाता और हमारे भाग्य का निर्माता हैं। आपत्ति काल में वह हमारा सच्चा मित्र और सहयोगी हैं। ब्यक्तियों के संकट को दुर करने के लिये वह समय–समय पर अवतार भी धारण करता हैं।और धर्म की स्थापना भी करता हैं। धर्म ने ही षट दर्शन को जन्म दिया हैं। ये दर्शन बेदान्त मीमांसा, बैषेशिक, चार वाक्य आनीश्वर वादी, दर्शन हैं। अनीश्वर वादी दर्शनों में बौध्य और जौन आते हैं। तथा भौतिकवादी दर्शनो में चार वाक्य दर्शन आता है। इसके साथ–साथ ही साथ न्यायदर्शन

काफी महत्व है।

धर्म मे ईश्वर के बाद देवताओं का काफी महत्व है वेद,पुराण, तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थो में ईश्वर के बाद यदि किसी को महत्व दिया गया तो वह देवताओ को दिया गया ये देवता ईश्वर के ही अशं है। तथा परमात्मा ने इन्हे अलग–अलगा काय्र सौपे है। वेद और पुराण सभी धर्म ग्रन्थो में देवताओ को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। मेघो के देवता इन्द्र जल के देवता वरण, धन के देवता कुबेर, शक्ति के देवता शिव औषधि के देवता धनवन्तारि, ज्ञान एवं शुभ कार्या के देवता गणेश, तथा देवताओ के गुरू बृहस्पति, ऊर्जा के देवता अग्नि, का विशेष महत्व है। कालान्तर में अनेक देवता बढ गये तथा इनकी संरूया 33 कोटि हो गयी इन देवता में ब्रम्हण भी देवता मान लिये गये देवताओ के साथ–साथ कुछ देविया भी पूजित हो गयी मुख्य रूप से पार्वती, काली, दुर्गा चौमुन्डा, भैरवी,लक्ष्मी, अन्नपूर्ण, सरस्वती,इन्द्राणी आदि देवियाँ सर्वाधिक पूज्य हुई इनकी उपासना विविध अवसरो पर की जाने लगी।

देवी देवताओ के अतिरिक्त पशु पक्षी भी धर्म के अंग बने मुख्य रूप से गाय बैल य नाँदिया सिहं मयूर नीलकण्ठ नाग और उल्लू तथा मूषक, धर्म के अंग बने इन पशु–पक्षियो के अतिरिक्त पीपल, बरगद, आवला, तुलसी, नीम, आदि वृक्षो को सम्बन्ध धर्म से जोडा गया और उनकी पूजा वा उपासना धर्म के साथ विविध रूपो में की जाने लगी।

धर्मो ने अनेक तीज त्योहारो को जन्म दिया ये तीज त्योहार, मौसम, घटना जन्म मृत्यु और जय तथा पराजय से जुडे हुए है तथा कुछ त्योहार सामाजिक सदभाव से सम्बन्ध रखते है विजय दश्मी, नरक चौदस, और होलका दहन घटना प्रधान तथा जय विजय से जुडे तीज त्योहार है दीपावली प्रकाश का त्योहार है जो हम यह शिक्षा देता है कि अन्धकार पर विजय प्रकाश के माध्यम से पापी जा सकती है तथा कोई भी व्यक्ति बुद्धि संसाधन के माध्यम से ही प्रयास करने पर सफलता प्राप्त कर सकता है। रक्षा बन्धन इस बात का प्रतीक है कि गाय ब्रम्हण और ये हमारे श्रद्धा के पात्र है इनका सम्मान करना हमारा धर्म है राम नवमी कृष्ण जन्मआष्टमी और अक्षय तृतीया तथा 52 द्ववादसी इनका सम्बन्ध महापुरूषो के जन्म से है । कुछ तीज त्योहारा केवल स्त्रियो के लिए ही निर्मित हुए है। मुख्य रूप से हरछठ, तीजा, बरगदाही अमावस्या, करवाचौथ, आदि त्योहार, स्त्रियो से भी सम्बन्धित है। इन व्रतो को स्त्रिया ही करती है सन्तान सत्ममी एक ऐसा त्योहार है जिन्हे स्त्रिया बच्चो के कल्याण के लिए करती है।

धर्म के साथ अनेक अन्ध विश्वास बुन्देलखण्ड में जुडे है मुख्य

रूप से विविध प्रकार के जन्त्र मन्त्र–तन्त्र झाढफूँक जैसे नजर उतारना टुटका करना मुठमारना आदि कृत्य अन्ध विश्वास के प्रतीक माने गये है। इसके कारण तान्त्रिका, ओझाओ, जोगी,ज्योत्सी, और पंडितो की पूछ बढ गयी ये लोग प्रतिकूल ग्रह दशा और सनी आदि की दशाको सुधारने के लिये व्यक्तियों के यहाँ विशेष प्रकार की पूजा पाठ करने लगे और उनसे पैसा ठगने लगे अनेक साधू सन्यासी धर्म के नाम पर अन्ध विश्वास को प्रमुखता देने लगे और ऐसी पूजा पद्वातियो का जन्म हुआ जिनके व्यक्ति अनुष्ठान और मान्यता के आधार पर मानने लगा निष्काम भक्ति का अन्त हो गया भक्ति किसी इच्छा की पूर्ति की जाने लगी तथा देवियो की उपासन में पान बतासा नारियल के साथ–साथ नरबलि और पशुबलि का महत्व बडा तथा अनेक व्यक्तियों को नवरात्रि के अवसर पर देवी या काल भैरव आने लगे धर्म और जाति के नाम पर हिंसा विषमता जातिगत विद्धेश, छुआछूत की भावना की वृद्धि हुई और नैतिक मूल्यो का सर्वत्र पतन हुआ।

अनेक नये सम्प्रदायो का उदय हुआ जो इस प्रकार थे।

1—बौद्ध सम्प्रदाय— बुन्देलखण्डो के अनेक दुर्गो मे महात्माबुद्ध की प्रतिमाये उपलब्ध हुई है इससे यह ज्ञात होता है। बुन्देलखण्डो के अनेक क्षेत्रो में मौर्यकाल के शासन के दौरान बौद्ध धर्म का विकास हुआ अनेक राजाओं ने इस धर्म को अपना आश्रय प्रदान किया यह धर्म हीन यान महापान और बज्रपान के नाम से यहाँ जाना गया तथा सर्वत्र इस धर्म से जुडे अभिलेख सॉची भरहुत आदि स्थानो में उपलब्ध होते है[62]। बुन्देलखण्ड में बौद्ध धर्म ज्यादा विकसित नही हुआ मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात यह जन सामान्य का धर्म नही रह गया।

2—हिन्दु धर्म— हिंदु धर्म भी यहाँ अति प्राचीन काल से रहा है। इस ध र्म के अर्न्तगत यज्ञ देव उपासना और विभिन्न प्रकार की पूज पद्धतियों का विकास हुआ अनेक स्थलों पर ऐसे स्तम्भ उपलब्ध हुए है। जिनका सम्बन्ध धर्म से है। तथा उनके नाम अग्नि आत्मानिष्ठ, अकथ्य, सदेशिन वाजपेयी अत्रि आदि नामो से जुडे हुए है। तथा अनेक अभिलेख भी उपलब्ध होते है। जिनसे तदपुगीन भावनाओ का पता लगता है इस धर्म के अर्न्तगत अनेक देवी देवता की पूजा होती थी तथा कुछ मूर्तिया विभिन्न स्थलों में उपलब्ध हुई।[63]

3—शैवमत— शैवमत कहने को तो हिन्दू धर्म का एक अंग है। किन्तु इसकी उपासना पद्धति एक अलग प्रकार की है। तथा पूरे बुन्देलखण्ड में इसकी लोक प्रियता है मुख्य रूप से भीटा कोषम और कालिंजर में अनेक अभिलेख उपलब्ध हुए है जिनका सम्बन्ध शैव धर्म से है तथा ये अभिलेख द्वितीय शताब्दी और उसके बाद के है [64]। शैवमत के अन्तर्गत लिंग और मूर्ति

दोनो रूप में होती थी तथा इनके साथ पार्ववती स्वामी कार्तिकेय गणेश नाँदिया या बृषभ और नागो की पूजा भी होती थी शिवरात्रि मकर संक्रान्ति आदि त्योहार इस मत से जुडे हुए थे। और इनको लोग धूम–धाम से मनाते थे। कालिंजर दुर्ग मे शिवरात्रि मकर संक्रान्ति और कातिक पूर्णिमा के त्यौहार को मनाने की प्रथा थी जो आज भी है।

शक्तिसम्प्रदाय– शिव के पश्चात बुन्देलखण्डो में शक्ति उपासना का महत्वपूर्ण स्थान था अनेक दुर्गो में अनेक देवियो की मूर्तिया उपलब्ध हुई है मुख्य रूप से लक्ष्मी गज लक्ष्मी सरस्वती, गौरी, महाकाली, रक्तदान्तिका, मरहीमाता चण्डी महिसासुर, मर्दनी, मेढकी आदि की मूर्तिया यहाँ के दुर्गो में सर्वत्र उपलब्ध होती है।[65] । नवरात्रि आदि अनेक पर्व शक्ति उपासना से जुडे है।

सूर्य उपासना– सूर्य उपासन सम्पूर्ण बुन्देलाखण्ड में उन्हे देवता मानकर की जाती थी सूर्य प्रकाश का देवता है इसलिए उसकी उपासन की जाती थी भरहुत में एक सूर्य की मूर्ति आदमकट की उपलब्ध हुई जो वस्त्राभरण और अलंकरण से सुसज्जित है बुन्देलखण्ड खण्ड के अनेक स्थानों में सूर्यमन्दिर भी उपलब्ध होते है। मुख्य रूप से रविवार का व्रत और मकर संक्रान्ति का पर्व भी सूर्य उपासना से जुडा हुआ है।[66]

जैनधर्म– बुन्देलखण्ड में जैन धर्म का भी काफी प्रभाव था। इनके उपाश्व देव महावीर स्वामी भी थे इस धर्म के उपासक दिगम्बर और स्वेताम्बर, दो भागो में विभक्त है तथा ये लोग धर्म स्थल बनाकर 24 तीर्थाकारो सहित महावीर स्वामी की उपासना करते हैं विदिशा तथा अन्य स्थलो में अनेक तीर्थाकरो की मूर्तिया बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होती है। 67।

वैष्णो मत– बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रो और दुर्गो में विष्णु की अनेक मूर्तिया उपलब्ध होती है। तथा विष्णु धर्म से सम्बन्धित अन्य उप देवी देवता की मूर्तिया उपलब्ध होती है। मुख्य रूप से चर्तुभज विष्णु की माता की मूर्ति लक्ष्मी तथा विष्णु के विविध अवतारो की मूर्तिया यहाँ उपलब्ध होती है। गुप्तकाल मे उदयगिरि गढवा और देवगढ में अनेक मूर्तिया विष्णु की उपलब्ध हुई है।[68]

दुर्ग और धर्म– बुन्देलखण्ड में उपलब्ध सभी दुर्गो का स्वामी उनका नरेश अथवा सामन्त होता था उनके आधीन एक दुर्ग से लेकर अनेक दुर्ग हुआ करते थे। चन्देल नरेशों के पास 8 प्रमुख दुर्ग थे और गौड़ नरेशों के पास 52 दुर्ग थे। मुगलकाल में बुन्देलखण्ड में 42 छोटी बड़ी रियासतें थी उन सभी के पास दुर्ग थे सभी दुर्गो का निर्माण नरेशों ने सामरिक दृष्टि से कराया था किन्तु उनका धार्मिक महत्व किसी भी स्तर में कम नहीं था इसीलिए कुछ दुर्ग तीर्थ स्थल के रूप में परिणित हो गये। और वहाँ प्रतिवर्ष धार्मिक मेलाओं का

आयोजन होने लगा एक सुनिश्चित तिथि में व्यक्तियों का समूह दर्शनार्थ यहाँ आता है और दुर्गो के बने धर्मिक स्थलों का दर्शन करता है ये धार्मिक स्थल इसी नरेश और सामन्त के बनवाये हुए है। दुर्ग में उपलब्ध अनेक धार्मिक स्थलों में अभिलेख भी उपलब्ध हुए हैं जिनसे तदयुगीन नरेशों की धार्मिक भावनाओं का पता लगता हैं।

बुन्देलखण्ड़ के दुर्गो में शासन करने वाले नरेश अनेक धर्मो के अनुयायी थे प्रमुख रूप से जो धर्म स्थल दुर्गो में उपलब्ध हुए हैं उनमें सर्वाधिक शक्ति शैव, विष्णु, सूर्य, हनुमान, तथा तान्त्रिक धर्म स्थल उपलब्ध हुए हैं। हिन्दू धर्म में जब से बहुदेव वाद का विकास हुआ उस समय से यहाँ के लोग ओर नरेश विभिन्न देवी देवाताओं की पूजा करने लगे थे अनेक स्थलों में जैन एवं बौद्ध धर्म से सम्बन्धित धर्म स्थल भी उपलब्ध हुए हैं तथा इन धर्म स्थलों में अनेक अभिलेख भी उपलब्ध हुए हैं जिनमें धर्म स्थल बनावाने वालों की चर्चा है धर्म स्थल उपलब्ध अनेक देव प्रतिमायें इस बात की प्रतीक हैं कि दुर्ग के नरेश और सामन्त किसी न किसी धर्म से जुडे हुए थे कालान्तर में यहाँ स्लाम धर्म के अनुयायों का भी प्रभाव पडा और उन्होंने कुछ दुर्ग हिन्दुओं से जीतकर अपने अधिकार में कर लिये थे उसके पश्चात इन्होंने दुर्गो के ऊपर मस्जिदों का निर्माण कराया प्रत्येक दुर्ग में धर्म स्थलों चिन्ह उपलब्ध हुए है जिनसे तदयुगीन नरेशों की धार्मिक भावनाओं का पता लगता है।

कालिंजर दुर्ग में उपलब्ध धार्मिक स्थल– कालिंजर दुर्ग में प्रवेश करने के लिए सात दरवाजे है इनमें प्रथम दरवाजे का नाम आलमगीर दरवाजा है इस द्वार का निर्माण मुगल बादशाह औरंगजेब ने कराया था तथा इस दरवाजे से यह ज्ञात होता है कि कालिंजर दुर्ग इस्लाम धर्म के प्रभाव में था कालिंजर दुर्ग के दूसरे द्वार का नाम गणेश दरवाजा हैं। जो गणेश के नाम से विख्यात हैं इस द्वार के सन्निकट एक गणेश प्रतिमा भी थी। गणेश शिव के पुत्र थे जिनकी उपासना बड़ी श्रद्धा से यहाँ के लोग करते थे कालिंजर दुर्ग के तीसरे द्वार का नाम चण्डी दरवाजा हैं। जिसमें यह बोध हैं कि यहाँ के लोग शक्ति उपासना किया करते थे। इस द्वार के नीचे चण्डिका की मूर्ति थी कालिंजर दुर्ग के पाँचवे द्वार का नाम हनुमान दरवाजा है इस द्वार के नीचे हनुमान प्रतिमा थी जिसका आशय यह है कि यहाँ के लोग हनुमान के परम उपासक थे। दुर्ग में प्रवेश करने के पश्चात अनेक धर्म स्थल यहाँ उपलब्ध होते है जो निम्नलिखित है।

सीतासेज– प्राचीन काल में भगवान श्रीराम वनवास काल में कालिंजर आये थे और उन्होने अपना कुछ समय यहाँ व्यतीत किया था यह स्थल

कालिंजर दुर्ग के सातवें द्वार के सन्निकट है इस स्थल का नाम पर्वत काट कर किया गया हैं। यहाँ एक पत्थर का पलंग और एक चटिया हैं। इसके प्रवेश द्वार पर आठवी सदी का एक अभिलेख भी हैं। इसके प्रवेश द्वार पर आठवीं सदी का एक अभिलेख भी हैं तथा इसी के सन्निकट जलकुण्ड भी है जिसे सीता कुण्ड के नम से भी पुकारा जाता हैं। गुफा के दायी ओर मूर्तियों की एक पंक्ति हैं जिसमें स्त्री एवं पुरूष मूर्तियां है। यहाँ पर पद्मासन में एक व्यक्ति की मूर्ति हैं तथा इसके निकट एक टोकनी मछली मालूम पढ़ती हैं।[69]

पाण्डुकुण्ड– ऐसा कहा जाता है कि पाण्डुओं ने भी अपने अज्ञातवास का कुछ समय यहाँ व्यतीत किया था उनके नाम पर यह कुण्ड विख्यात है इस स्थल में एक गुप्तकालीन एक अभिलेख भी उपलब्ध हुआ हैं जिसमें मनोरथ नाम लिखा है यह भी एक धार्मिक स्थल के रूप में प्रसिद्ध हैं।

भैरव की झिरिया अथवा भैरव कुण्ड– यह स्थल दुर्ग के दक्षिणी पूर्वी दिशा में पन्ना द्वार के सन्निकट हैं यहाँ एक छोटा सा भैरव कुण्ड हैं जिसे पत्थर काटकर बनाया गया है इस स्तर पर 20 फुट की ऊँचाई पर भैरव की एक मूर्ति है यह मूर्ति नग्न है और चट्टान पर बनायी गयी है इसके दस हाथ हैं। तथा उनके हाथों में अनेक प्रकार के अस्त्र–शस्त्र है तथा इसके पीछे कुत्ते की मूर्ति है इस स्थल पर मूर्ति के नीचे 1194 का एक अभिलेख भी है। इसके एक ओर भैरवी की मूर्ति है इसमें भी 1562 का एक लेख हैं।

मृगधारा– यह स्थल भी एक धार्मिक स्थल हैं। यहाँ पर सात मृगों की मूर्तियाँ हैं तथा यहाँ पर एक प्राकृतिक जल स्रोत भी हैं इसमें सदैव जल प्रवाहित होता रहता हैं कहते है कि राजा जेड भरत ने मृग के रूप सें यहाँ औतार लिया था इससे यह स्थल धर्म स्थल के रूप में विख्यात हुआ है[70]।

कोटितीर्थ– यह स्थल भी एक धार्मिक स्थल हैं तथा यह एक पवित्र सरोवर हैं इस सरोवर में स्नान करने वाला व्यक्ति कुष्ठ रोग से मुक्त हो जाता हैं यहाँ भी कई अभिलेख उपलब्ध होते है तथा इसके पास वैंकटेश्वर मन्दिर और अनेक मूर्तियों के अवशेष हैं कि इस स्थल में प्रमुख विष्णु की मूर्ति तथा चर्तुमुखी शिवलिंग तथा सहस्त्र शिवलिंग की मूर्ति उपलब्ध होती हैं इसके अतिरिक्त दसावतार की मूर्तियाँ भी यहाँ उपलब्ध्ध है।

नीलकण्ठ मन्दिर– यह मन्दिर कालिंजर दुर्ग के पश्चिमी दिशा में स्थित है तथा महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल हैं इस स्थल में भगवान शिव ने विषपान किया था और तान्डव नृत्य करके विषको शान्ति किया था जिसके कारण शिव का कण्ठ नीला पड़ गया थ इसलिए इस स्थल का नाम नीलकण्ठ मन्दिर पड़ा इस स्थल पर अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं तथा मन्दिर का मण्डप राजा

परमार्दिदेव ने तैयार कराया था मण्डप के स्तम्भो में अनेक देव मूर्तियाँ अंकित हैं तथा मन्दिर एक गुफा के अन्दर हैं तथा इसमें जो मूर्तियाँ है वह गुप्तकालीन है।

नीलकंठो यत्र देवो भैरवाः क्षेत्र नायकाः कोटि तीर्थ यत्र तीर्थ मुक्तिस्तत्र नृसंश्यः।। कोटि तीर्थ जले स्नात्वा पूनयित्वा महाशिवम्। कोटि जन्मार्विजात् पापन्मुचयेत नात्र संशय कोटि तीर्थेण संगम्य मंदा किन्यामहत फलम्।[71]

बलखण्डेश्वर महादेव मन्दिर– कालिंजर दुर्ग में ही दुर्ग के बाहरी भाग में उत्तर की ओर बलखण्डेश्वर महोदेव का मन्दिर हैं इसकी मूर्ति काफी बड़ी हैं तथा इसके ऊपरी भाग में एक अभिलेख गुप्त युग का हैं इसी के सन्निकट सुरसरिगंगा नाम स्थल है जिसके तीनो ओर अनेक सीढ़ियाँ है सीडियों के नीचे एक जलाशय है और उसके चारों ओर अनेक भग्न मूर्तियाँ हैं। तथा इन्हीं भग्न मूर्तियों में एक मूर्ति शेष–शायी विष्णु की है तथा अन्य मूर्तियाँ भगवान शिव की हैं इनके सन्दर्भ में विस्तृत वर्णन विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध होता हैं तथा इसी से प्रभावित होकर यहाँ क नरेश कालिंजर पुरवराधीश्वर एवं कालंजराधिपति की उपाधि धारण करते थे।[72] स्पष्ट है कि कालिंजर दुर्ग ध ार्मिक दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण स्थल था।

अजयगढ़ दुर्ग के धार्मिक स्थल– यह दुर्ग भी सैकड़ों वर्ष तक चन्देलों और बुन्देलो के अधिकार में रहा हैं तथा यहाँ भी अनेक तालाब और धर्म स्थल उपलब्ध होते हैं ये स्थल हिन्दू धर्म और जैन धर्म से सम्बन्धित हैं अजयपाल सरोवर के सन्निकट एक प्राचीन जैन मन्दिर था जो ध्वस्त हो गया है इसके समीप शान्तिनाथ तीर्थाकंर की एक बड़ी मूर्ति हैं और उसके नजदीक तीर्थाकरों की अन्य मूर्तियाँ है इन मूर्तियों का निर्माण मधुमोडल के द्वारा करवाा गया था जो जयपुर दुर्ग का निवासी था।[73] तथा इसी के सन्निकट दूसरे किनारे पर राजा अजयपाल का एक मन्दिर है जहाँ नृत्य गणेश की अष्टभुजी मूर्ति है इस स्थल पर शिव नन्दी पार्वती तथा पंचानन शिव की मूर्तिया हैं यही पर एक विष्णु मूर्ति भी हैं।

अजयगढ़ दुर्ग के दक्षिणी द्वार के सन्निकट चार मन्दिर थे जो अब ध्वस्त हो चुके है इनमें अनेक मन्दिर वृत्ताकार थे इसकी दीवालों में अनेक देवी देवताओं की मूर्तियाँ है इसके बड़े मंदिर में गंगा यमुना की मूर्तियाँ आराधको की मूर्तियाँ तथा नृत्य और वाद्य यन्त्र बजाते हूए स्त्री पुरूषों की मूर्तियाँ हैं। दूसरा मन्दिर मन्दिर बड़े मन्दिर से कुछ छोटा हैं। कि किन्तु अलंकरण की दृष्टि से पहले मन्दिर से श्रेष्ठ हैं। यही पर तीसरा मन्दिर परमालताल के सन्निकट हैं।[74]

कालिंजर दुर्ग में जो धर्म स्थल उपलब्ध होते हैं। उनका सम्बन्ध ब्राह्मण धर्म बेद और पुराणों से था अनेक देवी की उपासना यहाँ के नरेश करते थे [75]।

ब्राह्मण धर्म के अतरिक्त यहाँ वेदानुसार यज्ञविधान भी था लोग विजयगढ़ में अनेक यज्ञ किया करते थे [76]। इसके अतिरिक्त यहाँ शैव धर्म भी व्यापक प्रभाव था अनेक धार्मिक स्थल शैव धर्म से ही सम्बन्धित हैं। [77] शैव धर्म के अतरिक्त यहाँ वैष्णव धर्म और शक्ति मत भी असतित्व में था अजयगढ़ दुर्ग में भगवान शिव की पंचानन प्रतिमा उपलब्ध हाती हैं। इसके अतिरिक्त उमा महेश्वर कल्याण सुन्दर और अर्ध नारीश्वरी की मूर्तियाँ भी यहाँ उपलब्ध होती हैं। अजयगढ़ दुर्ग के तरौनी द्वार के निकट पार्वती, अम्विका तारा त्रिपुरा , कामरूप दुर्गा हरिसिद्धी ,चौमुण्ड़ा , और कालिका देवी की मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। इन्हें अष्ट शक्ति के नाम से पुकारा गया हैं। [78]

शिव के अतरिक्त यहाँ विष्णु मूर्तियाँ भी उपलब्ध होती हैं। तथा अनेक अभिलेखों में विष्णु की स्तुति भी उपलब्ध होती हैं। इस स्थल में मत्स्य, कश्यप, वाराह, नरसिंघ वामन , परशुराम ,की मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। विष्णु की चर्तुभुजी प्रतिमा अजयगढ़ में उपलब्ध हुई हैं। [79] इसके अतरिक्त यहाँ जैन धर्म से सम्बन्धित भी अनेक प्रतिमाए उपलब्ध होती हैं। इनका निर्माण मदन वर्मा के शासन काल में हुआ स्पष्ट हैं। कि अजयगढ़ दुर्ग धार्मिक दृष्टि से महत्वपुर्ण दुर्ग था और यहाँ के नरेश विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी थे

देवगढ़ दुर्ग का धार्मिक महत्व– देवगढ़ दुर्ग झाँसी मण्डल के ललितपुर जनपद में है। इस दुर्ग का भी धार्मिक महत्व है। जैसा इसके नाम से प्रतीत होता हैं। इसी युग में यह देवताओं के गढ़ के रूप में प्रसिद्ध था इस दुर्ग में सबसे प्राचीन मन्दिर दसावतार मन्दिर हैं। यह मन्दिर गुप्तकालीन है। तथा पूर्ण रूप से अलंकृत है। इस मन्दिर में श्रेष्य शायी विष्णु की मूर्ति और उसके आस–पास नरसिंह भगवान और बावन भगवान की आकृतियाँ बनी है। तथा गर्भगृह में कोई मूर्ति नही हैं वास्तुशास्त्र के हिसाब से यह मन्दिर अपनी गरिमा रखाता है[80]। यही पर एक दूसरा मन्दिर भी है जिसे वाराह मन्दिर के नाम से पुकारा जाता था अब ये मन्दिर नष्ट हो चुका हैं केवल इसके ध्वंसावशेष उपलब्ध होते है इसके समीप दुर्गा की एक सुन्दर प्रतिमा उपलब्ध हुई है तथा पास में सत्य देवियों की आकृतियाँ भी है तथा समीप मे ही मीराधर शिव और गणेश की आकृतियाँ है।

देवगढ़ में जैन प्रतिमाओं का विशाल भण्डार है यहाँ अनेक जैन प्रतिमायें और मन्दिर उपलब्ध होते है इन मन्दिरों की संख्या 40 से अधिक है तथा अनेक मूर्तियाँ 24 तीर्थाकंरो की है मुख्य रूप से आदि नाथ पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, शान्तिनाथ, और महावीर स्वामी की हैं। इसके अतिरिक्त कुछ देवियों की भी मूर्तियाँ है इन देवियों में शासन देवी, चक्रेश्वरी अम्बिका और पद्मावती

की मूर्तियाँ अत्यन्त आकर्षक हैं .ऋषभनाथ के पुत्र बाहु बलि गोमतेश्वर की मूर्तियाँ भी कई स्थानों में उपलब्ध हुई है[81]।

एरण दुर्ग के धार्मिक स्थल— एरण दुर्ग की बुन्देलखण्ड का प्राचीनतम् दुर्ग है इस दुर्ग में भी अनेक धार्मिक स्थल उपलब्ध होते है मुख्य रूप से यह स्थल वैष्णव धर्म का महत्वपूर्ण स्थल था यहाँ पर वाराह, नरसिंह और वामन औतार के स्वतन्त्र मन्दिर थे जिनके भग्नावशेष आज भी यहाँ विद्यमान हैं इस स्थल में विष्णु की विशाल प्रतिमा है तथा यहीं पर पशु वाराह की भी प्रतिमा हैं मन्दिर के पृष्ठ भाग पर अन्य देवी देवताओं के भी चित्र है[82]। इससे यह प्रतीत होता है कि एरण भी धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण दुर्ग था।

दुधई चाँदपुर दुर्ग के धर्म स्थल— प्राचीन एवं मध्यकाल में दुध ाई चाँदपुर का महत्व धार्मिक दृष्टि से बहुत अधिक था यहाँ अनेक धर्म स्थल उपलब्ध होते है। इन धर्म स्थलों में दो जैन मन्दिर, वाराह मन्दिर, ब्रह्मा मन्दिर और शिव मन्दिर शामिल है इसमें सबसे बड़ा मन्दिर ब्रह्म मन्दिर था इसमें गर्भ गृह अन्तराल मण्डप अर्धमण्डप थे तथा इस मन्दिर में अनेक अभिलेख भी थे इस मन्दिर का निर्माण यशोवर्मन के पौत्र कृष्णप, एवं असर्वा के पुत्र देवलाब्धि ने कराया था[83]।

इस दुर्ग में पश्चिम की ओर मन्दिर का दूसरा समूह उपलब्ध होता है यह मन्दिरों का समूह बनियाँ के बरात के नाम से विख्यात हैं इनका निर्माण देवत्त–खेवत्त जैन ने कराया था ये मन्दिर अब पूरी तरह से नष्ट हो चुके हैं। इस स्थल पर पशु वाराह और हनुमान की प्रतिमा उपलब्ध हुई थी। बलराम तथा कृष्ण की मूर्ति भी उपलब्ध हुई थी मन्दिरों के दूसरे समूह में विष्णु मन्दिर सर्वाधिक थे मन्दिरों का तीसरा समूह नष्ट हो चुका है मन्दिरों के चौथे समूह में ताण्डव नृत्य करती भगवान शिव की षष्ठभुजी मूर्ति है। तथा यही पर गणेश ब्रह्म, सूर्य तथा देवियों की अनेक आकृतियाँ है यहाँ मन्दिरों का एक पाँचवा समूह भी है जो पूरी तरह ध्वस्त है इस सन्दर्भ में एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है यह अभिलेख विक्रमी संवत् 1207 का है[84]। इस स्थान पर कुल मिलाकर 100 मूर्तियाँ उपलब्ध होती है इन मूर्तियों का निर्माण अग्निपुराण में वर्णित विधि के अनुसार किया गया है[85]।

इस्लाम धर्म से सम्बन्धित धर्मस्थल— बुन्देलखण्ड के जो दुर्ग तुर्को और मुगलों के अधीन रहे वहाँ स्लाम धर्म से सम्बन्धित धर्म स्थल उपलब्ध होते है मुख्य रूप से कालिंजर दुर्ग में वेंकटेश्वर मन्दिर के समीप मस्जिद का निर्माण कराया गया था इसके अवशेष कालिंजर दुर्ग में आज भी उपलब्ध है तथा इसी दुर्ग में नीलकंठ मन्दिर के समीप मजारताल है और वहाँ

एक मस्जिद भी है इसी प्रकार दुर्ग के निचले पर कोटे में कामता फाटक के पास एक मस्जिद है इसी प्रकार झाँसी–ओरछा–ग्वालियर–चन्देरी में भी अनेक दरगाहे मस्जिदें स्लाम धर्म से सम्बन्धित उपलब्ध होती है। छतरपुर में हनुमान टोरिया पहाड़ी पर हनुमान मन्दिर के बगल से एक मस्जिद बनी है इससे यह स्पष्ट होता है कि दुर्गो के राजनीतिक महत्व के साथ–साथ इसका धार्मिक महत्व भी था।

6– वास्तुशिल्प की दृष्टि से दुर्ग निर्माण शैली एवं उनकी विशेषताएं– वास्तुशिल्प में दुर्गो का विशेष महत्व इनका निर्माण सुरक्षा की दृष्टि से किया जाता था और यह ध्यान रखा जाता था कि दुर्ग के निकट तक शत्रु सेना किसी भी स्थित में न पहुँच पाये इसलिए दुर्ग शिल्प से जुड़े कलाकार दुर्ग निर्माण में विशेष सावधानियाँ बर्तते थे। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार सैनिक दुर्गो की रचना के अतिरिक्त नगरों की सुरक्षा की व्यवस्था तत्कालीन नगर निर्माण कला का विशेष अंग थी। बाहरी आक्रमणों से बचने के लिए सुरम्य राजधानियाँ और नगर दुर्भेद्य प्राचीरों द्वारा परिवेष्टित किये गये थे[86]। कालिंजर दुर्ग सृदृढ़ता की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण था इसकी तारीफ सुल्तान महमूद गजनवी ने इस प्रकार की थी "नगर के चारो ओर एक प्रचीर है, जिसकी ऊँचाई केवल ग्रन्थों से नापी जा सकती हैं। इसके रक्षक सैनिक यदि चाहे तो तारिकाओं से बाते कर सकते है। इसका शिखर उत्तुगताम आकाश की ऊँचाई के समान हैं और मीनराशि के समानान्तर है"[87]।

वास्तुशिल्प का विकास चन्देलकाल में सर्वाधिक हुआ तथा युद्धों से लगातार झूझने के कारण उन्होने नगरो ग्रामों सैनिक शिविरों की रक्षा के लिए वाद्य होकर व्यूह और दुर्गो का निर्माण कराया दुर्गो का समस्त निर्माण कार्य वास्तुशिल्प के अनुसार किया गया। यांत्रिक परिसीमाओं के अतिरिक्त रचनाशैली, भेद वास्तु–स्थापन, विन्यास और वास्तु फलाफलकी जितनी छानबीन और जितना सूक्ष्माति सूक्ष्म अध्ययन इस देश में हुआ उतना अन्यत्र नहीं। वास्तु निर्माताओं के आध्यात्मिक एवं लौकिक ज्ञान की पहुँच असामान्य थी। यों तो इस शास्त्र को अनेक ग्रन्थों ने समय–समय पर निवद्ध किया है किन्तु जिन ग्रंथों ने यहाँ की परम्परा सारणी को निरन्तर प्रवाहित किया है, उनमें उल्लेखनीय नाम बराहमिहिर की बृहत संहिता, विश्वकर्मा रचित विश्वकर्मा प्रकाश तथा विश्वकर्मीय शिल्पशास्त्र मयदानव रचित मय–शिल्प तथा मयमत, काश्यप और भारद्वाज–रचित वास्तुतत्व तथा वैखानस और सनत्कुमार–रचित वास्तुशास्त्र आदि हैं[88]। दुर्ग निर्माण में निम्न विधियों को अपनाया जाता है।

दुर्ग की वास्तु निर्माण सामग्री— जिस स्थान में दुर्ग का निर्माण किया जाता है उस स्थान में उपलब्ध वास्तु सामग्री के आधार पर ही वास्तुशिल्पी दुर्ग का निर्माण प्रारम्भ करते हैं। इस निर्माण सामग्री में पत्थर के ढ़ोके या टुकड़े ईट, चूना, बालू, मिट्टी, लकड़ी लोहा, सन, गोंद उर्द की दाल तथा मसाला बनाने के उपकरण और जुड़ाई तथा वास्तु सामग्री ढ़ोने के लिए उपयुक्त सामान्य काम में लाये जाते थे इनके माध्यम से प्रमुख शिल्पी सहायक शिल्पी बेलदार तथा रेजा, दुर्ग निर्माण में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करते थे।

दुर्ग के लिए भूमि का चयन— राजा और सामन्त की इच्छा के अनुसार भूमि का चयन दुर्ग निर्माण के लिये किया जाता था भूमि चयन में आजकल ध्यान रखा जाता था। जिस जगह दुर्ग निर्माण किया जाना हैं वह स्थान पूर्ण सुरक्षित होना चाहिए तथा वहाँ आवागमन के साधन जल एवं आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति सुलभ होना चाहिए तथा उसमें इतना स्थान होना चाहिए जहाँ राजा की सेना, राजा के मन्त्री, और स्वतः राजा सुरक्षित ढंग से वहाँ निवासकर सके तथा उसकी जनता भी उसके सहयोग के लिये वहाँ रह सके सबसे पहले भूमि का परीक्षण और उसकी पैमाइस की जाती थी उसके पश्चात् वहाँ जलीय संसाधन देखे जाते थे तत्पश्चात दुर्ग का मानचित्र तैयार किया जाता था और शिल्पी उसी मानचित्र के अनुसार उपलब्ध वास्तु सामग्री के आधार पर शिल्पी निर्माण कार्य प्रारम्भ करते थे।

दुर्ग की कोटि का निर्धारण— विविध ग्रन्थों में दुर्ग की 6 अथवा 9 कोटियाँ उपलब्ध होती है पर्यावरण और स्थीनय परिस्थितियों के अनुसार यह निर्धारित किया जाना परम आवश्यक था कि नरेश द्वारा किस कोटि का दुर्ग बनवाया जा रहा है। तथा सामरिक दृष्टि से उस दुर्ग का क्या उपयोग हो सकता है मुख्य रूप से बुन्देलखण्ड में जो दुर्ग उपलब्ध हुए है वे दुर्ग पर्वतीय दुर्ग बन दुर्ग की कोटि में आते हैं यहाँ जलीय दुर्गो की संख्या बहुत कम हैं। कौटिल्य के अनुसार राजा को चाहिए की जहाँ धन उत्पादन आसानी से सम्भव है उन स्थानों में वास्तुविद्या में प्रवीण विद्या का सहारा लेकर श्रेष्ठ नगर बसाये और दुर्ग का निर्माण कराये ये दुर्ग नदी के संगम पर बड़े—बड़े तालाबों के किनारे बनवाये जा सकते है यहाँ की भूमि लम्बी चौकोर और गोलाई लिए भी हो सकती है। इस स्थल में विक्री योग्य वस्तुओं का संग्रह और उसकी विक्री की सुलभता होनी चाहिए।

जनपदमध्ये समुदय स्थानं स्थानीय निवेशयेद । वास्तु क प्रशस्ते देशे नदीसड़ग में ह्रदस्य वा विशोषायांक सरस्तटाकस्य वा वृतं दीर्घ। चतुरज्रं वा वास्तुकवशेन प्रदक्षिणोदकं पण्यपुट भेदनमंसवारिपथाभ्यामुपेयतम्।

तस्य परिखारितस्रो दण्डान्तराः कारयेत् । चतुर्दश द्वदश दशेति दण्डान् विस्तीर्णाः विस्तारादवगाधाः पादोनमर्ध व त्रिभामूला मूले चतरश्राः पाषाणोपहितः पाषाणेष्टकाबद्ध पाश्र्वा वा तोयन्तिकीरागन्तु– तोयपूर्णा वा सपरिवाहाः पद्यग्राहवतीः।[89]

खायी या खब्दक– सुरक्षा की दृष्टि से दुर्ग के चारों ओर एक गहरी खायीं का निर्माण कराया जाता था और उस खायीं की मिट्टी को बाहर फेक दिया जाता था फिर खायीं के तल को मजबूत किया जाता था यह कार्य तीन प्रकार से होता था।1– ऊर्ध्वचय, 2-– मन्चपृष्ठ और 3– कुम्भकुक्षिक अर्थात् क्रमशः ऊपर पतला, नीचे चपटा और बीच में कुम्भकार। इन प्रकारों को बनवाते समय, इनकी मिट्टी को हाथी और बैलो से अच्छी तरह रौंदवाना चाहिए, जिससे कि मिट्टी बैठकर मजबूत हो जाय इनकेचारों ओर काटेदार बिवली झाड़ियाँ लगी होनी चाहिए आकार बन जाने पर यदि मिट्टी बची रह जाय तो उसे उन्हीं गढ़्ढों मे भर देना चाहिए, जहाँ से उसको खोदा गया है, अथवा उस अवशिष्ट मिट्टी से प्रकार के जो छिद्र रह गए हो, उन्हें भरवा देना चाहिए। चतुर्दण्डावकृष्ट परियायाः षड्दण्डोच्छ्ितमवरूद्धं तद्विगुणविष्कम्भं खाताद्वपं करायेंत, ऊर्ध्वचयं मन्ञचपृष्ठं कुम्भकुक्षिंकं व हस्ति भिर्गोभिश्च क्षणं कण्ट कि गुल्मविषवल्लीप्रतानवत्नम्। पांसुशेषण वास्तुच्छिद्रं वा पूरयेत्[90]।

परिकोटा या चहार दिवारी– किसी भी राज्य की रक्षा के लिए तथा दुर्ग की रक्षा के लिए परिकोटा या दीवार बनाया जाना वास्तुशिल्प की दृष्टि से दुर्ग के चारो ओर परिकोटा बनाया जाता था इस दीवार की ऊँचाई चौड़ाई से दुगनी होती थी कम से कम 12 हाथ से 14, 16, 18, 24 हाथ ऊँची होनी चाहिए तथा उसका पथ ऐसा होना चाहिए जिसमें से रथो का आना जाना सम्भव हो। ताड वृक्ष की जड़ के समान् मृदंग बाजे के समान बन्दर की खोपड़ी के समान आकार वाले ईट–पत्थरों की कंकरीटों से अथवा बड़े–बड़े शिलाखडों से प्रकार का निर्माण करवाना चाहिए लकड़ी का प्रकार कभी भी न बनवाना चाहिए, क्योंकि उसमें सदा आग लगाने का भय बना रहता है।

वप्रस्योपरि प्राकरं विष्कम्भद्विगुणोत्सेधमैष्टकं द्वादहस्तादूर्ध्वमोज युग्मं वा आचतु विशहितस्तादिति कारयेत्। रथचर्या सञचारं तालमूल–मुरजकैः कपिशीर्ष कैबा चिताग्रं पृघुशिला संहित वा शैलं कारयेत् न त्वेव काष्ठमयम्। अग्निरवहितो हि तस्मिनन्वसति[91]।

प्रवेश द्वार– प्रत्येक दुर्ग में प्रवेश करने के लिए द्वार का निर्माण किया जाना चाहिए तथा इन द्वारों के राजपथ से जोड़ा जाना चाहिए द्वारों के ऊपर चढ़ने के लिए विशेष प्रकार की सीढ़िया बनवाना चाहिए तथ इससे लगे हुए

अनेक गुप्त मार्गो का निर्माण किया जाना चाहिए।

जिस स्थान पर किले का दरवाजा बनवाना हो, वहाँ पहिले प्रकार के दोनो भागों में डेढ़ दण्ड लम्बा–चौड़ा मण्डप (चबूतरा) बनाया जाय। तदनन्तर एक–एक दंड बढ़ाते हुए अधिक से अधिक आठ दंड तक उसकी परिधि होनी चाहिए, अथवा कुछ विद्वानों के मत से दरवाजा दो दंड का हो। या नीचे के आधा के परिमाण से छठा आठवां हिस्सा अधिक ऊपर का दरवाजा बनवाया जाय।

प्राकरमुभयतो मण्डपकमध्यर्धदण्डं कृत्वा प्रतोलीषट्त लान्तरं द्वारं निवेशयेतः पंचदण्डादेकोत्तरवृद्धयाष्ट दण्डादिति चतुस्श्रम्। द्विदण्डंवा। षड्भागमायामाद धिकमष्टभागं वा[92]।

इन दरवाजों की ऊचाई 15 हाथ से लेकर 18 हाथ होनी चाहिए तथा दरवाजों के खम्भो की मोटाई ऊँचाई से 1/6 होनी चाहिए किले के दरवाजे का ऊपरी बुर्ज दो हाथ लम्बा होना चाहिए और दोनो के फाटक तीन या पाँच तकतो का बनना चाहिए यह दरवाजा मजबूत लकड़ी का होना चाहिए तथा इन दरवाजों को विभिन्न नामों से पुकारा जात है। 1– नगरद्वार 2– पुष्करिणीद्वार 3– कुमारीपुरद्वार 4– मुण्डकद्वार आदि दरवाजे है।

प्राकारसमं मुखमवस्थात्य त्रिभागगोधामुखं गोपुरं कारयेत् प्राकरमध्ये कृत्वा वापी पुष्करिणीद्वारं चतुः शालमध्यपर्धान्तरान्तरणिकं कुमारीपुरं, मुण्डहर्म्य द्वितलं मुण्डकद्वारं भूमिद्रव्यवशेन वा। त्रिभागाधिकायामा भाण्डवाहिनीः कुल्याः कारयेत्[93]।

मार्गो का निर्माण— दुर्ग में विशेष प्रकार के मार्गो का निर्माण कराया जाता था इसका प्रमुख मार्ग 24 फुट चौड़ा होता था तथा अन्य छोटी गलिया होती थी इन मार्गो को द्रोणामुख अस्थानीय राष्ट्रचारागाह व्यापारीमण्डियों सैनिक छावनियों समशान भूमि और गाँव से जोड़ा जाता था। गाँव की ओर जानेवाली सड़को की चौड़ाई 16 गज होती थी जलाशयों और जंगलो को जाने वाली सड़कों 8 गज चौड़ी होती थी और खेतो को जाने वाला रास्ता दो दण्ड (डाईगज) चौड़ा होता था रथों के लिए पाँच अरत्नि पशुओं के चलने का रास्ता दो गज चौड़ा होता था मनुष्य तथा भेड़ बकरी तथा छोटे पशुओं के चलने के लिए यह मार्ग एक गज चौड़ा होता था।

चतुर्दण्डान्तरा रथ्याः। राजमार्ग द्रोणमुखस्थानीय राष्ट्रविवीत यथाः संयनीयव्यूहश्मशानग्राम पथाश्रवाष्टदण्डाः। चतुर्दण्डः सेतुवनपथः। द्विदण्डो हस्तिक्षेत्रपथः। पंचारत्नयो रथपथश्रवत्वारः पशुपधोद्वौ क्षुद्रपशुमनुष्यपथः[94]।

भवन निर्माण— उस युग मे दुर्ग के ऊपर भवन निर्माण जातीय व्यवस्था

के अनुकूल किया जाता था सामाजिक संगठन में विभिन्न वर्णो के वासस्थानों का भी वर्णन वराहमिहिरने किया है।[95] श्रेष्ठता की दृष्टि से इनमे से प्रत्येक की केटियाँ हैं। ब्राह्मणादि वर्णो और अंत्यजोंके वासगृहो का पृथुत्व व्यास अलग–अलग निम्न रूप से माना गया है।

वर्ण	उत्तम	मध्योत्तम	मध्ययम	अधम	अधमाधम
ब्राह्मण	32	28	24	20	16
क्षत्रिय	28	24	20	16	0
वैश्य	24	20	16	0	0
शूद्र	20	16	0	0	0
अन्त्यज	16	0	0	0	0

यह प्रकट करता है कि ब्राह्मण इस प्रकार के प्रभुत्व–व्यास वाले पाँच गृहों के, क्षत्रिय चार के, वैश्य तीन के, शूद्र दो के और अंत्यज एक प्रकार के गृह के अधिकारी माने गये थे। इसी प्रकार के न जाने कितने ही सूक्ष्मतिसूक्ष्म भेद–भाव वास्तु स्थानों के किये गये थे।

वास्तु रचना– गृह बनाते समय वीथिका छोड़ने की पद्धति भी थी। यह भूमि यदि गृह के पूर्व की ओर छोडी जाय तो इसे 'सोष्णीष' पश्चिम की ओर तो 'साश्रय' उत्तर व दक्षिण की ओर छोडी जाने पर 'सावष्टम्भ' कहा जाता है। यदि यह वीथिका वास्तुभवन के चारों ओर छोडी जाय तो उसे 'सुस्थित' कहा जाता है। ऐसी विधि से बने वास्तु शुभ प्रद माने जाते हैं। वास्तु–शास्त्रों में गृहों के ही परिणाम से उनके द्वारों के निर्धारण सिद्धान्त बतलाया गया है। उदाहरण के लिए–राजा और सेनापति के गृहों का जो व्यास हो उसमें 70 जोड़कर 11 से भाग दे। भागफल जो होगा उसके प्रधान द्वार का विस्तार उतना ही होगा। ब्राह्मणादि वर्णो के गृह–व्यास के पंचमांश में 12 अंगुल जोड़ देने से जो होगा वही उनके गृह–द्वार का परिणाम है। द्वार–परिमाण का अष्टमांश द्वार का विष्कम्भ और विष्कम्भ से दूनी द्वार की ऊँचाई होनी चाहिए।

जलाशय– प्रत्येक दुर्ग में जल आपूर्ति के जलाशयों का निर्माण किया जाता था यह जलाशय सरोवर, कुण्ड, कूप, और वीहण, के रूप में निर्मित हुए है। अधिकतर चन्देल शासकों ने अधिकाधिक संख्या में जलाशयों की रचना कराई। उनकी इन कृतियों में से अनेक आज भी उनका गौरव अमर करने के लिए उपलब्ध है। उनके भग्न रूप से भी उनकी उत्कृष्ट कला का परिचय मिलता है।

इन जलाशयों की रचना की विशेषता यह है कि ये जैसे ही विशाल है वैसे ही मजबूत उनके तटों पर चतुर्दिक स्नानार्थ मनोहर बने हैं और पूजन के निमित्त देवालयों की रचना की गयी है। उनका सामूहिक दृष्य बड़ा पभाव कारी होता है। इस वंश के सातवे शासक राहिल ने महोबा से दो मील दक्षिण की ओर एक जलाशय बनवाया, जो राहिल सागर के नाम से विख्यात है। कालिंजर दुर्ग के ऊँपर अनेक जलाशय उपलब्ध होते हैं। मुख्य रूप से कोट तीर्थ सरोवर रामकटोरा ताल बुढ्ढा–बुढ़िया ताल, है इसके अतिरिक्त दुर्ग के नीचे अनेक बीहड़ और और अति सुन्दर सरोवर हैं। शेरपुर सेवढ़ा दुर्ग में विन्ध्यवासिनी देवी के सन्निकट केन नदी वाले पथ में एक वीहण उपलब्ध है तथा दूसरा बीहण दुर्ग के ऊपर है कृतिम जलाशय के अतिरिक्त अन्य प्राकृतिक जलाशय भी दुर्गो के सन्निकट उपलब्ध हो जाते हैं जल की उपयोगिता व्यक्तिगत कार्यो सफाई कृषि एवं विविध वस्तुओं के उत्पादन मे होती है।[96] ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची [पेज नं. 133 से 214 तक]

1– पं० गोरे लाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, 1933, पृ० –3,

2– ऋग्वेद ,मण्डल 7, खण्ड 5,अध्याय 37, श्लोक–9,

3– महाभारत शान्ति पर्व ,अध्याय 85, श्लोक सं० 11,

4– बाल्मीकि रामायण, खण्ड 1, अध्याय 29, श्लोक सं० 10–18,

5– कर्नल जेम्स टॉड, राजस्थान का इतिहास ,सन् 2000 पृ० 47,

6– ऋग्वेद 10–124–8,

7– डॉ० ईश्वरी प्रसाद ,भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीति, धर्म ,तथा दर्शन सन् –1990, पृ० 67,

8– ऋग्वेद 9–92–6,

9– ऋग्वेद 10–66–4,

10– डॉ० ईश्वरी प्रसाद ,भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीति, धर्म ,तथा दर्शन सन् –1990, पृ० 68,

11– डॉ० ईश्वरी प्रसाद ,भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीति, धर्म ,तथा दर्शन सन् –1990, पृ० 136,

12– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् (वाराणसीः चौखम्भा विद्याभवन, 1977) पृ० 44–45,

13– देवकान्ता शर्मा, कौटिलीय के प्रशासनिक विचार, सन् 1998 पृ० 58,

14– कौटिल्य का अर्थशास्त्र,अध्याय 1, श्लोक सं० 3,

15– वही अध्याय 5, श्लोक, 2,

16– वही अध्याय 2, श्लोक, 2,

17– कौटिल्य का अर्थशास्त्र,

18– कौटिल्य का अर्थशास्त्र,अध्याय 1, श्लोक सं० 3,

19– डॉ० ईश्वरी प्रसाद ,भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीति, धर्म ,तथा दर्शन सन् –1990, पृ० 138,

20– वही पृ० 139,

21– देवकान्ता शर्मा, कौटिल्य के प्रशासनिक विचार, सन् 1998 पृ० 65,

22– परमेश्वरी लाल गुप्त, गुप्त साम्राज्य, विश्व विद्यालय वाराणसी सन् 1991 पृ० 368,

23– कार्पस इन्सक्रिप्सन इण्डिकेरम भाग 3, नं0 46,

24– डॉ0 ईश्वरी प्रसाद ,भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीति, धर्म ,तथा दर्शन सन् –1990, पृ0 184,

25– डॉ0 ईश्वरी प्रसाद ,भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीति, धर्म ,तथा दर्शन सन् –1990, पृ0 937,

26– वाटर्स, जिल्द,1, पृ0 344

27– हर्षचरित (फुहरेर–सम्पादित, बम्बई 1909), पृ0 223 ,

28– वाटर्स, जिल्द,1, पृ0 176

29– एपिग्राफिका इण्डिका, बॉंस खेडा का अभिलेख जिल्द 4, पृ0 211,

30– इण्डियन एण्टिक्वेरी, जिल्द 37, पृ0 132,

31– मदन वर्मा का मऊ प्रस्तर अभिलेख, एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द 1, पृ0 197 श्लोक 3,

32– शुक्रनीति सार , श्लोक 47, पृ0 305,

33– वही , 4, 2, 130,

34– वही , 4, 1, 3,

35– नारद शूक्त, 18,31,

36– डॉ0 अल्तेकर , प्रचीन भारतीय शासन पद्यति, पृ0 5,59,

37– मनुस्मृति, जिल्द 9, श्लोक,294,

38– एपिग्राफिका इण्डिका, भाग 10, पृ0 44,

39– कौटिल्य का अर्थशास्त्र ,अध्याय 1, श्लोक 15,

40– डॉ आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव , भारत का इतिहास, सन् 1979, पृ0 232,33,

41– वही पृ0 235,

42– डॉ आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव , भारत का इतिहास, सन् 1979, पृ0 237,

43– डॉ आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव , भारत का इतिहास, सन् 1979, पृ0 393,

44– अबुलफजल, अकबर नामा, भाग 2, पृ0 421,

45– डॉ आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव , भारत का इतिहास, सन् 1979, पृ0 479,

46– ऋग्वेद, ऐतरेय ब्राह्मण

47– कृष्ण कवि, बुन्देलखण्ड का इतिहास , ओरछा खण्ड, विक्रमी संबत 2037, पृ0 सं0 11,

48– पं0 गोरे लाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, 1933, पृ0 –223,

49– पं0 गोरे लाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, 1933, पृ0 –102,

50– डॉ0 ईश्वरी प्रसाद ,भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीति, धर्म ,तथा दर्शन सन् –1979, पृ0 519,

51– डॉ0 ईश्वरी प्रसाद ,भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीति, धर्म ,तथा दर्शन सन् –1979, पृ0 545,

52– डॉ0 ईश्वरी प्रसाद ,भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीति, धर्म ,तथा दर्शन सन् –1979, पृ0 560,

53– वाल्मीकि रामायण 2, 4, 54,

54–महाभारत शान्ति पर्व –अध्याय 78– श्लोक–सं0 23–24,

55– कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, सन् 1991, पृ0 218,

56– कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, सन् 1991, पृ0 225–27,

57– डॉ0 ईश्वरी प्रसाद ,भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीति, धर्म ,तथा दर्शन सन् –1979, पृ0 184,

58– समुद्र गुप्त का एरण अभिलेख, प्रचीन भारतीय अभिलेख सन् 1983, पृ0 सं0 49–50,

59– कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, सन् 1991, पृ0 482,

60– एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द 16 , पृ0 345,

61– इण्डियन एण्टिक्वेरी, जिल्द 15, पृ0 304,

62– ए0 एस0 अल्तेकर, स्टेट ऐण्ड गवर्नमेन्ट इन् ऐंशियेण्ड इण्डिया, पृ0 209,

63– एपिग्राफिका इण्डिका, भाग 1 , पृ0 109,

64– केशवचन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, वाराणसी सन् 1974 पृ0 सं0 153–54,

65– डॉ आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव , भारत का इतिहास, सन् 1979, पृ0 237–338,

66– डॉ आशीर्वादी लाल श्री वास्तव , भारत का इतिहास, सन् 1979, पृ0 484,

67— कृष्ण कवि, बुन्देलों का इतिहास , खण्ड 3, पृ0 सं0 250—51,

68— पं0 गोरे लाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, सन् 1933, पृ0 —104,

69— बाल्मीकि रामायण अरण्यकाण्ड चतुर्थ सर्ग , श्लोक सं0 30,

70— डॉ0 ईश्वरी प्रसाद ,भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीति, धर्म ,तथा दर्शन सन् —1990, पृ0 562,

71— डॉ0 ईश्वरी प्रसाद ,भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीति, धर्म ,तथा दर्शन सन् —1990, पृ0 588,

72— डॉ0 ईश्वरी प्रसाद ,भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीतिक, धर्म ,तथा दर्शन सन् —1990, पृ0 593,

73— हरि सहाय सिंह— प्राचीन भारत मे पंचायती जन समितियाँ सन् , 1987 पृ0 256,

74— वही पृ0 257,

75— वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्र पृ0 25,

76— वही पृ0 93,

77— कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, सन् 1991, पृ0 219,

78— वही,

79— कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, सन् 1991, पृ0 408,

80— कार्पस इन्सकृप्सनस् पृ0 112,

81— परमेश्वरी लाल गुप्त , गुप्त साम्राज्य , राजनीतिक , सांस्कृतिक तथा सामाजिकइतिहास, सन् 1991, पृ0 395—96,

82— डॉ0 ईश्वरी प्रसाद, भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीति, धर्म , तथा दर्शन सन् —1990, पृ0 339,

83— एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द 1 , पृ0 159,

84— डॉ0 विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास सन् 1974, पृ0 सं0 647,

85— एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द 11 , पृ0 45, 56, 58,

86— शुक्रनीति अध्याय 2, श्लोक सं0 343,

87— इण्डियन एण्टिक्वेरी, भाग 16, पृ0 277,

88— एपिग्राफिका इण्डिका, भाग 4 , पृ0 153,

89— वही भाग 16, पृ0 12,

90— केशवचन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, सन् 1974 पृ0 सं0 156,
91— डॉ आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव , भारत का इतिहास, सन् 1979, पृ0 238—39,
92— डॉ आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव , भारत का इतिहास, सन् 1979, पृ0 486,
93— अबुलफजल— आइने अकबरी, भाग 2 , पृ0 47,
94— अबुलफजल— आइने अकबरी, भाग 2 , पृ0 41,
85— जान मथाई— बिलेज गर्वनमेन्ट इन ब्रिटिश इण्डिया पृ0 25—27,
96— कृष्ण कवि, बुन्देलखण्ड का इतिहास ,तीसरा खण्ड सन् 1974, पृ0 254,
97— वही पृ0 77,
98— देलवारा लेख— कृष्ण कवि, बुन्देलखण्ड के कवि , बिक्रमी संबत 2025 पृ0 204,
99— देलवारा लेख— कृष्ण कवि, बुन्देलखण्ड के कवि , बिक्रमी संबत 2025 पृ0 210,
100— वही पृ0 213,
101— पं0 गोरे लाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का साक्षिप्त इतिहास, सन् 1933, पृ0 —113,
102— डॉ0 कन्हैया लाल अग्रवाल; विन्ध्यक्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल सन् 1987, पृ0 181,
103— डॉ0 ईश्वरी प्रसाद ,भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीति, धर्म ,तथा दर्शनसन् —1990, पृ0 635,
104— देवकान्ता शर्मा —कौटिल्य के प्रशासनिक विचार, सन् 1998, पृ0 105,
105— उमेश कुमार, कौटिलीय थॉट आन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन (नई दिल्ली नेशनल बुक आर्गनाइजेशन पब्लिशर्स, 1990) पृ0 28,
106— उदय वीर शास्त्री , कौटिलीय अर्थशास्त्र, पृ0 258,
107— देवकान्ता शर्मा —कौटिल्य के प्रशासनिक विचार, सन् 1998, पृ0 113,
108— कौटिल्य का अर्थशास्त्र, अध्याय 4, श्लोक सं0 —1,
109— मेकक्रिण्डल, एन्शियण्ट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड इन क्लासिकल लिटलेचर पृ0 48,
110— कार्पस इन्स्कृप्शन्स इण्डिया, जिल्द 3, पृ0 118,
111— वही पृ0 120,
112— वही पृ0 254,
113— कौटिल्य का अर्थशास्त्र, अध्याय 2, श्लोक 6,
114— गौतमस्मृति, अध्याय 10, श्लोक 24—27,
115— स्टेट एण्ड गर्वमेन्ट इन इण्डिया, पृ0 281

116– कामन्दक नीतिसार, अध्याय 5, श्लोक सं0 74–84,

117– कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, सन 1991 पृ0 482

118– डॉ0 ईश्वरी प्रसाद ,भारतीय इतिहास, संस्कृति कला, राजनीति, धर्म , तथा दर्शन सन् –1990, पृ0 380–81,

119– मथन देव का राजोर अभिलेख,

120– डॉ0 विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, सन 1972 पृ0 648–49,

121– वही, पृ0 651,

122– शुक्रनीति अध्याय 2, श्लोक सं0 118

123– केशवचन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, सन 1974, पृ0157,

124– इण्डियन एण्टिक्वेरी, वाल्युम 16, पृ0 208,

125– अल्तेकर, प्रचीन भारतीय शासन पंक्ति 12, पृ0 204,

126– केशवचन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, सन 1974, पृ0158,

127– हिस्ट्री ऑफ हिन्दू मेडिवल इण्डिया, भाग 1, पृ0 135,

128– केशवचन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, सन 1974, पृ0159,

129– एपिग्राफिका इण्डिका, भाग 1 , पृ0 203,

130– डॉ आशीर्वादी लाल श्री वास्तव , भारत का इतिहास, सन् 1979, पृ0 243,

131– डॉ आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव , भारत का इतिहास, सन् 1979, पृ0 245,

132– अबुलफजल– आइने अकबरी, भाग 2 , पृ0 55,

133– डॉ आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव , भारत का इतिहास, सन् 1979, पृ0 503,

134– कृष्ण कवि, बुन्देलखण्ड का इतिहास ,सन् 1974, पृ0 252,

135– कृष्ण कवि, बुन्देलखण्ड का इतिहास ,सन् 1974, पृ0 255,

136– महाभारत, खण्ड 3, अध्याय 61, श्लोक सं0 147,

137– बाण भट्ट ,कादम्बरी, पृ0 22,

138– बाण भट्ट ,हर्षचरित, पृ0 228,

139– वही , पृ0 410–11,

140– कालिदास, मेधदूत, श्लोक सं0 123,

141– कार्पस, खण्ड 4, पृ0 215,पंक्ति 31,

142– कार्पस, खण्ड 4, पृ0 215

143— सिंह दीवान प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, विक्रमी संबत 1985, पृ0 311,

144— वही पृ0 313,

145— महाभारत शान्ति पर्व, अध्याय 69, श्लोक सं0 34—40,

146— अग्निपुराण , अध्याय 228, पृ0 358—59,

147— अग्निपुराण , अध्याय 233, पृ0 364—65,

148— अग्निपुराण , अध्याय 236, पृ0 368—70,

149— अग्निपुराण , अध्याय 245, पृ0 393,

150— वही पृ0 294,

151— वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, पृ0 25,

152— देवकान्ता शर्मा —कौटिल्य के प्रशासनिक विचार, सन् 1998, पृ0 83,

153— चन्द्रदेव प्रसाद, कौटिल्य अर्थशास्त्र खण्ड 4, पृ0 10,

154— देवकान्ता शर्मा —कौटिल्य के प्रशासनिक विचार, सन् 1998, पृ0 83,

155— वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् , पृ0 554,

156— वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् पृ0 249,

157— उदयवीर शास्त्री , कौटलीय अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण, दशम अध्याय, श्लोक 16,

158— कमन्दकीय नीतिसार ,अध्याय 19, श्लोक सं0 23—24,

159— एपिग्राफिका इण्डिका, खण्ड 25 , पृ0 52,

160— कालिदास, रघवंश महाकाव्य, अध्याय 4, श्लोक सं0 47,

161— वही अध्याय 4, श्लोक 29,

162— वही,

163— वही अध्याय 4, श्लोक 36,

164— सेलेक्ट इन्कृप्शन्स, पृ0 343, पं0 15,

165— समुद्र गुप्त का प्रयाग स्तम्भ लेख, पृ0 47—49,

166— डा0 विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, सन 1972 पृ0 652

167— कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, सन् 1991, पृ0 482—83,

168— डा0 विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, सन 1972 पृ0 651,

169— केशवचन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, सन 1974, पृ0165,

170– इण्डियन एण्टिक्वेरी, सन् 1908, पृ0 123,

171– श्री कृष्ण मिश्र– प्रबोधचन्द्रोदय, निर्णयसागर प्रेस अध्याय 4, पृ0 157,

172– डॉ आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव , भारत का इतिहास, सन् 1979, पृ0 239,

173– डॉ आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव , भारत का इतिहास, सन् 1979, पृ0 242,

174– वही पृ0 492–99,

175– कृष्ण कवि, बुन्देलखण्ड का इतिहास ,सन् 1974, पृ0 254,

176– पं0 गोरे लाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, 1933, पृ0 –104,

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची [पेज नं. 215 से 256 तक की]

1– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण सन् 1991,अध्याय 6, श्लोक सं0 1–3, पृ0 सं0 18,

2– वही, पृ0 सं0 27,

3– फोर्ट ऑफ इण्डिया, पृ0 सं0 4,

4– चन्दबरदाई और उनका काव्य–डॉ0 विपिन विहारी त्रिवेदी पृ0 121,

5– माटे, मधुकर, श्रीपद, ''अली हिस्टोरिक फोर्टिफिकेशंस इन दि गंगा वैली'', पुरातत्व , खण्ड 3, 1969–70 पृ0 58–59, माटे, ''बिल्डिग इन ऐश्येंट इडिंया '' वर्ल्ड आर्कियोलाजी, जिल्द 1, सं0 2, अक्टूबर 1969, पृ0 236–46,

6– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण सन् 1991,अध्याय 3, श्लोक सं0 2, पृ0 सं0 85–86,

7– From- Rajadharmakaustubha of Anantadeva , videch .14,

8– महाभारत (क्रिटिकल एडीशन, पूना) शान्ति पर्व 12–87–5,

9– मत्स्यपुराण (बेकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1986), 217,6–7,

10– मनुस्मृति , अध्याय 7, श्लोक सं0 70–71, पृ0 सं0 208,

11– अग्निपुराण, अध्याय 222, पृ0 सं0 348,

12– शुक्रनीति , अध्याय 4, पृ0 सं0 6, श्लोक 6,

13– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण सन् 1991,अध्याय 3, श्लोक सं0 1, पृ0 सं0 85,

14– कामंदक नीतिसार , अध्याय 4, श्लोक सं0 60,

15– अग्निपुराण, अध्याय 222, पृ0 सं0 348–49,

16– अग्निपुराण, अध्याय 223, पृ0 सं0 350,

17– अग्निपुराण, अध्याय 225, पृ0 सं0 353,

18– उदयवीर शास्त्री, कौटलीय अर्थशास्त्रम् श्लोक सं0 15,

19– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् पृ0 25,

20– वही, पृ0 सं0 26,

21– वही,

22– वही, पृ0 सं0 27,

23– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् पृ0 502,

24– पी0 एन0 बनर्जी , पब्लिक एडमिनीस्ट्रेशन इन एनसिएण्ट इण्डिया (दिल्लीः इण्डियन रिप्रिन्टस् पब्लिशिंग, कम्पनी, 1973) पृ0 9,

25– रघुनाथ सिंह, कौटिलीयम् ,अर्थशास्त्रम् , पृ0 671

26– अग्निपुराण, अध्याय 227, पृ0 सं0 355–से 358 तक,,

27– मनुस्मृति , अध्याय 7, श्लोक स0 17–18,

28– दवकान्ता शर्मा, कौटिल्य के प्रशासनिक विचार, प्रकाशक, प्रिन्टवैल, प्रथम संस्करण 1998, पृ0 सं0 71,

29– उदयवीर शास्त्री, कौटलीय अर्थशास्त्र (नई दिल्लीः मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास पब्लिकेशन, 1988) द्वितीय अधिकरण, 33 वां अध्याय, श्लोक सं0 131,

30– रघुनाथ सिंह, कौटिलीयम् ,अर्थशास्त्रम् , पृ0 107–08,

31– इन्द्र एम0 ए0 कौटिलीय अर्थशास्त्र, पृ0 36,

32– उदयवीर शास्त्री, कौटलीय अर्थशास्त्र पृ0 सं0 35–36,

33– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् , (वाराणसी चौखम्भा विद्याभवन 1977) पृ0 सं0 308

34– अग्निपुराण, अध्याय 228, पृ0 सं0 358,

35– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण सन् 1991,अध्याय 9/2 , श्लोक सं0 1, पृ0 सं0 595,

36– वही, श्लोक सं0 2, पृ0 सं0 595,

37– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण सन् 1991,अध्याय 9/2, श्लोक सं0 1, पृ0 सं0 598,

38– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण सन् 1991,अध्याय 1/2, श्लोक सं0 2, पृ0 सं0 598,

39– महाभारत आदि पर्व, अध्याय 2, श्लोक सं019–26,

40– वाजसनेयी संहिता, 16/9,

41– औपपातिक सूत्र 31, पृ0 132,

42– जैन, जगदीशचन्द्र,जैन आंगम साहित्य में भारतीय समाज,पृ0103

43– अग्निपुराण, अध्याय 236/44–45

44– नीतिप्रकाशिका, 6/57

45– अग्निहोत्री, प्रभुदयाल, पतंजलिकालीन भारत, पृ0 236,

46– पाणिनि, अष्टाध्यायी, 5/4/74,

47– वही, 6/3/104,

48– पतंजलि, महाभाष्य, 5/1/2,

49– ऋग्वेद, 6/75,

50– वही, 7–18–83,

51– महाभारत, उद्योगपर्व, 155/12–13,

52– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण सन् 1991,4/153–54,

53– चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृ0 220,

54– महाभारम ,भीष्मपर्व, 5/1187, पृ0 135,

55– लंका काण्ड, 52–11,

56– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण सन् 1991, 153–54/4,

57– आल्हखण्ड, जनकवि जगनिक

58– बील,एस0 लाइफ, ऑफ ह्वेनसांग, पृ0 172,

59– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण सन् 1991, 2/48/132,

60– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण सन् 1991,153–54/4,

61– कामंदनीतिसार, 13/1–3

62– IA, Vol, XV I I I , P,301,

63– A Stone Plapule Carved with Mather Goddess and Their Consorts, Datable to 3rd, C.B.C, was found from kausambi And is presently housed in the Allahabad Museum see Chandra s stone sculpture in the Allahabad Museum, Pl, I I I,

64– ASI . AR,1909 -10, P.146'

65– Ghosh,A,Remains of bharhut stupu in the indian Musium, 1978, P.41.

66– OP. cit,Barua, B,M, I I, 1934, P.70,

67– OP,cit, Bajpai, k,D , 1976, P, 122,

68– Banerjea, J.N.Religion in art and archaiology,P.6,

69– डॉ सुशील कुमार सुल्लेरे, अजयगढ़ और कालिंजर की देव प्रतिमाएँ पृ0 सं0 21,

70– भागवत् पुराण, स्कन्द 5, अध्याय 8, श्लोक सं0 1–30,

71– कालंजर महात्म्य 1/30–32,

72– इण्डियन एन्टिक्वरी, भाग 16, पृ0 201–4,

73– आर्कलाजिकल सर्वे एनुवल रिर्पोट, 1935–36, पृ0 91–93,

74– एपिग्रफिका इण्डिका, भाग 27, पृ0 सं0 99–107,

75– अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो, पृ0 186,

76– एपिग्रफिका इण्डिका, भाग 1, पृ0 सं0 129–135,

77– कनिंघम आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट , भाग 21, पृ0 22,

78– आर्कुलाजिकल सर्वे इण्डिया एनुवल रिपोर्ट, 1935–36, पृ0 सं0 91–93,

79– कनिंघम आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट , भाग 21, पृ0 46,

80– देसाई कल्पना, आइकनोग्राफी ऑफ विष्णु, पृ0 100 चित्र सं0 19,

81– जैन भागचन्द्र, देवगढ़ की जैन कला, पृ0 94–95,

82– आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट (कनिंघम) , भाग 10, पृ0 82–89,

83– आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट (कनिंघम) , भाग 10, पृ0 92 प्लेट 31,

84– वही भाग 10, पृ0 97

85– एस0 डी0 त्रिवेदी, बुन्देलखण्ड की मूर्तिशिल्प में राम, प्राच्य प्रतिभा, भाग 9–10 पृ0 143–148,

86– केशवचन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, भाग 2, सम्बत् 1974, पृ0231,

87– मेम्वायर्स आव् महमूद आव् गजनी 322,

88– केशवचन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, भाग 2, सम्बत् 1974, पृ0223,

89– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण सन् 1991,अध्याय 2, सर्ग 3, श्लोक सं0 2,

90– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण सन् 1991,अध्याय 2, सर्ग 3, श्लोक सं0 1,

91– वही पृ0 सं0 86,

92– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण सन् 1991,अध्याय 2, सर्ग 3, पृ0 सं0 88,

93– वही पृ0 सं0 89–90,

94– वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण सन् 1991,अध्याय 2, सर्ग 4, श्लोक सं0 2,

95– हिन्दी विश्वकोष– भाग 21, पृ0 237,

96– केशवचन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, भाग 2, सम्बत् 1974, पृ0 सं0 230,

तृतीय अध्याय

- दुर्गो में उपलब्ध वास्तुशिल्प का वर्गीकरण और विश्लेषण।
- दुर्ग की प्राचीर एवं परिकोटा का महत्व एवं वास्तु शिल्प का विश्लेषण।
- दुर्ग के प्रवेश द्वारों का सामरिक दृष्टि से महत्व।
- दुर्गो में उपलब्ध जलाशय एवं उनका महत्व।
- दुर्ग में उपलब्ध आवासीय महल सभा स्थल एवं अन्य स्थल।
- दुर्ग में स्थित धर्मस्थल का महत्व एवं उसका वास्तविक शिल्प।
- दुर्ग में उपलब्ध दुर्ग मूर्ति शिल्प एवं मूर्ति शिल्प की
- दृष्टि से उसका महत्व।

दुर्ग में उपलब्ध सामरिक महत्व के स्थल।
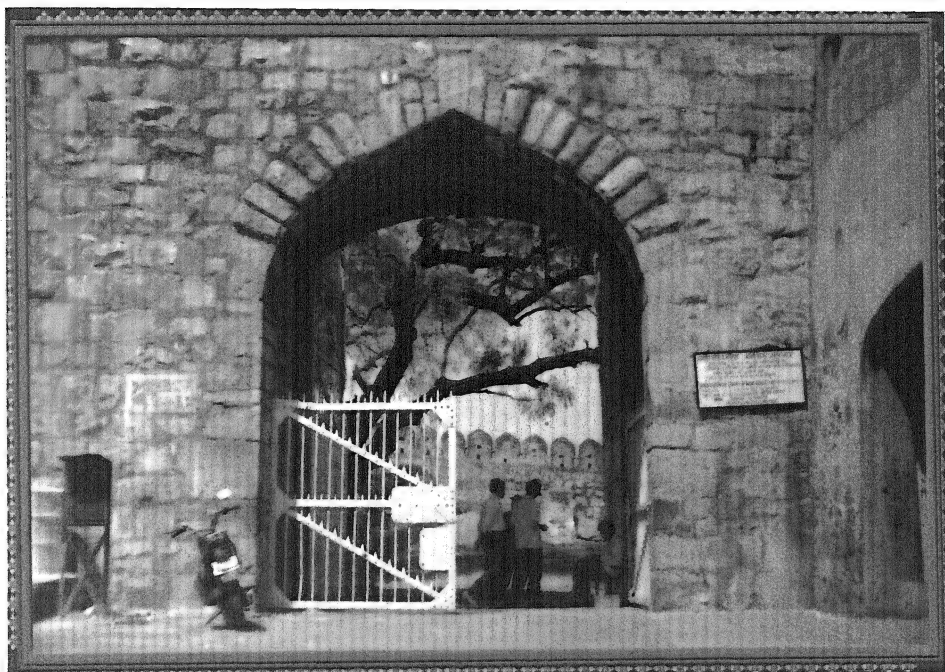
झाँसी दुर्ग का प्रवेश द्वार

झाँसी दुर्ग का गणेश मन्दिर

तृतीय अध्याय

दुर्ग में उपलब्ध वास्तुशिल्प का वर्गीकरण और विश्लेषण

प्राचीनकाल में मानव जाति के लोगों ने आवश्यकता अनुसार अपने आश्रयों का निर्माण करना प्रारम्भ किया था। पूर्व पाषाण युग और उत्तर पाषाण युग में वह कन्दराओं में निवास किया करता था उसने आत्मरक्षा के लिए समूह में रहना पसन्द किया ताकि वे अपनी आत्मरक्षा कर सकें जंगली जानवरों और शत्रुओं से रक्षा करने के लिए उसने प्रकृति में उपलब्ध वस्तुओं को अस्त्र–शस्त्र के रूप में प्रयोग करना प्रारम्भ किया यह अस्त्र–शस्त्र पत्थर अस्थि चर्म और तन्तुओं तथा लकड़ी और बांससे बनते थे। धातु का प्रयोग जानने के पश्चात उसमें धातुओं से अस्त्र–शस्त्र निर्मित किये और वह इन्हीं अस्त्र–शस्त्रों से अपनी रक्षा करने लगा।

कुछ काल बाद मानव जाति के लोगों ने यह अनुभव किया कि वे घूमना फिरना छोड़कर एक स्थान पर स्थिर होकर रहे। मानवों की इस भावना ने ग्रामों और नगरों को जन्म दिया तथा अपनी रक्षा का भार कुछ व्यक्तियों को सौंपा ये लोग प्रशासक और सैनिक कहलाये इन्होंने नगरों और कसबों का सीमांकन किया और उसकी सीमा के चारों ओर परकोटो का निर्माण किया। तथा नगर में प्रवेश करने के लिए कुछ द्वार भी निर्मित किये इससे नगर की सीमाएं सुरक्षित हो गयी और नगर में रहने वाले नागरिक अपने आपको सुरक्षित अनुभव करने लगे।

सबसे बड़ी आवश्यकता नगर में रहने वाले व्यक्तियों की आवास स्थलों की थी इनका भी निर्माण आवश्यकतानुसार किया गया नगर में रहने वाले नागरिक जो विविध वर्णों में विभाजित थे। उन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार अपने–अपने भवनों का निर्माण कराया तथा इन भवनों में प्रकाश वायु तथा जल की विशेष व्यवस्था की गयी भवनों में प्रवेशद्वारों का निर्माण हुआ तथा विविध उद्देश्यों के लिए अनेक कक्षों का भी निर्माण किया गया। इनमें पाकशाला, भण्डागृह, सैन्य कक्ष, बैठक पूजा कक्ष तथा चौकोर आंग का निर्माण किया गया दूषित जल निकासी के लिये नालियों का निर्माण किया गया इन नालियों को एक प्रमुख नाली से जोड़ा गया ये नालियाँ सुदूर किसी जलाशय में मिल जाती थी।

मनुष्य के आवागमन के लिये मार्गों की आवश्यकता अनुभव की गयी तथा नगर को अनेक भार्गो से जोड़ा गया इन मार्गो में पद यात्री पशु और वाहन आसानी से आ जा सकते थे तथा अपने घरो तक पहुँच सकते थे

प्रत्येक व्यक्ति के निवास स्थान का किसी न किसी सड़क का सम्बन्ध होता था व्यक्ति इन्ही सड़को के माध्यम से नगर के अतिरिक्त अन्य स्थानों में भी आ जासकता था वह अपने अतिरिक्त सामान को बाहर ले जाता था और बाहर के सामान को नगर के अन्दर ले आता था तथा नगर के सामान को अपने घर तक ले जाता था। मार्गो के माध्यम से व्यवासाय का जन्म हुआ तथा अनेक उद्योगों से जुड़े लोग क्रय–विक्रय के लिए अपना सामान इधर से उधर ले जाते थे मार्गो के ही कारण वाहनों को भी जन्म मिला यदि मार्ग न होते तो रथ और बैलगाड़े भी न होते तथा सामाजिक सम्बन्ध भी सुदूर क्षेत्रों में स्थापित न होते।

उपरोक्त स्थलों का निर्माता कौन था यह बात विचारणीय हैं तथा उस निर्माता ने जिन विधियों को जन्म दिया उन विधियों को किस नाम से सम्बोधित किया गया जो भी निर्माण कार्य उसके माध्यम से हुए उनमें कौन सी वस्तुओं का उपयोग किया गया स्पष्ट है इस कला को वास्तुशिल्प के नाम से पुकारा गया कतिपय मनीषियों ने वास्तुशिल्प के उत्कृष्ट ग्रन्थों को जन्म दिया। इन ग्रन्थों मे दानवकृत, वास्तुविज्ञान, विश्व, कर्माविज्ञान, और वृहद संहिता जैसे ग्रन्थों की रचना हुई इसके अतिरिक्त अनेक पुराणों और धर्म ग्रन्थों में भी वास्तुशिल्प का वर्णन उपलब्ध होता है। मुख्य रूप से अग्निपुराण में वास्तुशिल्प का वर्ण सविस्तार उपलब्ध हो जाता हैं। वैदिक और पौराणिक युग में जिन नगरों का विकास हुआ और जो दुर्ग बने उन सबका निर्माण वास्तु विद्या के अनुसार किया गया है। बुन्देलखण्ड में जो भी पुरावशेष उपलब्ध होते। है वे सभी के सभी वास्तुविधान के अनुसार निर्मित हुए कालान्तर में चन्द्रगुप्त मौर्य के सहयोगी और मंत्री कौटिल्य ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ अर्थशास्त्र में वास्तुविद्या का सविस्तार वर्णन किया है।

वास्तुशिल्प का समस्त निर्माण कार्य विविध प्रकार की वास्तु सामग्री पर निर्भर होता है इसमें सर्व प्रथम भूमि की आवश्यकता होती है जहां पर वास्तुशिल्पी अपनी वास्तु कला का प्रदर्शन करता है। भूमि के पश्चात उस सामाग्री की आवश्यकता होती हैं जिसका प्रयोग वास्तु शिल्प में होता हैं मुख्य रूप से मिटटी पत्थर ईट चूना लकड़ी लोहा पानी तथा अन्य वस्तुओं की आवश्यकता निमार्ण कार्यो में पड़ती हैं। जिसके माध्यम से ही वास्तुशिल्पी वास्तु शिल्प को जन्म देता हैं कोई वास्तु शिल्पी अकेले दम पर यह कार्य नही कर सकता उसको इसके लिए अनेक सहयोगी लेनाए पड़ते है इनमे शिल्प कार बेलदार रेजा तथा सामान ढोले वाले व्यक्ति सामिल होते हैं सामान ढोने के लिये तसले बैलगाड़ा पशु आदि की आवश्यकता पड़ती हैं।

तथा शिल्प कार विविध औजारों के माध्यम से ही निर्माण कार्य करता है उसे फौवड़ा खुदायी, सबरी, छेनी, हथौड़ा कन्नी आदि का सहारा लेना पड़ता है तथा भूमि की पैमाइस आदि के लिये भी उसके पास अनेक उपकरण होते हैं।

किसी भी वास्तुशिल्प के लिये संसाधनो की भी आवश्यकता पड़ती है स्पष्ट है कि जिस व्यक्ति के साधन सुलभ होते है। वही वास्तु शिल्प के अनुसार निर्माण कार्य सम्पन्न करा सकता हैं राजा महराजा पूँजी पति तथा ससाधन सम्पन्न व्यक्ति वास्तु कला को प्रोत्साहित कर सकते है कोई भी गरीब व्यक्ति इस कला को जन्म नहीं दे सकता वह केवल मजदूर की हैसियत से ही कार्य कर सकता हैं। अनेक शिल्पी भी सासन सम्पन्न व्यक्तियों के गुलाम बनकर उनके लिये ही कार्य करते आये है। बुन्देलखण्ड मे जो भी दुर्ग उपलब्धा हुए है उनका निर्माण साधन सम्पन्न व्यक्तियों ने कराया हैं और उन्हीं का इतिहास सुलभ होता है अन्य व्यक्तियों का कोई इतिहास नही हैं।

1:—दुर्ग की प्राचीर एवं परिकोटा का महत्व एवं वास्तु शिल्प का विश्लेषण— बुन्देलखण्ड के समस्त दुर्ग से सम्बन्धित वास्तु शिल्प का अनुकरण करते हैं नगर की सीमा निर्धारित करने के लिये प्राचीन नगरों में परकोटे की आवश्यकता थी इस परकोटे के माध्यम से नगर और राजधानी की सीमाये सुरक्षित रहती थी। साथ ही वहाँ निवास करने वाले शासक सैनिक और निवास करने वाली जनता भी सुरक्षित रहती थी वास्तु सिद्वान्त के अनुसार दुर्ग की प्राचीर बहुत सूदृढ़ और ऊँची होनी चाहिए ताकि शत्रु बल आसानी से दुर्ग में प्रवेश न कर सके यदि वह दुर्ग की प्रचीर तोडना चाहे तो वह दुर्ग की प्राचीर आसानी से तोड न सके बुन्देलखण्ड में उपलब्धा दुर्गो में कालिंजर दुर्ग का परिकोटा सर्वाधिक सूदृढ़ हैं। उस परकोटे का विध्वंश करना कोई आसान कार्य नही था स्वतः महमूद गजनवी ने इस दुर्ग के दीवार की प्रसंसा की हैं''नगर के चारों ओर एक प्राचीर हैं, जिसकी ऊँचाई केवल ग्रन्थों से नापी जा सकती हैं। इसके रक्षक सैनिक यदि चाहे तो तारिकाओं से बाते कर सकते हैं। इसका शिखर उत्तुंगताम आकाश की ऊँचाई के समान हैं। और मीनराशि के समानान्तर हैं[1]। कालिंजर दुर्ग की प्राचीर का निर्माण तदयुगीन वास्तुशिल्प के अनुसार किया गया है। वप्र बन जाने पर उसके ऊपर दीवार बनवानी चाहिए। वह दीवार चौड़ाई से दुगनी ऊँची हो, कम से कम बारह हाथ से लेकर चौदह सोलह आठरह सम संख्याओं में अथवा पन्द्रह सत्रह आदि विषम संख्याओं में, अधिक से अधिक चौबीस हाथ तक ऊँची होनी चाहिए। प्रकार का ऊपरी

भाग इतना चौंडा होना चाहिए जिस पर एक रथ आसानी से चलाया जा सके। ताड़ वृक्ष की जड़ के समान मृदंग बाजे के समान बंदर की खोपड़ी के समान अकार वाले ईट पत्थरों की कंकरीटों से अथवा बड़े–बड़े शिलाखण्ड़ो से प्राकार का निर्माण कर वाना चाहिए।लकड़ी का प्राकार कभी न बनवाना चाहिए क्योकि उसमें सदा आग लगने का भय बना रहता है [2]। कालिंजर दुर्ग की प्राचीर वास्तु विद्या का अनुसरण करती हैं।

कालिंजर के अतिरिक्त महोबा, देवगढ, मनियागढ़, अजयगढ, मडफा, के दुर्ग भी आति प्राचीन दुर्ग है। इन दुर्गो की प्राचीर का निर्माण भी प्राचीन वास्तु विधा के अनुसार हुआ है पूर्व मध्य युग और मध्य युग में तुर्को और मुगलों से सम्पर्क बढाने के कारण वास्तु विधा में व्यापक परिवर्तन हुआ इसी समय युद्ध विधा में भी व्यापक परिवर्तन हुए अब युद्व अग्नेय अस्त्रो से होने लगा युद्व में तलवारों के साथ साथ तोपे और बन्दूके महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगी इस लिए दुर्ग की प्राचीर में विशेष प्रकार के छिद्रो का निर्माण किया गया जिनसे किले के अन्दर रहने वाले सैनिक तोपो और बन्दूको से शत्रुओं से प्रहार किया करते थे। कालिंजर दुर्ग में महमूद गजनवी कुतुबुद्वीन ऐबक एवं शेरशाहसूरी ने इन्ही अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग अपने आक्रमणों में किया था। यदि कालिंजर की प्रचीर इतनी सूदृढ़ न होती तो वह ढह गयी होती कालिंजर दुर्ग का महत्व उसकी सुदृढ़ प्राचीर के कारण था।

बुन्देलखण्ड़ में कोई भी ऐसा दुर्ग नही था।जिससे परि कोटा अथवा प्राचीर न रही हो यहाँ दुर्ग ईसा की पहली शताब्दी से लेकर 18 वीं शताब्दी तक निर्मित होते रहे है यदि ये दुर्ग और उनकी प्रचीरे युद्ध में छतिग्रस्त होती थीं तो तदयुगीन नरेश इनका जीर्णोद्धार और पुनः निर्माण कराते थे तदयुगीन स्थल युद्धों में दुर्ग की प्राचीरों का महत्व पूर्ण स्थान था।

2:–दुर्ग के प्रवेश द्वारों का सामरिक दृष्टि से महत्व

दुर्ग के प्रवेश द्वार भी महत्वपूर्ण होते हैं इन प्रवेश द्वारों से ब्यक्ति दुर्ग के बाहर और दुर्ग के अन्दर आ जा सकता है। वास्तुशिल्प में दुर्ग के द्वारों के सन्दर्भ में विविध विविधाँ अपनायी जाती है और उन्हीं विविधों के अनुसार दुर्ग के द्वारों का निर्माण होता है वास्तुशास्त्र में इसका विवरण इस प्रकार उपलब्ध होता है।

जिस स्थान पर किले का दरवाजा बनवाना हो वहाँ पहिले–प्राकार के दोनो भागों में डेढ़ दण्ड लम्बा–चौडा मण्डप(चबूतरा)बनाया जाय।तदनन्तर उसके ऊपर प्रतोली के समान छह खम्भें खड़े करके द्वार का निर्माण करवाया जाय।द्वार का निर्माण पाँच दण्ड़ परिध से करना चाहिए,और तदनन्तर

एक–एक दण्ड बढाते हुए अधिक–से अधिक आठ दण्ड तक उसकी परिधि होनी चाहिए;अथवा,कुछ विद्वानों के मत से दरवाजा दो दंड का हो।या ऊपर के आधार के परिणाम से छठा तथा आठवाँ हिस्सा अधिक ऊपर का दरवाजा बनवाया जाय।

दरवाजे के खम्भों की ऊँचाई पन्द्रह हाँथ से लेकर अठारह हाथ तक होनी चाहिये।

खम्भों की मोटाई उसकी ऊँचाई से छठा हिस्सा होना चाहिए। मोटाई से दुगना भाग भूमि में गाड दिया जाये और चौडाई भाग खम्भें के ऊपर चूल के लिए छोड दिया जावे।

प्रतोलिका के तीन तल्लों मे से पहिले तल्ले के पाँच हिस्से किए जाँय।उनमें से बीच के हिस्से में बावडी बनवाई जाय,उसके दायें बायें शाला और शाला के छोरों सीमागृह बनवाये जायें।शाला के किनारों पर भी आमने–सामने छोटे–छोटे दो चबूतरे बनवाये जाँय।जिनमें बुर्जे भी हों।शाला और सीमागृह के बीच में आणि(एक छोटा दरवाजा)होना चाहिए।मकान की दूसरी मंजिल की ऊँचाई पहिली की ऊँचाई से आधी होनी चाहिए,उसकी छत के नीचे सहारे के लिये छोटे–छोटे खंभे भी होने चाहिए।मकान की तीसरी मंजिल को उत्तमागार कहते है,उसकी ऊँचाई डेढ़ दंड होनी चाहिए।उत्तमागार का परिणाम द्वार का तृतीययाँस होना चाहिए उसके पार्वभाग ईटों से मजबूत होने चाहिए उसकी बायीं ओर घुमाव दार सीढ़ियाँ और दाहिनी ओर गुप्त सीढ़ियाँ होनी चाहिए।

किले के दरवाजे का ऊपरी बुर्ज दो हाथ लम्बा होना चाहिए। दोनों फाटक तीन या पाँच तख्तों की पर्त के बने हों। किवाड़ो के पीछे दो–दो अर्गलाएँ होनी चाहिए। किवाड़ो को बन्द करने के लिए एक अरत्नी परिमाण (एक हाथ) की इन्द्र की(चटखनी)होनी चाहिए। फटक के बीच में पाँच हाथ का एक छोटा सा दरवाजा जुडा होना चाहिए। पूरा दरवाजा इतना बडा होना चाहिए कि जिसमे चार हाथी एक साथ प्रवेश कर सके ।

द्वार की ऊँचाई का आधा हाथी के नाखून के आकार–प्रकार का मजबूत लकडी का बना हुआ ऐसा मार्ग होना चाहिए जिससे यथा अवसर किले में टहला जा सके। जहाँ जल का अभाव हो वहाँ मिट्टी का ही मार्ग बनावाना चाहिए।

प्राचीर की ऊँचाई जितनी उसके तृतीयांश जितना गोह के मुह के आकार का एक नगरद्वार भी बनवाना चाहिए।प्राचीर के बीच में एक बावड़ी बनाकर उससे संबद्ध एक द्वार भी बनवायें।उस द्वार को पुष्कारिणी कहते

है।जिस दरवाजे के आस–पास चार शालाएँ बनाई जाँय और उस दरवाजे में पुष्करिणी द्वार से डयोढ़ा दरवाजा लगा हो। उसका नाम कुमारी–पुरद्वार है।जो दरवाजा दुमंजिला हो एवं जिस पर कंगुरे आदि न लगें हों उसे मुण्डाकार कहते हैं। इस प्रकार राजा अपनी भूमि और संपत्ति के अनुसार जैसा उचित समझे,कुछ परिवर्तन करके दरवाजों को बनवाये।किले के अन्दर की नहरें सामान्य नहरों से तिगुनी चौडी बनवायें, जिनके द्वारा हर प्रकार का समान अन्दर और बाहर ले जाया–लाया जा सके।

पत्थर, कुदाली, कुल्हाडी, बाण, हाथियों का समान, गदा, मुद्गर, लाठीचक्र,
मसीने, तोपे, लोहारों, के औजार, लोहे का बना समान, नुकीले भाले, बाँस ऊँट की गर्दन के हथियार,अग्नि बाण आदि का सामान नहरों के द्वारा लाया और ले जाया जा सकता था।[3]

बुन्देलखण्ड मे कोई भी दुर्ग ऐसा नही है जहाँ प्रवेश द्वार न हो सुरक्षा की दृष्टि से इन प्रवेश द्वारो का महत्व था। कोई भी अपरचित व्यक्ति बिना अनुमति के दुर्ग में प्रवेश नही कर सकता था दुर्ग के प्रत्येक द्वार में द्वार रक्षक नियुक्त रहते थे। कालिंजर दुर्ग में प्रवेश करने के लिये सात प्रवेश द्वार काफिर घाटी में निर्मित थे और तीन द्वार दुर्ग के नीचे दुर्ग की प्राचीर से लगे हुए थे। इन प्रवेश द्वारों के नाम पन्ना पाढक, कामता फाटक, और रीवाँ फाटक, के नाम से विख्यात थे। इसी प्रकार अजयगढ, में तरौनी द्वार, प्रमुख प्रवेश द्वार था, महोबा दुर्ग में भी अनेक प्रवेश द्वार थे, जो विविध नामों से विख्यात थे। इसी प्रकार के प्रवेश द्वार कालपी देवगढ़ झाँसी ओरछा और ग्वालियर में भी उपलब्ध होते है। इनका निर्माण भी वास्तु शिल्प के अनुसार हुआ था कालिंजर दुर्ग का सातवाँ द्वार वास्तु शिल्प की दृष्टि से उच्च कोटि का हैं।

3:–दुर्गों में उपलब्ध जलाशय एवं उनका महत्व–

बुन्देलखण्ड़ की भूमि मुख्य रूप से पर्वतीय भूमि है जहाँजल का स्थिर रहना सम्भव नही था यहाँ के प्राणी जल के लिये वर्षा पर निर्भर रहते थे और सरिताएँ यहाँ प्रवाहित होती थी। उनमे वर्ष भर पानी नही रहता था इसलिये यहाँ जल समस्या प्रमुख समस्या थी बुन्देलखण्ड़ में शासन करने वाले नरेशो ने यहाँ भूमि के अनुसार वास्तु शिल्प को ध्यान में रखकर अनेक जलाशयों का निर्माण कराया।

जिस कार्य में चन्देलों ने अपनी अतुल धनराशि लगाई वह था जलाशयों और सरोवरों का निर्माण। ऐसे विभिन्न क्षेत्रफलों के सरोवर सारे

बुन्देलखण्ड में वर्तमान है। अधिकतर चन्देल शासको ने अधिकाधिक संख्यो की रचना कराई। उनकी इन कृतियों में से अनेक आज भी उनका गौरव अमर करने के लिए उपलब्ध हैं। उनके भग्न रूप से भी उनकी उत्कृष्ट कला का परिचय मिलता हैं जैसा कि प्रथम अध्याय में बतलाया गया हैं यहाँ भूमि की सहज बनावट ऐसी हैं कि अल्प प्रयास से उत्तमोत्तम और बड़े से बड़े तालाब बना लिए जा सकते थे।जहाँ कही नीची भूमि है दो पर्वतो की बीच की दूरी अथवा मैदान है या नदी नालों के छोडन है उन्हीं स्थलों को जलाशयों की रचना के लिये चुना गया।कहीं–कहीं तो ऐसे दो टगरों के बीच प्रशस्त बाँध, बाँधकर रचना कर ली गई है,जहाँ वर्षा का जल एकत्र कर लिया जाता था।दो पहाडियों के मध्यवर्ती नालों को बन्द कर भी चित्ताकर्षक तालाबों की रचना कर ली गई है।

इन जलाशयों की रचना की विशेषता यह है कि जैसे ही विशाल हैं वैसे ही मजबूत।उनके तटोंपर चतुर्दिक स्नानार्थ मनोहर घाट बने हैं और पूजन के निमित्त देवालयों की रचाना की गई है।उनका सामूहिक दृश्य बडा प्रभावकारी होता हैं।इस वंश के सातवें शासक राहिल ने महोबा से दो मील दक्षिण की ओर एक जलाशय बनवाया,जो राहिल सागर के नाम से विख्यात है। इसके तट पर उसी का बनवाया हुआ एक सुन्दर मन्दिर भी वर्तमान हैं जो कुछ क्षत हो गया है।वंश का नवाँ शासक मदनवर्मा,महोबा में महाकाय मदनसागर बनवाने के कारण आज भी अमर हो गया है। वहाँ की तीन जैन मूर्तियाँ भी उसी की बनवाई हुई हैं।सागर के बीच स्थित द्वीप और आल्हा–ऊदल की बैठक,जो प्रायः भग्न हो गई हैं,आज भी समुन्नत कला का दिग्दर्शन कराती हैं।इससे उस युग के विभव का परिचय भी प्राप्त होता हैं।मदनवर्मा ने जलाशय की रचना के कारण जिस लोकप्रियता का संग्रह किया वह अन्यों को दुर्लभ रहा।उसी के युग का बना अजयगढ़ का सुविशाल पोखरा,कृतिम झील तथा कालिंजर का रमणीय जलाशय सभी बड़े महत्व के हैं।इन जलाशयों की धार्मिक महत्ता जो आज प्राप्त होती हैं,वह प्राचीन समय से आरम्भ हैं।जैतपुर के छोटे–से नगर के निकट बना हुआ भव्य और विशाल बेलाताल बलवर्मन देव–द्वारा बनवाया गया था।बलवर्मन इसी राजवंश का एक सदस्य था।इस जलाशय की परिधि नौ मील लगभग है और गहराई भी तदनरूप है।इस जलाशय में जल का दृश्य सागर–सा दिखलाई देने लगता है।महोबा के पास ही विजय सागर कीरत सागर,तथा कल्याण सागर,अपनी अनूपमेयता के लिए विख्यात है।विजय सागर,की कला इन सब में उत्कृष्ट हैं।

इन बड़े जलाशयों के अतिरिक्त कुछ साधारण पोखरे भी हैं जो अपने रचना काल की दृष्टि से महत्व के हैं। इनका प्रयोजन धार्मिक भावना को बल देना और सामाजिक विनोद करना भी था[4]।

बुन्देलखण्ड़ में निम्नलिखित जलाशय वास्तु शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं इन जलाशयों से सदैव जल आपूर्ति होती रही है

1:—खजूर सागर (यह खजुराहो में है)[5]।

2:—शिव सागर (यह खजुराहो में है)[6]।

3:—मदन सागर (यह महोबा में है इसका निर्माण मदन वर्मा ने कराया था)[7]

4:—कीरत सागर (इसका निर्माण कीर्तवर्मन ने कराया था)[8]

5:—कल्याण सागर (इसका निर्माण राहिल ने कराया था)[9]

6:—विजय सागर (यह कल्याण सागर के पूर्व में है इसका निर्माण विजय पाल ने करवाया था)[10]

7:—राहिल ताल (इसका निर्माण राहिल वर्मन ने कराया था)[11]

8:—रसिन का अधिकताल (यह ताल बाँदा जनपद के रसिन गाँव में स्थित हैं)[12]

9:—दुधई का रामसागर [13]

10:—कालिंजर का र्स्वगा रोहण ताल (यह एक प्राकृतिक कुण्ड है)[14]

11:—पाताल गंगा (यह भी एक प्राकृतिक जल कुण्ड़ है और एक कुप के समान हैं)[15]

12:—कालिंजर का पाण्डुकुण्ड़ (यह कुण्ड़ गोला आकृति का है और चट्टान काट कर बनाया गया हैं)[16]

13:—कालिंजर का बुढ़ढा, बुढ़िया ताल (यह सरोवर धार्मिक दृष्टि से महत्व पूर्ण है इसमें जलस्तर तक उतरने के लिये सोपान बने हुए है)[17]

14:—कालिंजर का कोट तीर्थ ताल (इस तालाब का भी धार्मिक महत्व है)[18]।

इन सरोवरों के अतिरिक्त भी पूरे बुन्देलखण्ड़ में अनेक सरोवर है इन सरोवरों का निर्माण चन्देलकाल के बाद से लेकर अंग्रेजों के युग तक हुआ हैं। बुन्देलखण्ड़ का कोई भी नगर ऐसा नहीं हैं जहाँ तालाब न हो इन तालाबों में वर्षा का जल एकृत होता था जिसको पानी का उपयोंग सामान्य उपयोग के अतिरिक्त कृषि कार्यो के लिये भी होता था ज्यादातर सरोवरों के सन्निकट धर्म स्थल भी निर्मित कराये जाते थे।

बीहड़ :— प्रत्येक दुर्ग में बीहड़ों का निर्माण भी कराया गया है बीहड़ एक प्रकार के कूप के समान होते है जिनकी आकृति गोल अथवा चौकोर होती है तथा जिसमें उतरने के लिये सोपान अथवा सीडिया बनी होती है। तथा महलों के अन्दर से बीहड़ तक पहुँचने का रास्ता होता है भूरागढ़ दउआ

के महल, शेरपुर सेवडा कर्वी के गणेश बाग तथा अन्य स्थलों में ऐसे बीहड़ बने हुए है।

कूप:– बीहड़ों के अतिरिक्त यहाँ प्रत्येक शहर और गाँव में गहरे कुँये निर्मित कराये गये थे जिनमसे नगरवासियों और ग्राम वासियों की जल आपूर्ति होती रहती थी। कही–कहीं पर ये कूप बहुत गहरे हैं और कहीं पर कम गहरे है।

प्राकृतिक जल संसाधन – बुन्देलखण्ड में अनेक नदियाँ और नाले है जिनमें वर्षा ऋतु में पर्याप्त जल एकत्रित हो जाता है जिनका उपयोग कृषि कार्यो के लिये होता है, मुख्य रूप से यमुना, चम्बल, टौस, नर्मदा, बेतवा, केन, धसान पहँन्ज यहाँ की प्रमुख नदियाँ है इन नदियों से अनेक देशी राजाओं ने नहरे निकाली थी। उनका उद्देश्य कृषि कार्य को बढ़ावा देना था नदियों के अतिरिक्त गहरे नाले भी है जिनसे जल आपूर्ति होती रहती है। यहाँ जो भी जलीय संसाधन उपलब्ध थे वे अपर्याप्त थे इसलिए बुन्देलखण्ड में दुर्भिक्ष और अनावृष्टि की सम्भावानाए बनी रहती थी। यहाँ का व्यक्ति ऐसी परिस्थितियों में जंगली उपज के सहारे अपना जीवन व्यतीत कर लेता था।

4– दुर्ग में उपलब्ध आवासीय महल सभा स्थल एवं अन्य स्थल :– बुन्देलखण्ड के समस्त महल विविध उद्देशों को लेकर बनवाये जाते थे। तथा ये महल विविध व्यक्तियों के लिय वास्तु शास्त्र के अनुसार बनवाये जाते थे। वास्तु शास्त्र के अनुसार नगर के सुदृढ़ भूमि भाग में राज भवनों का निर्माण कराना चाहिए, साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह भूमि चारो वर्णो की आजीविका के लिए उपयोगी हों। गृह–भूमि के बीच से उत्तर की ओर नवे हिस्से में, निशांत प्रणिधि प्रकरण में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार अन्तःपुर का निर्माण कराना चाहिए, जिसका द्वारा पूरब या पशिचम की ओर हो। अन्तःपुर के पूर्व–दक्षिण भाग में महानस (रसोईघर) हस्तिशाला और कोष्ठागार (भंडार) हो।[19]

गृह निर्माण में कुछ विशिष्ट बातों का ध्यान रखा जाता था गृह बनाते समय बीथिका छोड़ने की पद्धति भी थी यह भूमि यदि गृह के पूर्व की ओर छोड़ी जाय तो इसे (सोष्णीष) पश्चिम की ओर तो साश्रय उत्तर व दक्षिण की ओर छोड़ी जाने पर 'सावष्टम्भ' कहा जाता है। ऐसी विधि से बने वास्तु शुभप्रद माने जाते है। वास्तु–शास्त्रों में गृहों के ही परिणाम से उनके द्वारो के निर्धारण का सिद्धान्त बतलाया गया है। उदाहरण के लिए–राजा और सेनापति के गृहों का जो व्यास हो उसमें 70 जोड़कर 11 से भाग दे।

भागफल जो होगा उसके प्रधान द्वार का विस्तार उतना ही होगा। ब्राह्मणादि वर्णो के गृह–व्यास के पंचमांश में 12 अंगुल जोड़ देने से जो होगा वही उनके गृह–द्वार का परिमाण हैं। द्वार–परिमाण का अष्टमांश द्वार का विष्कम्भ और से दूनी द्वार की ऊँचाई होनी चाहिए।

गृह में प्रयुक्त होने वाले स्तम्भों का भी परिमाण और फलाफल निर्धारित किया गया है। भिन्न–भिन्न प्रकार के स्तम्भों का अलग–अलग नाम है। चार कोना स्तम्भ को 'रूपक' अठकोना होने पर 'बज्र' सोलह कोना होने पर 'द्विवज्र' बत्तीस कोना होने पर 'प्रलीनक' तथा वृत्तकार होने पर 'वृत्त' कहते है। ये ही सब स्तम्भ शुभ–फलदायक माने जाते है। जिस वास्तु के चारों ओर द्वार होते है उसे 'सर्वताभेद्र' वास्तु कहते है। ऐसे निवास राजाओं राजा श्रितों ओर देवताओं के लिए कल्याणकारी माने गये है।[20]

बुन्देलखण्ड के दुर्गो में जिन महलो का निर्माण हुआ है वे विभिन्न शैली के है, मुख्य रूप से यह शैली, गुप्त शैली, गुर्जर प्रतिहार शैली चन्देल शैली, तुर्क शैली, मुगल शैली और मिश्रित शैली के हैं निम्नलिखित चन्देल कालीन महल दर्शनीय हैं।

1— महोबा का राज प्रसाद — यह राज प्रसाद राजा परमर्दिदेव द्वारा निर्मित किया गया था यह दुर्ग की पहाड़ी पर स्थित है अब इसका भग्नावशेष रह गया है। इस महल में 80 फिट लम्बी और 25 फिट चौड़ी बारादरी है बाद में तुर्को ने इस महल को मस्जिद में वर्णित कर दिय था। इसके स्तम्भ अभी भी सुरक्षित है।[21]

2— जबलपुर का मदन महल — इस महल का निर्माण चन्देल नरेश मदन वर्मन ने कराया था यह बड़ी गोल चट्टान पर बना है यह महल दो खण्ड का था इसके मध्य में एक आगन था उसके चारों ओर कमरे थे इसकी छत की छपाई उत्तम है और उसकी चित्रकारी भी है।[22]

3— गढ़ाकोटा महल — यह महल गढ़ा कोटा दुर्ग में है इसका निर्माण किले की ऊँची भूमि पर हुआ है महल की चार दीवारी ईट और पत्थर की बनी है।[23]

4— हाटा के दो बारहखाम्भा महल — ये महल काफी प्राचीन है। अब इस महल के स्तम्भ–भर शेष रह गये है ये स्तम्भ एक नाप के नहीं है।[24]

5:—मदनपुर का बारादरी महल— यह महल बारादरी महल के नाम से प्रसिद्व हैं इस महल में उक अभिलेख उपलब्ध हुआ है जिसमें परमार्दिदेव कि पराजय का वर्णन है इसकी छत छोटी और खुली हुई है इसमें

6 स्तम्भ है[25] ।

6:–हाटा का महल– यह महल हाटा दुर्ग के ऊपर है इस महल में ऊँचे वर्गाकार स्तम्भ हैं इन स्तम्भो का मेहराब बना हुआ है तथा खुले आगन के चारों ओर कमरे है [26] ।

7:–चिल्ला का महल– चिल्ला का महल जमुना नदी के किनारे बाँदा जनपद में था कहाँ जाता है कि यहाँ बनाफर सरदार आल्हा–ऊदल के महल थे। इस महल के चारो ओर परकोटा था परकोटे की दीवाल मिट्टी की बनी थी बाहरी भाग की अगली दीवाल पत्थर से निर्मित थी इसके चारों ओर बुर्ज बने हुए है तथा इसमें अनेक स्तम्भ बने हैं। जिनमें 25 खुले स्थान हैं इसकी उत्तर की ओर मुख्य द्वार था तथा मुख्य द्वार के दोनो ओर बैठक के स्थान थे महल के मध्य में खुला आगन है। जिसके चारो ओर कमरे है जिनके दरवाजे अलग–अलग है तथा कमरों को प्रकाशित करने के लिये दीप दान बने हुए थे ये दीप दान 8फुट 10इचं ऊँचे है पूरा महल स्तम्भो में सधा है [27] ।

यहाँ पर कुछ दुर्ग कुछ महल तुर्क और मुगल काल के भी उपलब्ध होते है तदयुगीन वास्तु शिल्प की दृष्टि से उनका विशेष महत्व है मुख्य रूप से झाँसी का रानी महल मदन पुर की पंचमढिया कालपी का चौरासी खम्भा महल और गुम्बदीय इमारत महल कोच का बारह खम्भा, कालिंजर का चौबे महल राजा अमान सिंह महल गढ पहरा के महल धमौनी का रानी महल दुबेला का मस्तानी महल राजगढ़ का राजगढ पैलेस ओरछा का जहाँगीर महल ओरछा का राज महल, प्रवीणराय महल हाटा का रंग महल दतिया का वीरसिंह देव महल चन्देरी का बादल महल द्वार कोशक महल आदि महत्वपूर्ण स्थल वास्तु शिल्प की दृष्टि से उच्च कोटि के है। इनमें किसी–किसी महल में बारीकी नक्कासी और चित्रकारी भी है ग्वालियर दुर्ग के ऊपर और नीचे भी अनेक महलो के अवशेष उपलब्ध होते हैं।

जैसे–जैसे व्यक्ति की आवश्यकता बढ़ती गयी और वास्तुशिल्प में नवीन प्रयोग होते गये वैसे ही आवासीय स्थलों में व्यापक परिवर्तन भी होते गये छत्रशाल के युग में भी विभिन्न रियासतों में अनेक प्रकार के महलो का निर्माण हुआ ये महल पन्ना, छतरपुर, विजावर, चरखारी, पाथर, कछार, समथर, आदि क्षेत्रो में उपलब्ध होते हैं। इनका निर्माण कुशल कारीगरो द्वारा कराया गया है। तथा इनके निर्माण में चूने का गारा ईट पत्थर और लकड़ी का प्रयोग किया गया है। इन महलो में जल की अपूर्ति और निकास के पर्याप्त स्थल थे ये महल तदयुगीन ऐश्वर की गौरव गाथा गाते है[28] ।

5:—दुर्ग में स्थित धर्मस्थल का महत्व एवं उसका वास्तु शिल्प— बुन्देलखण्ड में कोई ऐसा दुर्ग नही जहाँ धर्म स्थल उपलब्ध न हो धर्म स्थलो का निर्माण दतयुगीन नरेशो ने अपनी आस्था के अनुसार कराया था। इस क्षेत्र में मौर्य साम्राज्य गुप्त सम्राज्य गुर्जर प्रतिहारो कछवाहों और चन्देलों द्वारा निर्मित स्थल सर्वाधिक कमात्रा में उपलब्ध होते है कुछ धार्मिक स्थलों का निर्माण बुन्देला शासको तुर्को और मुगलो ने भी कराया था। यहाँ उपलब्ध प्रमुख धार्मिक स्थलो में शक्ति गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तथा अन्य ग्रामीण देवी देवताओ के मन्दिर उपलब्ध होते है। कुछ धार्मिक स्थलों बौद्ध और जैनियो के है भरहुत और साची मे बौद्धो के धार्मिक स्थल और स्तूप उपलब्ध होते है ये स्थल सम्राट अशोक और उसके बाद के शासको के है। इस समय भारतीय आध्यात्मिक स्थापत्य की तीन प्रमुख शैलियाँ है। उत्तर भारत मे आयताकार नागर शैली की प्रधानता है। पूर्वीघाट पर विशेष तथा आन्ध्र के जिलो मे पाये जाने वाले गोलाकार वेसर शैली के मन्दिरों की प्रमुखता है। सुदूर दक्षिण भारत मे भिन्न रचना के मन्दिर प्राप्त होते है। वे सामान्य आकार मे अष्ट—भुजी होते है और दृविड शैली के नाम से प्राख्यात हैं। प्रथम दो शैलियों की विशेषता यह है कि देवता पतन के सामने स्तम्भों वाला खुला अंतराल अर्थात पटमंडप होता है। इसी मे पवित्र देव मूर्तियो के स्थान—स्थान पर निकेतन बने रहते हैं। देवता विशेष का वाहन भी इसी मे प्रतिष्ठत किया जाता है यही नृत्यशाला रहती है। किन्तु द्रविड शैली के मन्दिरों की रचना भिन्न होती है। इसमे मन्दिर के उन द्वारो के ऊपर स्तूपकार बृहत श्रृंग—रचना बनी हुई हैं। यह क्रम से पडने वाले मंडपो को जोडने मे काम करती है। वास्तुतः इस शैली के मन्दिरो में यही मंडप देवालय का अन्तरावकाश बनाते है।[29]

बुन्देलखण्ड में सर्वश्रेष्ठ मन्दिरो की श्रेणी में खजुराहो की श्रेणी मे आते हैं वास्तुशिल्प की दृष्टि से ये मन्दिर सर्वश्रेष्ठ है तथा इनकी संख्या 30 है ये मन्दिर शिव, शक्ति,विष्णु, और जैन तीर्थाकंरो के है इनका निर्माणसन 900 ई0 से लेकर 1050 ई0 तक हुआ वास्तु शिल्प की दृष्टि से ये अद्वितीय हैं।

खजुराहो के ये मन्दिर एक विशेष कला—पद्धति का उदाहरण प्रस्तुत करते है। उनकी विशेषताये अद्वितीय हैं। अलंकरण की गहनता और विविधता में उनका दूसरा उदाहरण इस देश मे अन्यत्र नही मिलता। अलंकरण की मुर्तियों और पच्चीकारी द्वारा जीवन और प्रकृति के मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण किया गया है। उनमे कल्पना की सूक्ष्मता, वृत्ति वैभव और विश्लेषण जितना ही परम्परागत है उतना ही नूतन। उसके सम्मुख भुवनेश्वर

की मौलिकता बहुत पीछे छूट जाती हैं। सामान्य दृष्टिवालों को यहाँ के दु:साध्य रचना जहाँ स्तम्भित करती हैं वहाँ असाधारण सुविधों के लिए जीवन के स्थूल– दृश्यों द्वारा अध्यात्म की ग्रथियों का उद्घाटन भी करती हैं।

साधारणतया खजुराहों के मन्दिर आयाताकार नागर– शैली अर्थात 'इण्डोआर्यन' शैली पर बने है। फिर भी इनका कलात्मक ढंग मौलिकता से आपूर्ण है। इसी कारण 'इण्डो–आर्यन' शैली के मन्दिरों के सर्वोत्तम और आकर्षक उदाहरण यहीं मिलते है। ये सभी देवालय ऊँचे मंचपर बने है। देवतायतन के अग्रभाग में अंतराल, और फिर महामंड़प बने है। महामंड़प के आगे अर्धमंड़प और मंडप भी मन्दिरों कीशोभा द्विगुणित करते है। देवतायतन के चारों ओर प्रदक्षिणापथ बने है। इनको प्रकाशित रखने के लिए विशाल वातायन रखे गये हैं बाहरी आकार प्रकार में श्रंग, शिखर और विमान यहाँ के मन्दिरों के प्रभावकारी लक्षण हैं। 'उरसिंघों' की बनावट तथा वितरण खजुराहो की विशेषता हैं।

खजुराहो के कुक्ष ही मन्दिर 'पंचायतन' शैली के हैं। ऐसे मंदिर के अलिंद के कोनों पर चार गर्भगृह बने हैं। जिनमें मन्दिर के देवता के उप–देवाताओं की स्थापना की गई है। कही–कही मंडप के सामने देव–वाहन के लिए एक और गर्भगृह बना पाया जाता हैं[30]।

धार्मिक वास्तुशिल्प के सन्दर्भ में विदेशी विद्वानो का भी कथन महत्व पूर्ण हैं। सुप्रसिद्व कला सर्मज्ञ परसी ब्राउन का मत हैं। कि कला में भारतीयों के आदर्श विशिष्ट रूप से प्रतिस्फुटित होते है और चन्देल ललित कलाये इसकी अपवाद नहीं है। स्थाप्त्य कला के पृत्येक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक विकास में कोई न–कोई महत्वपूर्ण अनुभूत सिद्वान्त निहित है। ग्रीक के लोग उसके सौष्ठवपूर्ण पूर्ति पर अधिक बल देते है। रोमन बैज्ञानिक कौशल तथा इटैलियन, विद्वत्ता पर अधिक जोर देते है। किन्तु भारतीय आध्यात्मिक तुष्टि पर विशेष बल देते है। भारतीय कलाकृतियाँ भारतीयों की धार्मिक भावनाओं से ओत–प्रोत भारतीय स्थापत्य कला की इस विशेषता के कारण भारत में असंख्य मन्दिरों का निर्माण हुआ और इसी कारण बुन्देल खण्ड में भी मन्दिरों का बहुमूल्य है।

बृाहम्ण स्थापत्य कला भी तीन भागों में विभक्त की जा सकती है। इस युग में बृाहम्ण धर्म के अन्तर्गत अनेक देवताओं का प्रादुर्भाव हो चुका था। अस्तु, इसी के आधार शैव,वैष्णव तथा सूर्य, दुर्गा, महेश्वरी, आदि अन्य देवताओं के मन्दिरों का निर्माण हुआ। धार्मिक स्थापत्य कला में प्राधान्य मन्दिरों का ही है। अस्तु भारतीय कला के उत्कृष्ट नमूनों में मन्दिरों का

प्रमुख स्थान है। यद्यपि ये मन्दिर समस्त बुन्देलखण्ड में पायें जाते है, किन्तु चन्देलों की धार्मिक राजधानी खजुराहों में हिन्दू तथा जैन मन्दिरों के उत्कृष्ट नमूने है, जिनकी अपनी स्वयं की श्रेणी है। ये मन्दिर चहार दिवारी (परिधि) के अन्दर नही हैं बल्कि प्रत्येक मन्दिर एक ठोस तथा ऊँचे चबूतरे पर स्थित है। ये मन्दिर अपनी विशालता के लिये ही प्रसिद्ध मन्दिर नही हैं। क्योंकि उनमें सर्वोच्च मन्दिर सौ फीट से कुछ ही अधिक ऊँचा हैं। बल्कि इन मन्दिरों की ख्याति इनकी कलापूर्ण कृति पर ही अवलम्बित है।

इन मन्दिरो के तीन मुख्य भाग हैं।

1:— गर्भगृह,

2:— मण्डप तथा

3:— अर्धा मण्डप हैं[31]।

बुन्देलखण्ड़ में अनेक दुर्ग स्थलों में निम्न लिखित धार्मिक स्थल वास्तुशिल्प की दृष्टि से महत्व पूर्ण हैं।

1:—कन्दरीय महादेव खाजुराहों— यह खाजुराहों का सबसे विशाल मन्दिर है इसकी लम्बाई 109फुट और चौड़ाई 59फुट 6 इंच हैं तथा जमीन से इसकी ऊँचाई 116 फुट 6 इंच है इसमें अर्ध मण्डप अन्तराल और गर्भ गृह है।[32]

2— खाजुराहों का महादेव मन्दिर — यह मन्दिर भी कन्दरीय मन्दिर के समीप हैं इसका जीर्णोद्वार महाराजा छत्रसाल ने कराया था इस मन्दिर में शिव की प्रतिमा है।[33]

3— खाजुराहो का विशवनाथ मन्दिर — यह मन्दिर शिवसागर के पूर्वी किनारे पर स्थित है इस मन्दिर के पाँच भाग है इसका वास्तु शिल्प कन्दरीय मन्दिर जैसा है यह मन्दिर की अच्छी दशा हैं इसमें शिव की प्रतिमा है।[34]

4— विश्वनाथ मन्दिर — यह मन्दिर दक्षिणी पश्चिमी कोने पर है इसमें भगवान शिव की प्रतिमा है।

5— मतंगेश्वर महोदव मन्दिर — यह मन्दिर चतुर्भज मन्दिर के समीप है तथा यह वर्गाकार है।[35]

6— कालिंजर का नीलकण्ठ मन्दिर — यह मन्दिर कालिंजर का सुप्रसिद्ध मन्दिर है इसका बाहरी भाग नष्ट हो गया है बाहर केवल स्तम्भ–भर शेष है। इसके गर्भ गृह में शिव पार्वती स्वामी कार्तिकेय आदि की प्रतिमायें हैं इस मन्दिर के बाहर 1117 ई0 का एक शिला लेख भी उपलब्ध हुआ है।[36]

7— कुँवर मठ — यह मन्दिर 66 फिट लम्बा और 33 फिट चौड़ा है इस मन्दिर के पाँच भाग हैं इस मन्दिर के गर्भ गृह में ब्रह्मा, विष्णु और भगवान शिव की प्रतिमा है।[37]

8— जतकारी का शिवमन्दिर — यह शिव मन्दिर खजुराहों से एक मील 4 फल्लांग दूर है। अब यह मन्दिर ध्वस्त हो चुका है इस मन्दिर के मध्य में शिवलिंग विद्यमान है।

9— महोबा का ककरामठ मन्दिर — महोबा में मदनसागर के उत्तरी—पश्चिमी तट पर यह मन्दिर एक शिला पर स्थित है मन्दिर की लम्बाई 103 फुट और चौड़ाई 42 फुट है यह मन्दिर खजुराहों के मन्दिरों से बड़ा है इसके गर्भ गृह में कोई मूर्ति नही है।

10— दौनी का शिव मन्दिर — यह मन्दिर भी ध्वस्त हो चुका है इस मन्दिर का शिव लिंग भी अपने स्थान से हटा हुआ है इसके पाँच भाग है। इसका वास्तुशिल्प खजुराहो के मन्दिरों से भिन्न है इसके मेहराब में लम्बी शिलायें रखी हैं इनमें कोई सजावट नही है।[38]

11— देवी जगदम्बी मन्दिर — यह एक विष्णु मन्दिर है किन्तु जगदम्बी मन्दिर के नाम से विख्यात है यहाँ पर शिव और ब्रह्मा की मूर्तियाँ है। इसके अतिरिक्त भगवती लक्ष्मी की मूर्ति पाँच फिट 8 इंच ऊँची है। इसी मन्दिर के चार भाग है मन्दिर की लम्बाई 77 फुट और चौड़ाई 50 फुट है यह मन्दिर बहुत अलंकृत है।[39]

12— खजुराहो का चतुर्भुज मन्दिर — यह मन्दिर राम अथवा लक्ष्मण मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है इस मन्दिर में भगवान विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति है। यह मन्दिर 85 फिट 4 इंच लम्बा और 44 फिट चौड़ा हैं इस मन्दिर के पाँच भाग है तथा यहाँ पाँच उप मन्दिर भी है। इस मन्दिर का निर्माण दसवीं अथवा 11 वीं शताब्दी में हुआ था प्रत्येक मन्दिर के सामने दो खम्बो वाला एक छोटा सा बरामदा भी है।[40]

13— खजुराहो का बाराह मन्दिर — यह मन्दिर चर्तुभुज मन्दिर के पूर्व दिशा में है। इस मन्दिर में भगवान विष्णु के बाराह औतार की विशाल मुर्ति है इस मन्दिर की लम्बाई 20 फुट और चौडाई 16 फुट है।[41]

14—खजुराहो का वामन मन्दिर— यह मन्दिर खजुराहो के उत्तरी किनारे पर है। इसकी लम्बाई 60 फिट और चौडाई 39 फुट है इस मन्दिर में बाराह की 4फुट 8 इंच ऊँची प्रतिमा है।[42]

15—खजुराहो का जबरा मन्दिर— यह मन्दिर खजुराहो के पूर्वी किनारे पर एक टीले में बना हुआ है इसकी लम्बाई 38 फिट और

चौड़ाई 26 फिट है इस मन्दिर में भगवान विष्णु की चर्तुभुजी मर्ति है।

16— खजुराहों का ब्रह्मा अथवा गदाधर मन्दिर —

यह मन्दिर खजूर सागर के पूर्वी किनारे पर स्थित है मन्दिर 19 वर्गफिट का हैं इसका निर्माण आठवीं और नवी शताब्दी का हैं इस मन्दिर में ब्रह्म की चतुर्भुजी मूर्ति प्रतिष्ठित है।[43]

17— खजुराहों का लक्ष्मी नाथ मन्दिर — यह मन्दिर 83 फुट लम्बा और 45 फुट चौड़ा है इस मन्दिर का निर्माण विक्रमी संवत 1011 में हुआ था इस मन्दिर में धंगदेव का एक शिलालेख हैं।

18— महोबा का मदरिया मन्दिर— अब यह मन्दिर पूरी तरह नष्ट हो चुका हैं इस मन्दिर की लम्बाई 107 फुट और चौड़ाई 75 फुट है यह एक बाराह मन्दिर था [44] ।

19— गोड़ा का विष्णु मन्दिर :— कर्वी जनपद से 13 मील दूर गोड़ा गाँव में अनेक मन्दिर उपलब्ध होते है। ये मन्दिर चन्देल कालीन है इन मन्दिरों का निर्माण राजा परमार्दिदेव और आल्हा—ऊदल ने कराया था इसके मुख्य मन्दिर में भगवान विष्णु की मूर्ति प्रतिष्ठत थी यहीं पर एक छोटा सा मन्दिर भगवती लक्ष्मी का भी था मन्दिर की लम्बाई 55 फुट चौड़ाई 48 फुट और ऊँचाई 40 फुट है[45] ।

20— बिलहरिया मठ मन्दिर — यह मन्दिर बाँदा जनपद के रसिन ग्राम से 10 मील दूर है यह मन्दिर एक छोटी सी पहाड़ी पर बना हुआ है। यह पहाड़ी 70 फिट ऊँची है इसका गर्भगृह 11 फुट 6 इन्च लम्बा और 4 फुट 4 इंज चौड़ा है। इसका ऊपरी भाग नष्ट हो गया है इस मन्दिर के मुख्य द्वार पर विष्णुमूर्ति है[46] ।

21— दुधाई का ब्रह्मा मन्दिर — दुधई का यह मन्दिर चन्देलो के मन्दिर की भाँति है इस मन्दिर में सिंद्धद्वार अर्धमण्डप' महामण्डप, अन्तराल गर्भगृह आदि है। यह मन्दिर 42 फुट 6 इन्च लम्बा और 25 फुट चौड़ा है इस मन्दिर का अलंकरण बड़ा सुन्दर है। गर्भ गृह के मुख्य द्वार के मध्य ढाडीयुक्त ब्रह्म की मूर्ति तीन सिर वाली है यह मन्दिर पाँच भागो में विभाजित है[47] ।

22— खजुराहों का पार्वती मन्दिर — यह मन्दिर विश्वनाथ मन्दिर के थोड़ी दूर पर स्थित है इस मन्दिर में पाँच फुट ऊँची चतुर्भुज देवी की मूर्ति है यह मूर्ति लक्ष्मी देवी की है। इस मूर्ति के ऊपर विष्णु की एक छोटी प्रतिमा भी है[48] ।

23– खजुराहो का लक्ष्मी देवी मन्दिर – यह मन्दिर बाराह मन्दिर के सन्निकट है यहाँ चतुर्भज देवी की मूर्ति है और गर्भ गृह के मुख्य द्वार पर भगवान विष्णु की एक मूर्ति है[49]।

24– खजुराहो का दुर्गा मन्दिर – यह मन्दिर वास्तव में शिव मन्दिर था इस मन्दिर के अन्दर त्रिशुल तथा खप्पर लिये हुए देवी की अष्ट भुजी मूर्ति है[50]।

25– चौसठ जोगिनी मन्दिर – यह मन्दिर खजुराहो का प्राचीन मन्दिर है शिवसागर के दक्षिण पश्चिम की ओर इस मन्दिर का निर्माण चट्टानो के पत्थर से हुआ यहाँ चौसठ देवियों की मूर्ति स्थापित थी[51]। यह खजुराहो का सबसे प्राचीन मन्दिर है।

26– मनिया देवी मन्दिर – यह मन्दिर केन नदी के तट पर छतरपुर के सन्निकट हैं यह चन्देलो की कुल देवी है इस मूर्ति में गौंड़ो द्वारा पूजित नग्न देवी का समिश्रण है अब यह मन्दिर भग्न हो चुका हैं इस मन्दिर का निर्माण काल ज्ञात नही है।

27– मैहर का शारदा देवी का मन्दिर – यह मन्दिर मैहर की एक छोटी सी पहाड़ी पर स्थित है यहाँ पर एक शारदा देवी की मूर्ति हैं तथा मन्दिर तक जाने के लिये सीढ़िया बनी हुई इस मन्दिर में एक शिखालेख उपलब्ध हुआ है जो पढ़ा नही जा सका[52]।

28– रसिन का चन्द्रा महेश्वरी मन्दिर – यह मन्दिर रसिन गांव से एक मील दूर एक छोटी सी पहाड़ी पर स्थित है इसका मण्डप 18 फिट 8 इंज लम्बा और 17 फिट 7 इंच चौड़ा है यह दोनो ओर खुला हुआ है। इसके समीप 9 फिट लम्बा 6 फिट चौड़ा बरामदा है इस गर्भ गृह में चन्द्रा महेश्वरी की मूर्ति थी, तथा इसके सन्निकट एक तालाब है जिसे चट्टान काटकर बनाया गया है[53]।

29– खजुराहों का सूर्य मन्दिर – यह मन्दिर खजुराहो में शिव सागर के पश्चिम में स्थित है तथा छत्र को पत्र के नाम से विख्यात हैं। इसकी लम्बाई 87फिट और चौड़ाई58 फिट है। इस मन्दिर का प्रवेश द्वार गिर गया है इस मन्दिर के निर्माण में अष्ट कोणिक स्तम्भो का प्रयोग किया गया है यहाँ गर्भ गृह के मुख्य द्वार पर सूर्य की तीन प्रतिमाएँ हैं मन्दिर के अन्दर 8फिट ऊँची प्रतिमा है इनके दोनो हाथों में कमल के पुष्प हैं।[54]

30–खजुराहो को घंटई जैन मन्दिर – यह मन्दिर खजुराहो में स्थित है इसकी लम्बाई 42 फुट 10 $^1/_2$ इंच तथा चौडाई 21 फुट 6इंच है यह मन्दिर खुले स्तम्भो का मन्दिर है इस मन्दिर में चतुर्भुज

देवी की प्रतिमा है जिसके दोनो ओर नग्न पुरूषो की प्रतिमाये हैं [55]।

31– खाजुराहो का पार्श्वनाथ मन्दिर– यह बडे ही जीर्ण–सीर्ण अवस्था में है इसका गर्भ गृह मार्तशेष है इस मन्दिर में एक नग्न पुरूष की प्रतिमा एक नग्न नारी की प्रतिमा तथा 23 वे तीर्थाकंर पार्श्वनाथ की प्रतिमा हैं [56]।

32– खजुराहो का जिन नाथ मन्दिर– खजुराहो के जैन मन्दिरो में यह सर्वाधिक विशाल और सुन्दर मन्दिर हैं इसकी लम्बाई 60 फिट और चौड़ाई 30 फिट है यह मन्दिर बड़ा आकर्षक है। इसके भीतरी भाग में तीन कमरे मण्डप, अन्तराल और गर्भ गृह है तथा मन्दिर के चारो ओर प्रदक्षिणा का मार्ग है गर्भगृह के मुख्य द्वार पर बैठी हुई एक नग्न मूर्ति है और दो खड़ी हुई नग्न मूर्तियाँ है इसका निर्माण विक्रमी 1101 के लगभग हुआ यहाँ प्राप्त शिलालेख में दान में दिये हुए उद्यानो का वर्णन है [57]।

33– खजुराहो का शेतनाथ मन्दिर – यह भी एक प्राचीन जैन मन्दिर है इस मन्दिर में 14 फिट ऊँची आदि नाथ की मूर्ति है जो शेतनाथ के नाम से विख्यात है। इस मूर्ति की पीठिका में विक्रमी संबत 1055 का एक लेख है[58]।

34– खजुराहों का आदिनाथ मन्दिर – यह एक छोटा जैन मन्दिर है जो आदिनाथ के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है इस मन्दिर में केवल मूर्तियों की एक पंक्ति है जिनमें नारी प्रतिमायें भी है [59]।

35–दौनी का जैन मन्दिर – यह मन्दिर आयताकार है इसमे एक मण्डप एक गर्भगृह है इस मन्दिर में शान्तिनाथ की मूर्ति है इस पीठिका में एक लेख है जिससे ज्ञात होता है कि यह मन्दिर तेरहवीं शताब्दी में बना था [60]।

36– दुधाई का जैन मन्दिर – यह मन्दिर निर्माण कला की दृष्टि से बड़ा विचित्र है और गुणे की आकृति का है। इसके मध्य भाग में दो कमरे है जिसमें एक दरवाजा है इसकी लम्बाई 52 फुट और चौड़ाई 30 फुट है तथा ऊचाई इससे अधिक है [61]।

37– कुण्डलपुर का नेमिनाथ मन्दिर – हाटा के निकट कुण्डलपुर जैनियों का एक तीर्थ स्थल है यहाँ के बन में एक पहाड़ी की चोटी पर कुछ जैन मन्दिर निर्मित है इनमें मुख्य मन्दिर भगवान नेमिनाथ का है। इस मन्दिर में पहुँचने के लिये सीढ़िया बनी हुई है [62]।

38– मदनपुर का जैन मन्दिर – मदनपुर में तीन प्राचीन जैन मन्दिर है जो अत्यन्त जीर्ण अवस्था में है इनमें से मुख्य जैन मनिदर 30

फुट 8 इंच लम्बा तथा 14 फुट 2 इंच चौड़ा है इसमें दो अन्तराल एक गर्भ गृह है। इसमें विक्रमी संम्वत 1212 का एक शिलालेख है इसमें आदि तारा देवी और शम्भूनाथ की प्रतिमाए है [63]।

39— चाँदपुर का जैन मन्दिर— दूधिया चाँदपुर में भी अनेक जैन मन्दिर पाये जाते है इनमें से अधिकांश नष्ट हो चुके है यहाँ एक विशालकाय नग्न मूर्ति रखी है तथा अनेक मूर्तियाँ यहाँ संगृहीत है [64]।

चन्देलकाल के बाद भी बुन्देलखण्ड के विभिन्न भागो में विभिन्न धर्मो के धर्मस्थल समय—समय पर निर्मित होते रहे है। इनमें गैराहा का शिव मन्दिर झाँसी का लक्ष्मी मन्दिर, बरूआ सागर का जरार मठ, कुचदो का कुरइया वीर मन्दिर, चाँदपुर का बैल मणी मन्दिर, शहस्त्र लिंग मन्दिर, वाराह मन्दिर, लक्ष्मी नारायण मन्दिर, विष्णु मन्दिर, देवगढ़ का गुप्ता मन्दिर बाराह मन्दिर, जैन मन्दिर समूह बानपुर का जैन मन्दिर बुधनी का सूर्य मन्दिर, मदनपुर की पंचमढ़िया, मनखेरा के मन्दिर अवशेष, शीलोन खुर्द के जैन मन्दिर, शीलोन खुद्र का धोबी का पील, कोच का बारह खम्भा, कोना के चार चन्देल मन्दिर, मकरबई का जैन मन्दिर, मकबई के अन्य मन्दिर, रहलिया का सूर्य मन्दिर, हमीरपुर का शान्तिनाथ मन्दिर, कर्वी के विभिन्न मन्दिर, बडाहा कोटरा के मन्दिर अवशेष, बाँदा की जामा मस्जिद, रामनगर के मन्दिर, करौंदा के मन्दिर, धमौनी के गुम्बद और मस्जिद, पाली का महादेव मन्दिर, बमौरा का मन्दिर, रहली का सूर्य मन्दिर, रनगिरि का हरसिद्ध देवी का मन्दिर, छतरपुर में अचत का सूर्य मन्दिर ऊर्द मऊ में शान्ति नाथ मन्दिर, चौका का प्राचीन सूर्य मन्दिर, उमरी का सूर्य मन्दिर, ओरछा का लक्ष्मी मन्दिर, ओरछा का चतुर्भुज मन्दिर, बड़ागाँव का शिवमठ, मणखेरा का सूय मन्दिर, मोहनगढ़ का गुप्तेश्वर मन्दिर, दमोह कुण्डलपुर का रूकमणी मठ, कोदल का प्राचीन मन्दिर, नोहटा मन्दिर, रानेह का प्राचीन मठ, अजयगढ़ के गुप्तकालीन दो मन्दिर नचना का पार्वती मन्दिर, नाँद—चाँद का शिव मन्दिर, पिदौर का तेरही मन्दिर, शिवपुरी तेरही का मठ, चन्देरी की जामा मस्जिद, शहजादा का रोजा, बूढ़ी चन्देरी के जैन मन्दिर और ग्वालियर दुर्ग के धर्मस्थल, पुरातात्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है जिनका निर्माण तदयुगीन वास्तुशिल्प के अनुसार किया गया है [65]।

6— दुर्ग में उपलब्ध दुर्ग मूर्तिशिल्प एवं मूर्ति शिल्प की दृष्टि से उसका महत्व — बुन्देलखण्ड में मूर्ति कला का सूत्र—पात्र सम्राट अशोक के शासन काल में प्रारम्भ हुआ था मुख्य रूप से ईसा पूर्व की दूसरी शताब्दी में यहाँ शिल्प का विकास हुआ यहाँ विकास

उसके बाद भी जारी रहा सुप्रसिद्ध विद्वान एलक्जेण्डर कनिंघम ने 1873–74 में भरहुत (सतना जिला, मध्य प्रदेश) में एक स्तूप। (जो पूर्णतः नष्ट हो गया था) की वेदिका और तोरण द्वार ढूँढ़ निकाले जो अब संग्रहालय में सुरक्षित है। कुछ अन्य अवशेष भारत तथा विदेशों के संग्रहालय में सुरक्षित है [66]। जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके है मूल स्तूप का निर्माण मौर्य सम्राट अशोक ने कराया था। शुंगकाल में (ई0पू0 दूसरी शताब्दी में) इसका विस्तार हुआ और स्तूप के चारों ओर पत्थर की एक वेदिका और चार तोरण द्वारों का निर्माण कराया गया।[67] परिवेष्टिनी के एकद्वार के लेख में 'सुगनं रजे' मिलता हैं। स्तूप तथा परिवेष्टिनी के बीच 10 फुट 4 इंच चौडा प्रदशिक्षा पथ था। वेदिका में 7 फुट 1 इंच ऊँचे 80 स्तम्भ थे। जिनके ऊपर रखे हुए उष्णीय की लम्बाई कुल मिलाकर 330 फुट थी। वेदिका में स्तम्भों के मध्य सूचियाँ और तोरणद्वारों के दोनो ऊँचे स्तम्भो पर तीन समान्तर बडेरियाँ है। भरहुत के तोरण द्वारों स्तम्भों सूचियों एक उष्णीय पर सुन्दर शिल्पयुक्त चित्रण उपलब्ध है, जिनमें दृश्यों जातकों की कहानियाँ तथा लोक जीवन का सफल चित्रण है। इसके अतिरिक्त लताओं, वृक्षों पशु–पक्षियों तथा यक्ष–यक्षणियों का भी अंकन किया गया है। प्रमुख दृश्यों में माया देवी का गर्भ धारण करना, धर्म यात्राएँ, पूजा दृश्य देवी देवताओं के दृश्य अजातशत्रु की धार्मिक यात्राओं के दृश्य सुदत्त द्वारा जेतवन को क्रय करने का दृश्य आदि उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त कुछ हास्यव्यंग के दृश्य है, यथा बन्दर का जंगली हाथी को पकड़ना और बन्दर तथा हाथी द्वारा यक्ष को सहायता देना इनमें दैनिक जीवन के विविध अंगो का समुचित दिगदर्शन कराया गया है [68]।

बुन्देलखण्ड में साँची का स्तूप मौर्य सम्राट अशोक ने बनवाया था इसका जीर्ण–उद्वार शुंग शासन काल में हुआ इसके अतिरिक्त सात वाहन शासन काल में भी इसका जीर्ण उद्वार हुआ इस स्तूप के चारों ओर प्रवेश द्वार है सम्पूर्ण स्तूप स्तम्भों के सहारे खड़ा हुआ है। इस स्तूप में चार सिंह चार हाथी, और चार बौने, अपनी खोपड़ी पर कुण्डलाकार किनारे वाली तीन वक्त बड़ेरियों को उठाये हुए दिखाये गये है। तोरण द्वार के मध्य में धर्म चक्र है और इसके दोनो ओर चामर लिये हुए यक्ष मूर्तियाँ है साँची के तोरण पर पाँच जातक कथाओं के चित्र है इस स्तूप के 50मी0 की दूरी पर एक अन्य स्तूप भी है जहां कमल की मूर्तियां उकेरी गयी है [69]।

गुप्तयुग में भी यहाँ मूर्ति शिल्प का विकास हुआ इस युग में यहाँ अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ इन मन्दिरों में अनेक प्रकार की मूर्तियाँ स्थापित की गई ये मन्दिर अपनी अलग विशेषताये रखते है इनके चबूतरे

ऊपर है इनकी छते चपटी है इनका भीतरी भाग सादा है बाहरी भाग अलंकृत हैं मूर्तियां गर्भगृह में स्थापित होती थी। मन्दिरो के प्रवेश द्वार में गंगा यमुना की मूर्तियाँ बनी होती थी गर्भ गृह के चारो ओर प्रदक्षिण मार्ग होता था मन्दिर की छत अलंकृत स्तम्भो में टिकी होती थी स्तम्भों के शीर्ष भाग पर एक वर्गाकार पाषाण खण्ड रखा जाता था। कुछ पाषाण खण्ड पर चार–चार सिंहों की मूर्तियाँ होती थी मन्दिर के आगे एक मण्डप होता था जो स्तम्भो पर आधारित होता था मन्दिर के लिये प्रवेश द्वारों का निर्माण होता था। वास्तुकला की तकनीक और निर्माण शैली को ध्यान में रखते हुए तत्कालीन मन्दिरों को दो भागो में विभाजित किया जा सकता है।1– प्रारम्भिक गुप्त कालीन मन्दिर (319–550ई0) (इसमें भूमरा के नचना मन्दिर है) तथा (2) उत्तर गुप्तकालीन मन्दिर (551–605ई0) इनमें देवगढ़ (जिला ललितपुर) का मंदिर है जो शिखर युक्त है[70]।

गुप्तयुग में जिन मूर्तियों का निर्माण हुआ वे मूर्तियाँ बुन्देलखण्ड के दशवतार मन्दिर, नचना, कुठरा में विद्यमान हैं। गुप्तयुगीन मूर्तियों ने ही आगे की युगों की मूर्तिकला को प्रोत्साहित किया इन मूर्तियों का निर्माण ग्रेनाइट पत्थर लाल बलुआ पत्थर भूरा, काला पत्थर, हरा पत्थर, तथा धातु की तरह बजने वाले पत्थरों से हुआ इस युग में राम के कथानक को दृष्टांकित किया गया नचना और देवगढ़ के मन्दिरों में इस प्रकार की मूर्तियाँ उपलब्ध होती है नचना की मूर्तियाँ पूर्व गुप्तकाल की है और देवगढ़ की मूर्तियाँ उत्तर गुप्तकाल की है। छत्रधारी वामन की स्वतन्त्र प्रमिमाएँ नृत्य गणेश रावण अनुग्रह का अंकन विभिन्न शास्त्रों के अनुसार किया गया है इस युग में शेषशायी, विष्णु, पशु, बाराह, गजेन्द्र, मोक्ष, और गंगा, यमुना, की मूर्तियाँ अंकित की गई मुख्य रूप से सीरोन खुर्द दुधई चाँद पर मदनपुर और बानपुर में गुप्तयुगीन मूर्तियाँ उपलब्ध होती है। कालिंजर के नीलकंठ मन्दिर की मूर्तियाँ गुप्तयुगीन हैं ये मूर्तियाँ कई भागों में विभक्त है इनमें शिव, ब्रह्म, विष्णु, वाराह, गणपति, सूर्य, शक्ति, तथ अन्य देवताओं की मूर्तियाँ है। तथा कुछ मूर्तियाँ जैन और बौद्ध धर्म से सम्बन्धित भी है। कुछ ऐसी मूर्तियाँ भी यहाँ उपलब्ध हुई है जिनका किसी धर्म में से कोई सम्बन्ध नही है ये मूर्तियाँ मन्दिरों की दीवालों में और स्तम्भों में अंकित है मुख्य रूप से सूर्यचन्द्र नक्षत्र, पशु, पक्षी, यक्ष, यक्षणियों, की मूर्तियाँ यहाँ उपलब्ध होती है। कुछ मूर्तियों का सम्बन्ध नृत्य ओर संगीत से भी है[71]।

गुप्तयुग के बाद गुर्जर प्रतिहार काल में भी मूर्तिशिल्प का विकास बुन्देलखण्ड में हुआ गुर्जर प्रतिहार काल में ग्वालियर देवगढ़ तथा

बरूआ सागर में अनेक धर्म स्थलों का निर्माण हुआ जहाँ अनेक मूर्तियाँ निर्मित हुई है ये मूर्तियाँ गुप्तयुग की मूर्तियों से मिलती जुलती है किन्तु मूर्तिकला की दृष्टि से इन मूर्तियों का अलंकरण गुप्त मूर्तियों से श्रेष्ठ है। डॉ0 एस0डी0 त्रिवेदी के अनुसार गुर्जर प्रतिहार के शासन–काल में मूर्ति शिल्प की नई कला का का विकास हुआ और यह कला यहाँ से लकर गुजरात राजस्थान मध्य भारत गंगा यमुना के मैदान तक फैली इस कला के अन्तर्गत मूर्ति का निर्माण धर्मग्रन्थों और परम्पराओं के अनुसार किया गया तथा इस कला का विकास गुप्तकला से ही हुआ इस युग की मूर्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि मूर्तियाँ बहुत सुडौल थी उनमें भाव भंगमा का प्रर्दशन बहुत ही अच्छी तरह से किया गया है मुख्य रूप से विश्व रूप विष्णु कल्याण सुन्दरशिव और नृत्य गणेश की मूर्तियाँ इसके उत्कृष्ट उदाहरण कहे जाते है।[72]

गुर्जर प्रतिहार के शासन काल के पश्चात बुन्देलखण्ड में चन्देलो के शासन का सूत्र–पात्र हुआ इसके पश्चात चन्देल युगीन स्थापत्य और मूर्ति–कला अविभाज्य है। उत्तर और दक्षिण भारत के स्थापत्य का विकास वस्तुतः पाँचवी सदी के गुप्तों और वाकाटकों के राज प्रसादों के काष्ट–शिल्प से ही हुआ। क्रम से इसकी अपनी इकाई बनी। समय के साथ काष्ठ शिल्प का विलोप ही होता गया। केवल अजंता की भित्ति पर वह अवशिष्ट है,, जहाँ भित्ति चित्रों ने उसकी विभुताको अब भी सुरक्षित रखा है [73]।

चन्देल मूर्ति–कला के नमूने दो रूपों में प्राप्त होते है। एक तो है अलंकरण के रूप में प्राप्त मन्दिरों के बाहरी और भीतरी भागों में दूसरे है मन्दिरों के विभिक्त स्थानो में प्रतिष्ठित मूर्तियाँ। चन्देल मूर्तियों के रचना–सौष्ठव, भंगिमा अंग विन्यास , गठत तथा कला–पक्ष में अध्ययन की प्रचुर समाग्री प्रस्तुत होती हैं। किन्तु उससे भी अधिक महत्व की सामग्री उनके द्वारा निरूपित होने वाला अध्यात्म –पक्ष प्रस्तुत करता है।

इस युग की मूर्तिकला को धार्मिक दृष्टि से निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1– हिन्दू मूर्तिकला – खजुराहो के कन्दरिया महादेव मन्दिर में मन्दिर के अन्दर 226 और मन्दिर के बाहर 646 मूर्तियाँ है इनमें से अधिकांश मूर्तिया हिन्दू देवी देवताओं की है। इसी प्रकार विश्वनाथ मन्दिर में मन्दिर के अन्दर और बाहर अनेक मूर्तियाँ है मुख्य रूप से इस मन्दिर की एक विशाल प्रतिमा है यही पर भी हाथियों की भी प्रतिमाये है खजुराहों के चतुर्भुज मन्दिर में नृसिंह भगवान के 4 फिट 1 इंच ऊँची खाड़ी चतुर्भुजी मूर्ति है इस मूर्ति

के तीन सिर है इनमें एक सिर सिंह का और दो मनुष्यों के है। यही पर शूकर के आखेट का एक दृश्य है खजुराहो के लक्ष्मीनाथ विष्णु मन्दिर में अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध होती है। इनमें स्त्री पुरूषों सिंहो की अनेक मूर्तियाँ है। इसी प्रकार कुँवर मठ में भी अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध होती है जात कराके चतुर्भुज मन्दिर में भगवान शिवकरा की चतुर्भुज मूर्ति है यहीं पर शप्तअस्पों की मूर्तियाँ है। खजुराहो के सूर्य मन्दिर में भी अनेक मूर्तियाँ भी उपलब्ध होती है जिन्हें भगवान सूर्य उनके रथ और सप्त अस्त्रों को दर्शाया गया है। खजुराहों के वाराह मन्दिर में भी भगवान वाराह की आठ फुट 9 इंच ऊँची प्रतिमा है। इसकी पीठिका में कुण्डली बाँधे हुए एक बड़े नाग की मूर्ति भी है और वाराह के सिर पर बैठे हुए एक नर मूर्ति भी है। मदनपुर के वाराह मन्दिर में 6 फिट ऊँची वाराह की एक प्रतिमा है इसके अतिरिक्त अनेक मूर्तियाँ और भी है। कालिंजर के काल भैरव मन्दिर में काल भैरव की चौबीस फुट ऊँची मूर्ति है यह मूर्ति नीलकण्ड मन्दिर के समीप है इसकी 18 भुजायें है यह मूर्ति नर मुण्डों की माला पहने हुए हैं मूर्ति के गले में नाम लिपटा हुआ है और मूर्ति हाथ में अनेक वस्तुयें धारण किये हुए है। बाँदा जिले के रसिन काली मन्दिर में काली की एक टूटी हुई मूर्ति है यह मूर्ति 8 फिट ऊँची और चार फिट चौड़ी है इसकी चौबीस भुजाये है इसी मन्दिर की अन्य मूर्तियों में दस मुखी दुर्गा मैसासुरी और हनुमान की मूर्तियाँ है। कालिंजर दुर्ग में देवी की अष्टभुजी प्रतिमा हैं जो हाथ में त्रिशूल खप्पर धारण किये हुए है अजयगढ़ दुर्ग के तरोणी द्वार में देवियों की मूर्तियाँ है इसमे सात मूर्तियाँ बैठी मुद्रा में और एक मूर्ति खड़ी मुद्रा में है मूर्ति तीन फुट ऊँची ओर तीन फुट 10 इंच चौड़ी है इसके अतिरिक्त मूषक गणेश मयूर वाहिनी देवी तथा वृषभ आरूढ़ पार्वती की मूर्तियाँ है।

2— जैन मूर्तियाँ — बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों में जैन मन्दिर है वहाँ अनेक जैन मूर्तियाँ उपलब्ध होती है। खजुराहो के जिननाथ मन्दिर में जैन तीर्थाकरो की 13 मूर्तियाँ है इनमें से अनेक मूर्तियाँ 3 फुट 6 इंच ऊँची है तथा सर्वाधिक प्रसिद्ध मूर्ति पार्शनाथ की है इसी प्रकार मदनपुर के जैन मन्दिर में आदि नाथ की मूर्ति है इनकी पीठिका में वृषभ उत्कीर्ण है दूसरी मूर्ति शम्भू नाथ की है जिनकी पीठिका में अश्वअंकित है तीसरी मूर्तिचन्द्र प्रभा की है जिसकी पीठिका में वक्र चन्द्र अंकित है।

3— बौद्ध मूर्तियाँ — बुन्देखण्ड के अनेक क्षेत्रों में बौद्ध मूर्तियाँ भी उपलब्ध महोबा के सन्निकट 6 बौद्ध प्रतिमाये उपलब्ध हुई है यह ग्यारवी और बारवीं शताब्दी की है। इनमें सबसे प्रसिद्ध मूर्ति सिंहनाथ अवलोकेतश्वर की

है यह मूर्ति 2 फिट 8 इंच ऊँची 1 फुट 10 इंच चौड़ी है इस मूर्ति का ऊपरी भाग वस्तु से ढका हुआ है बौद्ध धर्म से सम्बन्धित एक दूसरी मूर्ति अवलोकतेश्वर के नाम से विख्यात है इस मूर्ति को पद्म–पाणि नाम से भी जाना जाता है यह कमला सन, राजलीला मुद्रा में है। यही पर एक मूर्ति तारा देवी की भी उपलब्ध हुई है इस मूर्ति का वाया हाथ वितर्क मुद्रा में और दाहिना हाथ वरद मुद्रा में है। मूर्ति के पीछे पाँच ध्यानी बौद्धो की मूर्तियाँ भी है इस मूर्ति की पीठिका में ग्यारहवीं शताब्दी का एक लेख है यहीं पर एक मूर्ति महात्मा बुद्ध की उपलब्ध हुई है इनके सिर में घुघराले वालो की लटायें है बुद्ध भगवान कमलासन में बैठे हुए है।

4— धर्मनिर्पेक्ष मूर्तियाँ — बुन्देलखण्ड में ऐसी अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध होती है जिनका सम्बन्ध किसी धर्म से नही है अजयगढ़ की अजयपाल की मूर्ति एक ऐसी मूर्ति है जिसका किसी धर्म से लेना देना नही है। किसी प्रकार अनेक नर नारियों की मूर्तियाँ विविध परिधानों और अलंकरणो के साथ यहाँ उपलब्ध होती है यहाँ ऐसे स्त्री पुरूषों की भी मूर्तियाँ जो मैथुन क्रिया में लिप्त है तथा पास ही एक ऐसी नारी की मूर्ति है जो मैथुन क्रिया देख रही है। खाजुराहो के मन्दिर में अनेक प्रकार की मैथुन मूर्तियाँ उपलब्ध होती है।

5— पशुपक्षियों की मूर्तियाँ — देवी देवताओं और मनुष्यों के अतिरिक्त यहाँ अनेक पशु पक्षियों की भी मूर्तियाँ उपलब्ध होती है इन मूर्तियों में नाग, मयूर, उलूक, मूषक, वाराह, वृषभ, मृग तथा अन्य जीव जन्तुओं की मूर्तियाँ है। खजुराहों के विश्वनाथ मन्दिर में सजीव हाथियों के आकार की दस मूर्तियाँ उपलब्ध होती है। कर्वी चित्रकूट जनपद के लोखरी ग्राम में हाथी की एक विशाल प्रतिमा है। यह $7\frac{1}{2}$ लम्बी $3\frac{1}{2}$ चौड़ी ओर $5\frac{1}{2}$ फिट ऊँची है मदनपुर के खड्हरों में एक वृषक मूर्ति उपलब्ध हुई है जो 3 फुट 10 इंच लम्बी है तथा यहीं पर चार ऊँचे दो सिंहो की मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई खजुराहो के विश्वनाथ मन्दिर के सामने एक छोटा सा मन्दिर है इसमें $7\frac{1}{2}$ फिर ऊँची वृक्षभ की एक विशाल प्रतिमा है। इस मूर्ति के सींग और पैर टूट गये है इस प्रतिमा के नीचे एक नारी की प्रतिमा भी है।

6— धातु की मूर्तियाँ — बुन्देलखण्ड में धातु मूर्तियों का सुभारम्भ चन्देल युग के बाद हुआ तुर्क शासन का मुगल शासन काल तथा बुन्देले और मराठो के शासन काल में जिन मन्दिरों का निर्माण हुआ उन मन्दिरों में धातु की मूर्तियाँ स्थापित की गयी ये मूर्तियाँ पीतल,ताँबा सोना चाँदी तथा अष्ठ धातु से निर्मित होती थी। इन्हें साँचे में ढालकर बनाया जाता था।

चित्रकूट ओरछा, पन्ना, झाँसी तथा बुन्देलखण्ड के अन्य स्थलों में धातु की अनेक मूर्तियां उपलब्ध होती हैं जिनकी प्राण प्रतिष्ठा मन्दिरों में की गयी है इन मूर्तियों का निर्माण ओरछा, ग्वालियर, श्रीनगर छतरपुर, और पन्ना में विशेष साँचा बनाकर किया जाता था ये मूर्तियाँ हिन्दू धर्म तथा जैन धर्म से सम्बन्धित सभी देवी देवताओं की है।

7— मृद मूर्तियाँ — बुन्देलखण्ड के अनेक भागो में मिट्टी की कलात्मक मूर्तियाँ निर्मित की जाती रही है। इन मूर्तियों को विभिन्न रंगो से रंगकर इनकी क्षणिक प्राण प्रतिष्ठा की जाती रही है मुख्य रूप से दीवाली के अवसर पर गणेश लक्ष्मी मिट्टी की पूजा सभी घरों में यहाँ होती है। इसी प्रकार गणेश उत्सव के अवसर पर गणेश की प्रतिमायें और नौ रात्रि के अवसर पर विविध देवियों की प्रतिमाएँ मिट्टी से निर्मित की जाती रही है। महालक्ष्मी के अवसर पर हाथी की प्रतिमा तथा तीजा के अवसर पर शिव पार्वती की प्रतिमा बनाने की प्रथा बुन्देलखण्ड में चिरकाल से है।

यह प्रकट है कि मूर्तिकला रचना और सौष्ठव की दृष्टि से चित्रकला से अधिक दुरुह है। इसमें हस्तकौशल और शरीर व्यवच्छेद विज्ञान की और गहरी जानकारी की आवश्यकता होती है। चन्देल मूर्तियों का परीक्षण इस आधार पर किया जाय तो ज्ञात होगा कि पशुओं से लेकर मानव और मानवेतन मूर्तियों की सुषमा के निर्माण में उन कलाकारों ने अद्भुत नैपुण्य का उदाहरण दिया है।[74]

8— दुर्ग में उपलब्ध सामरिक महत्व के स्थल —

बुन्देलखण्ड में उपलब्ध दुर्गों का निर्माण सामरिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखाकर किया गया है यहाँ के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ आल्हखण्ड में आल्हा—ऊदल द्वारा लड़ी गयी 52 लड़ाईयों का विषद वर्णन उपलब्ध होता है इसके अतिरिक्त चन्दरबरदाई द्वारा रचित पृथ्वीराज रासो में भी दुर्गों के सामरिक महत्व को दर्शाया गया है यहाँ के नरेश युद्ध प्रिय बलशाली और जुझारू थे। चन्देल नरेशो के पास बारीगढ़ कालिंजर मनियागढ़, मडफा, कालपी, गढ़ा, देवगढ़, महोबा, रावतपुर, और जैतपुर, के दुर्ग थे। इसके अतिरिक्त अजगढ़ आदि दुर्ग भी सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थे।

प्रत्येक दुर्ग में कुछ ऐसे स्थल हुआ करते थे जिनके माध्यम से व्यक्ति अपने शत्रुओं से अपनी रक्षा कर लेते थे। राजा अपनी सामार्थ्य और सुविधा के अनुसार किले, गढ़—गढ़ियाँ बनाया करते थे। उनके निर्माण में वही परिपाटी अपनायी जाती थी। जैसे एक युद्ध के लिए व्यूह की रचना रची जाती थी। अच्दा शासक अपनी व अपने कुटुम्ब, सेना, रसद, नगर, या ग्राम, की रक्षा

का प्रबन्ध करते हुए शान्ति से शासन करता था। शान्ति के समय सेना को युद्धाभ्यास करता था। शासक युद्ध और प्रशासन पद्धति में सभी से अधिक निपुण होता था। शासक सदैव अपनी राज्य सीमा को बढ़ाने में और मान–सम्मान तथा यश फैलाने में लगा रहता था।

उस युग में युद्ध–पद्धति बदल गई थी। महाभारत की परिपाटी में युद्ध केवल प्रातः से सूर्यास्त तक होते थे। संध्या पश्चात् दोनो पक्षों के योद्धा एक साथ बैठकर भोजन और चचार्य करते थे। युद्ध किलों में बन्द होकर नही होते थे। भारत में युग परिवर्तन के पश्चात् अन्य क्षेत्रों की तरह बुन्देलखण्ड में कम परिवर्तन हुए । कारण था यहाँ के घने वन, पहाड़ और नदी। आवागमन तो बहुत ही कम था। उस समय जिसकी लाठी उसकी भैस का बोलबाला था।[75] तदुयुगीन दुर्गो में कुछ निम्न विशेषताएँ थी।

1– प्राकृतिक बाधायें – सामरिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखाते हुए दुर्ग ऐसे स्थानों पर बनाया जाता था जहाँ शत्रु आसानी से न पहुँच सके बुन्देलखण्ड के दुर्गो में अधिकतर की रक्षा उत्तर–पश्चिम से हुआ करते थे। इसलिए दुर्गों की रक्षा उत्तर–पश्चिम की ओर से की जाती थी आल्हा–ऊदल के समय में तोपो का निर्माण हो चुका था इसलिए दुर्ग की प्राचीरे कुछ इस प्रकार बनायी जाती थी जिसमें तोप के गोले असर न कर सके।

प्राकृतिक बाधाये नदियों के वे भाग थे, जहाँपूरे वर्ष अथाह दौला भरे रहते थे। इनके कारण शत्रु की सेना तोपखाना और ऊँचाई और नीचाई, जहाँ पौठे सीधी चट्टानों की हो ओर ऊपर पहाड़ में पानी हो इसके अलाववा बड़े–बड़े सेहे हो, उनके ऊपर किला बनाया जाता था। जहाँ जमीन समतल होती थी, वहाँ बडी दीवारे 10 फुट से 12 फुट तक की मोटाई की बनाई जाती थी। दीवार की ऊँचाई कम से कम 27 फुट से लेकर 30 फुट तक होती थी। इस पर यदि कम समझा जाता था, तो और ऊँची बनाते थे।

2– कृतिम बाधायें – सामरिक दृष्टि से जनता की रक्षा करने के लिए कुछ ऐसी कृतिम बाधाये निर्मित कराई जाती थी जिनके कारण शत्रु अपने लक्ष्य की पूर्ति न कर सके। दुर्ग के बाहर गहरी खाइयों का निर्माण किया जाता था उन खाइयों में पूरे वर्ष भर पानी भरा रहता था इनकी गहराई 25 फुट और चौड़ाई 50 फुट होती थी किलो में आने जाने के लिये लकड़ी के पुलों का निर्माण किया जाता था आक्रमण के समय इन पुलों का निर्माण किया जाता था। आक्रमण के समय इन पुलो को बारूदी सुरंगो से उड़ा दिया जाता था किले के चारो ओर बड़े पेड़ लगाये जाते जिससे तोपो

की मार से बचा रहता था। तथा किले तक पहुँचने के लिये सीधे रास्ते न होकर टेढ़े मेढ़े रास्ते होते थे।

3— मुख्य द्वार — किले के मुख्य द्वार के दरवाजे एक फुट से सवाब फुट की पट्टियों से बने होते थे ये पट्टियाँ महुआ, अथवा सरई, की लकड़ी की होती थी हर एक पट्टियाँ मे सरिया नुमा गुज्जा और छल्ले लगे रहते थे। तथा एक—एक मन की वजनी साकरे किमारों में लगी रहती थी दरवाजे के भीतर और बाहर लोहे तवे जड़े होते थे। तथा इनमें नोकदार गुलमेखा लगे होते थे इनको कहीं—कहीं खीसा तोरन या माथा फोरन भी कहा जाता था इस तरह के गुलमेखा 3 फिट की ऊँचाई से लेकर 12 फिट की ऊँचाई तक होते थे ये दरवाजे बड़े—बड़े लंगरो के सहारे भीतर की ओर सटे रहते थे।

4— गुर्जा — किले में गुर्जो की बनावट इस तरह की जाती थी जहाँ से शत्रुओं को आसानी से मारा जा सके ये दो प्रकार के होते थे पहला गुर्जा नीचे से ऊपर तक ठोस होता था दूसरे प्रकार के गुर्ज पोले होते थे। जिनके बीच में कमरा होता था ठोस गुर्जो के ऊपर तोपे रखी जाती थी तथा उनके ऊपर 5 या 6 फुट के कंगूरे होते थे कुछ कंगूरे नागफनी के आकार के और कुछ कंगूरे चपटे होते थे प्रत्येक कंगूरे के बीच में एक फुट की जगह खाली रहती थी जिनसे सिपाही शत्रुओं पर तुबुक या तीर चलाया करते थे। कंगूरो की मोटाई लगभग 2 फुट और चौडाई 4 फुट होती थी ये के कंगूरे दुर्ग चारो तरफ होते थे। इनसे सटे हुए अन्दर की तरफ अनेक रास्ते होते थे इनसे सटे हुए अन्दर की तरफ अनेक रास्ते होते थे जिनसे सेना का आना जाना बना रहता था दुर्ग के ऊपर चढ़ने के लिये अनेक प्रकार की सीढ़ियाँ होती थी दीवार और कंगूरो में तबके और तीरकस बनाये जाते थे तबको और तीर कसो की निगरानी सैनिको द्वारा की जाती थी कुछ जगह छोड़कर भीतर की ओर दलाने और कोठे बनाये जाते थे इन स्थानों पर सिपाही और सैनिक रहते थे।

5— किले का भीतरी भाग — किले के मुख्य द्वार के पश्चात नगाढ़खाने होते थे यहाँ बैठकर नगाडची नगाड़े बजाया करते थे ये युद्ध की सूचना नगाड़ा बजा कर दिया करते थे। इसके पश्चात मंच कोरिया होती थी मच कोरिया एक ऐसा स्थल था यहाँ से शत्रु को देखा जा सकता था इसके पश्चात डेवड़ी होती थी यह डेवढ़ी किले के फाटक और मुख्य द्वार को बांटती थी डेबढ़ी के अगल—बगल में और बीच में शत्रु को मारने के लिए सुरक्षित अड्डे बने होते थे। इनमें खास—खास सौने, गोखे, ढबियाँ कमाने,

दूरियाँ, खलका जीना, तक्का और तीर कस हुआ करते थे। भीतर जाने पर राजा, रानी तथा अधिकारियों के निवास स्थान होते थे। निवास–स्थान को कई नामों से पुकारा जाता था। इसे रहायस की जाँगा या राउर कहते थे। रानी के निवास को रनिवास कहते थे। रनिवास या रहायस अधिकतर बालाखानों, बारादरियों चतेवरियों, रंगमहल और गुजरायती में हुआ करती थी। किले में तोप खाने के अतिरिक्त जेवर वस्त्र रखाने के लिये अनेक कमरे बने होते थे जिस स्थान में राजा और उसके सम्बन्धी रहते थे उस स्थान को डेरा कहा जाता था। जहाँ स्त्रियाँ निवास करती थी उस स्थान को डीलों का डेरा कहते थे जहाँ पानी गरम किया जाता था उसे ततर खाना कहते थे जहाँ भोजन बनाया जाता उसे ततरखाना कहते थे जहाँ कीमती और वडी वस्तुयें रखी जाती थी उसे कोठा रखत कहा जाता था जहाँ पानी के बर्तन ओर ईधन रखा जाता था उस स्थान को फरास खाना कहते थे जहाँ अस्त्र–शस्त्र रखे जाते थे उसे शिला खाना कहते थे जहाँ घोड़े बाधे जाते थे और घुड़सवार रहते थे उसे पैड़ा खाना कहते थे जहाँ हाथी बाधे जाते थे उसे हंथसार कहते थे।

6— भौहरे— भौहरे किले के गुप्त मार्ग को कहते थे इनकी लम्बाई 10–15 मील तक हुआ करती थी। इनका सम्बन्ध मुख्य से दूसरे किले गढ़ी, मन्दिर, कुँआ और कन्दराओं से था आपत्तिकाल में इन भौहरों का उपयोग रसद लाने और ले जाने पर किया जाता था मौका पाने पर मुख्य किले को खालीकर शत्रु से बच निकलने का रास्ता भी यही था ये रास्ते 6 फुट ऊँचे और तीन फुट चौड़े होते थे इन रास्तों में पटिया बिछी रहती थी इनके लिए किले में चोर दरवाजे होते थे।

बुन्देलखण्ड में सर्वाधिक प्रसिद्ध दुर्ग कांलिजर दुर्ग था जो प्राचीन भी था और सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भी था हर बाहरी शासक कालिंजर दुर्ग को जीतने का प्रयास भी करता था अन्य नरेशो का यह मानना था कि कालिंजर दुर्ग को आसानी से नही जीता नही जा सकता इस दुर्ग पर कल्चुरियों गुर्जर प्रतिहारों, चन्देलो, तुर्को, और मुगलों ने अनेक बार आक्रमण किये है इस दुर्ग की सुदृढ़ता के बारे में विदेशी इतिहास कारों से लेकर देशी नरेशो तक ने इसी प्रसंसा की है।

कालिजर दुर्ग निर्माण का इतिहास भी अब तक विवादा ग्रस्त ही है। इतिहास कार फरिश्ता के अनुसार इस दुर्ग का प्रथमतः ही निर्माण सातवीं शताब्दी में हुआ। निर्माता शासक का नाम केदार था। इसी ने कालंजर की स्थापना की थी। चन्देलो के हाथ में आने से पूर्व यह दुर्ग क्रम

से कल्चुरी, प्रतिहारी, भोज और राष्ट्रकूट शासको के हाथ में रह चुका था। राष्ट्रकूटो से चन्देल शासक भोजवर्मन् देव ने कालंजर की रक्षा की थी और कन्नौज के प्रतिहारों का आधिपत्य क्षणमात्र के लिए उस पर पुनः स्थापित करा दिया। किन्तु यशोवर्मनचन्देल (930–950) ने दुर्बल प्रतिहारो से जीतकर इसे अपने साम्राज्य में मिला लिया तब से यह दुर्ग उस समय तक चन्देलों के हाथ में रहा जब तक कुतुबुद्दीन ऐवक ने इसे जीतकर दासवंश के आधीन नही कर लिया [76]।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– मेम्मवायर्स आव् महमूद आव् गजनी, पृष्ठ सृ0 –322,

2– कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी संस्करण 1991,प्रकरण 19, अध्याय 3, पृष्ठ सं0 –86–87,

3– कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी संस्करण 1991,प्रकरण 19 अध्याय 3, पृष्ठ सं0 –88–89–90,

4– केशव चन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, वाराणसी सन् 1974, पृष्ठ सं0, –230–231

5– आर्क्योलाजिकल सर्वे रिर्पोट भाग 7 पृ0 सं0 –21

6– वही, भाग 2 पृ0 सं0 –415

7– वही, भाग 2 पृ0 सं0 –439

8– वही

9– वही

10– वही पृ0 सं0 439–40

11– वही, भाग 7 पृ0 सं0 –26

12– वही, भाग 21 पृ0 सं0 –15–16

13– वही, भाग 10 पृ0 सं0 –90

14– वही, भाग 21 पृ0 सं0 –33

15– आइने अकबरी भाग दो पृ0 सं0 29

16– वही,

17– वही, भाग 21 पृ0 सं0 –20

18– वही,

19– कौटिलीय अर्थशास्त्रम् ,वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी संस्करण 1991,प्रकरण 20 पृष्ठ सं0 –91–92

20– केशव चन्द्र मिश्र भाग 2 , चन्देल और उनका राजत्वकाल, वाराणसी सन् 1974, पृष्ठ सं0, –224–225

21– आर्क्योलाजिकल सर्वे रिर्पोट पृ0 सं0 –443–44

22– वही, भाग 7 पृ0 सं0 –54

23– आर्क्योलाजिकल सर्वे रिर्पोट भाग 7 पृ0 सं0 –59

24– आर्क्योलाजिकल सर्वे रिर्पोट भाग 7 पृ0 सं0 –22

25– वही, भाग 10 पृ0 सं0 –98

26– वही, भाग 7 पृ0 सं0 –57

27– वही, भाग 21 पृ0 सं0 –9

28– एस0 डी0 त्रिवेदी, बुन्देलखण्ड़ के पुरातत्व, राजकीय संग्रहालय झाँसी प्रथम संस्करण 1984, पृ0 सं0 –102–103

29– केशव चन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, भाग 2, वाराणसी सन् 1974 पृष्ठ सं0, –238,

30– केशवचन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, भाग 2 सन् 1974, पृष्ठ सं0, –238,

31– डॉ0 अयोध्या प्रसाद पाण्डे, चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड़ का इतिहास सन् 1968 प्रक0 प्रयाग पृ0 सं0 –192–193,

32– आर्क्योलाजिकल सर्वे रिर्पोट भाग 2 पृ0 सं0 –419–20,

33– वही, भाग 2 पृ0 सं0 –419

34– वही, ,, पृ0 सं0 –422–23

35– वही, ,, पृ0 सं0 –427–28

36– आर्क्योलाजिकल सर्वे रिर्पोट भाग 2 पृ0 सं0 –427–28,

37– वही, पृ0 सं0 –437,

38– वही, भाग पृ0 सं0 –40

39– आर्क्योलाजिकल सर्वे रिर्पोट भाग 2 पृ0 सं0 –421

40– वही, पृ0 सं0 –425

41– वही, पृ0 सं0 –427

42– वही, पृ0 सं0 –429–30

43– वही, पृ0 सं0 –430

44– आर्क्योलाजिकल सर्वे रिर्पोट भाग 2 पृ0 सं0 –422

45– वही, भाग 21 पृ0 सं0 –13–14

46– वही, पृ0 सं0 –19–20

47– आर्क्योलाजिकल सर्वे रिर्पोट भाग 10 पृ0 सं0 –93–94

48– वही, भाग 2 पृ0 सं0 –425

49– वही, भाग 2 पृ0 सं0 –427

50– वही, भाग 2 पृ0 सं0 –424

51– वही, पृ0 सं0 –416

52– वही, भाग 7 पृ0 सं0 –51

53– आर्क्योलाजिकल सर्वे रिर्पोट भाग 21 पृ0 सं0 –17

54– वही, भाग 2 पृ0 सं0 –442

55– वही, भाग 2 पृ0 सं0 –431

56– वही, भाग 2 पृ0 सं0 –431–32

57– आर्क्योलाजिकल सर्वे रिर्पोट भाग 2 पृ0 सं0 –432–33

58– वही, पृ0 सं0 –434

59– वही,

60– वही, भाग 7 पृ0 सं0 –40–41

61– आर्क्योलाजिकल सर्वे रिर्पोट भाग 10 पृ0 सं0 –92–93

62– वही, भाग 7 पृ0 सं0 –58

63– वही, भाग 21 पृ0 सं0 –172–73

64– वही, भाग 10 पृ0 सं0 –96

65– एस0 डी0 त्रिवेदी, बुन्देलखण्ड़ के पुरातत्व, राजकीय संग्रहालय झाँसी प्रथम संस्करण 1984, पृ0 सं0 –101–5

:6– 'स्तूप आफ भरहुत' – कनिंघम

67– 'भरहुत वेदिका' –एस0 सी0 काला।

68– डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल 'भरूत बेनी माधव बरूआ और 'भारतीय कला'

69– 'दि मानूमेण्ट्स ऑफ साँची; भाग 1 –सर जानमार्शल

70– बनर्जी, दि ऑफ इंपीरियल गुप्ताज, पृ0 135

71– डॉ0 एस0 डी0 त्रिवेदी, बुन्देलखण्ड़ के पुरातत्व, राजकीय संग्रहालय झाँसी सन् 1984, पृ0 सं0 –43–60

72– शिवराम मूर्ति, सी, इण्डियन स्कल्चर, पृ0 सं0 98–100

73– आर्क्योलाजिकल सर्वे रिर्पोट भाग 2 पृ0 सं0 –429

74– केशव चन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्व काल, भाग 2 वाराणसी, सन् 1974, पृष्ठ सं0, –250,

75– दंगल सिंह,'आल्हा'– युगीन दुर्ग और शास्त्र, ममुलिया, पृ0 112

76– केशव चन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्वकाल, भाग 2 वाराणसी, सन् 1974, पृष्ठ सं0, –232,

चतुर्थ अध्याय

- बुन्देलखण्ड के महत्व पूर्ण दुर्ग।
- सामान्य दुर्ग परिचय।

1-- कालिंजर दुर्ग, 2– अजयगढ़ दुर्ग, 3– रसिन दुर्ग,
4-- मडफा दुर्ग, 5– शेरपुर सेवडा दुर्ग, 6– रनगढ़ दुर्ग,
7-- तरहुआ दुर्ग, 8– भूरागढ़ दुर्ग, 9– कल्याणगढ़ दुर्ग
10-- महोबा दुर्ग, 11– सिरसागढ़ दुर्ग, 12– जैतपुर दुर्ग,
13-- मंगलगढ़ दुर्ग, 14– मनियाँगढ़ दुर्ग, 15– बरूआसागर दुर्ग,
16-- ओरछा दुर्ग, 17– झाँसी दुर्ग, 18– गढ़कुढांर दुर्ग,
19-- चिरगाँव दुर्ग, 20– एरच का दुर्ग, 21– उरई दुर्ग,
22-- कालपी दुर्ग, 23– दतिया दुर्ग, 24– बढौनी दुर्ग,
25-- ग्वालियर दुर्ग, 26– चन्देरी का दुर्ग, 27– छतरपुर दुर्ग,
28-- पन्ना दुर्ग, 29– सिंगौरगढ का दुर्ग,
30-- राजनगर दुर्ग, 31– बटियागढ़ दुर्ग, 32– बिजावर या जटाशंकर दुर्ग, 33– बीरगढ़ का दुर्ग, 34– धमौनी दुर्ग,
35-- पथरीगढ़ दुर्ग (पाथरकछार दुर्ग), 36– बारीगढ़ दुर्ग,
37-- गौरहार दुर्ग, 38– कदौरा दुर्ग, 39– कुलपहाड़ दुर्ग,
40-- तालबेहट दुर्ग, 41– देवगढ़ दुर्ग।

नीलकंठ मन्दिर की बेदी कालिंजर दुर्ग

चतुर्थ अध्याय

बुन्देलखण्ड के महत्वपूर्ण दुर्ग :— बुन्देलखण्ड में अनेक दुर्ग है जिनकी प्रसिद्ध उत्तर भारत में थी तथा जिनका निर्माण यहाँ के राजपूत नरेशों ने कराया था कालान्तर में जब यहाँ मसलमानों के आक्रमण हुए उस समय इनमें से कुछ दुर्ग तुर्क और मगल नरेशों के अधिकार में आ गये। बुन्देलखण्ड के कालिंजर, खजुराहों, ग्वालियर, ओरछा, आदि दुर्गों का स्वर्णिम इतिहास उपलब्ध होता है। तथा इस इतिहास का निर्माण पृथ्वी राज चन्देल बुन्देले तोमर और मुगल बादशाहों ने किया था इनमें से कुछ दुर्ग इस प्रकार है।

कालिंजर दुर्ग :— कालिंजर दुर्ग बाँदा जनपद के 55 किलोमीटर दूर बाँदा सतना रोड पर स्थित है यह भारत का प्रचीनतम दुर्ग है। इस दुर्ग की प्रसिद्ध हर युग में रही है। सतयुग में यह क्षेत्र रत्नकूट, त्रेता में महागिरी, द्वापर में पिंगलगिरि, कलयुग में यह क्षेत्र, कालिंजर के नाम से प्रसिद्ध हुआ है।

प्रचीनकाल में यह एक नगर था तथा तीर्थस्थल के रूप में यह विख्यात था उस समय यहाँ अनेक मन्दिर और सरोवर थे। जिनका उल्लेख अनेक अभिलेखों में है।

गंगाया: दक्षिणे भागे कालंजर इतिस्मृत : ।
सर्वतीर्थफलं तत्रपुण्यंचैव सनन्तकम् ।।[1]

कालंजरस्योत्तरत: सुपुण्यस्तथा हिमाद्रेरपि दक्षिणस्थ: ।
कुशस्थात्पर्वत एवं विश्रुतो वसो: पुरात्पश्चिमतो वतस्थे ।।[2]

आत्मनं साधयै तत्र गिरौ कालंजरे नृप ।
स्वर्ग लोके महीयते नरो नास्त्यत्रसंशय: ।।[3]

सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक फरिस्था के अनुसार इस दुर्ग का निर्माण सातवी शताब्दी में केदार वर्मन के कराया था। कालिंजर दुर्ग की सेनाओं ने कन्नौज नरेश जयपाल की सेनाओं के साथ सन् 978 में गजनी के सुल्तान पर आक्रमण किया था और उसे परास्त किया था जिसका बदला लेने के लिये महमूद गजनवी की सेना ने सन् 1023 में कालिंजर दुर्ग पर आक्रमण किया था उस समय यहाँ का नरेश नन्द था इसके पश्चात सन् 1182 में दिल्ली नरेश पृथ्वी राज चौहान ने चन्देल नरेश परमार्दिदेव को पराजित किया था इसके पश्चात सन 1202 या 1203 मे कुतुबुद्दीन ऐबक ने परमार्दिदेव को

हराकर इस दुर्ग को अपने अधीन कर लिया था।

मुगलशासक हुमायूँ ने भी इस दुर्ग को जीतने का प्रयत्न किया था इसके पश्चात शेरशाह शूरी ने सन् 1544–45 में इस दुर्ग पर आक्रमण किया और उसे जीत लिया किन्तु तोप खाने में आग लगने के कारण उसकी मृत्यु यहीं हो गयी उसके पश्चात जलाल खाँ ने इस दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया तथा वह स्लामशाह के नाम पर यहाँ दिल्ली की गद्‌दी पर बैठा इसके पश्चात सन् 1569 में अकबर बादशाह के सेना नायक मजनू खाँ ने इस दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया और बाद में यह राजाबीर बल की जागीर बन गया औरंगजेब के शासनकाल में यह दुर्ग बुन्देलो के अधिकार में आ गया छत्रशाल की मृत्यु के पश्चात पन्ना नरेश हृदयशाह इस दुर्ग के शासक रहे सन् 1812 में यह दुर्ग अंग्रेजो के अधिकार में आ गया सन् 1866 में 1857 में क्रान्ति का परिणाम देखते हुए इस दुर्ग का विध्वंश किया गया ताकि यह सामरिक महत्व का न रह जाये।

यह दुर्ग त्रिकूट पहाडी पर जमीन से 700 अथवा 800 फीट ऊँचाई पर है। तथा इस दुर्ग का परिकोटा 50 फिट ऊँचा यह परिकोटा कहीं–कही पर नष्ट हो चुका है और कही नष्ट होने की स्थित में है।

दुर्ग में प्रवेश करने के लिये परिकोटे से लगे हुए अनेक दरवाजे है। ये दरवाजे विभिन्न नामों से प्रसिद्ध है।

1. आलम अथवा आलमगीर दरवाजा,
2. गणेश दरवाजा,
3. चण्डी अथवा चौबुर्जी दरवाजा,
4. बुधभद्र दरवाजा,
5. हनुमान दरवाजा,
6. लाल दरवाजा,
7. बड़ा दरवाजा,[4]

कालिंजर दुर्ग में चढ़ने वाले मार्ग को तुर्क और मुगलशासक काफिर घाटी के नाम से पुकारते थे इस दुर्ग में अनेक सीढ़िया बनी हई हैं इनके माध्यम से इस दुर्ग में चढ़ा जा सकता है। चण्डी दरवाजा में सन्निकट एक अन्य दरवाजा भी है। जो दुर्ग को ऊपर जाता है।

इस द्वार के समीप पीछे की तरफ दुर्ग रक्षको का निवास स्थल है। चौथे दरवाजा जिसे बुधभद्र के नाम से पुकारा जाता है उस दरवाजे का निर्माण तदयुगीन युद्धो को ध्यान में रखकर किया गया था पाँचवा द्वार हनुमान द्वार के नाम से प्रसिद्ध है यहाँ पर हनुमान कुण्ड नाम का जलाशय

है। ये सदैव जल से परिपूर्ण रहता हैं तथा इसके बाद जो द्वार उपलब्ध होता है वहाँ एक तोप रखने का स्थान भी है तथा एक चट्टान के सामने एक हनुमान जी की प्रतिमा भी है इसके पश्चात छठवाँ द्वार उपलब्ध होता है जिसे लाल दरवाजा के नाम से जाना जाता है थोडी दूर चलने पर दो दरवाजों के मध्य एक द्वार और उपलब्ध होता है जो सिद्ध की गुफा की ओर जाता है लाल दरवाजे के पश्चात सातवाँ द्वार उपलब्ध होता है जिसमें संवत 1691–92, का एक अभिलेख उपलब्ध होता है। यही पर भगवान शिव और पार्वती की प्रतिमा भी है इस दरवाजे के समीप पत्थरों पर दो तोपे भी रखी हुई है ये तोपे बहुत वजनी है और लोहे की बनी है इसी के समीप छत्रशाल के पुत्र हृदयशाह का एक अभिलेख उपलब्ध हआ है। तथा दुर्ग के ऊपर अनेक धार्मिक स्थल भी उपलब्ध होते है इन धार्मिक स्थलों में सेज, सीता कुण्ड, पातालगंगा उपलब्ध होती है पतालगंगा में 25 फिट नीचे जलकुण्ड है। इस जल का प्रयोग सैनिक आपत्तिकाल में किया करते थे पतालगंगा के सन्निकट एक दूसरा जलकुण्ड है जो पाण्डव कुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है यहाँ भगवान शिव की छोटी–छोटी 6 प्रतिमाएँ है।

जब हम दुर्ग में उत्तर पूर्व दिशा की ओर चलते है तो हमें अंग्रेजी शासनकाल के स्तम्भों के अनेक टुकडे मिलते है जिससे यह ज्ञात होता है इस दुर्ग का विध्वंश ब्रिटिश सैनिको ने किया था तथा इसी स्थल में मूर्तियों के भग्न अवशेष बिखरे पडे हुए है ये समस्त मूर्तियाँ पुरात्विक महत्व की है ऐसा प्रतीत होता है कि यह मूर्तियाँ कभी स्तम्भों में जुडी हुई थी।

यही से आगे बढ़ने पर मैदान उपलब्ध होता है तथा इसके दाहिने ओर अनेक भवनों के भग्नावशेष उपलब्ध होते है। इन भग्नावशेषों में कुछ भग्नावशेष मन्दिरों की है इन मन्दिरों में कोई मूर्तियाँ नही है तथा इसी के समीप दो सरोवर उपलब्ध होते है जिन्हे बुढ्ढा– बुढ़िया ताल के नाम से पुकारा जाता है ये सरोवर 50 गज लम्बे और 25 चौडे है लोग यहाँ स्नान करने के उद्देश्य से आते है ।

यहाँ से थोडी दूर पर दुर्ग के नीचे की ओर सिद्धि की गुफा नामक स्थान उपलब्ध होता है। यह क्षेत्र पूरा का पूरा त्रिकोणीय स्थित में पन्ना दरवाजे से जुडा हुआ है यहाँ पर तीन दरवाजे है जिनमें दो नीचे की ओर जाते हैं वर्तमान समय में इन दो दरवाजो को बन्द कर दिया गया है इसके दाहिनी ओर अनेक अभिलेख उपलब्ध होते है इसके कुछ दूरी चलने पर पूजा के अनेक स्थ उपलब्ध होते है किन्तु इन्हे बन्द कर दिया गया है।

पन्ना दरवाजे के पश्चात मृगधारा नामक स्थान है इस स्थल में नीचे

की ओर दो कमरे बने हुए हुए है और उसके ऊपर छत पडी है अन्दर वाले करमें में एक प्राकृतिक जलधारा प्रवाहित होती है तथा यहीं पर मृगों की सात मूर्तियाँ भी है तथा थोडी दूर चलने पर जो सूखे कण्ड है जिनमें पानी नही है तथा इनके पास लोहे की दो तोपे रखी हुई है।

नीलकण्ठ मन्दिर के पीछे एक ढाल है जहाँ अनेक मूर्तियाँ है। इन मूर्तियों में वाराह की प्रतिमा हैं जो विष्णु के वाराह औतार की प्रतिमा है। इसमें से एक प्रतिमा नीलकण्ठ के मार्ग पर है तथा यहाँ एक नँदिया की मूर्ति भी उपलब्ध होती है जिसके ऊपर शिवलिंग है इस मूर्ति का निर्माण बडे सुन्दर ढ़ग से किया गया है तथा यही पर एक शिव मूर्ति उपलब्ध हुई है जो पंचमुखी महादेव की है इसके समीप कोटि तीर्थ ताल है इस तीर्थ में स्नान करने का धार्मिक महत्व है यह ताल 100 गज लम्बा है तथा इसका निर्माण चट्टान काट कर किया गया है।

कालिंजर अति प्रचीन काल से हिन्दुओं की धार्मिक आस्था का केन्द्र रहा है तथा यह दुर्ग विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी की एक पहाडी में स्थिति है तथा वैदिककाल से इस दुर्ग का धार्मिक महत्व रहा है।

सितासते सरिते यत्र संगमे, तत्राट लुतासो दिवमुत्येन्ति ।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जना सौ अमृत भजन्ते ।।[5]

कालिंजर दुर्ग से जुडी हुई अनेक जनश्रुतियाँ एवं कथाये है एक कथा के अनुसार कालिंजर का निर्माण राजा भरत ने कराया था इनके नाम पर इस देश का नाम भरत पड़ा। एक दूसरे कथा के अनुसार यह भगवान शिव का निवास स्थल था भगवान शिव ने इस स्थल पर गरलपान किया था। इसीलिए इस स्थल का नाम कालिंजर पडा एक अन्य कथा चन्देल नरेशों से जुडी हुई है जिसके अनुसार चन्द्रवर्मा ने इस दुर्ग का निर्माण कराया। पृथ्वीराज रासो में इस कथा का वर्णन मिलता है कि उसमें कालिंजर नरेश परमार्दिदेव को पृथ्वीराज ने सन् 1182 में परास्त किया था उसके पश्चात यह दुर्ग दिल्ली के गुलाम शासक कुतुबुद्दीन के हांथो में सन् 1803 में चला गया कालान्तर में यह दुर्ग धीरे–धीरे नष्ट होता गया अब उसके भग्नावशेष ही शेष है।

जब कोई आदमी कालिंजर दुर्ग को देखने के लिये आता है और बडी शान्तिपूर्वक सातो दरवाजों को पार करके ऊपर पहुँचता है तो उसे यह मालुम पडता कि दुर्गो के सात दरवाजों का नाम अति प्राचीनकाल में नक्षत्रों के नाम से रखा गया था बाद में इन दरवाजे के नाम परिवर्तित कर दिये गये और नये नाम रख दिये गये।

चन्देलो की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यहाँ एक कथा प्रचलित हैं इस वंश की उत्पत्ति हेमवती नाम वृाह्मणकन्या और चन्द्रमा के संयोग से हुई इस वंश के प्रथम पुरूष का नाम चन्द्रवर्मा था नीलकंठ मन्दिर के दरवाजे में एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है जिस अभिलेख में इस वंश की जानकारी उपलब्ध होती है चन्देल नरेश धंगदेव के शासन काल में महमूद गजनवी का आक्रमण यहाँ 1027 के लगभग हुआ तथा वह तीन महीने तक इस स्थल में रहा तदयुगीन नरेश धंगदेव ने 3600 घुड़सवार 45000 पैदल सैनिक और 600 हााथियों के साथ मुकाबला किया है इस युद्ध में कालिंजर नरेश हार गया तथा उसने महमूद गजनवी से सन्धि कर ली तथा यहाँ से वह काफी धन सम्पत्ति लूट ले गया तथा उसने यहाँ के धार्मिक स्थलों को भी नष्ट किया इस दुर्ग के ऊपर हिन्दू और मुशलमानों के कई स्थानों के प्रचीन स्मृति चिन्ह उपलब्ध होते है अनेक मृत्यु स्मारक दूर–दूर तक फैले हुए है वास्तु शिल्प की दृष्टि से यहाँ दुर्लभ मूर्तियाँ उपलब्ध होती है तथा कुछ महलों के अवशेष भी उपलब्ध होते है। कोटि तीर्थ ताल के सन्निकट राजा अमान सिंह का महल है इसे बुन्देली वास्त शिल्प का उत्कृष्ट नमूना माना जा सकता है इस महल के बाहरी भाग में नृत्य करते हुये मायूरों के चित्र बने हुए है तथा अनेक प्रकार की पत्थरों की प्रतिमाएँ भी यहाँ है इन मूर्तियों में नृत्य गणेश नंदी तथा अन्य महिलाओं की मूर्तियों देवी देवताओं की मूर्तियाँ यक्ष–यक्षणियों की मूर्तियाँ, पशु पक्षियों की मूर्तियाँ उपलब्ध है यह सिद्धि करती है कि मूर्ति शिल्प की दृष्टि से यह दुर्ग महत्वपूर्ण है।

कालिंजर दुर्ग में ही कुछ नीचे उतरने पर काल भैरव की एक प्रतिमा उपलब्ध होती है इस प्रतिमा की 18 भुजाएँ है तथा यह प्रतिमा गले में गलमुण्ड माला पहने हुए है तथा बगल में काली देवी की एक प्रतिमा है यहीं पर एक सती स्तम्भी भी है। कहा जाता है इस स्थल में किसी राजपूत महिला ने अपने सम्मान रक्षा के लिये जौहर वृत किया था कहते है शेरशाह आक्रमण के पूर्व यहाँ कीर्ति सिंह चन्देल का राज्य था उसकी पुत्री का नाम दुर्गावती था जिसमें गौंड नरेश दलपतिशाह से विवाह किया था तथा जिसका युद्ध अकबर बादशाह से गौंडवाने में हुआ था वह बहादुरी में रानी झाँसी से किसी भी स्थित में कम नही थी।

औरंगजेब के शासनकाल के समय बुन्देलखाण्ड के छत्रशाल ने इस दुर्ग को जीत लिया था छत्रशाल की मृत्यु सन् 1732 के लगभग हुई तथा छत्रशाल ने अपने राज्य का 1/3 भाग मराठो को दे दिया था किन्तु कालिंजर परिक्षेत्र बुन्देलों के अधिकार में सन् 1812 तक बराबर बना रहा

आज भी कालिंजर का महत्व पवित्र नदी गंगा के समान है। इस क्षेत्र में अनेक ऋषी मुनियों ने सिद्धि प्राप्त कके लिये तपस्या की पहले जब यहाँ कोई यात्री–यात्रा करता था तो उसे अंधेरे में उजाला करने के लिए मसाल का सहारा लेना पड़ता था बाद में लालटेन के माध्यम से इस स्थल की यात्रा सम्भावित हो सकती थी यह दुर्ग अपनी गौरव गाथा स्वतः कर रहा है।[6]

अजय गढ़ दुर्ग :– अजयगढ़ दुर्ग महोबा के दक्षिण पूर्व में कालिंजर के दक्षिण पश्चिम में और खजुराहों के उत्तर पूर्व में स्थित है ये दुर्ग चन्देल राज्य के अर्न्तगत रहा है। तथा प्राचीन काल में यह क्षेत्र चेदि जनपद का एक भाग था इस क्षेत्र का विस्तार पश्चिम में बेतवा नदी तक पूर्व में विन्ध याचल पर्वत श्रेणी तक और उत्तर में यमुना नदी तक तथा दक्षिण में नर्मदा नदी तक फैला था ।[7] अजयगढ़ दुर्ग गिरि दुर्ग श्रेणी में आता है। इसका निर्माण विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी में हुआ है तथा यह भी शैव वासना का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था दुर्ग के ऊपर जाने के लिये दो मार्ग हैं एक रास्ता पूर्व दिशा की ओर जाता है। इस मार्ग से पैदल ही दुर्ग पर चढ़ा जा सकता है दुर्ग पर चढ़ा जा सकता है तथा दूसरा रास्ता उत्तर दिशा से है इस रास्ते से भी पैदल ही दुर्ग पर चढ़ा जा सकता है इस दुर्ग पर चढ़ना अत्यन्त कठिन है ऊपर से देखने पर यहाँ का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है।

अजयगढ़ दुर्ग में प्रवेश के दो द्वार है उत्तरी द्वार का कोई नाम नही है तथा दक्षिण पूर्व द्वार का नाम तरौनी दरवाजा है। यह दरवाजा तरौनी ग्राम होकर जाता है इस द्वार के एक अभिलेख में कालिंजर द्वार के नाम से सम्बोधित किया गया है यह द्वार उत्तर का द्वार है ।[8] उत्तरी द्वार से प्रवेश करने के बाद द्वितीय द्वार के पश्चिम में गंगा यमुना नामक दो जलकुण्ड उपलब्ध होते है इन जल कुण्डों का निर्माण पर्वत तरासकर किया गया है इसी के समीप एक अभिलेख भी है। जिसमें निर्माण कर्ता का नाम लिखा है। ये जलकुण्ड बीर वर्मन देव की राजमहशी, कल्याणी देवी द्वारा बनवायी गयी थी। इस अभिलेख में दुर्ग का नाम नाँदी पुर मिलता है ।[9] यहाँ से आगे बढ़ने पर चट्टानो पर उकेरी गयी अनेक प्रतिमायें उपलब्ध होती है इनमें गणेश, कार्तिकेय, जैन तीर्थो की आसन मूर्तियाँ नंदी को दुग्ध पान कराती माँ एवं शिशु की मूर्तियाँ है। यहाँ पर गणेश की चर्तुभुजी और अष्ठभुजी मूर्तियाँ भी उपलब्ध होती है। कुछ दूर आगे जाने पर दुर्ग का प्रमुख द्वार उपलब्ध होता है। इस द्वार में बडे–बडे दरवाजे लगे हुए हे तथा इसी

के समीप दुर्ग के प्राचीन अभिलेख मिलते है इनमें से एक अभिलेख में तेजल के पुत्र रावत श्री वीर के द्वारा अकाल के समय एक बावली के निर्माण का उल्लेख है कुछ दूर आगे बढ़ने पर दुर्ग के मध्य भाग में एक बहुत बडा तालाब है जो अजयपाल तालाब के नाम से विख्यात है इस तालाब के किनारे एक जैन मन्दिर है यह ध्वस्त अवस्था में है इसका ऊपरी भाग गिर गया है। यहाँ अनेक जैन तीर्थाकंरो की मूर्तियाँ है सरोवर के दूसरी ओर अजयपाल का मन्दिर है इस मन्दिर में शिव नन्दी पार्वती गणेश पंचानन शिव और अजयपाल की मूर्ति है यह मूर्ति वास्तव में विष्णु मूर्ति है।

अजयगढ़ दुर्ग के दक्षिणी क्षोर पर चार आर्कषक मन्दिर है इन मन्दिरों को स्थानीय लोग रंग महल और चन्देली महल के नाम से पुकारते है अब ये ध्वस्त होगये है यहाँ उपलब्ध मूर्तिया खजुराहों की अनुकृति है। इन मन्दिरों में दो मन्दिर विष्णु मन्दिर है एक शिव मन्दिर है और एक राजा परमाल की बैठक है ये सभी स्थल बारहवीं शताब्दी के है तथा इनमें उपलब्ध मूर्तियाँ अत्यन्त सुन्दर और अंलकृत है।

जो मन्दिर यहाँ उपलब्ध होते है उनमें सबसे बड़ा मन्दिर 60 फुट लम्बा और 40 फुट चौडा है। इसका प्रवेश द्वार पश्चिम की ओर से है तथा मन्दिर का ऊपरी भाग गिर गया है इस स्थल पर गंगा जमुना की मूर्तियाँ अराधकों की मूर्तियाँ एवं नृत्य सदा वाद्य यन्त्र बजाते हुए इसी पुरूषो के दृश्य महत्वपूर्ण हैं इसी मन्दिर समूह का दूसरा मन्दिर भी प्रथम मन्दिर जैसा है। तथा तृतीय मन्दिर परमाल ताल के निकट है यह आकार में कुछ छोटा है इसकी लम्बाई 54 फुट तथा चौडाई 36 फुट है इसी के सन्निकट छोटा सा मन्दिर और है जो परमाल बैठकी के नाम से विख्यात है।

अजयगढ़ दुर्ग के दक्षिणी पूर्व में तरौनी दरवाजा है इस दरवाजे का सम्बन्ध तरौनी गाँव से है इसी द्वार के निकट एक पहाडी पर अष्ट शक्ति मूर्तियों का अंकन है इनमें सात आसन मुद्रा में है और एक स्नातक मुद्रा में है यही पर एक अभिलेख भी है। यह अभिलेख 6 फुट 10 इंच लम्बा और 2फुट 3 इंच चौडा है इस अभिलेख में मन्दिर निर्माण कर्ता भोजवर्मन देव के भाडागारपति सुभट का उल्लेख है इस अभिलेख में कायस्थ वशं का इतिहास मिलता है जो चन्देल वशं के आधीन महत्वपूर्ण पदो पर प्रतिष्ठित थे ।[10] इसी अभिलेख के समीप अष्ट शक्तियों के बगल में सुरभि शिव आदि की मूर्तियों का उल्लेख है जिनका निर्माण सुदृढ़ देव की पत्नी देवल देवी ने कराया था। दायीं ओर के अभिलेख में पार्वती वृषभ कृष्ण चौमुण्डा कालिका ईश्वर एवं पार्वती की मूर्तियों के निर्माण का उल्लेख है।[11] यहीं पर जैन

तीर्थकारों की अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध होती है। इसी के सन्निकट एक चतुर्भुज देवी की मूर्ति उपलब्ध होती है इसकी गोद में एक बच्चा है तथा इसके दाहिनी ओर पाँच सुअरों की मूर्तियाँ है तथा इसके बाये ओर आठ सुअर है यह सृष्टि की मूर्ति है।

दुर्ग के उत्तारी पश्चिमी कोने पर भूतेश्वर नामक स्थान है यहाँ पर जाने के लिये अजयपाल मन्दिर से रास्ता जाता है यहाँ पर गुफा के अन्दर शिवलिंग हैं इसके ऊपर दो कुण्ड है यहाँ अनन्तशेषशायी विष्णु की मूर्ति है।

अजयगढ़ दुर्ग कितना प्राचीन है इस बात का उल्लेख हे कि किसी भी ऐतिहासिक ग्रन्थ में नही मिलता फिर भी यह अनुमान लगाया जाता है कि यह दुर्ग कालिंजर दुर्ग के समान ही प्राचीन है इस दुर्ग का निर्माण कनिघांम के अनुसार ईसा की प्रथम शताब्दी में हुआ होगा यही काल अजयगढ दुर्ग का असितित्व माना जा सकता है।[12] किन्तु कुछ लोग इस दुर्ग का निर्माण आठवी और नवी शताब्दी का मानते है। यहाँ जो भी अभिलेख उपलब्ध होते है वे सभी चन्देल कालीन है।[13] उस समय अजयगढ़ दुर्ग का नाम जयपुर दुर्ग एवं जयपुर था।[14]। चन्देलकाल में अजयगढ़ दुर्ग एक महत्वपूर्ण दुर्ग था तथा तदयुगीन युद्ध पद्धति के अनुसार इस दुर्ग का निर्माण कराया गया था।[15] अजयगढ़ दुर्ग में मदन वर्मन त्रैयलोक्य वर्मन, भोजवर्मन, एवं हम्मीर वर्मन के अभिलेख मिलते है। इन अभिलेखों में चन्देल युग का महत्वपूर्ण इतिहास छुपा हुआ है। इन से यह भी ज्ञात होता है कि इस वशं के नरेशो ने अपने यहाँ कयस्थो को महत्वपूर्ण पदो पर नियुक्त किया था सर्वप्रथम श्रीवास्तव शब्द कायस्थ कुल के लिये श्रीवास्तव शब्द का प्रयोग यहीं किया गया है।[16] जब कालिंजर दुर्ग में तुर्क और मुगलों के आक्रमण होते थे उस समय चन्देल शासक सुरक्षा की दृष्टि से यहाँ बस जाते थे आइनके अकबरी के लेखाक अबुल— फजल ने प्रशासनिक दृष्टि से महल का दर्जा दिलाया था।[17] फोर्ट ऑफ इण्डिया के लेखिका के अनुसार अजयगढ़ दुर्ग पर्यटको के लिये प्राकृतिक दृष्टि से अति सुन्दर किन्तु दुर्ग में चढ़ने के लिये उनके लिए एक चुनौती भरा अभियान है दुर्ग के ऊपर से प्राकृतिक सौन्दर्य ऐसा लगता है जैसे किसी ने सौन्दर्य का खजाना प्राप्त कर लिया हो यहाँ अनेक दुर्लभ जीव जन्तु प्राप्त होते थे। जिनका शिकार करने यहाँ अक्सर लोग आया करते थे। इस दुर्ग के ऊपर हजारों की संख्या में भग्नावशेष उपलब्ध होते है जो दुर्ग की महानता को उजागर करते है।[18]

<u>3 रसिन दुर्ग :—</u> रसिन दुर्ग अतर्रा तहशील के रसिन गाँव मे स्थित है, यह बाँदा से लगभग 48किलो मीटर दूर है,तथा बाँदा कर्बी मार्ग पर यह

दूर्ग बदौसा के सन्निकट रौली कल्याणपुर मार्ग पर स्थित है। चन्देलो के युग मे यह एक बडा नगर था क्योकि यहाँ पर अनेक भवनो के भग्नावशेष उपलब्ध होते है,तथा अनेक तलाब भी यहाँ थे कहा जाता है कि रसिन कभी राजवंशियों की आवास भूमि थी। जो मौलिक रूप से चन्देल थे इस नगर का पुराना नाम राजवंशीय था। यहाँ के मूल निवासियों का कथन है कि रघुवंशी राजपूत बुन्देलों के शासनकाल में यहाँ के जागीरदार थे जो प्रशासनिक दृष्टि से पूर्ण स्वतन्त्र थे।

रसिन में एक प्राचीन दुर्ग के भग्नावशेष उपलब्ध होते है इस दुर्ग का निर्माण ईट और पत्थरों से हुआ था प्राचीनकाल में प्रशासनिक दृष्टि से यह महत्वपूर्ण स्थल था इसके पश्चिमोत्तर किनारे पर चन्देलकालीन मन्दिर के अवशेष उपलब्ध होते है। तथा इसी के समीप चन्देलकालीन कूप भी है पूरब की तरफ एक पहार्डी है जिसमें चढ़ने का रास्ता गाँव के उत्तर पूर्व से है यहाँ पर चौकोर पत्थर में एक स्मारक बना हुआ है जिस बालन बाबा का स्मारक कहते है। इनका अस्तितित्व 1889 के लगभग था इसी पहाडी के ऊपर एक छोटा सा सरोवर उपलब्ध होता है तथा इसी के समीप एक छोटा सा गाँव था तथा इसी पश्चिमी सिरे में चन्देल कालीन दुर्ग था तथा पहाडी पर चढ़ने के पश्चात दुर्ग में प्रवेश करने के लिए दूसरा द्वार उपलब्ध होता है। यहीं से 200 मीटर की दूरी पर एक तालाब उपलब्ध होता है। यह तालाब चट्टान काटकर बनाया गया है तथा इसी तालाब के समीप चन्दा महेश्वरी का एक मन्दिर उपलब्ध होता है जिसमें विक्रमी संवत 1466 का एक अभिलेख भी है इसके चारों ओर ऊबड–खाबड मैदान है और पूर्व की ओर डाल है यही पर एक सूखा कुआँ भी है तथा दुर्ग द्वार के अवशेष भी है।

रसिन में ही थोडी दूर एक दूसरी पहाडी पर रतन अहील का एक स्मारक है रतन अहील इस पहाडी में चढ़कर प्रतिदिन यमुना नदी के दर्शन किया करता था यहाँ के रघुवंश राजा को रतन अहील पर यह सन्देह हुआ कि वह पहाडी पर चढ़कर उसकी महल की औरतो को देखा करता था। उस अहील को वहाँ से ढकेल दिया गया अहील निर्दोष था इसीलिए उसके निर्धन का दुख गाँव वालो को हआ और गाँव वालो ने उसका स्मारक उसी पहाडी पर बना दिया मुगलशासनकाल में प्रशसनिक दृष्टि से रसिन का महत्वपूर्ण स्थान था और परगना का दर्जा मिला हुआ था दसी स्थल पर बुन्देल सैनिक का युद्ध मुगलों से हुआ था सन् 1781 में रघुवंशी राजपूत राजा घुमान सिंह के नियन्त्रण में और उनके शासन में यहाँ के जागीरदार थे बाद में यह गाँव और दुर्ग उजाड हो गया दुर्ग के नीचे अधिक ताल नाम का एक

सरोवर है इसी से लगा हुआ है चन्देलकालीन देवी मन्दिर है।[19]

4 मडफा दुर्ग :– मडफा दुर्ग भी चन्देल कालीन दुर्ग है, यह दुर्ग चित्रकूट के सन्निकट है, भरतकूप मार्ग पर बरिया मानपुर के सन्निकट है, यह दुर्ग एक पहाडी पर है चन्देल शासन काल में इस दुर्ग का महत्वपूर्ण स्थान था तथा दुर्ग के भग्नावशेष यहाँ आज भी उपलब्ध होते है सुरक्षा की दृष्टि से इस दुर्ग का विशेष महत्व था तथा यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य भी सराहनीय है। यह दुर्ग कालिंजर से 26 कि0मी0 दूर उत्तर पूर्व में है यहाँ तक पहुँचने के लिए कच्चा रास्ता है तथा इसके थोडी दूर बघेलाबारी गाँव है इस दुर्ग में चढ़ने के लिए तीन रास्ते है तथा मार्ग उत्तर पूर्व से मानपुर गाँव से है तथा दूसरा मार्ग दक्षिण पूर्व से सवारियाँ गाँव से है तथा मार्ग कुरहन गाँव से है तथा ये मार्ग दक्षिण पश्चिम में है अब इस दुर्ग में प्रवेश करने के लिए एक ही द्वार बचा है। इस द्वार को हाथी दरवाजा के नाम से पुकारा जाता है यह द्वार लाल रंग के बलुवे पत्थर से निर्मित है चन्देलों के दुर्ग और मन्दिर समस्त स्थलो पर इन्ही पत्थरों से निर्मित हुए थे यहाँ से कुछ दूरी पर खाभरिया के सन्निकट चन्देलकालीन दो मन्दिर उपलब्ध होते है। तथा यहीं पर एक सरोवर है और उसके ऊपर छत है जो चार स्तम्भो से सधी हुई है यह दुर्ग समुद्र तल से 378 मी0 की ऊचाई पर है, इसी दुर्ग के पश्चिमी किनारे पर एक अन्य तालाब है इसका निर्माण चट्टान काटकर किया गया है तथा कुरहन दरवाजे के सन्निकट कुछ चन्देलकालीन मन्दिर भी है इस दुर्ग की खोज अंग्रेज इतिहासकार ने 18वीं शताब्दी में की थी और इसे मडफा नाम से प्रदान किया था इस दुर्ग में कालान्तर में बघेलों और बुन्देला नरेशों का राज्य रहा यहाँ का अन्तिम शासक हरवंश राय था जिसका पतन चचरिया युद्ध के पश्चात हुआ यह युद्ध सन् 1780 में बाँदा के राजा और पन्ना के राजा के मध्य हुआ सन् 1804 में ब्रिटिश सैनिकों ने इसे अपने अधिकार में ले लिया इस दुर्ग के चारो ओर जंगल है।

इस दुर्ग में अनेक दर्शनीय स्थल है हाथी दरवाजे के सन्निकट भगवान शिव का एक विशालकाय मन्दिर है जिसमें भगवान शिव की विशाल मूर्ति है तथा उनके अनेक भुजाये है तथा उन भुजाओं में अनेक प्राकर अस्त्र–शस्त्र भी है तथा वे गले में नरमुण्डो की माला पहने हुए है थोडी दूर चलने पर एक सरोवर उपलब्ध होता है जिसकी बनावट कालिंजर के स्वर्गारोहण ताल जैसी है तथा इसी के बगल में एक चन्देल कालीन मन्दिर है इसमें कोई प्रतिमा नही है थोडी दूर चलने पर दो अन्य मन्दिर उपलब्ध होते है ये दोनो मन्दिर जैन धर्म से सम्बन्धित है इन मन्दिरों के समीप जैन तीर्थाकरों की

सरोवर है इसी से लगा हुआ है चन्देलकालीन देवी मन्दिर है।[19]

4 मडफा दुर्ग :— मडफा दुर्ग भी चन्देल कालीन दुर्ग है, यह दुर्ग चित्रकूट के सन्निकट है, भरतकूप मार्ग पर बरिया मानपुर के सन्निकट है, यह दुर्ग एक पहाडी पर है चन्देल शासन काल में इस दुर्ग का महत्वपूर्ण स्थान था तथा दुर्ग के भग्नावशेष यहाँ आज भी उपलब्ध होते है सुरक्षा की दृष्टि से इस दुर्ग का विशेष महत्व था तथा यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य भी सराहनीय है। यह दुर्ग कालिंजर से 26 कि0मी0 दूर उत्तर पूर्व में है यहाँ तक पहुँचने के लिए कच्चा रास्ता है तथा इसके थोडी दूर बघेलाबारी गाँव है इस दुर्ग में चढ़ने के लिए तीन रास्ते है तथा मार्ग उत्तर पूर्व से मानपुर गाँव से है तथा दूसरा मार्ग दक्षिण पूर्व से सवारियाँ गाँव से है तथा मार्ग कुरहन गाँव से है तथा ये मार्ग दक्षिण पश्चिम में है अब इस दुर्ग में प्रवेश करने के लिए एक ही द्वार बचा है। इस द्वार को हाथी दरवाजा के नाम से पुकारा जाता है यह द्वार लाल रंग के बलुवे पत्थर से निर्मित है चन्देलों के दुर्ग और मन्दिर समस्त स्थलो पर इन्ही पत्थरों से निर्मित हुए थे यहाँ से कुछ दूरी पर खभरिया के सन्निकट चन्देलकालीन दो मन्दिर उपलब्ध होते है। तथा यहीं पर एक सरोवर है और उसके ऊपर छत है जो चार स्तम्भो से सधी हुई है यह दुर्ग समुद्र तल से 378 मी0 की ऊचाई पर है, इसी दुर्ग के पश्चिमी किनारे पर एक अन्य तालाब है इसका निर्माण चट्टान काटकर किया गया है तथा कुरहन दरवाजे के सन्निकट कुछ चन्देलकालीन मन्दिर भी है इस दुर्ग की खोज अंग्रेज इतिहासकार ने 18वीं शताब्दी में की थी और इसे मडफा नाम से प्रदान किया था इस दुर्ग में कालान्तर में बघेलों और बुन्देला नरेशों का राज्य रहा यहाँ का अन्तिम शासक हरवंश राय था जिसका पतन चचरिया युद्ध के पश्चात हुआ यह युद्ध सन् 1780 में बाँदा के राजा और पन्ना के राजा के मध्य हुआ सन् 1804 में ब्रिटिश सैनिकों ने इसे अपने अधिकार में ले लिया इस दुर्ग के चारो ओर जंगल है।

इस दुर्ग में अनेक दर्शनीय स्थल है हाथी दरवाजे के सन्निकट भगवान शिव का एक विशालकाय मन्दिर है जिसमें भगवान शिव की विशाल मूर्ति है तथा उनके अनेक भुजाये है तथा उन भुजाओं में अनेक प्राकर अस्त्र–शस्त्र भी है तथा वे गले में नरमुण्डो की माला पहने हुए है थोडी दूर चलने पर एक सरोवर उपलब्ध होता है जिसकी बनावट कालिंजर के स्वर्गारोहण ताल जैसी है तथा इसी के बगल में एक चन्देल कालीन मन्दिर है इसमें कोई प्रतिमा नही है थोडी दूर चलने पर दो अन्य मन्दिर उपलब्ध होते है ये दोनो मन्दिर जैन धर्म से सम्बन्धित है इन मन्दिरों के समीप जैन तीर्थाकरों की

अनेक मूर्तियाँ है। यही से थोडी दूरी पर अनेक छोटे-छोटे मन्दिर उपलब्ध होते है इन मन्दिरों को यहाँ के लोग बारादरी के नाम से पुकारते है ये मन्दिर पूरी तरह सुरक्षित नही है यहीं से थोडी दूर चलने पर दुर्ग से नीचे उतरने के लिए सीढ़िया लगी हुई है सीढ़ियों के नीचे गौरी शंकर गुफा नामक एक स्थान है यहाँ अनेक अर्ध निर्मित मूर्तियाँ है तथा साधू सन्तो की एक प्राकृतिक गुफा भी है।

इतिहास के साक्ष्यों के अनुसार यह स्थल माण्डव ऋषि की तपस्थली थी तथा यही पर शकुन्तला ने दुश्यन्त के संयोग से अपने पुत्र भरत को जन्म दिया था यह स्थली कर्म कण्व ऋषि, यवन ऋषि, चरक ऋषि, और महा अर्थ वर्ण की कर्म स्थली रही है महाअर्धवर्ण व्यास के ससुर थे तथा इनकी पत्री का नाम वाटिका था जो व्यास की पत्नी थी जब इस क्षेत्र में बघेलों का शासन स्थापित हुआ उस समय यह बघेल नरेश ब्याघ्र देव की राजधानी रही रामचन्द्र बघेल के शासनकाल तक यह क्षेत्र बघेलों के शासन के अर्न्तगत रहा बाद में रामचन्द्र बघेल ने इस क्षेत्र को मुगल बादशाह अकबर को दे दिया। सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन और राजा बीरबल पहले रामचन्द्र बघेल के राज्य में भी मडफा में निवास किया करते थे यह दुर्ग वास्तव में सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण दुर्ग था जो विभिन्न नरेशों कके हाथो में रहा।[20]

5 शेरपुर सेवडा दुर्ग :- शेरपुर सेवडा भी एक प्राचीन दुर्ग है इसका महत्व अति प्राचीनलकाल से है महाभारतकाल में यह चेदि देश की राजधानी थी तथा इसका प्राचीन नाम शुक्ति मती नगरी था तथा यहाँ के नरेश का नाम उपरिचरि वशु था तथा इनकी पत्नी का नाम गिरिका था इनका सम्बन्ध दासराज की पुत्री अत्रिका से हुआ था इससे सत्यवती नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई किन्तु कालान्तर में चेदि देश की राजधानी शुक्ति मती नगरी शेरपुर सेवडा के नाम से विख्यात हुई यह स्थल बांदा जनपद से 24 किलोमीटर दूर केन नदी के तट पर स्थित है। तथा यहाँ पर एक दुर्ग निर्मित था जो वर्तमान समय में नष्ट हो चुका है इसी के समीप एक छोटी सी पहाडी है जिसे खत्री पहाड के नाम से जाना जाता है पहाडी की ऊँचाई समुद्र तल से 259 मी0 है इसके ऊपरी भाग में एक छोटा देवी मन्दिर बना हुआ है इसे अंगलेश्वरी देवी का मन्दिर कहा जाता है सन 1881 तक शेरपुर सेवडा बाँदा जनपद का महत्वपूर्ण परगना रहा हैं तथा यह तहसील का मुख्यालय भी रहा यह कहा जाता है कि सेवडा एक समय पूर्ण विकसित नगर था इस नगर की स्थापना पिथौरा नरेश ने की थी अकबर के

शासनकाल में यह कालिंजर सरकार का एक परगना था तथा यह क्षेत्र इलाहाबाद सूबे से सम्बन्धित तथा मुगलकाल में सेना का मुख्यालय कालिंजर में था और प्रशासनिक कार्यालय सेवडा में था कहते है कि यह नगर इतना विशाल था कि इस नगर में 700 मजिस्दे थी और 900 कुआँ थे औरंगजेब के समय में सेवडा का पतन हुआ खानजहान लोदी यहाँ किसी कार्यवाही के लिये आया था। उसने इस क्षेत्र में सन् 1622 में आक्रमण किया था उसके बाद भी यह क्षेत्र मुगलो के प्रशासनिक केन्द्र के रूप में बना रहा सन् 1727 में मुहम्मद खाँ बंगस ने पुनः आक्रमण करके इसे अपने अधिकार में ले लिया था इस समय यह बुन्देलों के अधिकार में था इसके पश्चात छत्रशाल के द्वितीय पुत्र जगतराय के पुत्र कीरत सिंह को जागीर के रूप में प्रदान किया गया इसके पश्चात प्रशासनिक मुख्यालय बाँदा स्थानान्तरित कर दिया गया यही एक दूसरी पहाडी पर दुर्ग के अवशेष उपलब्ध होते है कहते है कि पाण्डओं ने यहा कुछ समय के लिये अज्ञातवास लिया था और महात्मा बुद्ध भी दक्षिण दिशा को जाने के लिये यहाँ आये थे यह क्षेत्र नल और दमयन्ती की कथा से जुडा हुआ है।[21]

पहले यह दुर्ग प्राचीर में स्थित था किन्तु अब इस दुर्ग का परिकोटा नष्ट हो गया है इस दुर्ग में सन् 1795 में बाँदा के प्रथम नवाब अली बहादुर और लक्ष्मण सिंह दउआ से युद्ध हुआ था इस युद्ध में अली बहादुर की विजय हुई थी। इनकी विजय के पश्चात मुख्यालय बाँदा आ गया और धीरे–धीरे यह नगर उजाड हो गया।

दुर्ग अवशेष :– यह दुर्ग एक पहाडी पर था दुर्ग का ब्यहगंम दृश्य सेवडा के नीचे केन नदी के मवई घाट से देखा जा सकता है निर्माण शैली के दृष्टि से यह दुर्ग चन्देल कालीन है जो प्राचीन प्रतिमाये इस दुर्ग में उपलब्ध हुई है वे सभी चन्देलकालीन है। इस दुर्ग को कुछ निर्माण कार्य सल्तनत और मुगलकाल में हुआ पहले यह दुर्ग प्राचीर में स्थित था और दुर्ग के ऊपर जल की आपूर्ति केननदी से होती थी दुर्ग के ऊपर उपलब्ध इमारते वास्तुशिल्प की दृष्टि से मिश्रित वास्तुशिल्प के उत्तम नमूने हैं इस क्षेत्र में निम्न स्थल उपलब्ध होते है।

अंगलेश्वरी देवी का मन्दिर :– मन्दिर सेवडा की एक पहाडी पर निर्मित है तथा यहाँ पहुँचने के लिये सीढ़ियाँ बनी हुई है मन्दिर में उपलब्ध मूर्तियाँ अत्यन्त प्राचीन है यहाँ एक चट्टान ऐसी भी है जो चटक कर दो टुकडो में विभाजित हो गयी है। उसकी दरार में झाँकने से यह प्रतीत होता है कि उस चट्टान में अनेक मूर्तियाँ बनी हुई है।

बीहड एवं जलाशय :— खत्री पहाड के नीचे केन नदी के पथ पर थोडी दूर चलने पर एक जलाशय प्राप्त होता है जो प्राचीन बीहड हैं इसके नीचे उतरने के लिये जल स्तर तक सीढ़िया बनी है यह बीहड मुगलकालीन है।

6 रनगढ़ दुर्ग :— रनगढ़ दुर्ग ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत होता है यद्यपि किसी भी ऐतिहासिक ग्रन्थ में इस दुर्ग के सन्दर्भ में यह उल्लेख प्राप्त नही होता कि इस दुर्ग का निर्माता कौन था तथा किस शासन काल में इस दुर्ग का निर्माण हुआ रनगढ़ का किला बाँदा जनपद की नरैनी तहसील से मऊ रिसौरा गाँव की सीमा से काफी दूर चलकर केन नदी के मध्य एक ऊँची पहाडी पर बना हुआ है। इसके चारों ओर केन नदी की धाराये प्रवाहित होती है इसलिये दुर्ग की स्थित एक टापू जैसी है। यह दुर्ग उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश की सीमा भी तय करता है इस दुर्ग में पहुँचने के लिए कोई निश्चित मार्ग नही है दुर्ग के सन्निकट घनघोर जंगल है तथा दुर्ग की निर्माण शैली झाँसी दुर्ग जैसे है।[22]

इस दुर्ग में निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है।

1—दुर्ग अवशेष :— यह दुर्ग एक पहाडी पर निर्मित हैं तथा चारो तरफ प्राचीरों से धिरा हुआ है तथा पहाडी के नीचे चारो तरफ केन नदी प्रवाहित होती है इस दुर्ग में पहुँचने के लिये दो मुख्य द्वार है और दुश्मन से सुरक्षा के लिये चार गुप्त दरवाजे भी है जब कोई सबल आक्रमणकारी दुर्ग पर आक्रमण करता था और दुर्ग की सेना कमजोर पड जाती थी उस समय सैनिक चोर अथवा गुप्त दरवाजे से भागकर अपने प्राणों की रक्षा करते थे।

सुरक्षा चौकी :— इस दुर्ग के समीप एक सुरक्षा चौकी थी इस सुरक्षा चौकी से सैनिक दूर से आने वाले शत्रुओं को देख लिया करते थे और किलेदार को इसकी सूचना दे देते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन युग में इस क्षेत्र में नावों द्वारा व्यापार होता था नाव द्वारा ही कर वसूलने का कार्य भी सुरक्षा चौकी के लोग किया करते थे।

बारदरी अथवा राजा की बैठक :— इस दुर्ग के समीप एक ऐसा स्थल है जिसमें 12 दरवाजे है ऐसा मालूम होता है कि दुर्ग का शासक इस महत्वपूर्ण स्थल पर समस्याओं को हल करने के लिये दुर्ग के अन्य अधिकारियों के साथ विचार विमर्श किया करता था। यहाँ समय पर दरबार लगा करता था।

गौरइया दाई मन्दिर :— रनगढ़ दुर्ग में ही एक विशालकाय देवी मन्दिर प्राप्त होता है। वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह मन्दिर अति प्राचीन मालुम

होता है। इस मन्दिर की मूर्ति को मूर्ति चोरों ने गायब कर दी है। यह भी सम्भावना है कि जब इस क्षेत्र में सुल्तानों एवं मुगलों का शासन स्थापित हुआ हो तब मन्दिर की मूर्ति इन्ही मुसलमान शासकों द्वारा खण्डित कर दी गई हो। इस दुर्ग में सन् 1727 में मुगल सूबेदार मुहम्मद बंगस ने अधिकार कर लिया था। सम्भव है कि यह मूर्ति शायद उसी के द्वारा गायब कर दी गई ।

रंग महल :– दुर्ग के ऊपर रंग महल के अवशेष उपलब्ध हुए है। यह रंग महल मध्यकाल का प्रतीत होता है इस महल में कई एक आवासीय कक्ष स्नानघर, रसोईघर, श्रंगार घर, शयन कक्ष, और दीप जलाने के लिये अनेक आले बने हुए है।[23]

7–तरहुआ दुर्ग :– तरहुआ दुर्ग कर्वी नगर के समीप तरहुआ गाँव में निर्मित है यह अत्यन्त प्राचीन दुर्ग है तथा इस दुर्ग का उल्लेख अनेक पौराणिक ग्रन्थों में मिलता है। प्राचीनकाल में इस दुर्ग का नाम दालमपुर था तथा यह एक पूर्ण विकसित नगर था किन्तु इस नगर के कोई भी पुरावशेष यहाँ उपलब्ध नही होते एक जनश्रुति के अनुसार इस नगर का प्राचीन नाम इच्छकपुर था सन् 1625 में बसन्त रायसुर की ने इस दुर्ग का निर्माण कराया था यह गहोरा का शासक था इसके समय के अनेक ऐतिहासिक स्थल नीचे की ओर उपलब्ध होते है जिससे यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में पैश्वनी नदी के तट पर एक बडी बस्ती थी कालान्तर में रीवा नरेश का इस दुर्ग का अधिकार होगया और कुछ साल उपरान्त रीवा नरेश और सुरकी वंश के राजपूतो के मध्य बटवारा हो गया दोनो को 12–12 गाँव बटवारा में मिले आगे चलकर यह क्षेत्र गहोरा के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

निचली भूमि होने के कारण यह तरहुआ के नाम से विख्यात हुआ तथा अकबर के शासनकाल में यह महत्वपूर्ण प्रशासनिक मुख्यालय भाट गहोरा के नाम से विख्यात था मुहम्मद बंगस के समय यह क्षेत्र छत्रशाल के अधिकार में आ गया था तथा इसकी देखरेख पन्ना के राजा किया करते थे बाद में पन्ना नरेश हृदयशाह ने रहीम खाँ को दे दिया था जिसने तरहुआ को अपना निवास स्थल बनाया तथा ब्रिट्रिश शासन के पहले तक यह दुर्ग उसी के अधिकार में रहा बाद में यह दुर्ग अंग्रेजों के अधिकार में आ गया पहले यहाँ तहसील का मुख्यालय था। किन्तु बाद में यह तहसील अन्यत्र चली गयी आज भी इस दुर्ग में अनेक गुप्त मार्ग है इस दुर्ग में देखने के लिये महत्वपूर्ण स्थल रामबाग है जो पैश्वनी के तट तक फैला हुआ है इसका निर्माण सन् 1732 में हुआ था इस स्थल में भगवान राम की एक प्रतिमा भी

है तथा दूसरा स्थल वह स्थल है जहाँ अनेक मस्जिदे बनी हुई है और उसी के सन्निकट एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है जिसमें इमाम का नाम लिखा हुआ है उसका नाम सरकारहम बहादुर था वह गौरत शाह बादशाह का समकालीन था उपलब्ध अभिलेख 1181 हिजरी सम्बत का है।[24]

8 भूरागढ़ दुर्ग :— भूरागढ़ दुर्ग बाँदा शहर के केन नदी के तट पर स्थित है। पहले यह दुर्ग महत्वपूर्ण प्रशासनिक स्थल था वर्तमान समय में इसका विध्वंश हो चुका है महाराजा छत्रशाल के शासनकाल से लेकर 1857 की क्रान्ति तक इस दुर्ग का ऐतिहासिक महत्व रहा बाँदा का यह दुर्ग बाँदा महोबा मार्ग पर स्थिति है। पहले यहाँ कोल भीलो की बस्तियाँ थी इसके स्मृति चिन्ह आज भी यहाँ उपलब्ध है। मुगलों के शासनकाल में यह क्षेत्र मुगलों के आधीन था। औरंगजेब के शासनकाल में पन्ना महराज छत्रशाल ने इस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया छत्रशाल की मृत्यु के पश्चात सन् 1740 में इस दुर्ग का निर्माण जगतराय के पुत्र कीर्ति सिंह ने कराया था उसी समय से बुन्देलों के अनेक स्मृति चिन्ह दुर्ग और उसके आस–पास अनेक स्थलों पर उपलब्ध होते है ये स्थल राजा बाग दउआ के महल और गौरहार महल के नाम से विख्यात है। सन् 1787 से 90 के मध्य बाँदा के प्रथम नवाब अली बहादुर भूरागढ़ के शासक के संरक्षक नोने अर्जुन सिंह के मध्य युद्ध हुआ इस युद्ध में नोने अर्जुन सिंह की पराजय हुई तथा अली बहादुर प्रथम की विजय हुई इस युद्ध में अली बहादुर का साथ हिम्मत बहादुर गोसाई ने दिया था।

भूरागढ़ चूँकि भूरे रंग के बलुवे पत्थरों से निर्मित हुआ है इसलिए इसका नाम भूरागढ़ पड़ा 17वी शताब्दी के पश्चात यह दुर्ग राजा गुमान सिंह के निमंन्त्रण में रहा स्थानीय लोगो का कथन है कि इस दुर्ग में असंख्य धन गड़ा हुआ है। सरकार ने इन अफवाहों से प्रवाहित होकर यहाँ उत्खनन कार्य कराया था किन्तु कुछ भी उपलब्ध नही हुआ बल्कि दुर्ग की प्राचीर उत्खानन के दौरान नष्ट हो गयी थी सन् 1857 में इस दुर्ग के सन्निकट बागी सैनिकों का मुकाबला अंग्रेज सेनापति व्हिटलक से हुआ था इस युद्ध मे 800 व्यक्ति मारे गये थे। तथा अनेक व्यक्तियों को फाँसी दी गयी थी इसके पश्चात बाँदा के अन्तिम नवाब अली बहादुर सानी को परिवार सहित निकाल दिया गया था। 1857 की क्रान्ति के पश्चात यह दुर्ग अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। इस दुर्ग में निम्नलिखित दर्शनीय स्थल भी हैं।

नटबली की मजार :— भूरागढ़ दुर्ग का यह सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थल है इस स्थल के सन्दर्भ में यह जनश्रुति ऐसी है कि एक नट का प्रेम

सम्बन्ध यहाँ नरेश की राजकुमारी से था राजा को जब इस बात का पता लगा तो नरेश ने नट को मारने की एक योजना बनायी और नट से कहा कि यदि वह कच्चे धागे पर केन नदी को पार करके दिखलाये तो वह अपनी कन्या का विवाह तुम्हारे साथ कर देगा राजा ने देखा कि नट नदी पार कर रहा है तो उसने उस कच्चे सूत को कटवा दिया नट जिस स्थल पर गिरा उसी स्थल पर उसकी समाधि बना दी गयी मकर संक्रान्ति के समय इस स्थल पर मेला लगता है।

प्रवेश द्वार :– भूरागढ़ दुर्ग का प्रवेश द्वार आज भी सुरक्षित स्थित में है दुर्ग में प्रवेश के पश्चात एक बडा मैदान उपलब्ध होता है द्वार के दाहिने ओर ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ बनी हुई है इसी स्थान पर यहाँ निवास करने वाले नागा बाबा की समाधि बनी हुई है।

रंग महल :– दुर्ग के मैदान में दुर्ग से लगे हुये रंग महल के अवशेष उपलब्ध होते है कहते है कि इस स्थल में तदयुगीन नरेशो की रानियाँ रहा करती थी अब यह स्थल भग्न अवस्था में है।

बावली :– दुर्ग से कुछ हटकर रेलवे लाइन के सन्निकट रानियों के स्नान करने के लिये एक बावली थी जिसमें उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई और रंग महल से वहाँ पहुँचने के लिए गुप्त मार्ग है।[25]

कल्याणगढ़ दुर्ग :– कर्वी जनपद में मानिकपुर के सन्निकट कल्याणगढ़ दुर्ग उपलब्ध होता है यह दुर्ग मानिकपुर रीवाँ मार्ग पर स्थित है। और यही से धार कुण्डी चित्रघाटी जाने का मार्ग भी है यहाँ प्राचीन दुर्ग के अवशेष उपलब्ध होते है पहले यह क्षेत्र रीवाँ के बघेल नरेशों के राज्य में था बाद में यह छत्रशाल के अधिकार में आ गया इस स्थल में दुर्ग के अवशेष स्थल उपलब्ध होते है तथा दुर्ग के सन्निकट कल्याणगढ़ गाँव भी बसा हुआ है इस स्थान पर मुहम्मद बंगस की सेनाओं का युद्ध छत्रशाल की सेना से हुआ था यह फरूक्काबाद के नाम से प्रसिद्ध था तथा इलाहाबाद तथा कडा का सूबेदार था अब इस दुर्ग की प्राचीर ध्वस्त हो गयी है यहाँ निम्नलिखित स्थल दर्शनीय उपलब्ध होते है।

1–.दुर्ग स्थल :– इस दुर्ग में सैनिकों के रहने के लिये और सामन्तों के रहने के लिये अनेक महल बने हुये थे अब ये महल ध्वस्त हो चुके है।

2–.जगदीश मन्दिर :– यह मन्दिर भी मध्ययुगीन मन्दिर है जिसका निर्माण बुन्देला अथवा बघेला शासकों ने कराया था इस स्थल पर धातु प्रतिमाएँ रखी हुई है और अनेक पुजारी पूजा के लिये उपस्थित रहते है।

3.जलाशय :— इस दुर्ग के समीप अनेक कूप और बीहड बने हुये है जिनमें जलभरा रहता है। तथा इन जलाशयों से यहाँ के ग्राम निवासी भी लाभन्वित होते है वर्तमान समय में यह दुर्ग डकैतों की शरण स्थली है। बिना समुचित सुरक्षा व्यवस्था के इस दुर्ग में प्रवेश नही किया जा सकता।[26]

9 महोबा दुर्ग :— महोबा जनपद में एक सुप्रसिद्ध दुर्ग उपलब्ध होता है यह दुर्ग चन्देल कालीन है इस दुर्ग में कई अभिलेख भी उपलब्ध होते है इन अभिलेखो में चन्देलवशांवली नन्नुक देव से लेकर परमार्दिदेव तक की उपलब्धि होती है अभी तक यह सुनिश्चित नही हो पाया कि इस दुर्ग का वास्तविक निर्माणकर्ता कौन था यह दुर्ग मानिकपुर झाँसी मार्ग पर महोबा मुख्यालय से कुछ दूर विजय सागर से सन्निकट एक पहाडी पर स्थित है इस दुर्ग में प्रवेश कने के लिये अनेक द्वार है।

महोबा प्रारम्भ से ही सुप्रसिद्ध धार्मिक और ऐतिहासिक स्थल है ऐसा विश्वास किया जाता है कि त्रेतायुग में इसका नाम ''केपपुर'' था और द्वापर युग में इसका नाम ''पाटनपुर'' था वर्तमान समय में इसका नाम महोबा है कहा जाता है कि यहाँ पर चन्देलवंश के आदि परूष चन्द्रवर्मा के लिये एक महोत्सव का आयोजन किया गया था। इसलिए इसका पूर्व नाम महोत्सव नगर था जो बाद में बिगडकर महोबा बना चन्द्रवर्मा का असितित्व आठवी शताब्दी के प्रारम्भ में था और इन्ही को चन्देलवंश का संस्थापक माना जाता है चन्द्रवरदायी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो के महोबखण्ड में इसका नाम महोत्सव नगर ही माना है यह चन्देलों की प्रशासनिक राजधानी थी कुछ समय के लिये चन्देलों की राजधानी खजुराहों में रही इस वंश के पाँचवे नरेश राहिल ने राहिल सागर नाम का एक तालाब निर्मित कराया यह महोबा से तीन किलोमीटर दूर दक्षिण पश्चिम में है कीर्तिवर्मन और मदन वर्मन इस वंश के सुप्रसिद्ध शासक थे इन्होने महोबा में दो प्रसद्धि झीलों का निर्माण कराया था ये झीले कीरत सागर और मदन सागर के नाम से विख्यात है।

इस वंश का अन्तिम नरेश परमार्दिदेव इनका शासन 1202 तक रहा लगभग 1182 ई0 में दिल्ली नरेश पृथ्वीराज ने महोबा पर आक्रमण किया था इस युद्ध में आल्हा और ऊदल ने विशेष बहादुरी का परिचय दिया था इस युद्ध में ऊदल पराजित हुआ और मार डाला गया और आल्हा घायल हो गया युद्ध में परमार्दिदेव पराजित हुआ और महोबा पर पृथ्वीराज का अधिकार हो गया।

महोबा दुर्ग के ऊपर और नीचे अनेक महत्वपूर्ण स्थल उपलब्ध होते है

जिसने इस स्थल की प्रसिद्ध सर्वत्र है। मुगलशासन काल में भी महोबा दुर्ग का महत्व बना रहा यहाँ जो भी स्थल उपलब्ध होते है वे सभी पुरातत्विक ऐतिहासिक और धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है इस शहर में अनेक सरोवर है जो यहाँ के निवासियों की जल आपूर्ति किया करते थें।

दिसरापुर सागर :– यह तालाब नगर के उत्तरपूर्व में है तथा एक पहाडी से लगा हुआ है कहते है कि सरोवर के नजदीक आल्हा–ऊदल के रहने के महल थें।

राहिल सागर :– इस नगर के दक्षिणी पश्चिमी किनारे पर राहिल सागर नामक तालाब है इस तालाब का निर्माण चन्देल नरेश राहिल ने 890 से लेकर 910 ई0 के मध्य कराया महोबा का यह प्राचीनतम सरोवर है। कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर यहाँ एक मेला लगता है तथा इसी के सन्निकट पवित्र सूरज कुण्ड भी है तथा इसी के समीप राहिल सागर से लगा हुआ एक मन्दिर भी है जहाँ भगवान शिव की प्रतिमा है तथा इसी के सन्निकट एक सूर्य प्रतिमा है यह प्रतिमा लगभग 4 फुट की है और अराधना मुद्रा में है।

विजयसागर :– विजय सागर झील का निर्माण विजय वर्मन सन् 1035 से लेकर सन् 1060 के लगभग कराया था यह सरोवर कानपुर सागर मार्ग पर स्थित है यहाँ पर विभिन्न प्रकार के वृक्ष उपलब्ध होते है तथा इसी के सन्निकट पुरानी गढ़ी की दीवाले भी उपलब्ध होती है इस गढ़ी का निर्माण मोहन सिंह बुन्देला ने 18वीं शताब्दी में कराया था।

कीरत सागर :– यह एक मध्यम श्रेणी का सरोवर है तथा महोबा के पश्चिमी किनारे पर स्थित है इस सरोवर के तट सुप्रसिद्ध कजली मेला लगता है कहते है कि इसी सरोवर के तट पर पृथ्वीराज और पमार्दिदेव का युद्ध हुआ था यही पर थोडी दूर पर एक पहाडी पर दो मजारे बनी हुई है ये मजारे ताला सदयद और जलान खान की है तथा इसी के सन्निकट आल्हा–ऊदल के नाम से स्तम्भ है और बारादरी नामक स्थल है इस स्थल को आल्हा–ऊदल की बैठक के नाम से पुकारा जाता है यही से दुर्ग और मदन सागर जाने का मार्ग भी है।

मदन सागर :– इस सरोवर का निर्माण मदन वर्मा ने सन् 1129 से लेकर सन 1162 के मध्य में कराया था यह सरोवर नगर के दक्षिणी किनारे पर है इस सरोवर के नजदीक प्राचीन अवशेष उपलब्ध होते है इसके उत्तर पश्चिम में भगवान शिव का एक विशाल मन्दिर है जिसे ककरा मठ के नाम से जाना जाता है दूसरी ओर तालाब के मध्य में सन् 1890 में सेठ मिट्ठू

पुरवार ने एक विश्राम स्थल का निर्माण कराया था इसी स्थान पर पत्थर से बनी पाँच हाथियों की प्रतिमायें है।

दुर्ग स्थल :– इसी के उत्तर दिशा में चन्देल दुर्ग के अवशेष उपलब्ध होते है इस दुर्ग को किला निष्मार्गी कहते है दुर्ग के ऊपर राजा परमाल के महलो के अवशेष मिलते है तथा यही पर मनिया देवी का मन्दिर भी है तथा इसी के समीप एक पत्थर का स्तम्भ है जिसे दीवर के नाम से जाना जाता है तथा इसी के समीप आल्हा की गिल्ली नामक पत्थर की शिला रखी है। तथा यहीं पर पीर मुबारक शाह की मजार भी है पीर मुबारकशाह का आगमन सन् 1252 में अरब से हुआ था और वे महोबा में आकर रहने लगे थे आल्हा के गिल्ली के समीप ही एक चट्टान पर एक घुडसवार की मूर्ति है इस घुडसवार की मूर्ति को हिन्दू और मुस्लिम औरते श्रृद्धा के साथ पूजती है और विवाह के अवसर पर इस मूर्ति पर सुगन्धित तेल लगाती है।

दुर्ग के प्रवेश द्वार :– दुर्ग में प्रवेश करने के लिये दो द्वार उपलब्ध होते है ये द्वार दुर्ग के पश्चिमी और पूर्वी दिशा में है इन्हे भैनसा द्वार और दरीवा दरवाजा के नाम से प्रसिद्ध है। इस दुर्ग में राजा परमाल के महल को कुछ समय बाद मकबरे में बदल दिया गया है। भैनसा दरवाजा के समीप यहाँ पर एक मकबरा है जो हिन्दू वास्तुशिल्प का परिचायक है इसके द्वार पर मलिक तातुद्धीन अहमद का नाम अंकित हैं। इसमें सन् 1322 में गयासुद्धीन तुगलक के शासन में इस मकबरे का निर्माण कराया था तथा इसी के दक्षिणी किनारे पर एक तालाब के किनारे बडी चन्द्रिका का मन्दिर भगवान शिव का गुफा मन्दिर यह मन्दिर काठेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। यही पर थोडी दूरी पर एक चट्टान पर जैनियों के 24 तीर्थकर अंकित है ये मूर्तियाँ सन् 1149 की है तथा इस क्षेत्र का उल्लेख अतिशय क्षेत्र के रूप में किया गया है दुर्ग के दक्षिणी पश्चिमी किनारे पर छोटी चन्द्रिका देवी का मन्दिर है तथा यही पर दशवी शताब्दी पर शिव प्रतिमा उपलब्ध होती है जिसे चट्टान काट कर बनाया गया है इसका निर्माण पुराण के कथानक के अनुसार किया गया है इसके पश्चिम में गजासुरशंकर की प्रतिमा है। तथा मदनसागर के नीचे एक ओर गोरखपुर पहाडी है इसी के समीप पठवा के बाल महाबीर का मन्दिर है। इस मन्दिर की हनुमान प्रतिमा अद्वितीय है तथा इसी के समीप एकान्त स्थल पर काल भैरव की प्रतिमा है।

गोरख पहाडी :– यह भी महोबा दुर्ग का सुप्रसिद्ध स्थल है इसका नामकरण सुप्रसिद्ध तान्त्रिक गोरकनाथ के नाम पर पडा इस स्थल पर

अनेक पानी के झरने और प्राकृतिक गुफाये है यही की पहाडी पर उजाली और अंधेरी नाम की दो गुफाये हैं तथा पहाडी की चोटी मर्दन तुंग के नाम से प्रसिद्ध है इस पहाडी पर मुश्किल से चढ़ा जा सकता है इसकी एक गुफा में गोरकनाथ के शिष्य सिद्ध दीपक नाथ रहा करते थे यह स्थल तपोभूमि के नाम से भी जाना जाता है यहाँ पर प्रतिवर्ष पर्वत की चोटी पर सिद्ध मेंला भी लगता है।

कल्याण सागर :— इस सरोवर का निर्माण वीर वर्मन देव ने सन् 1242 से लेकर 1286 के मध्य कभी कराया था वीरवर्मन देव की पत्नी का नाम कल्याण देवी था उसी के नाम पर यह सरोवर बना यह सरोवर विजय सागर के पूर्व में है तथा इसी के बगल में अनेक सती स्मारक बने हुये है। तथा एक ओर काजी कुतुबशाह की मजार बनी है तथा यही पर बलखण्डेश्वर का एक मन्दिर भी है तथा इसी के समीप चौमुण्डा देवी की एक प्रतिमा है। जिसका निर्माण चट्टान काटकर किया गया है तथा इसी के समीप रामकुण्ड नाम प्राकृतिक जलाशय है महोबा दुर्ग प्राचीन भारतीय संस्कृतिक और इतिहास का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है ।[27]

फोर्टस ऑफ इण्डिया की लेखिका ने भी महोबा दुर्ग का सविस्तार वर्णन किया है उसके मतानुसार महोबा दुर्ग के सभी धार्मिक स्थल और महल खण्डहरों में पर्णित हो गये है मुख्य रूप से मुस्लिम आक्रमणकारियों ने यहाँ के हिन्दू धार्मिक स्थलों को नष्ट किया और यहाँ के लोगों को गूलाम बनाया महोबा में जो धार्मिक स्थल और मन्दिर उपलब्ध होते है उन्हे यहाँ के स्थानीय लोगो ने धन के प्रलोभन से नष्ट कर दिया है इस दुर्ग के द्वार अत्यन्त सुन्दर हैं अतः जो मकबरे यहाँ बने हुए है उनमें जाली का काम अति सुन्दर है।[28]

10—सिरसा गढ़ दुर्ग :— यह दुर्ग महोबा राठ मार्ग पर उरई के सन्निकट है तथा किसी युग में यह दुर्ग चन्देल शासकों के अधिकार में था किन्तु जब पृथ्वीराज चौहान ने महोबा क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर ली उस समय सिरसागढ़ पृथ्वीराज चौहान के हाथो चला गया इस दुर्ग की रक्षा के लिये मलखाल नाम का एक बहादुर सैनिक रहा करता था। तथा वही दुर्ग की रक्षा करता था मलखान राजा परमाल देव का विश्वास पात्र सैनिक था तथा उसका वर्णन विस्तार सहित आल्हखण्ड में उपलब्ध होता है यह दुर्ग आज भी स्थित है तथा तदयुगीन घटनाओं का साक्षी है इस दुर्ग के स्मारक आज भी उपलब्ध होते है दुर्ग बिन्दु में स्थल दर्शनीय है।

दुर्ग की प्राचीर :— यह दुर्ग प्राचीर में स्थित है तथा कही—कहीं पर

यह प्राचीर भग्न हो गयी है इस दुर्ग की प्राचीर से यह पता लगता है कि दुर्ग का निर्माण दसवी शताब्दी से लेकर 12वीं शताब्दी तक हुआ दुर्ग के प्राचीर के बाहर एक गहरी खाई थी जिसमें सदैव जल भरा रहता था।

प्रवेश द्वार :— दुर्ग में प्रवेश करने के लिए प्रमुख द्वार है तथा अनेक दरवाजे और भी जो विभिन्न दिशाओं में है सुरक्षा की दृष्टि से इन प्रवेश द्वारों पर सुरक्षा सैनिक रहा करते थे।

आवासीय स्थल :— दुर्ग के अन्दर अनेक महल और भवनो के भग्न अवशेष उपलब्ध होते है। जिससे तदयुगीन निवासियों की अवस्था का बोध होता है।

जलाशय :— दुर्ग के अन्दर जल की आपूर्ति के लिए अनेक सरोवर, बीहड, और कूप, मौजूद है।

धार्मिक स्थल :— इस दुर्ग के अन्दर हिन्दू और मुसलमानों के धार्मिक स्थल उपलब्ध होते है जो तदयुगीन धर्म व्यवस्था को उजागर करते है यह दुर्ग एक ऐतिहासिक स्थल जिसके सन्दर्भ में विस्तृत विवरण आल्हाखण्ड में उपलब्ध होता है।

सिरसागढ़ :— मलखान के जीवित रहते परमाल द्वारा सिरसा में पृथ्वीराज पर आक्रमण करना औचित्य नही रखता और यदि यह माने कि मलखान इसके पहले ही मारा जा चुका था तो सिरसा और उसके आस–पास का भूभाग पृथ्वीराज के अधिकार में था। सिरसा के दूसरे युद्ध में परमाल ने मलखान को सैनिक सहायता नही दी थी। इससे भी पहले युद्ध की पुष्टि होती है। हो सता हे चौहानों से विरोध का दोषी मलखान को ठहराकर ही परमाल ने उसे बान और कमान भेजकर अपनी रक्षा स्वयं करने को कहा हो।

कजली के अवसर पर मलखान जीवित था ऐसा रासो (एक) मानता है। भविष्य पुराण का मत है कि कजली उत्सव के पहले ही पृथ्वीराज से युद्ध करते हुये मलखान मारा गया था। तब फिर भविष्य पुराण का ही यह तथ्य कि पृथ्वीराज ने परमार्दिदेव के आक्रमण से खिन्न होकर उसे अपना परम शत्रु माना था कहाँ खडा होता है। इस प्रकार मलखान को मारकर तो पृथ्वीराज स्वयं शत्रुता मोल लेता है।

वास्तुतः मलखान बेतवा के युद्ध के पूर्व मारा जाता है तभी तो परमाल को आल्हा ऊदल और जयचन्द्र की सहायता की आवश्यकता होती है। जगनिक इसी युद्ध कही प्रस्तवना में आल्हा–ऊदल को मनाने के लिए कन्नौज जाता है और मलखान की मृत्यु का समाचार सुनाता है। आल्हा

ऊदल आत ह और युद्ध होता है। रासो में यही कथा प्रमुख थी।[29]

11 जैतपुर दुर्ग :– जैतपुर दुर्ग महोबा हरपालपुर मार्ग पर कुलपहाड से 11 किलोमीटर दूर तथा महोबा से 32 कि0मी0 दूर और हमीरपुर से 117 कि0मी0 दूर है यहाँ झाँसी मानिक पुर मार्ग पर एक रेलवे स्टेशन भी है जिसे बेलाताल के नाम से जाना जाता है जैतपुर से 3 कि0मी0 दूर है इस दुर्ग के आस पास निम्नलिखित स्थल महत्व के।

(i)बेलाताल :– बेलाताल यहाँ का सबसे बडा जलाशय है जिसका निर्माण चन्देल वंशीय शासक बलराम ने कराया था उसका पूरा नाम बलवर्मन था यह सरोवर 9 मील की लम्बाई चौडाई में स्थित है तथा सिचाई के लिए इससे नहरें निकाली गई है।

(ii)दुर्ग अवशेष :– इस स्थल पर एक प्राचीन दुर्ग हैं जो बेलाताल के पश्चिमी किनारे पर स्थित है इस दुर्ग का निर्माण बुन्देलखण्ड केसरी छत्रशाल ने कराया था। लेकिन स्थानीय लोग यह मानते है कि इस दुर्ग के निर्माता केसरी सिंह थे इस दुर्ग में छत्रशाल के पुत्र जगतराय के महलो के अवशेष उपलब्ध होते है।

1729 में पेशवा बाजीराव इस स्थल में छत्रशाल की सहायतार्थ आये थे इस समय इलाहाबाद के सूबेदार मुहम्मद बंगस ने आक्रमण कर दिया था। बाजीराव पेशवा की सहायता की वजह से मुहम्मद बंगस पराजित हुआ तथा इसी स्थल पर बंगस का पुत्र कयूम खाँ भी आया था भीषण मार–काट के पश्चात जून सन् 1729 को मुहम्मद बंगस पराजित होकर वापस चला गया और छत्रशाल ने अपनी पुत्री मस्तानी का विवाह बाजीरव पेशवा से कर दिया।

(iii) धौनसा मन्दिर :– यह मन्दिर रेलवे स्टेशन के समीप है तथा अत्यन्त प्रसिद्ध मन्दिर है बडी श्रद्धा के साथ ब्यक्ति यहाँ दर्शनार्थ आते हैं।

जैतपुर दुर्ग प्राचीर बेष्ठित दुर्ग था तथा इसमें प्रवेश करने के लिये अनेक द्वार थे और व्यक्तियों के निवास करने के अनेक भवन और महल थे।[30]

12 मंगलगढ़ दुर्ग :– मंगलगढ़ दुर्ग चरखारी के एक पहाडी पर बना हुआ है तथा इसके सन्निकट अनेक ऐतिहासिक इमारते है। यह हमीरपुर से 106 कि0मी0 दूर और महोबा से लगभग 20 कि0मी0 दूर है मंगलगढ़ दुर्ग के नीचे की बस्ती चरखारी के नाम से विख्यात है इसका पुराना नाम महराज नगर था।

चरखारी नगर का विकास सन् 1761 में राजा खुमान सिंह के शासन में हुआ उन्होने सन् 1782 तक शासन किया इनके पुत्र का नाम विजय विक्रमवीर था खुमान सिंह के बाद उनके पुत्र राजा बने इनकी मृत्यु 1829 में हुई इसके पश्चात रतन सिंह राजा हुए चन्देल शासनकाल में यहाँ पर अनेक तालाब निर्मित हुये थे। तथा उनके किनारे अनेक मन्दिर निर्मित हुये थे। ये सभी मन्दिर चन्देलकालीन थे इस स्थल में निम्नलिखात स्थान दर्शनीय है।

(i)राजा का प्राचीन महल :— इस महल का मुख्य द्वार वास्तुशिल्प की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथा इसके अतिरिक्त दुर्ग के ऊपर भी अनेक दर्शनीय स्थान है।

(ii)मंगलगढ़ दुर्ग के अवशेष :— यह दुर्ग चन्देलकालीन है तथा इसका निर्माण एक पहाडी पर हुआ है इस दुर्ग में प्रवेश करने के लिये पहाडी पर चढना पडता है उसके पश्चात दुर्ग का प्राचीर उपलब्ध होती है प्राचीर से लगा हुआ दुर्ग का प्रवेश द्वार है तथा प्रवेश द्वार के ऊपर सैनिकों के रहने के स्थल आवासीय महल और जलाशय उपलब्ध होते है।

(iii) गोबर्धननाथ का मन्दिर :— चरखारी बस्ती में गोबर्धन नाथ का मन्दिर सर्व प्रसिद्ध मन्दिर है इस मन्दिर में कार्तिक शुक्र परीवा से लेकर एक माह तक गोवर्धन मेला लगता है इस मेले में विभिन्न स्थलों के व्यापारी आते है।[31]

13—मनियागढ़ दुर्ग :— यह दुर्ग छतरपुर जनपद में स्थित है सामरिक दृष्टि से इस दुर्ग का विशेष महत्व है सुप्रसिद्ध ग्रन्थ आल्हाखण्ड में इस दुर्ग का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। यह दुर्ग चन्देल कालीन है और केन नदी के तट पर एक पहाडी पर बना हुआ है इसी दुर्ग पर चन्देलों की कुल देवी मनिया देवी का मन्दिर बना हुआ है। तथा सामरिक दृष्टि से यह दुर्ग महत्वपूर्ण स्थल है। इस दुर्ग से एक महत्वपूर्ण घटना जुडी हुई है कहते है कि कीर्ति सिंह की पुत्री चन्देल राजकमारी दुर्गावती का प्रेम सम्बन्ध राजा दलपतिशाह से हो गया था तथा रानी दुर्गावती ने किसी दुर्ग के गायब होकर दलपति गौंडराजा से विवाह किया था। दुर्ग में निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है।

(i) दुर्ग की प्राचीर :— इस दुर्ग की प्राचीर इसी युग में अत्यन्त सुदृढ़ थी किन्तु समुचित सुरक्षा व्यवस्था न होने के कारण और बाहरी शत्रुओं के आक्रमण के कारण अब इस दुर्ग की प्राचीर नष्ट हो गयी।

(ii) दुर्ग के प्रवेश द्वार :— दुर्ग में प्रवेश करने के लिये प्राचीर

से लगे हुए प्रवेश द्वार हैं अब ये द्वार भी नष्ट हो चुके है केवल उनके भग्नअवशेष इस स्थल पर देखे जाते है किसी युग में ये प्रवेश द्वार सैनिकों के द्वारा संरक्षित हुए।

(iii) दुर्ग के धार्मिक स्थल :– इस दुर्ग का प्रमुख धार्मिक स्थल चन्देलों की कुल देवी मनिया देवी का मन्दिर है इसी देवी के नाम पर इस दुर्ग को मनियागढ़ के नाम से पुकारा जाता है। राजा परमाल के युग तक इस मन्दिर का विशेष महत्व था अब यह मन्दिर भी विध्वंश के कगार पर है।

(iv) दुर्ग के आवासीय स्थल :– इस दुर्ग में अनेक आवासीय स्थल है जिनमें से कुछ चन्देलकाल के है और कुछ उसके बाद के है चन्देलों के बाद यह दुर्ग गौडो, मुसलमानों और बुन्देलों के अधिकार में रहा सभी युगो के आवासीय स्थल यहाँ है।

(v)जलाशय :– दुर्ग में अनेक जलाशय उपलब्ध होते है ये जलाशय सरोवर बीहड और कूप के रूप में है।

14 बरूवा सागर दुर्ग :– बारूआ सागर झाँसी जनपद का एक छोटा से कस्बा है यह मानिकपुर झाँसी मार्ग पर 12 मील की दूरी पर है तथा दक्षिण पूर्व दिशा पर स्थित हैं बरूआ सागर रेलवे स्टेशन से यहाँ का दुर्ग दो मील दूर है बरूआ सागर एक ऐतिहासिक स्थल है इस स्थल पर सन् 1744 में पेशवा की सेनाओं का युद्ध बन्देला सैनिको से हुआ था इस युद्ध में ज्योति बाहु की मृत्यु हो गयी थी। ये महाराजा माधव जी सिन्धियाँ के बडे भाई थे इस स्थान का नाम बरूआ सागर है जो एक विशाल सरोवर के नाम पर रखा गया है यहाँ निम्नलिखित दर्शनीय स्थल है।

बरूआ सागर ताल :– यहाँ का बरूआ सागर सुप्रसिद्ध ताल है इसका निर्माणआज से 260 वर्ष हुआ था इस सरोवर का निर्माण राजा उदित सिंह ने कराया था तथा इस सरोवर का सम्बन्ध बेतवा नदी से है इसमें जलाशय तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई है राजा उदित सिंह ने इस सरोवर का निर्माण बहुत ही अच्छी तरह कराया था इसी नहर से थोडा दूर हटकर अनेक धार्मिक स्थल उपलब्ध होते है।

घुघुआमठ :– ये चन्देल कालीन पुराने मन्दिर है इनकी संख्या दो है और इन मन्दिरों के समीप चार कमरे बने हुये है। जिनमें अलग–अलग दरवाजे है इनमें से तीन मन्दिरों में गणेश की प्रतिमाए है और चौथे मन्दिर में दुर्गा की प्रतिमा है यही से तीन मील दूर पश्चिम की ओर एक धार्मिक स्थल है जिसे जराह की मठ के नाम से जाना जाता है।

जराह की मठ :— जराह की मठ में मुख्य रूप से शिव मन्दिर है जहाँ पर शिव और पार्वती की मूर्ति स्थापित है इसके पूर्वी दिशा की ओर एक ऊँचा स्तम्भ है और एक इमारत है जिसका छज्जा उत्तर दक्षिण की ओर है इसकी छत बहुत ही सुन्दर है तथा यह अष्टकोणिक हैं इसका निर्माण गुप्तकाल के बाद हुआ था दुर्गा मन्दिर के समीप एक अभिलेख भी इस युग का मिला है।

ऐतिहासिक साक्ष्य इस बात के उपलब्ध होते है कि गुप्त सम्राज्य के पश्चात यहाँ गुर्जर प्रतिहारों का राज्य रहा उसी वंश के शासको ने जराय मठ का निर्माण कराया जिसे लो बरूआ सागर मठ के नाम से जानते है।[32] इस मठ का मुख्य मन्दिर खजुराहो जैसा प्रतीत होता है। तथा इसकी मूर्तियाँ भी उसी कोटि की है तथा स्तम्भों में अनेक देवी देवताओं की मूर्तियाँ बनी हुई है इस मन्दिर का मुख्य आकर्षण मुख्य द्वार है इस द्वार पर अनेक मूर्तियाँ बनी हई हैं तथा मन्दिर का कलश और शिखर कमल की आकृति के है।

कहते है कभी बरूआ सागर में दुर्ग भी था किन्तु अब यह दुर्ग नष्ट हो गया है इसलिए दुर्ग के सन्दर्भ में वे साक्ष्य उपलब्ध नही होते जिनसे विशेष जानकारी मिल सके।

15. ओरछा दुर्ग :— ओरछा दुर्ग भी बुन्देलखण्ड का एक सुप्रसिद्ध दुर्ग है और इस बात का प्रतीक है कि कभी इस स्थल पर बुन्देला नरेशो का शासन रहा है। जब बुन्देलों ने अपना शासन बुन्देलखण्ड में प्रारम्भ किया तो सबसे पहले उन्होने महोनी को अपनी राजाधानी बनाया उसके पश्चात गढ़कुण्ढार को राजधानी बनाया जब बुन्देला शासकों ने अपने राज्य का विस्तार किया उस समय उन्होने ओरछा को अपनी राजधानी बनवाया तथा 16वीं सदी में इस वंश के राजा रूद्र–प्रताप ने एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण कराया ओरछा का यह दुर्ग बेतवा नदी के किनारे निर्मित हुआ और दुर्ग की सुरक्षा के लिए सुदृढ़ परिकोटे का निर्माण करवाया और ओरछा नगर की स्थापना की तथा नदी को पार करने के लिए एक पुल का भी निर्माण करवाया तथा यहाँ अनेक महलों का निर्माण भी कराया उनकी मृत्यु एक चीता से रक्षा करने के कारण हुई जिस राजमहल का निर्माण उन्होंने सुरु कराया था उसे उनके उत्तराधिकारी मधुकर शाह ने पूरा कराया।

ओरछा के बारे मे यह कहा जाता है कि यहाँ के नरेशो ने एक ऐसी प्रशासनिक नीति अपनायी जिससे तदयुगीन मुगल सैनिक नाराज न हो यद्यपि उनसे मुगलो के युद्ध हुए इन युद्धो मे मधुकरशाह अकबर से परास्त हुये और उन्हे मुगल दरबार मे हाजिर होना पडा वहाँ यह सर्त रखी गई थी

कि वे दरबार में तिलक लगाकर नही आ सकते इस शर्त को मधुकरशाह ने स्वीकार नही किया अकबर बादशाह ने उन्हे कोई दण्ड नही दिया बल्कि माफ कर दिया इसी के विजय में उन्होने ओरछा में एक भवन का निर्माण करवाया।

मधुकरशाह कृष्ण भक्त थे और हिन्दू धर्म पर पूर्ण आशा रखते थे उनसे यह कहा गया कि इस्लाम धर्म स्वीकार कर ले उन्होने ऐसा नही किया उन्होने सन् 1558 से लेकर 1573 के मध्य चतुर्भुज मन्दिर का निर्माण करवाया इस मन्दिर के चारों कोना में चार शिखार बने हुये है।

यहाँ पर सुप्रसिद्ध मन्दिर राम राजा का मन्दिर है इस सन्दर्भ में यह कहावत है कि यह स्थल मन्दिर के नही बल्कि महल के रूप में निर्माण कराया था इसका निर्माण मधुकरशाह ने अपनी पत्नी रानी गणेश के कुवँर के कहने पर कराया। इन्होने अयोध्या का भ्रमण किया और वहाँ से रामराजा की प्रतिमा लायी और उस मूर्ति को ओरछा के राजा के रूप में स्थापित किया गया था। पहले उनका विचार चतुर्भुज मन्दिर में मूर्ति स्थापित करने का था किन्तु वे मूर्ति चतुर्भुज मन्दिर में स्थापित नही की गयी बल्कि रानी के महल में स्थापित की गयी जो बाद में रामराजा मन्दिर के नाम से विख्यात हुई।

राजा मधुकर शाह ने अपने शासनकाल में रामराजा मन्दिर को विभिन्न प्रकार की चित्रकारी से सजाया इन चित्रों में भगवान राम की चरित्र का चित्रांकन किया गया है इसी दरबार में एक महाकवि केशवदास रहा करते थे। जिन्होने रामचन्द्र नामक ग्रन्थ की रचना की। इनकी प्रेमिका का नाम नाम प्रवीण राना था जिसमे केशव दास के गीतो को संगीत का स्वर प्रदान किया सन् 1598 मे मधुकर शाह की मृत्यु हो गयी उसके पश्यचात राम सिहं ओरछा के शासक हुए सन् 1599 के लगभग अकबर के पुत्र मुराद की मृत्यु हो गई तथा सन् 1601 में उनका जेष्ठ पु त्र दिल्ली की गद्धी पर बैठा इसका नाम सलीम था जो बाद मे जहाँगीर के नाम से विख्यात हुआ तथा इनके मित्र ओरछा नरेश बीर सिहं जी देव थे इन्होने जहाँगीर के नाम से एक महल का निर्माण कराया तथा बीर सिंह जी देव ने अकबर के नवरत्नों में से एक अब्दुल फजल का बध करा दिया था इस समय ओरछा के नरेश रामसिंह थे सन् 1604 में राजकुमार डैनियल की भी मृत्यु हो गयी और सलीम जहाँगीर के नाम से शासन का अधिकारी बना हिन्दू और मुसलमानों के बीच में इसी समय दतियाँ में भी अनेक महत्वपूर्ण इमारतों का निर्माण में हिन्दू और मुगलशैली का सम्मिश्रण देखने को मिलता है इनमें मोरो के चित्र बडे आकर्षक है मोरो के अतिरिक्त हाथी भी बहुत अच्छे है।

ओरछा में एक बगीचे का निर्माण मुगलशैली पर किया गया हैं इस बगीचे का नाम फूल बाग है ग्रीष्म ऋतु में यहाँ जल आपूर्ति बेतवाँ नदी से होती है।

बीर सिंह देव जी की मृत्यु सन् 1627 में हुई तथा जुझार सिंह ओरछा का शासक बना इसने अपने छोटे भाई हरदौल को अपनी पत्नी के माध्यम से मरवा डाला उसे यह शक हो गया था कि उसकी पत्नी का अवैध सम्बन्ध राजा हरदौल से है उसकी पत्नी ने हरदौल को विष मिश्रित भोजन कराया जिससे राजा हरदौल की मृत्यु हो गयी इसके अतिरिक्त जुझारू सिंह ने मुगलों के विरूद्ध बगावत कर दी सन् 1634 में उसकी मृत्यु चौरागढ़ में हुई इस दुर्ग में निम्न स्थल दर्शनीय है।

1. जहाँगीर महल
2. रामराजा मन्दिर
3. चतुर्भुज मन्दिर
4. गणेश कुँवर महल
5. ओरछा दुर्ग
6. शीश महल
7. राय प्रवीण भवन
8. केशवदास भवन
9. सावन–भादौं स्तम्भ
10. गुलाब बाग
11. राजा हरदौल की समाधि।[33]

झाँसी दुर्ग :– झाँसी दुर्ग की ख्याति सन् 1857 के क्रान्ति के बाद हुई यहाँ की रानी लक्ष्मीबाई ने एक महिला होकर के भी वीरता के जो कार्य किये हैं उनसे झाँसी दुर्ग प्रसिद्ध हो गया यद्यपि कोई भी यात्री झाँसी दुर्ग की प्राचीर देखाने नही आता और न इस दुर्ग के वास्तुशिल्प का नामांकन करता है।

ऐतिहासिक स्रोत और साक्ष्य यह बतलाते है कि झाँसी दुर्ग का निर्माण सन् 1613 में वीर सिंह देव ने कराया था उस समय झाँसी का नाम बलवन्त नगर था झाँसी दुर्ग का निर्माण पत्थरों से किया गया था कुछ लोगो का यह भी मानना है कि झाँसी दुर्ग निर्माण भी चन्देल शासन काल में बारहवी अथव तेरहवी शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था झाँसी दुर्ग की प्राचीर काफी लम्बी है तथा उसमें प्रवेश करने के लिए 10 दरवाजे है तथा अनेक उच्च स्तम्भ है जो सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

जब यहाँ अंग्रेजों का शासन स्थापित हुआ उस समय उन्होने यहाँ दो रास्ते अपनाये शासन पर अपना नियन्त्रण भी रखा और देशी नरेशो को स्वायत्तता भी प्रदान की किन्तु गोद लेने के अधिकार स यहाँ के नरेशों को वंचित रखा और उनके राज्य को हडपने की योजना बनायी इसी नीति के अन्तर्गत झाँसी राज्य को हडपा गया। सन् 1853 में झाँसी नरेश राजा गंगाधर राव की मृत्यु हो गयी इस समय उनका कोई प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी नही था। इसी समय महारानी लक्ष्मीबाई ने एक पुत्र गोद लिया अंग्रेज सरकार ने उन्हे गोद लेने का अधिकार नही दिया इसी समय सन् 1857 में राजपूताना ग्वालियर लखनऊ कानपुर, बनारस, तथा झाँसी, में अंग्रेजों के विरूद्ध क्रान्ति की गयी यह क्रान्ति बडी भयानक थी।

इस समय रानी झाँसी की यह प्रतीक्षा कर रही थी और यह आशा कर रही थी कि अंग्रेजों के विरूद्ध उन्हे क्रान्तिकारियों का सहयोग मिले जब रानी झाँसी बिठूर में थी उस समय उनका परिचय तात्या टोपे से हुआ इस समय महारानी झाँसी मनु नाम से जानी जाती थी। तथा वे बनारस में रहने वाले गरीब ब्राह्मण की पुत्री थी उन्होने अपने विश्वास पात्र लोगो से युद्ध की शिक्षा ग्रहण की तथा झाँसी में विवाहित होने के पश्चात गुलाम गौरूठा और खुदाबक्स को सेना के महत्वपूर्ण पदो पर रखा इन बहादुरों ने क्रान्ति के समय दुर्ग की रक्षा की और झाँसी को सुरक्षित रखने के प्रयत्न किये इनकी कुछ विश्वास पात्र महिलाएँ भी थीं। जिसमें झलकारी, दुलइयादेवी और मोतीबाई प्रमुख थी इन्होने 1857 की क्रान्ति में महारानी झाँसी के साथ युद्ध किया और बीरगति को प्राप्त हुई इनकी समाधियाँ दुर्ग के ऊपर बनी हुई है। 1857 की क्रान्ति के दौरान भारतीय और अंग्रेज सेना के लगभग 5000 व्यक्ति यहाँ शहीद हुए।

क्रान्ति में अपनी स्थित अच्छी न जानकर रानी अपने दत्तक पत्र के साथ तात्याटोपे से जा मिली तथा उनके साथ बाँदा के नवाब और कालपी के राव साहब पेशवा की सेनाये भी मिल गयी 18 जून सन् 1858 में पोतह की सरांय के सन्निकट ग्वालियर में रानी ने मर्दाना भेष धारण किया और दोनो हाथ से शत्रों से युद्ध किया और वही शहीद हो गई सन् 1861 के लगभग अंग्रेज पुनः यहाँ लौट आये जो अंग्रेज इस युद्ध में शहीद हुये उनके मृत्यु स्मारक भी झाँसी में बने हुये है।

झाँसी दुर्ग में अनेक स्थल दर्शनीय है।

1. झाँसी का दुर्ग
2. रानी महल

3. नारायण बाग

4. लक्ष्मीताल

5. महाराजा गंगाधरराव की छतरी

6.नकटा चोपडा

7. लक्ष्मी मन्दिर

8. मुरली मनोहर मन्दिर

9. गणेश मन्दिर

10.लहरदेवे का मन्दिर

11. रघुनाथ जी का मन्दिर

12.पचकुइयाँ देवी का मन्दिर

13.सिद्ध महादेव का मन्दिर

14.लाला हरदौल का मन्दिर

15.अठखम्भा महादेव का मन्दिर

16. राजपथ

झाँसी के उपरोक्त स्थल ऐतिहासिक और पुरातात्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण है इसके अतिरिक्त झाँसी में अनेक स्थल इलाम धर्म और ईसाई धर्म से भी सम्बन्धित है। जिनका क्षेत्रीय महत्व है।

17 गढ़कुण्ढ़ार का दुर्ग :— यह दुर्ग बीच जंगल में काले पत्थरों से निर्मित है तथा दुर्ग एक पहाडी पर है यह दुर्ग बहुत सुदृढ़ है और एक चौकोर पहाडी पर स्थित है। दुर्ग के ऊपर से मैदानी भाग का दृश्य बहुत सुन्दर दिखलाई देता है अक्सर इस दुर्ग में यात्रीगण और अधिकारी गण आते रहते है। इस दुर्ग में चढ़ने के लिये पहाडी मार्ग है उसके पश्चात यहाँ एक गोपनीय मार्ग है जिसका उपयोग तदयुगीन सैनिक शत्रुओं को धोखा देने के लिये किया करते थे दुर्ग के नीचे अनेक गाँव है जहाँ के व्यक्ति खेती किसानी करते है। गढ़कुण्ढार के नीचे काले रंग की चट्टाने और पत्थर है और सूखे हुए पेड है इस दुर्ग में पैदल ही पहुँचा जा सकता है।

नवीं शताब्दी में यह दुर्ग चन्देलों के अधीन था पृथ्वीराज चौहान के आक्रमण के पश्चात यह दुर्ग उसके आधीन हो गया। बाद में दिल्ली के सुल्तानों के आधीन हो गया लगभग 12वीं शताब्दी में यहाँ खूब सिंह खंगार का अधिकार था उस समय बुन्देलखण्ड जुझौती देश के नाम से विख्यात था बाद में यह दुर्ग बुन्देलो के अधिकार में आ गया खंगार जाति के लोग जंगली और लडाकू व्यक्ति थे जिनके अभियान और आक्रमण भूमि और सम्पत्ति के लिये होते रहते थे खूब सिंह ने अपने शासनकाल के दौरान दुर्ग

को सुदृढ़ किया और चारो तरफ अपने राज्य को बढ़ाया इस समय उसके जागीरदार आपस में लडते रहते थे जिसका लाभ उसे हुआ।

प्रलोभन के कारण खंगार लोग मंदाग हो गये जिसके कारण उनका पतन हुआ हुरमत सिंह खंगार की यह इच्छा थी कि वह अपने बेटे का विवाह राजपूत बून्देला सोहनपाल की पुत्री से करे सोहनपाल ने यह बरदास्त नही किया कि खंगार उसके ऊपर अपना रोब जमाये कुछ समय बाद सोहनपाल और उसके सहयोगियो ने हुरमत सिंह और नारदेव की हत्या कर दी इस समय ये लोग विवाह के भोज में भोजन करके सो रहे थे। इसके पश्चात सोहनपाल शक्तिशाली शासक बन गये चौदहवीं शताब्दी में इस दुर्ग में तुगलक वंशीय शासकों ने आक्रमण किया।

अनेको बार यह देखा गया है कि दिल्ली के सुल्तान हिन्दू शासकों को अपनी आँख का काँटा समझते थे इसलिये वे हमेशा उन पर आक्रमण करते रहते थे। इसी समय किसी औरत को लेकर तुगलक वंश के शासको का संघर्ष बुन्देलो से एक स्त्रिी को लेकर यहाँ हुआ।

कहते है कि बरदायी सिंह खंगार के एक अति सुन्दर कन्या थी जिसका नाम केशर देवी था मुस्लिम सुल्तान उससे शादी करना चाहता था जब बरदायी सिंह खंगार ने अपनी कन्या का विवाह उससे करने से इनकार कर दिया उस समय सुल्तान ने यहाँ आक्रमण कर किया और यह दुर्ग तुर्को के आधीन हो गया बरदायी सिंह खंगार इस युद्ध में पराजित हुआ। उस समय यहाँ की महिलाओं ने जौहर व्रत किया इस प्रकार खंगारों का साम्राज्य समाप्त हो गया दुर्ग के ऊपर अनेक धर्म स्थल और महलों के अवशेष उपलब्ध होते है धीर-धीरे यह दुर्ग भी नष्ट होने लगा।

धीरे-धीरे गढ़कुण्ढार की कहानी का अन्त हो गया अब अनेक शताब्दियाँ बीत चुकी हैं तथा यहाँ के पत्थरों में सती स्तम्भ सूर्य और चन्द्रमा की प्रतिमाये उपलब्ध होती है। और टूटी हुई काँच की चूडिया मिलती है इतिहास इस बात का साक्षी है कि तुगलक वंश के शासको और बुन्देला शासको के बीच कभी भी ताल मेल नही रहा।

यहाँ अनेक ऐसे स्तम्भ भी उपलब्ध हुए है जहाँ सुरक्षा के लिये तोपें रखी जाती थी तथा इसी के समीप एक चौकोर बडा कमरा उपलब्ध हुआ है जिसके चारो ओर मीनारे है सम्भवतः यह दरबार कक्ष था। यहीं पर एक तीन मंजीली इमारत भी है कहा जाता है कि यही कही पर गढ़कुण्ढार का खजाना छुपा हुआ है उसको खोजने के लिए यहाँ के अनेक लोग इस स्थल पर खोदा-खादी करते रहते है। इस स्थल पर अनेक सरोवर है सुरक्षा

चौकिया है कछ दूरी पर एक छतुरी बनी हुई है। गढ़कुण्ढार में उपलब्ध है खिडकियों के झरोखे खाली पडी हुई है जिनसे कभी यहाँ के शासक झाँका करते थे। इस स्थान पर गणेश पार्वती और शिव की मूर्तियाँ उपलब्ध हुई।

यहाँ निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है।

1. दुर्गअवशेष
2. कचेहरी या दरबार हाल
3. सती चौरा
4. प्रवेश द्वार
5. बुन्देलों के आवासीय महल
6. धर्म स्थल एवं मूर्ति सम्पदा।[34]

18 चिरगाँव दुर्ग :— चिरगाँव झाँसी जनपद का एक छोटा से कस्बा है यह झाँसी से 18 मील दूर तथा मोड से 14 मील दूर झाँसी कानपुर मार्ग पर स्थित है। बुन्देलो के शासन काल में यह प्रशासन का मुख्यालय था और बुन्देलों को इस समय हसतभइया के नाम से जानते थे। यहाँ के प्रशासनिक मुखियाँ की सन्धि अंग्रेजो से सन् 1823 में हुई थी तथा यहाँ के नरेश ओरछा के राजा बीर सिंह देव के वंशज थे सन् 1841 में यहाँ के शासक राव बखत सिंह ने ब्रिट्रिश शासन के आदेशो की अवहेलना की इसलिए ब्रिट्रिश शासको ने उसके विरूद्ध सेना भेजी जिससे भयभीत होकर बखत सिंह यहाँ से भाग गये तथा अंग्रेजो ने उनके दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया उनके वंश के लोग बाद मं टीकमगढ में रहने लगे।

चिरगाँव बस्ती के अन्दर एक पहाडी पर एक दुर्ग है यह दुर्ग 12वीं शताब्दी के बाद का निर्मित है यह दुर्ग परकोटे से घिरा हुआ है तथा यहाँ पहुँचने के लिये सीढ़िया बनी हुई है दुर्ग की दीवाल से लगा हुआ नीचे की ओर एक मन्दिर है यह मन्दिर आज भी सुरक्षित स्थित में है उसकी कुछ दूरी पर दुर्ग का प्रवेश द्वार उपलब्ध होता है तथा दुर्ग के ऊपर आवासीय महल, जलाशय, धर्मस्थल, और सैनिकों के रहने के लिए स्थल बने हुए है। 1857 की क्रान्ति और उससे पहले इस दुर्ग का महत्व सर्वाधिक था किन्तु 1857 की क्रान्ति के पश्चात इस दुर्ग का कोई सामरिक महत्व नही रह गया इस दुर्ग में निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है।

1. दुर्ग–अवशेष
2. प्रवेश द्वार
3. आवासीय स्थल
4. धर्मस्थल
5. जलाशय[35]

19. एरच का दुर्ग :– झाँसी जनपद में एरच एक छोटा सा कस्बा है जो बेतवा नदी के तट पर बसा है या स्थल झाँसी से 46 मील दूर उत्तर पूर्व और गरौठा से 22 मील दूर है यह स्थल गरौठा से पुन्छ मार्ग पर स्थित है यहाँ पर एक प्राचीन दुर्ग है जिसका पुरातात्कि महत्व है स्थानीय परम्परा के अनुसार यह स्थल हिरणाकश्यप के पुत्र प्रहलाद की जन्म स्थली है अकबर के शासन काल में एरच को परगना का दर्जा उपलब्ध था तथा यह क्षेत्र आगरा सूबे के अन्तर्गत था जहाँगीर के शासन काल में यह क्षेत्र बीर सिंह देव बुन्देला के अधिकार में था कुछ समय तक यह इलाका बुन्देलखण्ड के शरी छत्रशाल के हाथ में रहा सन् 1712 में मुगल बादशाह फरूखशियर ने यह क्षेत्र मुहम्मद खाँ बंगस को दे दिया था बाद में यह छत्रशाल के अधिकार में आ गया था छत्रशाल के उत्तराधिकारी हरिदास इस क्षेत्र को सुरक्षित नही रह सके कुछ साल बाद मराठा साम्राज्य का अंग बन गया उसके पश्चात यह अंग्रेजो के अधीन हो गय।

एरच में एक दुर्ग के अवशेष बेतवा नदी के तट पर उपलब्ध होते है इस दुर्ग में प्रवेश करने के लिये चार प्रवेश द्वार है जिनके नाम (सक) हाओ, द्वार, मीरा द्वार, ग्वाल द्वार, और राठ द्वार है। तथा दुर्ग के रास्ते में पश्चिम दिशा की ओर यही पर दुर्ग की दीवाल में नदी से लगभग 60 कि0मी0 की ऊँचाई में और दर्ग की दीवाल से लगभग 30 फुट ऊँची हनुमान जी की प्रतिमा उपलब्ध होती है। कहते है कि जामा मस्जिद का निर्माण तदयुगीन हिन्दू मन्दिरों को तोड कर किया गया था सन् 1413 में गजी उद्धीन के भाई खान जुनैद ने अपने जागीरदारी के दौरान मस्जिद का निर्माण कराया था इसके पश्चात मस्जिद का कुछ भाग औंरगजेब के शासनकाल में बना इस मस्जिद की चारों दिशाओं में मीनारे और गुम्बद है तथा इसमें लगे स्तम्भ हिन्दू मन्दिरों के है मस्जिद की दीवाले और फर्स ईटो और पत्थरो से निर्मित है इनके रंग लाल नीले पीले और हरे है। यहीं पर एक सती चौरा स्तम्भ भी उपलब्ध है जिसमें सन् 1642 का अभिलेख है इस स्थल पर अन्जनी माता के मन्दिर में दूसरे और छठवे दिन पूष माह में मेला लगता है यहाँ निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है।

1. प्रवेश द्वार (जिनकी संख्या चार है)
2. आवासीय स्थल
3. जलाशय
4. हिन्दू धर्म से सम्बन्ध स्थल
5. मुस्लिम धर्म से सम्बन्ध स्थल[36]

20 उरई दुर्ग :— उरई अति प्राचीन धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्व का स्थल हैं यह झाँसी कानपुर मार्ग पर स्थित हे कानपुर से यह 109 कि0मी0 दूर और झाँसी से 114 कि0मी0 दूर है इस नगर में दक्षिणी किनारे की एक पहाडी पर नई बस्ती स्थित है। इसके अतिरिक्त यहाँ अनेक प्राचीन सरोवर और नहरे है प्राचीन किमि दन्तियों के अनुसार यह नगर ऋषि उदलक के शिष्य महर्षि धूमि की तपोभूमि थी यह तान्त्रिको का भी स्थान रहा है वर्तमान समय में इसे उरई के नाम से जाना जाता है।

इस शहर में एक पुराने दुर्ग के अवशेष उपलब्ध होते है यह दुर्ग ईटो से निर्मित था और इसके चारो ओर परिकोटा था इस दुर्ग के समीप ही अनेक मुस्लिम सैनिकों के मकबरे बने हुए है इसी दुर्ग के समीप कानपुर झाँसी मार्ग के दक्षिणी कोने पर एक तालाब है। इसका निर्माण 12 वीं शताब्दी में तदयुगीन उरई नरेश माहिल ने करवाया था उसी समय से यह तालाब माहिल तालाब के नाम से जाना जाता है इस तालाब में पूरे वर्ष पानी रहता है तथा यही पर एक खण्डेश्वरी महादेव मन्दिर है जिसमें विशाल हनुमान प्रतिमा है। कहा जाता है कि उरई नरेश माहिल आल्हा—ऊदल के युग में कुशल कूटनीतिज्ञ थे और वे आल्हा—ऊदल के मामा थे माहिल ने उरई में शासन किया और इसे अपनी राजधानी बनाया। यहाँ पर अमई नामक एक बहादुर भी हुआ है जिसे उसकी वीरता के लिये उसे सदैव याद किया जाता है।

उरई में एक सुप्रसिद्ध मन्दिर प्रयागदास का मन्दिर हैं इस मन्दिर में भगवान राम और हनुमान की प्रतिमाये है तथा प्रत्येक मंगलवार को यहाँ मेला लगता है तथा माहिल के तालाब में प्रत्येक सावन माह में माहिल तालाब के किनारे कजलियों के अवसर पर यहाँ मेला लगता है ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वीराज चौहान ने सावन के पूर्णमासी के दिन यहाँ आक्रमण किया था उस समय यहाँ एक विशाल युद्ध हुआ था उसके कारण उस दिन रक्षा बन्धन का त्योहार नही मनाया गया था उसके एक दिन बाद यह त्योहार मनाया गया हिन्दू धर्म स्थलो के अतिरिक्त यहाँ दो इस्लामिक धर्म स्थल भी है ये धर्म स्थल जामा मस्जिद और ईदगाह मस्जिद के नाम से विख्यात है यहाँ निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है।

1. दुर्ग अवशेष
2. माहिल का तालाब
3. बाबा प्रयागदास का मन्दिर
4. खण्डेश्वरी का मन्दिर

कालपी दुर्ग :– कालपी दुर्ग ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से आती प्राचीन स्थल है यह झाँसी कानपुर मार्ग पर स्थित है उरई से इसकी दूरी 35 किलोमीटर है तथा यहाँ रेलवे स्टेशन भी है यह स्थल जालौन राठ हमीरपुर से सडक मार्ग पर जुडा हुआ है तथा यह यमुना नदी के तट पर बसा है।

प्रचलित जन कथाओं के अनुसार इस नगर के संस्थापक कालिब देव थे इस नगर का अस्तित्व प्राचीन काल से था फरिस्ता के अनुसार कन्नौज के राजा वासुदेव ने इस नगर को बसाया था जनकथाओं के अनुसार कालपी का महत्व पौराणिक काल से रहा है यही पर कछ दूरी पर व्यास टीला और नरसिंह टीला नामक दो स्थान है कहते है कि महर्षि व्यास यहाँ रहकर तपस्या किया करते थे और विष्णु ने नरसिंह अवतार धारण करके यहाँ पर प्रहलाद के प्राणों की रक्षा की थी प्रहलाद हिरणा कश्यप का पुत्र था।

ऐतिहासिक और पुरातात्विक दृष्टि से यह क्षेत्र महत्वपूर्ण है यहाँ चन्देलो का बनवाया एक दुर्ग है इस स्थल पर सन् 1196 का एक अभिलेख कुतुबुद्धीन ऐबक का उपलब्ध हुआ है जिसने यह दुर्ग चन्देलो से जीत लिया था।बुन्देला शासकों का सम्पर्क तेरहवी शताब्दी में कुतुबुद्धीन के वंशजों से हुआ था।

जब दिल्ली में फिरोजशाह तुगलक का शासन था उस समय सुल्तान ने यहाँ एक प्रशासक नियुक्ति किया सन् 1398–99 में दिल्ली में तैमूर लंग ने आक्रमण किया उस समय कालपी के सूबेदार मुहम्मद खाँ ने अपने को यहाँ का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया धीरे–धीरे यह शहर राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होता गया जौनपुर के शासक शर्की वंश के नरेश ने इसे अपने अधिकार में ले लिया यह नगर बहुत समय तक इब्राहीम शाह शर्की के आधीन बना रहा सन् 1407 से लेकर 1412 तक यह नगर दौलतखाँ के आधीन था सन् 1526 में सुल्तान मुहम्मदखाँ का पुत्र कादिर खाँ यहाँ का सूबेदार बना 6 बर्ष पश्चात यह क्षेत्र मालवा के सूबेदार हुसंगशाह के अधिकार में आ गया जब दिल्ली का सल्तान बहलोल लोदी बना उसने कालपी पर अधिकार कर लिया सन् 1488 में यह क्षेत्र आजम हिमायूँ के अधिकार में दे दिया गया यह बहलोल लोदी का नाती था सात्रहवीं शताब्दी के मध्य में छत्रशाल बुन्देला ने इस अपने अधिकार में कर लिया तथा इसे प्रसिद्ध मराठा सरदार गोविन्द बलदार खेर को दे दिया यह मराठा सरदार सन् 1761 में पानीपत के युद्ध में मारा गया उसने अपने पुत्र गंगाधर गोविन्द को हाँ का शासक नियुक्ति किया सन् 1798 में कालपी अंग्रेजों के हाथ में

आ गया किन्तु एक सन्धि के अनुसार नाना गोविन्दराय यहाँ के प्रशासक बने रहे तथा उनके अधिकार में यह क्षेत्र सन् 1557 तक बना रहा सन् 1857 की क्रान्ति में राव साहब तात्याटोपे और महरानी झाँसी ने अंग्रेजो के विरूद्ध क्रान्ति की जब यह क्रान्ति विफल हो गयी उस समय यह क्षेत्र अंग्रेजो के हाथ में आ गया तथा सन् 1947 तक उन्ही के अधिकार में बना रहा।

कालपी दुर्ग के समीप कई दरगाहे उपलब्ध होती है इसमें एक मजार साहब जफर जान–जानी चोर की है तथा दूसरी ओर बीबी और बहादुर की है लोग इस स्थल को चौरासी गुम्बद के नाम से पुकारते है यहाँ पर लोदी वंश के शासक लोदीशाह बादशाह की एक मजार है जिसे कुछ लोग सिकन्दर की लोदी की मजार मानते है किन्तु कुछ लोगों का मानना है कि सिकन्दर लोदी की मृत्यु आगरा के समीप हुई और उसका स्मारक दिल्ली में बनाया गया चौरासी खाम्भा अनेक इमारतों का समूह है जो एक दूसरे से मिले हुए बने है इसमें आठ पंक्तियों में बन्द इमारते है और सात पंक्तियों में खुले स्थल है कुल मिलाकर 84 स्तम्भ वहाँ है उसकी ऊँचाई लगभग 60 फुट है तथा स्तम्भो के आधार पर भी इसे चौरासी खाम्भा के नाम से सम्बोधित किया गया है। इनके स्तम्भों की बनावट बहुत ही सुन्दर है तथा इसके चारो ओर चार कोने है तथा बीच में आने जाने का रास्ता है यहाँ पर कुछ मकबरे बने हुये है तथा आगे बढ़कर दुर्ग के सन्निकट दुर्ग का प्रवेश द्वार उपलब्ध होता है इस प्रवेश द्वार को श्री दरवाजा के नाम से जाना जाता है युद्ध की दृष्टि से यह द्वार महत्वपूर्ण था कहते है कि कालपी का अन्तिम हिन्दू राजा मुस्लिमो से पराजित हुआ और यहीं वह मारा गया इस दरवाजे के समीप उसका सिर दफन किया गया था इसके पूर्वी भाग में बडा बाजार नामक स्थल है।

वर्तमान समय में चन्देल दुर्ग के भग्नावशेष बचे है। दुर्ग के नीचे जमुना नदी का घाट है तथा इसी के समीप मराठा शासको की बनवाई हुई इमारते उपलब्ध होती है तथा इसी के समीप थोडा नीचे चलने पर एक मन्दिर उपलब्ध होता है तथा यही से थोडी दूर चलने पर दुर्ग का परिकोटा दिखलायी देता है और परिकोटे से लगे हुए अनेक सैनिको की कबरे हैं जिनकी मृत्यु 1857–58 में हुई थी यही गणेश गंज मुहाल में एक ऊँची मीनार उपलब्ध होती है लिसे लंका के नाम से जाना जाता है इस का निर्माण मथुरा प्रसाद ने कराया था यहाँ पर अनेक दृश्य राम–रावण के बने हुए हे कालपी दुर्ग में निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है।

1. दुर्ग अवशेष
2. प्रवेशद्वार (श्री दरवाजा)
3. चौरासी खम्भा
4. सिकन्दरशाह की मजार [38]

22. दतिया दुर्ग :– दतिया जनपद मध्य प्रदेश का एक सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल है इसकी सीमाए झाँसी जनपद से मिलती है जनश्रुति के अनुसार है कि यहाँ पहले बक्रदन्त नामक दैत्य का राज्य था उसी के नाम पर इस स्थान का नाम दतिया पडा पहले दतिया गुप्त सम्राज्य के अन्तर्गत था उसके पश्चात यहाँ गुर्जर प्रतिहारों का राज्य है गुर्जर प्रतिहारों के बाद यहाँ चन्देलों का राज्य रहा उसके पश्चात यहाँ बुन्देलों का राज्य रहा इस सुप्रसिद्ध स्थल पर एक दुर्ग तथा अनेक आवासीय महल उपलब्ध होते है।

वीर सिंह जी देव की मित्रता मुगल समाज्य जहाँगीर से थी इस मित्रता को वे कभी नही भूले सन् 1625 में जब जहाँगीर काबुल की यात्रा कर रहे थे। उस समय माहवत खाँ ने उनका अपहरण कर लिया उन्हे छुडाने के लिये अपने छोटे पुत्र भगवान राव को जहाँगीर की मदद के लिये भेजा वहाँ से लौटकर उन्होने दतिया नगर में महल बनवाया और भगवानराव को वहाँ का राजा नियुक्ति किया इस समय खाँन जहान लोदी बीजापुर के असत खाँ की मदद कर रहा था उसकी मृत्यु सन् 1656 में हो गयी थी उसकी याद में सुरही छतरी नामक स्मारक दतियाँ के समीप बना।

भगवान राव का उत्तराधिकारी शुभकरण हुआ उसने अपने जीवनकाल में 22 युद्ध किये मुख्य रूप से बादक सान और आलाजान उनके नजदीकी थे जब शाहजहाँ के लडको के मध्य सत्ता के लिये संघर्ष छिड गया उस समय उसे बुन्देलखण्ड का सूबेदार बनाया गया था सन् 1659 में औरंगजेब दिल्ली का शासक बना उसके पश्चात औंरगजेब के अनेक युद्ध मराठों से हुए इस युद्ध में दतिया नरेश ने मुगलशासक का साथ दिया सन् 1679 में शुभकरण की मृत्यु हो गयी। उसके पश्चात उसका पुत्र दलपतिराव उत्तराधिकारी हुआ और वह भी अपने पिता के समान मराठों के विरूद्ध औंरगजेब की मदद करता रहा इसलिए मुगल दरबार में उसे सम्मान दिया गया और वे उनके विशेष विश्वास पात्रों में हो गया। इसी समय सन् 1694 में जिन्जी के कुछ भाग पर अधिकार हो जाने के पश्चात मुगल बादशाह ने उसे दो द्वार भेंट किये ये दोनो द्वार फूलबाग दतियाँ में बने हुए है दलपतिराव की मृत्यु सन् 1707 में जजऊ के युद्ध में हो गयी इसी साल औरंगजेब की भी मृत्यु हो गई।

औरंगजेब की मृत्य के पश्चात स्वभाविक रूप से मराठों बुन्देलो और मुगलो में सत्ता संघर्ष तीव्रगति से चालू हुआ औरंगजेब के जीवन के अन्तिम वर्ष में मुगलसत्ता कमजोर पड गयी और बुन्देलखण्ड के देशी नरेश स्वतन्त्र हो गये इस समय दतियाँ के नरेश सत्यजीत थे इनका युद्ध ग्वालियर के सिन्धियाँ नरेश से हुआ इस समय सिन्धियाँ की ओर से पेग्ल युद्ध कर रहा था उसने दतिया का कुछ इलाका मराठो के अधिकार में चला गया और सत्यजीत युद्ध में मारे गये उसके बाद उनके पुत्र परीक्षक दतिया के नरेश बने उन्होने मराठों से युद्ध करना उचित नही समझा। इसलिये 1801 से लेकर 1804 के बीच मराठों से सन्धि कर ली इसी प्रकार की एक सन्धि अंग्रेजो से भी हुई और यहाँ स्थाई शान्ति भी स्थापित हई राजा परिक्षक यहाँ पर कोटे का निर्माण कराया और नगर में प्रवेश करने के लिये चार द्वारों का निर्माण कराया ये दरवाजे रिक्षरा द्वार, लसकरद्वार, भाण्डेय द्वार, और झाँसी द्वार के नाम से जाने जाते है। सन् 1818 में अंग्रेज गर्वनर जनरल वारेनहेस्टिग यहाँ आये थे जब 1902 में लार्ड कर्जन यहाँ आये उस समय दतिया की स्थित नाजुक हो गयी थी और वह उजडने लगा था। दतिया के दर्शनीय स्थल निम्नलिखित है।

1. दतिया दुर्ग का परिकोटा
2. दतिया दुर्ग के चार प्रवेश द्वार
3. दतिया दुर्ग का गोविन्द महल
4. अन्य आवासीय स्थल [39]

23 बढ़ौनी दुर्ग :— बढ़ौनी कभी ओरछा राज्य का एक अंग था बाद में यहाँ के जागीर वीरसिंह जी देव को मिल गयी बीर सिंह जी देव ओरछा नरेश मधुकरशाह के चौथे पुत्र थे पिता की मृत्यु के पश्चात इन्द्रजीत सिंह प्रतापराव और बीर सिंह जी देव एक मत हो गये और उन्होने यह निश्चित किया कि वे मुसलमानों के आधीन नही रहेगे इसलिए मुगलो से लडने के लिये उन्होने निजी सेना का गठन किया और खजोहा तथा बढ़ौनी दुर्गो को सुसज्जित करके वे मुगलों से युद्ध करने लगे।

बीर सिंह जी देव को सन् 1592 में परिवारिक बटवारे में बढ़ौनी की जागी मिली थी यहाँ पर इस समय जो लोग कार्य कर रहे थे। उनसे बीर सिंह जी देव की नही पटी बीर सिंह जी देव ने उन्हे वहाँ से मार भगाया उसके पश्चात उन्होने अपनी शक्ति का विस्तार किया तथा कुछ समय बाद पवायाँ तोमरगढ़ इनके अधिकार में आ गये धीरे-धीरे नरवर,और केलारस के क्षेत्र भी इनके आधीन हो गये। इन्होने जाटो और मैना जाति के लोगो

से संघर्ष किया कुछ समय बाद ओरछा करहश और हथनौरा इनके राज्य में शामिल हो गया इनका युद्ध मुगल सेनापति बाग जंग जागडा से हुआ उसे इन्हे युद्ध में मार डाला उनकी शक्ति को देखकर भाण्डेर का मुगल सरदार भाग गया और भाण्डेर बिना युद्ध किये उन्हें मिल गया बीर सिंह जी देव के युद्ध मुगल सम्राज्य अकबर से बराबर चलते रहे किन्तु जहाँगीर से इनकी मित्रता होने के कारण जहाँगीर के शासक बनने के पश्चात इनके कोई युद्ध मुगलो से नही हुए।

बढ़ौनी का दुर्ग बीर सिंह जी देव के पूर्वजो ने बनवाया था तथा यह दुर्ग ओरछा राज्य की सीमाओं की रक्षा करता था तथा यहाँ के निवासियों के प्रशासनिक व्यवस्था भी दुर्ग के अधिकारियों के आधीन थी जब बीर सिंह जी देव के अधिकार में यह दुर्ग आया उस समय इस दुर्ग का जीर्णोधार कराया तथा वहाँ आवासस के लिये अनेक भवनो का निर्माण कराया इस दुर्ग में अनेक ऐसे स्थल है जो दर्शनीय है वे निम्नलिखित है—

1. दुर्ग अवशेष
2. दुर्ग के प्रवेश द्वार
3. दुर्ग के आवासीय स्थल
4. दुर्ग में उपलब्ध धार्मिक स्थल
5. दुर्ग के जलाशय [40]

24 ग्वालियर दुर्ग :— ग्वालियर दुर्ग बुन्देलखण्ड का अति प्राचीन दुर्ग है इस दुर्ग का असितित्व गुप्त साम्राज्य में भी था दुर्ग परिक्षेत्र में उपलब्ध जैन तीर्थाकंरो की प्रतिमाये इस बात को सिद्ध करती है कि ग्वालियर का धार्मिक महत्व अति प्राचीन है पहले यह क्षेत्र गुप्तों के अधिकार में था बाद में यह क्षेत्र हर्ष वर्धन और कछवाहों के अधिकार में आ गया कछवाहा नरेशो ने विक्रमी संबत 332 में ग्वालियर दुर्ग का निर्माण कराया था। कछवाहा वंश के शासक अपने वंश का सम्बन्ध भगवान के पुत्र कुश से मानते है इस वंश का महत्वपूर्ण शासक सूरजसेन था जो कुष्ठरोग से गृषित था उसका रोग ग्वालियर में ठीक हुआ और एक सिद्ध के आदेश से उसने अपना नाम बदलकर सूरजपाल रख दिया इस वंश का 84वाँ नरेश तेज कर्ण था इस समय इनका राज्य कन्नौज के राजा भोज के आधीन हो गया था इस वंश में बज्रदामा कीर्तिराज भुवनराज और पदमपाल नामक नरेश हुए महिपाल के पश्चात मनोरथ नाम का शासक हुआ इसमें सन् 1161 में ग्वालियर में महादेव के मन्दिर का निर्माण कराया उसके पश्चात उसका पुत्र विजयपाल शासन में बैठा बिक्रमी सम्बत 1253 में शाहाबुद्धीन ने ग्वालियर

किलो का आक्रमण किया। इसके पश्चात यह दुर्ग गुर्जर प्रतिहारों के अधिकार में आ गया इस दुर्ग में महमूद गजनबी ने आक्रमण किया था उस समय यह दुर्ग चन्देलो के आधीन था। अन्त में यह दुर्ग कुतुबुद्धीन ऐबक के आधीन हो गया।

जब भारत वर्ष में तुगलक वंश के शासक राज्य करते थे उस समय ग्वालियर का दुर्ग नर सिंह राय कटेहर के आधीन था। जब दिल्ली मे तैमूर लंग का आकमण हुआ उस समय ग्वालियर दुर्ग बीरमदेव के आधीन इसके नाम के दो अभिलेख विकमी संबत 1459 के ग्वालियर दुर्ग मे उपलब्ध होते है। तैमूर लंग के वापिस जाने के बाद ग्वालियर दूर्ग पर मूल्लाइकबाल खाँ ने चढ़ई की ग्वालियर दुर्ग बहुत सुदृढ़ था मुल्लइकबाल खाँ इसे जीत नही पाया यहाँ के देशी नरेशो ने मुल्लाइकबाल खाँ से बदला लेने के लिये इटावा के पास उस पर आकमण किया किन्तु राजपूतो की सामूहिक सेना मूल्लाइकबाल खाँ को हरा नही पायी।

सल्तनतकाल में ही ग्वालियर का दुर्ग तोमर वंश के शासको के आधीन हो गया इस वंश का शक्तिशाली नरेश मानसिंह तोमर थें। जिन्होने कलाकार साहित्यकारों को विशेष आश्रय प्रदान किया था मुगल सम्राट बाबर ने भी बिक्रमी संबत 1587 में ग्वालियर पर आक्रमण किया इस समय ग्वालियर के राजा विक्रमाजीत थे इस युद्ध में विक्रमाजीत की पराजय हुई बाबर ने यहाँ मानसिंह के बनवाये महल और बगीचों को देखा तथा सम्सुद्धीन अल्पमस की बनवायी टूटी–फूटी मस्जिदे देखी और यही पर अपनी नमाज अदा की।

बाबर से लेकर औरंगजेब के शासनकाल तक यह दुर्ग मुगलो के आधीन रहा औरंगजेब के शासनकाल के अन्तिम समय ग्वालियर दुर्ग मराठों के आधीन हो गया तथा यहाँ सिन्धियाँ वंश राज्य करने लगा ग्वालियर के मराठा नरेशो की सन्धि अंग्रेजो से भी हुई सन् 1857 की क्रान्ति में ग्वालियर के सिन्धिया नरेश अंग्रेजो का साथ दिया जबकि झाँसी, कालपी, के मराठा, शासक तथा बाँदा के नवाब तात्याटोपे के नेतृत्व में अंग्रेजो का विरोधकर रहे थे क्रान्तिकारियों ने ग्वालियर दुर्ग जीत लिया था किन्तु अंग्रेजो की सेना के आ जाने के कारण क्रान्तिकारियों की पराजय हुई और ग्वालियर दुर्ग में महारानी लक्ष्मीबाई झाँसी को अपने प्राणों की आहुत देनी पडी उसके पश्चात ग्वालियर दुर्ग पुनः सिन्धियाँ के अधिकार में आ गया ग्वालियर दुर्ग में निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है।–

1. ग्वालियर दुर्ग के अवशेष
2. ग्वालियर दुर्ग के प्रवेश द्वार
3. तेलीका मन्दिर
4. गूजरी रानी का महल
5. मान सिंह का महल
6. जैन तीर्थाकंरो की मूर्तियाँ
7. तानसेन का मकबरा
8. गुलाम गौस खाँ का मकबरा
9. रानी झाँसी की समाधि
10. जयविलास पैलेस [41]

25 चन्देरी का दुर्ग :— चन्देरी दुर्ग भी बुन्देलखण्ड का सुप्रसिद्ध दुर्ग है तथा इसका भी प्राचीनतम इतिहास है यहाँ अनेक स्थल ऐसे उपलब्ध होते है जिनसे भारतीय इतिहास गरिमा मण्डित होता है। कहते है कि जब मुगल सम्राट बाबर ने इस दुर्ग को जीता उस समय उसने अपने लिये गाजी की पदवी धारण की गाजी का तात्यपर्य धर्म युद्ध करने वाले व्यक्ति से होता है। जिसे मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग की प्राप्ति होती है बाबर ने यह दुर्ग 1588 में जीता था बाबर तैमूर लंग का वंशज था और उसके वंश के लोग समर कन्द में निवास किया करते थे वह काबुल होता हुआ भारतवर्ष आया तथा उसने पानीपत के युद्ध में सन् 1526–27 में राणासांगा को परास्त किया।

जिस समय बाबर भारतवर्ष आया उस समय चन्देरी नरेश और राणा सांगा के मस्तिष्क में ये विचार आया कि राजपूतो को आजाद रखने के लिये बाबर से किसी प्रकार की कोई सन्धि न की जाय बाबर के आक्रमण के समय चन्देरी का परिकोटा सुरक्षित नही रह सका और वह तोपो के द्वारा नष्ट कर दिया गया हजारो की संख्या में राजपूत सैनिको ने लडते हुये अपने प्राणो की आहुत हुई और वहाँ की औरतो में जौहर वृत किया इस विजय के पश्चात बाबर दिल्ली लौट गया । चन्देरी राज्य की स्थापना 10वीं शताब्दी में हुई थी और तभी इसका सुदृढ़ दुर्ग निर्मित हुआ यह दुर्ग प्रतिहार नरेशो के नियन्त्रण में रहा इस दुर्ग के पूर्व में एक कृत्रिम झील है जिसका नाम कीर्ति सागर है। सम्भवतः इसका निर्माण कीर्तिपाल ने कराया था तथा यहाँ के दुर्ग का नाम कीर्ति दुर्ग है दुर्ग के चारो ओर चार मील लम्बा परिकोटा है।

तेरहवीं शताब्दी में चन्देरी का पतन 5 बार हुआ दिल्ली और मालवा

के सुल्तानो ने इस दुर्ग में अपना अधिकार किया यहाँ अनेक स्थलों में मुस्लिम वास्तु शिल्प के दर्शन होते है मालवा के सुल्तानों ने दिल्ली से स्वतन्त्र होकर अपनी स्वतन्त्र राज्य सत्ता यहाँ स्थापित की और 30 वर्षो तक लगातार शासन किया यहाँ का स्वतन्त्र प्रशासक महमूद खिलजी था उसके शासन के दौरान अनेक सुन्दर इमारतों का निर्माण यहाँ हुआ सन् 1445 में उसने कुशल महल का निर्माण कराया इसमें चार कक्ष थे, सात छज्जे, एवं अनेक मन्दिरों के अवशेष उपलब्ध होते है। इस महल की ऊँची-ऊँची दीवाले है इसमें अनेक झरोखे लगे हुए है इसी के समीप जामा मस्जिद, और बादल महल, दुर्ग वास्तु शिल्प, के उत्कृष्ठ नमूने है इसी स्थल पर अनेक मकबरे भी है जिनका निर्माण गुजराती शैली पर हुआ है। बाबर के पश्चात 7 बार यहाँ युद्ध हुए थे युद्ध मुस्लिम अफगान राजपूत और अंग्रेजों से हुए यहाँ पर अनेक स्थल युद्ध स्मारक के रूप में उपलब्ध होते है तथा इसी के समीप जैन तीर्थाकरों की मूर्तियाँ उपलब्ध होती है ये खाडी मुद्र में है और तीन मूर्तियाँ बैठी मुद्र में है ये मूर्तियाँ एक गुफा में है।

चन्देरी कभी एक वैभवशाली नगर था तथा यहाँ से बडे-बडे यात्री और व्यापारी रहा करते थे उनके माकान और महल जिन्हे हवेली के नाम से पुकारा जाता था आज भी उपलब्ध है इस स्थान में रेशम और जरी की साड़ियाँ बहुत अच्छी किस्म की बनती थीं इसके अतिरिक्त भी कपड़े का बहुत सुन्दर कार्य होता था कपडे के लिये यह स्थान दूर-दूर तब प्रसिद्ध था चन्देरी के दर्शनीय स्थल निम्नलिखित है-

1. चन्देरी के दुर्ग अवशेष
2. चन्देरी दुर्ग के प्रवेश द्वार
3. कुशक महल
4. बादल महल
5. कीर्ति सागर
6. युद्ध स्मारक
7. चन्देरी बस्ती के अवशेष
8. जैन तीर्थाकंरो की प्रतिमाये [42]

26 छतरपुर दुर्ग :- छतरपुर रियासत बहुत प्राचीन रियासत नही है पहले यह स्थान पन्ना राज्य के अन्तर्गत था 18 वीं शताब्दी के अन्त में छतरपुर रियासत को अलग राज्य का दर्जा दे दिया गया इसके प्रथम शासक सोने सिंह पवार थे पहले इस वंश के व्यक्ति पन्ना महराज हिन्दूपत के यहाँ नौकरी किया करते थे बिक्रमी संबत 1834 में हिन्दूपत का स्वर्गवास हो गया

इनके पुत्र सरनेश सिंह राजनगर में निवास करते रहे पन्ना राज्य की व्यस्था कुँवर सोने शाह किया करते थे उन्हे अलग होने का अवसर प्राप्त हुआ और उन्होने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया कई राजनीतिक कारणो से बिक्रमी संबत 1863 तक छतरपुर रियासत का महत्व बढ़ गया। इस समय इस रियासत मं 151 गाँव थे। सोनेशाह की मृत्यु बिक्रमी संबत 1873 में हुई उसके बाद इनकी सन्धि अंग्रेजो से हुई यह सन्धि राजा प्रताप सिंह और अंग्रेजो के मध्य बिक्रमी संबत 1874 में हुई तथा राजा प्रताप सिंह को राजा बहादुर की पदमी मिली प्रताप सिंह की मृत्यु के पश्चात उनकी विधवा रानी शासन का प्रबन्ध देखती थी तथा उनके प्रबन्ध के लिये अंग्रेज सरकार ने एक अधिकारी भी नियुक्ति किया था छतरपुर में अनेक स्थल दर्शनीय है–

1. दुर्ग की प्राचरी
2. दुर्ग के आवासीय महल
3. धर्म स्थल
4. जलाशय
5. दुर्ग के प्रवेश द्वार

27 पन्ना दुर्ग :– पन्ना दुर्ग भी मध्यकालीन दुर्ग की श्रेणी में आता है महाराजा छत्रशाल ने बिक्रमी संबत 1738 में पन्ना को अपनी राज्य की राजधानी बनाया और यहीं पर एक दुर्ग का निर्माण किया पन्ना का प्राचीन नाम परना है। पन्ना नगर के पश्चिम में किलकिला नदी दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित होती है इस नदी के बाये तट पर श्री पद्मा देवी का एक छोटा सा मठ है इस मठ के उत्तर की ओर एक पुरानी बस्ती है उसे पुराने पन्ना के नाम से जाना जाता है पूर्व की ओर किलकिला नदी का जल प्रपात है यहाँ पर निवास करने वाले भगवती पुजारी के पास प्राचीन दस्तावेज हैं जिसमें इस नगर का नाम परना लिखा है।[43]

कहते है यह स्थान सतयुग से प्रसिद्ध था इसी स्थान से राजा दक्ष ने यज्ञ किया था यहाँ चह वेदी बनी हुई है जिसमें गिरकर सती ने अपने प्राणो की आहुत दी थी अब यह कुण्ड के रूप में परिणित हो गया है इसका पानी सदैव गरम रहता है यह स्थल मण्डूप ऋषि की तपस्थली थी। इस स्थान की ओर कहते है पन्ना में गुरू प्राणनाथ ने प्रणामी धर्म का शुभारम्भ किया था प्रणमी धर्म के ग्रन्थ कुलजम ने पन्ना की बडी प्रशंसा की गयी है तथा इस सन्दर्भ में यह श्लोक दृष्टब्य है।

पद्मावती केन शरदे, विंध्य पृष्ठ विराजते।
इन्द्राक्षी नाम सादेवी, भविष्यति कलौ युगे।।[44]

इस प्रकार के ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते है कि प्राचीन काल में पन्ना चेदि राज में था उसके पश्चात यह चन्देलो के अधिकार में रहा सम्राट अकबर और जहाँगीर के युग तक यह राज्य गौडे के अधिकार में रहा गौडो के पतन के पश्चात पन्ना मुगल शासन के आधीन हो गया छत्रशाल ने अपने पराक्रम से इस क्षेत्र को विजित किया और इसे अपने राज्य की राजधानी बनाया महमूद गजनबी ने अनेक मन्दिरों को नष्ट किया था उनका उद्धार छत्रशाल एवं अन्य बुन्देला शासकों ने कराया।

छत्रशाल ने जिस सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण कराया वह मिश्रित वास्तु शिल्प का उत्कृष्ट नमूना है पहले यह नगर प्राचीर में बेष्ठित था तथा नगर में प्रवेश करने के लिए अनेक द्वार थे इसके अतिरिक्त नगर के अन्दर अनेक आवासीय महल उपलब्ध होते हैं जिनमें छत्रशाल और उनके परिवार के लोग रहा करते थे छत्रशाल ने नगर की व्यवस्था इसलिये सुदृढ़ की ताकि वे मुगलों से अपने राज्य को सुरक्षित रख सके छत्रशाल की शिवा जी की भेट सन् 1687 में सतारा में हुई थी। दतिया नरेश शुभकरण से उनकी मलाकात सन् 1670 में हुई इसी वर्ष उनका युद्ध मुगल सेनापति हिदायी खाँ से हुआ उसके पश्चात छत्रशाल राज्यरक्षा के लिये युद्ध 1728 तक बराबर चलते रहे उन्होने अनेक युद्धो में मुगल सेनापतियों और उनके संरक्षको को पराजित किया कुल मिलाकर छत्रशाल ने 63 युद्ध किये बिक्रमी संबत 1744 में उनका विधिवत राज्यारोहण हुआ तथा उनका अन्तिम युद्ध मुहम्मद बंगस से हुआ और उनकी मृत्यु 20 दिसम्बर सन् 1731 दिन शुक्रवार को 4 बजे शाम को हुआ इनकी सन्तानों की संख्या 69 थी किन्तु दो सन्ताने प्रमुख थी इन्होने अपने बडे पुत्र हृदयशाह को पन्ना का राज्य सौपा और छोटे पुत्र जगतराय को जैतपुर का राज्य सौपा। पन्ना में निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है–

1. पन्ना दुर्ग के अवशेष
2. छत्रशाल और उनके वंशजो के महल
3. जुकिल किशोर का मन्दिर
4. गुरू प्राण नाथ का मन्दिर
5. बलदाऊ जी का मन्दिर
6. श्री पदमावती देवी का मन्दिर
7. राजा दक्ष की यज्ञ वेदी
8. विभिन्न जलाशय

28 सिंगौरगढ़ का दुर्ग :– सिंगौरगढ़ गौंड वशी नरेशो का शक्तिशाली केन्द्र था जब दिल्ली में तुर्को और मुगलों का शासन सुदृढ़ हो

रहा था उस समय बुन्देलखण्ड के दक्षिण पूर्वी भाग में गौंड वंशी नरेशों का राज्य था इस वंश के अनेक नरेश हुये गढ़ा मंगला दुर्ग में गौंड वंशीय नरेशो की एक वंशावली उपलब्ध हुई। यह वंशावली यहाँ के मोती महल के अभिलेख में है। इस वंश का सबसे शक्तिशाली नरेश संग्रामशाह था जो अत्यन्त क्रूर और दुष्ट स्वाभाव का था इसने अपने पिता की भी हत्या कर ली थी तथा इसने बाहु बल से 52 गढ़ो पर विजय प्राप्त की थी इस वंश का शक्तिशाली शासक बन गया था दमोह जिला भी स्थित सिगौंर गढ़ इसी के अधिकार में था। संग्राम शाह का देहान्त बिक्रमी संबत 1587 तदानुसार सन् 1598 में हुआ।

पिता की मृत्यु के पश्चात संग्राम शाह का पुत्र दलपतिशाह राज्य का उत्तराधिकारी बना उसने अपना निवास स्थल जबलपुर में गुढ़ा दुर्ग बनाया किन्तु कुछ समय बाद दलपतिशाह दमोह जिले के सिंगौंर गढ़ में रहने लगा उसने सिंगौर गढ़ के दुर्ग को मजबूत किया और उसका विस्तार किया । दलपतिशाह का विवाह कालिंजर की राजकुमारी राजाकीर्ति सिंह की पुत्री रानी दुर्गावती से हुआ था। विवाह के कुछ दिनो के पश्चात रानी दुर्गावती विधवा हो गयी इस समय उसका पुत्र वीर नरायण 3 वर्ष का था।

मुगल सम्राट अकबर ने अपने सेनांपति ख्वाजा अब्दुलमजी कुल्फ आसफ खाँ को गौंडवाने में आक्रमण करने के लिये भेजा रानी दुर्गावती का यह संग्राम सिंगौरगढ़ से चार मील दूर संग्रामपुर में होता रहा । इस युद्ध में पहले आसफ खाँ हारा किन्तु आसफ खाँ की सहायता के लिए मुगल सेना के आ जाने के कारण रानी दुर्गावती पराजित हुई और वीरगति को प्राप्त हुई।[45] रानी दुर्गावती की मृत्यु के पश्चात यह दुर्ग मुगलो के आधीन हो गया और मुगलो ने इस दुर्ग को मनमानी ढ़ग से लूटा इस दुर्ग में निम्नलिखित दर्शनीय है–

1. दुर्ग का परिकोटा
2. दुर्ग का प्रवेश द्वार
3. मुगलो और गौडो के युद्ध स्मारक
4. संग्रामशाह और दलपतिशाह के आवासीय महल
5. जलाशय

29 राजनगर दुर्ग :– यह स्थल पन्ना के सन्निकट है और महोबा खजराहो मार्ग से जुडा हुआ है हमहराजपुल मलहरा और बारीगढ़ से इस दुर्ग तक पहुँचा जा सकता है पहले यह दुर्ग चन्देलो के अधिकार में था। चन्देलो के पतन के पश्चात यह दुर्ग गौडों के हाथ में चला गया तत्पश्चात इस दुर्ग

पर तुर्कों और मुगलो का अधिकार रहा जब पन्ना राज्य की स्थापना छत्रशाल के माध्यम से की गयी उस समय यह दुर्ग छत्रशाल के अधिकार में आ गया यह दुर्ग राजगढ़ के नाम से प्रसिद्ध था इस स्थल में धमौनी के मुगल फौजदार से छत्रशाल का युद्ध हुआ इस दुर्ग में मुगल सेनापति बहलोल मारा गया और उसकी सहायता करने वाले जागीरदार जगत सिंह को मौत के घाट उतार दिया और उसका एक सरदार भी घायल अवस्था में भाग गया यह घटना औरंगजेब के शासन काल की सन् 1681 की है इस युद्ध के पश्चात औरंगजेब से छत्रशाल से मित्रता करनी चाही और दक्षिण के लिये सहयोग मागा तथा धमौनी का परगना 500 पैदल सैनिक और 500 सवार रखाने की अनुमति प्रदान की किन्तु छत्रशाल औरंगजेब के प्रलोभन में नही आये और उन्होने औरंगजेब से संघर्ष जारी रखा।[46]

राजगढ़ दुर्ग को उपदुर्ग की संज्ञा दी जा सकती है यह दुर्ग सुरक्षात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण था तथा इसके माध्यम से खजुराहो जाने वाले यात्रियों की भी सुरक्षा की जाती थी। यह दुर्ग ब्रिट्रिशकाल में भी छत्रशाल के वंशजो के हाथ में बना रहा दुर्ग के दर्शनीय स्थल निम्नलिखित है–

1. दुर्ग का प्रवेश द्वार
2. दुर्ग के आवसीय स्थल
3. युद्ध स्मारक
4. दुर्ग के जलाशय

<u>30 बटिया गढ़ दुर्ग :–</u> बटियागढ़ दुर्ग तुर्कों के युग में महत्वपूर्ण स्थान रखता था यह दुर्ग छतरपुर से दमोह और जबलपुर जाने वाले मार्ग में स्थित है वर्तमान समय में यह दुर्ग जीर्ण–शीर्ण अवस्था में है किन्तु उसके भग्नावशेष यहाँ आज भी मौजूद है किसी जमाने में यह दुर्ग कल्चुरियों के आधीन था। कल्चुरियों के पश्चात यह दुर्ग गौंड सम्राज्य का एक अंग बन गया समय–समय पर इस दुर्ग को जीतने के लिये तुर्कों ने अनेक यत्न किये बटियागढ दुर्ग में किले के एक महल में बिक्रमी संबत 1381 का एक अभिलेख उपलब्ध हुआ यह अभिलेख यहाँ के एक महल में था इस अभिलेख में गया सुद्धीन का नाम लिखा है ऐसा लगता है कि गयासुद्धीन तुगलक की ओर से कोई सूबेदार यहाँ निवास करता होगा उसी ने इस महल का निर्माण कराया होगा इससे यह प्रतीत होता है कि बटियागढ़ हिन्दू शासको के हाथ से निकलकर तुर्कों के हाथ में आ गया होगा। इसी स्थान में एक अन्य अभिलेख बिक्रमी संबत 1385 का उपलब्ध होता है इस अभिलेख में मुहम्मद तुगलक का नाम आया है इस समय यह दुर्ग चन्देरी सूबेदार 'जुलचीखाँ' के

अधिकार में था। तथा इसका एक सेनानायक यहाँ रहता था इस समय बटियागढ़ का नाम बडिहाटिन था और दिल्ली का नाम ''जोगनीपुर'' था बटियागढ़ी में अनेक सती स्मारक उपलब्ध होते है जिनसे यह अनुमान लगता है कि तुर्को के पहले यह दुर्ग हिन्दू शासको के हाथ में था तुर्को से पराजित होने के पश्चात यहाँ की महिलाओं ने आत्मरक्षा के लिये जवाहर वृत किया होगा जिनकी स्मृति में ये स्मृति चिन्ह बने होगे।[47] इस दुर्ग में निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है–

1. दुर्ग के भग्नावशेष
2. दुर्ग के आवासीय स्थल
3. दुर्ग में स्थित सती स्मारक
4. दुर्ग का प्रवेश द्वार
5. दुर्ग के धार्मिक स्थल एवं जलाशय

31 बिजावर या जटाशंकर दुर्ग :– बिजावर दुर्ग का निर्माण यहाँ के शासको ने कराया था इस नगर और दुर्ग का संस्थापक विजय सिंह नामक गौंड सरदार ने कराया था यह गढ़ा मण्डला के राजा का नौकर था इस समय इस इलाके में गौंड लोगो का ही राज्य था। बाद में यह क्षेत्र छत्रशाल के अधिकार में आ गया था बिक्रमी संबत 1826 में गुमान सिंह ने यह क्षेत्र अपने चाचा बीर सिंह जी देव को दे दिया था इस समय गुमान सिंह बाँदा और अजय गढ़ के राजा थे बिक्रमी संबत 1850 में बाँदा के प्रथम नवाब अलीबहादुर से चरखारी में बुन्देलो से एक यद्ध हुआ इस युद्ध में बीर सिंह देव मारे गये बिक्रमी संबत 1859 में हिम्मत बहादुर ने इनके पुत्र केसरी सिंह का पक्ष लिया और बिक्रमी संबत 1859 में अलीबहादुर ने उन्हे बिजावर का शासक मान लिया जब अंग्रेजी सत्ता स्थापित हुई उस समय चरखारी तथा छतरपुर राज्य के बीच सीमा विवाद उठ खडा हुआ इसमें केसरी सिंह को काफी नुकसान उठाना पडा केसरी सिंह की मृत्यु के पश्चात रतन सिंह विजावर का उत्तराधिकारी बना विक्रम संमत 1868 में इनसे विजावर राज्य का पृथक सिक्का चलवाया इसकी मृत्यु 1890 में हुई इसके कोई पुत्र नही था इसकी विधवाँ रानी ने खेत सिंह के पुत्र लक्ष्मण सिंह को गोद लिया इसके पश्चात इसका पुत्र भानू प्रताप यहाँ का राजा हुआ 1857 की क्रान्ति में इससे अंग्रेजो की मदद की थी इसलिये इन्हे एक कीमती पगडी और गोद लेने का अधिकार मिला और महराजा की उपाधि दी गयी भानू प्रताप के कोई पुत्र नही था इन्होने ओरछा महराज के पुत्र बिक्रमी संबत 1955 में गोद लिया भानू प्रताप की मृत्यु के पश्चात वह शासक बना बिजावर दुर्ग और

उसके समीप के निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है–

1. बिजावर का दुर्ग
2. बिजावर के आवासीय महल
3. बिजावर के सरोवर (तालाब)
4. जटाशंकर
5. भीमकुण्ड [46]

32 बीरगढ़ दुर्ग :– बीरगढ़ दुर्ग बाँदा जनपद में बदौसा के सन्निकट पतहगंज की एक पहाडी पर स्थित है यह दुर्ग भी अन्य दुर्गों की भाँति प्राचीन दुर्ग है इसका असितित्व चन्देलों के अतिरिक्त बघेलों के शासनकाल में सर्वाधिक रहा कहते है कि बघेला नरेश ब्याघ्रदेव ने सबसे प्रथम बघेलराज्य की स्थापना की थी यह राज्य बिक्रमी संबत 1290 में स्थापित हुआ इस राज्य के संस्थापक व्याघ्रदेव ने मडफा को अपनी राजधानी बनाया और बघेलाबारी और बघेलिन नाम, के दो गाँव बसाये।

बघेल शब्द की व्युत्पत्ति व्याघ्रदेव से ही हुई है ऐसा लोगो का कथन है, पर रीवाँ स्टेट गजेटियर और टॉड राजस्थान में लिखा है कि ये लोग अविहिलवाडा पाटन के चालुक्य या सोलंकी क्षत्रिय राजाओ की एक शाखा है। इनकी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई जाती है कि उत्तरीय गुजरात में चावड क्षत्रिय राज्य करते थे। इन्हे कल्यान के मुवाड राजा ने वि.सं0 796 के लगभग मार भगाया। इससे राजा की गर्भवती रानी भी अपने भाई के साथ, जंगल की ओर भाग गई। वहाँ उसे पुत्र हुआ। रानी ने इसका नाम वनराज रखा। इसी बनराज ने अनहिलवाडा बसाया और इसी से चावड वंश चला। इस वंश में वि0सं0 998 तक राज्य रहा पीछे से चालुक्य लोगो ने इन्हे मार भगाया।[49] इस वंश के द्वितीय नरेश बीर सिंह देव ने बीरगढ़ दुर्ग का निर्माण कराया था और इस दुर्ग के ऊपर एक देवी मन्दिर भी निर्मित कराया था। यह मन्दिर बीरगढ़ की देवी के नाम से विख्यात है इसकी मित्रता तुर्क सुल्तान सिकन्दर लोदी से हुई गौर राजा संग्रामशाह से भी इसके अच्छे सम्बन्ध थे इसके बाद इसका पुत्र बीर भान देव बघेल राज्य का शासक बना जिसमें हुमायुँ को और उसके परिवार को अपने यहाँ आश्रय दिया था इसके बाद यह दुर्ग अकबर के जमाने में रामचन्द्र बघेल के अधिकार में था। रामचन्द्र बघेल ने इस दुर्ग को बाद में सम्राट अकबर को सौप दिया।

कहते है कि बिक्रमी संबत 1304 में तुर्क सुल्तान ने कालिंजर और बीरगढ़ में आक्रमण किया था उस समय यहाँ बघेला राजा और दलकेश्वर

और बलकेश्वर का राज्य था इन दोनो नरेशो ने तुर्क सुल्तान नासिरूद्दीन से युद्ध किया किन्तु इन्हे पराजय का मुख देखना पडा तुर्क सुल्तानो ने कलिंजर और बीरगढ़को मनमाने ढ़ग से लूटा इसके पश्चात जब बघेलो और बुन्देलो के मध्य में सत्ता संघर्ष का शुभारम्भ हुआ उस समय इनके अनेक युद्ध बुन्देलो से हुये ये युद्ध छत्रशाल और उत्तराधिकारियों से हुये।

बीरगढ़ दुर्ग एक पहाडी पर निर्मित हे पहले यह दुर्ग पर कोटे से घिरा हुआ था और इस दुर्ग में प्रवेश करने के लिये एक प्रमुख प्रवेश द्वार तथा अनेक लघु प्रवेश द्वार थे तथा दुर्ग के ऊपर बघेल नरेशो के निवास करने के लिये अनेक महल थे इसके अतिरिक्त सैनिको के रहने के लिये अनेक स्थल थे तथा अनेक धार्मिक स्थल भी थे जिनमें बीरगढ़ की देवी का मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध था इस दुर्ग में निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है–

1. दुर्ग अवशेष
2. बीरगढ़ मन्दिर
3. मगरमुहा के शैल चित्र
4. शकरो जल प्रपात
5. बिल्हरिया मठ
6. बानगंगा
7. हनुमान मन्दिर के भग्नअवशेष
8. बघेलाबारी और बघेलिन के भग्न अवशेष

33 धमौनी दुर्ग :– धमौनी दुर्ग सागर के सन्निकट है यह दुर्ग भी पहले हिन्दू नरेशो के हाथ में था उसके पश्चात यह इलाका और दुर्ग तुर्को और मुगलो के हाथ मं चला गया छत्रशाल के समय मे यह दुर्ग मुगलो के हाथ में सन 1672 में छत्रशाल ने इस दुर्ग को मुगल सरदार खालिक से जीत लिया और उससे 30 हजार रूपये दण्ड के रूप में वसूल किये उसके पश्चात धमौनी का दुर्ग मुगलो के हाथ में पुनः चला गया सन् 1678 में छत्रशाल ने इस दुर्ग पर पुनः आक्रमण किया जब सदरूद्धीन धमौनी का फौजदार था उस समय छत्रशाल ने धमौनी पर आक्रमण किया और उसे जीता यह घटना सन् 1679 की है सन् 1680 में छत्रशाल का युद्ध धमौनी के फौजदार सदरूद्धीन सूर से दोबारा हुआ यह घटना 1680 की है।

धमौनी में ही मुगल फौजदार युद्ध में घायल होकर मारा गया इसका नाम मयानों था इसी समय औरगजेब ने छत्रशाल को एक पत्र लिखा कि वे छत्रशाल को अपने राज्य का मनसबदार बनाना चाहते है उन्हे 5,000 पैदल सेना रखाने की अनुमति प्रदान की गयी थी धमौनी का इलाका

छत्रशाल को देने का प्रस्ताव किया गया था छत्रशाल ने इसे स्वीकार नही किया सन् 1682 में धमौनी का मुगल सरदार स्लाक खाँ था उसका यद्ध छत्रशाल से हुआ उससे धमौनी दुर्ग छत्रशाल ने जीत लिया था किन्तु इसी समय औंरगजेब ने समसेर खाँ को धमौनी का फौजदार बनाया उसमें 1500 घुडसवार और 2000 पैदल सेना के साथ धमौनी दुर्ग में प्रवेश किया। किन्तु वह धमौनी को छत्रशाल से नही छीन पाया इस समय छत्रशाल का राज्य भोलसा और उज्जैन तक पहुँच गया था कुछ समय बाद पुर दिल खाँ को धमौनी का फौजदार बनाया गया इसके स्थान पर शेर अफगान युद्ध के लिये आया अन्त में सन् 1686 में छत्रशाल का धमौनी में युद्ध हुआ और धमौनी छत्रशाल के हाथ में आ गया धमौनी में दुर्ग के दर्शनीय स्थल निम्नलिखित है–

1. दुर्ग क अवशेष
2. दुर्ग के धार्मिक स्थल
3. दुर्ग के आवासी स्थल
4. युद्ध स्मारक
5. दुर्ग के जलाशय
6. दुर्ग के सैन्य स्थल [50]

34 पथरी गढ़ दुर्ग (पाथर कछार दुर्ग) :– पथरी गढ़ दुर्ग चन्देलकालीन दुर्ग है यह दुर्ग फतहगंज से कुछ दूरी पर सतना जनपद में स्थित है इस दुर्ग के सन्दर्भ में जगनिक द्वारा रचित अल्हाखण्ड में षिद वर्णन उपलब्ध होता है यह दुर्ग एक छोटी सी पहाडी पर है और परकोटे से घिरा हुआ है तथा इसमें प्रवेश करने के लिये कई प्रवेश द्वार है तथा दुर्ग के अन्दर अनेक आवासीय महल है और जलाशय है दुर्ग के अन्दर और बाहर हिन्दू और इस्लाम धर्म से सम्बन्धित अनेक धर्म स्थल है जल आपूर्ति के लिये वहाँ अनेक जलाशय हैं तथा दो प्राकृतिक झीले भी है इनमें से एक झील के तट पर यहाँ के नरेशो के नृत्य स्मारक बने हुये है यह दुर्ग राजा परमार्दिदेव के जीवनकाल तक चन्देलो के अधिकार में रहा उसके पश्चात यह दुर्ग तुर्को के अधिकार में आ गया तुर्को के बाद यह दुर्ग मुगलो के अधिकार में आया छत्रशाल के शासनकाल में यह दुर्ग बुन्देलों के आधीन था किन्तु कभी–कभी इस दुर्ग में बुन्देलो और बघेलों के बीच सत्ता संघर्ष होते रहते थे ।

पाथर कछार कालिंजर से 10 मील दूर हैं तथा इसे बरौदा पाथर कछार के नाम से जाना जाता है अंग्रेजो के जमाने में यहाँ के नरेशो की

सन्धि अंग्रेजो से हुई थी। तथा यह रियासत बघेलखण्ड के पोलेटिकल के आधीन थी यहाँ के नरेशवंश वंशीय राजपूत थे छत्रशाल के पुत्र हृदयशाह ने और बाँदा के प्रथम नवाब अलीबहादुर ने इन्हे अपनी सनदे प्रदान की थी। यहाँ के तत्तकालीन राजा मोहन सिंह को बिक्रमी संबत 1864 में तथा अंग्रेजो ने शरण दी थी इनका स्वर्गवास बिक्रमी संबत 1884 में हुआ इनके कोई सन्तान न थी इन्होने अपनी सारी सम्पत्ति अपने भतीजे सर्वजीत सिंह को दे दी सर्वजीत सिंह की मृत्यु बिक्रमी संबत 1924 में हुई इनकी मृत्यु के पश्चात इनके तीसरे पुत्र रामदयाल सिंह ने राज्य पाने का प्रयत्न किया इनके बडे भाई धर्मपाल सिंह जीवित थे इसलिये छोटे भाई को उत्तराधिकारी नही माना गया इनकी मृत्यु के पश्चात राजा छतरपाल सिंह उत्तराधिकारी बने उनका स्वर्गवास बिक्रमी संबत 1931 मं हो गया उसके पश्चात उनके चाचा रघुबर दयाल राज्य के उत्तराधिकारी बने इन्हे राजा बहादुर की पदमी मिली और नौ तोपो की सलामी दी जाने लगी यह पदमी इन्हे बिक्रमी संबत 1935 में मिली तथा इनका स्वर्गवास बिक्रमी संबत 1942 में हुआ इनके कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये ठाकुर प्रसाद सिंह को बिक्रमी संबत 1943 में उत्तराधिकारी चुना गया कुछ लोगो का यह भी कथन है कि छत्रशाल का ननिहाल था और यही उनका बचपन बीता किन्तु इस बात के ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नही होते।[51] दुर्ग में निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है।

1. पाथर कछार के दुर्ग अवशेष
2. आवासीय महलो के अवशेष
3. रक्त दन्तिका मन्दिर
4. गरूण मन्दिर
5. जगन्नाथ स्वामी का मन्दिर
6. मृत्यु स्मारक
7. दो प्रकृतिक झीले
8. विविध जलाशय

बारीगढ़ दुर्ग :– बारीगढ़ दुर्ग भी चन्देल कालीन दुर्ग है इस दुर्ग का वर्णन महाकवि जगनिक द्वारा रचित अल्हखण्ड और चन्दवरदायी द्वारा रचित पृथ्वीराज रासो में उपलब्ध होता है सामरिक दृष्टि से यह दुर्ग अत्यन्त महत्वपूर्ण था इस दुर्ग में महोबा से चन्दला और गौरहार मार्ग से होकर पहुँचा जा सकता वर्तमान समय में इस दुर्ग के भग्नावशेष उपलब्ध होते है। चन्देलकाल में यह दुर्ग पर कोटे से घिरा हुआ था तथा इसमें प्रवेश करने के लिये अनेक द्वार थे तथा दुर्ग के अन्दर सैनिको के रहने की विशेष

व्यवस्था थी और अनेक गुप्त मार्ग भी इसके अतिरिक्त दुर्ग प्रशासको और किलेदार के रहने के लिये अनेक आवासीय स्थल भी थे इस दुर्ग में निम्न विशेषताये थी।

यह दुर्ग पत्थरों के टुकडो से निर्मित है तथा एक छोटी सी पहाडी पर स्थित है इस दुर्ग के प्रवेश द्वार मे लकडी के फाटक लगे थे। जिसके ऊपरी भाग में बडे–बडे कीले ठुके थे दुर्ग में प्रवेश करने के पश्चात डेयोढ़ी और आँगन उपलब्ध होता है। तथा वहाँ महल में प्रवेश करने के लिये अनेक सकरे रास्ते उपलब्ध होते है महल के कमरों में खिड़कियाँ और झरोखे लगे हुये थे तथा ऊपरी मन्जिल पर छज्जे लगे हुये थे और ये छज्जे पत्थर के घोडो से सधे हुये थे महल के कमरो के दरवाजे मेहराबदार थे तथा बाहर दालन थी जो पत्थर के स्तम्भो से सधी हुई थी तथा कुछ कमरों में भी भित्त चित्र बने हुये थे तथा महल के अन्दर अनेक भूधारे भी बने होते थे इसके अलावा अनेक छोट–छोटे चबूतरे बने हुये थे इस प्रकार बारीगढ़ दुर्ग एक महत्वपूर्ण दुर्ग था जिसका सामरिक और प्रशासनिक दृष्टि से महत्व था।[52] इस दुर्ग के निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है–

1. दुर्ग अवशेष
2. दुर्ग के आवासीय स्थल
3. दुर्ग के जलाशय
4. दुर्ग के धर्म स्थल

गौरहार दुर्ग :– गौरहार दुर्ग भी बुन्देलखण्ड का महत्वपूर्ण दुर्ग है पहले यह दुर्ग गौड वंशीय राजाओ के हाथ में था। बाद में यह दुर्ग तुर्को और मुगलो के आधीन रहा इस दुर्ग के समीप एक अन्य दुर्ग भी उपलब्ध होता है जिसे किशनगढ़ नाम से जाना जाता है इस दुर्ग तक पहुँचने के लिये मटौंध, महोबा, और छतरपुर, से मार्ग बने हुये है महाराजा छत्रशाल के समय यह दुर्ग उनके राज्य का एक भाग था तथा यहाँ उनके द्वारा नियुक्त किलेदार रहा करते थे।

छत्रशाल की मृत्यु के पश्चात अजयगढ़ के राजा गुमानसिंह के समय पं0 राजाराम तिवारी भूरागढ़ के किलेदार थे। तथा इनके बाबा विद्यापति तिवारी मलपुरा में रहते थे यह ग्राम चरखारी रियासत में था धीरे–धीरे ये गौरहार के स्वतन्त्र शासक बन गये बाँदा नवाब अलीबहादुर ने गौरहार दुर्ग पर आक्रमण किया था अलीबहादुर इन पर विजय प्राप्त नही कर सका था बाद में ये अली बहादुर की रियासत में लूटपाट करने लगे थे।

जब अजयगढ़ के राजा और अंग्रेजो में सन्धि हो गयी उस समय

अजयगढ़ नरेश को यह जुम्मेदारी दी गयी कि वह राज्य में शान्ति बनाये रखने के लिये गौरहार के शासक राजाराम तिवारी पर दबाव बढाये। इस समय कम्पनी सरकार ने उन्हे पकडने के लिये उन्हे 30 हजार का इनाम रखा राजा के समान जागीर मिलने की शर्त पर इन्होने आत्म सर्मपण दिया बिक्रमी संबत 1864 में इनकी सन्धि अंग्रेजो से हुई इसी समय इन्होने गौरहार को अपनी राजधानी बनाया। इनकी मृत्यु बिक्रमी संबत 1903 में हुई इसके पश्चात इनके पुत्र रूद्र सिंह उत्तराधिकारी बने सन् 1857 की क्रान्ति में इन्होने अंग्रेजो की मदद की थी। जिसके परिणामस्वरूप इन्हे 10,000 रूपये का पुरूस्कार और राव बहादुर की पदमी दी गयी तथा अन्य राजाओ के समान इन्हे गोद लेने का अधिकार मिला इनके पश्चात पं० श्यामली प्रसाद उत्तराधिकारी बने गौरहार दुर्ग में निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है—

1. किशनगढ़ दुर्ग के अवशेष
2. गौरहार नरेशो के आवासीय महल
3. धार्मिक स्थल
4. जलाशय [53]

कदौरा दुर्ग :— यह दुर्ग जालौन जनपद में स्थित है इस दुर्ग में झाँसी और जालौन भी पहुँचा जा सकता है यह क्षेत्र बहुत पहले से रियासत रही है तथा मुगलकाल से यहाँ के किलेदार मुसलमान थे जिनका सम्बन्ध हैदराबाद निजाम से था। तथा इन्हे नवाब का दर्जा प्राप्त था यह क्षेत्र कालपी हमीरपुर रोड पर स्थित है तथा इसकी दूरी कालपी से 27 कि0मी0 और उरई से 55 कि0मी0 है प्राचीन जनसूत्रो के अनुसार यह क्षेत्र कर्दम ऋषि के आश्रम से प्रसिद्ध था तथा उन्हीं ऋषि के नाम पर इस स्थल का नाम कदौरा पडा इस स्थल में प्रत्येक वर्ष की 15 जनवरी को एक बहुत बडा मेला लगता है कदौरा के मुस्लिम शासको के दिल्ली दरबार में अच्छा प्रभाव था तथा इनके सम्बन्ध अंग्रेजो से भी अच्छे बने रहे कहते है कि बाँदाके अन्तिम नवाब अली बहादुर सानी से भी कदौरा के नवाब से अच्छे सम्बन्ध थे तथा उनका अक्सर आना जाना बना रहता था कदौरा के सन्दर्भ में कोई विशेष ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नही होते यहाँ निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है—

1. कदौरा दुर्ग के अवशेष
2. नवाबो के आवासीय महल
3. विविध धर्म स्थल
4. जलाशय

5. कर्दम ऋषि के आश्रम के अवशेष [54]

कुलपहाड दुर्ग :– कुल पहाड भी एक प्राचीन ऐतिहासिक स्थल है तथा यहाँ भी एक प्राचीन दुर्ग है यह स्थल हमीरपुर से दक्षिण पश्चिम की ओर 26 कि0मी0 दूर है कुलपहाड के नामकरण के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि यहाँ एक गाँव कुलुहा पहडियाँ है उसी के नाम पर इस स्थान का नाम कुल पहाड पडा।

इस क्षेत्र में बुन्देला नरेशो के बुन्देला नरेशो के बनवाये हुए अनेक सरोवर है इसमें से अधिकांश शहर के दक्षिणी किनारे में है सबसे प्रसिद्ध सरोवर गैराहा ताल है इस सरोवर के किनारे अनेक धर्म स्थल और भवन बने हुये है तथा इस सरोवर में जल स्तर तक पहुँचने के लिए अनेक घाट बने हुयें है जिनमें पत्थर के सोपान है इस सरोवर के ठीक सामने छोटी सी पहाडी पर सुन्दर दुर्ग बना हुआ था। और कुछ महल बने हुये थे जिनके भग्नावशेष यहाँ उपलब्ध होते है यहीं पर राजा छत्रशाल द्वारा बसायी गयी बस्ती के अवशेष उपलब्ध होते है यहाँ पर कुछ मन्दिरों का जीर्ण–उद्धार किया गया है तथा यहीं की पहाडी पर ईदगाह मस्जिद के ध्वंसावशेष उपलब्ध होते है यहाँ पर एक पहाडी पर कुछ महल उपलब्ध होते है इनमें सबसे प्रसिद्ध महल सेनापति महल है तथा एक मन्दिर विद्याजेन मन्दिर है। तथा दूसरा मन्दिर महराज किशोरी जी का मन्दिर है यहाँ के दुर्ग में एक जल सरोवर है जिसमें रानिया स्नान किया करती थी इस दुर्ग में दो गुप्त मार्ग है जो चरखारी और सुमरा दुर्ग से जुडे हुये है इस स्थल मं जल बिहार का मेला एक सप्ताह तक लगता हैं तथा इसी स्थल से कुछ दूरी पर सामरा पीठशाह की मजार है जो पहाड की चोटी पर है यहाँ पर अंग्रेजो के बनवाये हुये गिरजाघर है जिसमें पादरी रहा करते है। इस दुर्ग के स्थल निम्नलिखत दर्शनीय है–

1. दुर्ग के अवशेष
2. गैराहा ताल जलाशय
3. ईदगाह और मस्जिद
4. सेनापति महल
5. विद्यार्जन मन्दिर
6. किशोरी जी का मन्दिर
7. दुर्ग का जलाशय और बीहड
8. समरशाह की मजार [55]

तालबहेट दुर्ग :— तालबहेट दुर्ग ललितपुर जनपद मे है यह स्थल झाँसी सागर मार्ग पर स्थित है तथा झाँसी से 31 मील दूर है तथा इस स्थल में एक रेलवे स्टेशन भी है इसका नामकरण ताल अथवा सरोवर के नाम हुआ है यहाँ पर झील की आकृति का एक सरोवर है इस सरोवर से गाँव के लोग सिचाई किया करते है इस क्षेत्र के लोग गौंडवानी भाषा बोलती है प्राचीन किमिदन्ती के अनुसार यह स्थल जिडियाखेरा के नाम से प्रसिद्व था और सरोवर के किनारे यहाँ एक प्राचीन नगर बसा हुआ था इस नगर में चन्देलो का शासन था जिनके भग्नावशेष अभी भी उपलब्ध होते है सन् 1618 में यह दुर्ग भारतशाह के अधिकार में आ गया जो चन्देरी के नरेश थे उन्होने यहाँ एक सुन्दर दुर्ग का निर्माण कराया जिसके भग्नावशेष यहाँ उपलब्ध होते है। इसी नरेश ने यहाँ एक सन्दर तालाब का निर्माण कराया और अपने दुर्ग के चारो ओर एक ऊँचे पर कोटे का निर्माण कराया इनके पुत्र देवीसिंह बुन्देला ने सिंह बाग का निर्माण कराया और किले में नरसिंह मन्दिर भी बनवाया वर्तमान समय मे इस मन्दिर के क्षेत्र को नरसिंह पुरी के नाम से जाना जाता है। इस मन्दिर के दीवालो में अनेक प्रकार चित्र जंगली जानवरो पेड पौधो के बने हुये है यहाँ से 6 मील पश्चिम पर अढ़ोना नाम का एक गाँव है जहाँ दो प्राचीन मन्दिर विष्णु और महादेव के बने है और इन मन्दिरो मे एक अभिलेख भी उपलब्ध हुआ है। जिसे पढ़ा नही जा सका दुर्ग के ऊपर एक बाउली उपलब्ध हुई है जिसका जल कभी सूखाता नही है जो बहुत अधिक गहरी है जिसकी थाह कोई नही ले पाया इस दुर्ग में निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है—

1. चन्देल शासको के भग्नावोष
2. भारतशाह के दुर्ग के भग्नावशेष
3. दुर्ग की प्राचीर
4. तालबेहट सरोवर
5. नरसिंह मन्दिर
6. भदोना का विष्णु मन्दिर
7. महादेव मन्दिर
8. दुर्ग की बावली [56]

देवगढ़ दुर्ग :— ताल बेहट के सन्निकट ललितपुर जनपद में यह दुर्ग स्थित है तथा यह स्थल ललितपुर के 20 मील दूर है तथा यहाँ रेलवे स्टेशन जखलौन से भी पहुँचा जा सकता है जखलौन से यह दुर्ग नौ मील की दूरी पर है यह दुर्ग और शहर बेतवा नदी के तट पर है तथा यहाँ का

एक दुर्ग पहाडी में बना हुआ है जिसकी ऊँचाई भूमि से 300 फिट है तथा इस दुर्ग का निर्माण बलुआ पत्थर से हुआ है। दुर्ग के अवरोहण के समय व्यक्ति को सुन्दर प्राकृतिक दृश्य दिखलाई देते है यहाँ पर बेतवा नदी का जल गहरे हरे रंग का है और पानी के बीचो बीच द्वीप जैसा बना दिखलायी देता है।

इस क्षेत्र का ऐतिहासिक महत्व अति प्राचीन है यह क्षेत्र पहले गुप्त शासको के अधिकार में रहा बाद में यह क्षेत्र गुर्जर प्रतिहारों के अधिकार में रहा फिर यह क्षेत्र गौंडो के आधीन रहा उसके पश्चात यह क्षेत्र तुर्क और मुगल शासन के अर्न्तगत कालपी और मालवा क355 सूबो के अन्तर्गत रहा उसके पश्चात यह बुन्देलो और मराठो ने शासन किया अन्त में यहाँ अंग्रेजो का राज्य रहा इस क्षेत्र में गुप्त कालीन धार्मिक स्थलो के अवशेष उपलब्ध होते है। इसमे विष्णु मन्दिर तथा प्राचीन जैन मन्दिर शामिल है यहाँ पर कोई ऐसे अभिलेख उपलब्ध नही होते जिनसे इन स्थलो पर कोई ऐसे अभिलेख उपलब्ध नही होते जिनसे इन स्थलो का निर्माण काल ज्ञात किया जा सके किन्तु यह निश्चित है कि सभी धर्म स्थल आज से 14 वर्ष पूर्व निर्मित हुये थे इसमें सागर माराह मन्दिर जलाशय के सन्निकट बना हुआ है जिसे चट्टान काट कर बनाया गया है। यह मन्दिर अब भग्न हो चुका है केवल इसकी चार दीवारे दिखलायी देती है इस मन्दिर में पहुँचने के लिये एक प्रवेश द्वार था तथा उसके पश्चात मुख्य मन्दिर था यहीं पर गजेन्द्र मन्दिर भी उपलब्ध होता है जिसमें भगवान विष्णु की चर्तुमुखी मूर्ति है। इसी के दक्षिण में विष्णु की एक शेष मूर्ति उपलब्ध होती है जिनके पैरो के पास लक्ष्मी जी की मूर्ति है इसके पश्चात अनेक मूर्तियों का समूह है जिनका विवरण बाल्यमीकि रामायण में उपलब्ध होता है मूर्तिकारो ने मूर्तियों और धार्मिक स्थलो का निर्माण कराया था ये धर्म स्थल गुप्त काल के प्रतीत होते है।[57]

हिन्दू मन्दिर के अतिरिक्त यहाँ जैन मन्दिर भी उपलब्ध होते है ये जैन मन्दिर दुर्ग के अन्दर है तथा एक पहाडी पर बने हुये है तथा इस पहाडी का नाम करनाली पहाडी है। इन मन्दिरो में 31 मन्दिर अच्छी स्थित में नही है ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर ये मन्दिर गुप्तकाल के बाद निर्मित हुये है इन मन्दिरो में 100 से अधिक जैन मूर्तियाँ है ये अधिकांश मूर्तियाँ जैन तीर्थकारों की है कुछ मूर्तियाँ मन्दिर में स्थापित है तथा कुछ मूर्तियाँ दिवाली गढ़ी हुई है तथा कुछ मूर्तियाँ स्तम्भो मे है इन प्रतिभाओ का निर्माण अयग्य पट्टा और प्रतिमा सरोत्त भद्रिका के अनुसार हुआ है इन मन्दिरों में एक

प्रार्थना कक्ष भी है जिनमें छः छः स्तम्भ लगे है और इस कक्ष के किनारे एक मंच भी है इस मंच में अनेक जैन तीर्थकारों की मूर्तियाँ है यही पर राजा भोज देव के समय का एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है यह अभिलेख 862 ई० का है।

यही की नरही घाटी में अनेक धार्म स्थल उपलब्ध हुये है। इसमें सप्तमात्रिका मन्दिर सुप्रसिद्ध है तथा यही पर एक सूर्य मन्दिर भी उपलब्ध हुआ है जिसमें भगवान सूर्य अपने हाथो में कमल का फूल लिये हुए है तथा इसी के पास गुप्तकालीन अभिलेख भी है जो सात पंक्तियों का है।

देव गढ़ में सुप्रसिद्ध धार्मिक स्थल विष्णा मन्दिर है जिसे चट्टान काटकर बनाया गया है यह मन्दिर दुर्ग के मार्ग पर है तथा इसी के सन्निकट गुफा के अन्दर सिद्ध की गुफा उपलब्ध होती है। तथा यही पर महिषासुर मर्दनी का मन्दिर भी है राजघाटी के समीप आठ पंक्तियों का एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है यह संबत 1154 चैत्य माह की द्वादशी का है तथा एक और अभिलेख बिक्रमी संबत 1345 का है जिससे यह ज्ञात होता है कि राजावीर ने इस सन् में कुरार को जीता था तथा एक अभिलेख विक्रमी संबत 1808 का उपलब्ध होता है। यह अभिलेख धरमन्ध सिंह का है यह जखलौन बुन्देला का उत्तराधिकारी था जखलौन बुन्देला की मृत्यु 1794 में हुई थी नदी के तट पर गाँव के सन्निकट बुन्देलो का बनवाया एक मन्दिर भी है।[58] इस दुर्ग के निम्नलिखित स्थल दर्शनीय है–

1. दुर्ग के अवशेष
2. गजेन्द्र मोक्ष मन्दिर
3. दशाऔतार मन्दिर
4. सप्तमात्रिका मन्दिर
5. सूर्य मन्दिर
6. बुन्देलो के बनवाये मन्दिर
7. आवासीय स्थल
8. युद्ध स्मारक

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1— कालंजर महात्म्य, अध्याय 1

2— वामन पुराण 76/14

3— महाभारत (आरण्यक पर्व) 3—83:54

4—डॉ0 सुशील कुमार सुल्लेरे, अजयगढ़ और कालंजर की देव प्रतिमांए पृ0 सं0 —18,

5— ऋक् परिशिष्ट, ऋग्वेद —10.75

6— फोर्ट ऑफ इण्डिया, पृ0 सं0 120 से—132 तक

7— बोस,एन0 एस0; हिस्ट्री ऑफ दी चन्देलराज, पृ0 171

8— कनिघंम आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग 21, पृ0 46,

9— एपिग्राफिका इण्डिका, भाग 1, पृ0 सं0 328,

10— एपिग्राफिका इण्डिका, भाग 1, पृ0 सं0 330—338,

11— कनिघंम सर्वे इण्डिया एनुअल रिपोर्ट, 1935—36, पृ0 91—93

12— कनिघंम आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग 21, पृ0 23,

13— इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग 1, पृ0 112,

14— एपिग्राफिका इण्डिका, भाग 1, पृ0 सं0 325,

15— हिस्ट्री ऑफ दी चन्देलराज, पृ0 134,

16— एपिग्राफिका इण्डिका, भाग 27, पृ0 सं0 99—107,

17— इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग 5, पृ0 132—33,

18— फोर्ट ऑफ इण्डिया, पृ0 सं0 128—131,

19— बाँदा गजेटियर संस्करण 1977, पृ0 सं0 301—303,

20— बाँदा गजेटियर 1977, पृ0 सं0 298—99,

21— बाँदा गजेटियर 1977, पृ0 सं0 303

22— बाँदा गजेटियर 1977, पृ0 सं0 286

23— वही पृ0 सं0 287,

24— बाँदा गजेटियर 1977, पृ0 सं0 285—86,

25— बाँदा गजेटियर 1977, पृ0 सं0 280

26— बाँदा गजेटियर 1977, पृ0 सं0 297

27— हमीरपुर गजेटियर , पृ0 सं0 272 से 277 तक,

28— फोर्ट ऑफ इण्डिया, पृ0 सं0 134—36,

29— आल्हखण्ड सिरसागढ़ की लडाई,

30— हमीरपुर गजेटियर , पृ0 सं0 268,

31— हमीरपुर गजेटियर , पृ0 सं0 264—65,

32— बाजपेयी, कृष्णदत्त युग—युगों में उत्तर प्रदेश, पृ0 —43,

33— फोर्ट ऑफ इण्डिया, पृ0 सं0 149—151,

34— फोर्ट ऑफ इण्डिया, पृ0 सं0 140—143,

35— झाँसी गजेटियर , पृ0 सं0 334,

36— झाँसी गजेटियर , पृ0 सं0 340,

37– जालौन गजेटियर , पृ0 सं0 300–1,

38– जालौन गजेटियर , पृ0 सं0 291–95,

39– फोर्ट ऑफ इण्डिया, पृ0 सं0 153–55,

40– कृष्णकवि, बुन्देलखण्ड का शोधपूर्ण इतिहास, ओरछाखण्ड, संस्करण 1980, पृ0 सं0 106,

41– पं0 गोरे लाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास विक्रमी संबत 1990 पृ0 सं0 25–26–28,

42– फोर्ट ऑफ इण्डिया, पृ0 सं0 175–76,

43– पं0 गोरे लाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास विक्रमी संबत 1990 पृ0 सं0 296–97,

44– कृष्णकवि , बुन्देलखण्ड के कवि विक्रमी संबत 2025, पृ0 सं0 14,

45– पं0 गोरे लाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास विक्रमी संबत 1990 पृ0 सं0 102,

46– कृष्णकवि , बुन्देलखण्ड के कवि विक्रमी संबत 2025, पृ0 सं0 62,

47– पं0 गोरे लाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास विक्रमी संबत 1990 पृ0 सं0 79,

48– वही,– पृ0 सं0 295–96,

49– वही,– पृ0 सं0 92,

50– कृष्णकवि , बुन्देलखण्ड के कवि विक्रमी संबत 2025, पृ0 सं0 58–63,

51– पं0 गोरे लाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास विक्रमी संबत 1990 पृ0 सं0 306–7,

52– जनकवि आल्हखण्ड, बारीगढ़ की लडाई

53– पं0 गोरे लाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास विक्रमी संबत 1990 पृ0 सं0 305–6,

54– जालौन गजेटियर , पृ0 सं0 290–1,

55– हमीरपुर गजेटियर , पृ0 सं0 271–72,

56– झाँसी गजेटियर , पृ0 सं0 262–63,

57– Brown ,P. Indian Architecture (Buddhest and hindu periods),(Bombay,1956),P.61,

58– झाँसी गजेटियर , पृ0 सं0 335–37,

पंचम अध्याय

- उपसंहार
- बुन्देलखण्ड़ के महत्व पूर्ण दुर्ग।
- शोध प्रबन्ध का शीर्षक।
- शोध प्रबन्ध का उद्देश्य।
- शोध प्रबन्ध की विषय समाग्री।
- शोध प्रबन्ध के लिए अपनायी गयी विधि ।
- शोध प्रबन्ध का मूल्यांकन।
- शोध के परिणाम।
- शोध प्रबन्ध की उपयोगिता।
- आगामी शोध छात्रों के लिए सलाह।

कालिंजर दुर्ग की शिव प्रतिमां

अध्याय पंचम
उपसंहार

बुन्देलखण्ड अति प्राचीन काल से अत्यन्त महत्वपूर्ण एतिहासिक स्थल रहा है क्योंकि यहाँ अनेक स्थलों में पुरातात्विक महत्व के पुरावशेष उपलब्धा होते है। अनेक महाग्रन्थों में इस क्षेत्र के सम्बन्ध में अनेक विवरण उपलब्धा होते है। कालिंजर, ओरछा, कालपी, खजुराहो, चित्रकूट, आदि यहाँ के महत्वपूर्ण स्थल है। किन्तु यह क्षेत्र क्षेत्र बुन्देलखा खाण्ड के नाम से सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ क्योंकि इस क्षेत्र में अनेक बुन्देला नरेशो ने सैकडों वर्षो तक शासन किया बुन्देलखण्ड का प्राचीनतम इतिहास वैदिक काल से प्रारम्भ होता है। इसके पहले यहाँ अनायाँ की बस्तियों थी जब यहाँ आर्य आये उस समय इनके युद्ध अनार्यो से हुए और आनार्य आर्यो से पराजित हुए।

कतिपय इतिहासकारों ने बुन्देलखण्ड को अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया है और उसका सीमांन किया है। प्रमुखतः बुन्देलखण्ड के उत्तर में यमुना नदी दक्षिण में नर्मदा नदी पूर्व टॉस नदी और पश्चिम में चम्बल नदी है। यहाँ सर्वत्र विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियाँ है इसके प्राचीन नाम दशाण, बज्र, और जेजाक भुक्ति, आदि थे। बाद में इसका नाम विन्ध्येलखण्ड, अथवा बुन्देलखण्ड, कहलाया इस भूमि में आल्हा, ऊदल वीर सिंह जी देव रानी दुर्गावती छत्रसाल जैसे महापुरूष पैदा हुए महारानी लक्ष्मीबाई ने भी इसे गरिमा प्रदान की है। कतिपय विद्वानों ने इसको सीमांकन को संकुचित किया है और कतिपय विद्धानो ने उसके सीमांकन को विस्तृत किया है अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों में सीमांकन अलग–अलग दिया हुआ है। बुन्देलखण्ड के पूर्व में इलाहाबाद और मिर्जापुर जनपद इसकी सीमा निर्धारित करते है। पूर्व में ही रीवाँ राज्य तथा बनारस के सन्निकट बुन्देलानाले तक इसकी सीमांए है पश्चिम में ग्वालियर के सिन्धियाँ राज्य, भोपाल, राज्य और मालवा तक इसकी सीमाएं है। इसके उत्तर में कानपुर इटावाँ तथा फतेहपुर जनपद आते है तथा दक्षिण में नर्मदा नदी तक इसकी सीमाएं है इसका क्षेत्रफल अड़तालिस हजार तीन सौ दस वर्ग मील है।

बुन्देलखण्ड का निर्धारण हम भौगोलिक संरचना के आधार हम करते है। यह प्रदेश चार नदियों से धिरा हुआ है सर्वत्र विन्याचल की पर्वत श्रेणियाँ है और कहीं–कहीं मैदानी भाग भी है। अनेक विद्वान इसका सीमांकन सांस्कृतिक और भाषायी आधार पर करते है। इस क्षेत्र में बुन्दली भाषा की उप भाषाये बोली जाती है। ये भाषायें विभिन्न नामों से जानी जाती है तथा यहाँ के निवासी वेष–भूषा और संस्कृति की दृष्टि से अपनी अलग पहचान रखते हे इसलिए कुछ लोग भाषा और संस्कृति की दुष्टि से बुन्देलखण्ड का निर्धारण करते हैं अनेक विद्धान ऐसे भी है जो राजनीतिक

दृष्टि से बुन्देलखण्ड का सीमांकन करते है। इस क्षेत्र में चन्देल कल्चुरि गौंड़ और बुन्देले नरेशों ने राज्य किया इसलिए इनके राज्य की सीमाओं को बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत रखा गया है। बुन्देलखण्ड का नाम करण भी अनेक एतिहासिक साक्ष्यों को ध्यान में रखकर किया गया हैं चूकिं यहाँ विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियां हैं इसलिए इसका पूर्व नाम विन्ध्येलखण्ड था जो बाद में वर्णित हो कर बुन्देलखण्ड हो गया। चन्देलो के काल में से जेजाक भुक्ति और चेदि नरेशो के यहाँ शासन करने के कारण इस देश को चेदि देश के नाम से पुकारा गया। महाभारत काल में इस देश के पश्चिमी भाग कोक दशाण नाम से पुकारा गया किन्तु इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध बुन्देलखण्ड नाम से ही मिली।

प्राकृतिक संरचना की दृष्टि से बुन्देलखण्ड विषम प्राक्रतिक संरचना वाला देश हैं। यहाँ पर कहीं उपजाऊँ भूमि है। कहीं पठार है कहीं मरूस्थल हैं कही गहराई है तो कहीं ऊँची पर्वत श्रेणियाँ है। यहाँ अनेक स्थलों में खनिज सम्पदा और बन सम्पदा उपलब्ध होती है। यहाँ प्राप्त होने वाली मिट्टियों में मार,रौनी मार, काबर, पडुवाँ, किस्म अडवाल दोपम मिट्टियाँ उपलब्ध होती है।

बुन्देलखण्ड़ में अनेक पर्वत श्रेणियाँ हैं। प्रमुख रूप से विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी पन्ना पर्वत श्रेणी भाडेर श्रेणी, कैमूर पर्वत श्रेणी आदि प्रमुख पर्वत श्रेणियाँ है इसके अतिरिक्त अनेक नदियाँ यहाँ प्रवाहित होकर यहाँ जल आपूर्ति करती है। प्रमुख नदियों में यमुना, नदी चम्बल नदी, बागे नदी, पैशुनी नदी, टौस नदी, महा नदी, नर्मदा नदी, आदि यहाँ की प्रमुख नदियाँ हैं।

बुन्देलखण्ड़ में अनेक भागों में जंगल हैं जहाँ विविध प्रकार के बन उपलब्ध होते है। इन जंगलों के मध्य आदिवसियों की अनेक बस्तियाँ है। जो साल सागौन, आदि अनेक प्रकार की इमारती और जलाऊ लकडियाँ उत्पन्न होती है निसे अनेक वस्तुओं का निर्माण होता है। इन बनो में अनेक प्रकार के जीव जन्तु भी निवास करते हैं। शेर, चीता, सियार, तेदुंआ, जंगली कुत्ता, के अतिरिक्त जल में रहने वाले जीव और आकाश मे रहने वाले पक्षी भी यहाँ उपलब्ध होते हैं।

बुन्देलखण्ड में अनेक प्रकार की खनिज सम्पदा उपलबध होती है। जिससे केन्द्रीय सरकार उत्तर प्रदेश सरकार और मध्य प्रदेश सरकार को पाँच हजार करोड़ का राजस्व प्रति वर्ष मिलता हैं यहाँ कलई, चुना, इमारती लकड़ी इमारती पत्थर लोहा ताँबा हीरा और कोयला उपलब्ध होते है। हीरा यहाँ के सर्वाधिक मूल्यवान सर्वाधिक खनिज सम्पदा है जो पन्ना में उपलब्ध होती है।

इस प्रदेश में अनेक ऋतुयें होती है जो यहाँ की कृषि उपज को प्रभावित करती है। इन ऋतुओं को ग्रीष्म ऋतु, वषा ऋतु और जाड़े की ऋतुओं में

विभाजित किया जाता है। प्राकृतिक सरंचना और मौसम के कारण उत्पन्न होने वाले पदार्थो से अपना जीवन यापन करते है। कभी—कभी अनावृष्टि और बहुवृष्टि से यहाँ के निवासियों को हानि उठानी पड़ती है। इस क्षेत्र में विषय प्राकृतिक परिस्थितियों के वंशीभूत भी होकर वह नाना प्रकार के अपराध भी करता है यहाँ के प्राकृतिक सरंचना ने राजनीति को भी प्रभावित किया हैं यहाँ नागों कुशवाहा वंश के क्षत्रियों, वत्स्यों कल्चुरियों चन्देलों ओर बुन्देलो ने सैकेडत्रो वर्षो शासन किया हैं इनके दुर्ग ऐसे स्थलों में थे जिन्हें आसानी से नही जीता जा सकता था।

बुन्देलखण्ड के निवासी कौन थे इसका निश्चय किया जाना सम्भव नही है इस क्षेत्र में पाषाण युगीन पुरावशेष, शैल चित्र उपलब्ध होते है। इससे यह सिद्ध होता है कि यहाँ व्यकित अति प्राचीनकाल से निवास कर रहा है कोल भील, गौड़, बैगा सबर, द्रविड जाति के लोग यहाँ आर्यो के पहले से निवास कर रहे है। आर्यो का आगमनप यहाँ बाद में हुआ आर्यो ने यहाँ के निवासियों को अपनी सभ्यता संस्कृति से प्रभावित किया और उन्हें अपने आधीन कर लिया। अनेक साहित्यक और ग्रन्थों में आर्यो के आगमन के सन्दर्भ में जानकारियाँ उपलब्ध होती है। आर्य लोग चार वर्णो के अनुभागी थे ब्राह्मण, क्षतिय, वैश्य और सूद्र इनके विविध वर्ण थे। ब्राह्मणो का स्थान समाज में सबसे उच्च था, उसके पश्चात क्षत्रिय जाति का सम्मान था ये लोग शासन करते थे और युद्ध करते थे तीसरा स्थान वैश्यों का था ये लोगो कृषि और व्यवसाय करते थे। चौथा वर्ण सूद्रों का था जिनकी स्थित अच्छी नही थी इसके अतिरिक्त यहाँ अनेक उप जातियाँ थी निवास करती थी। इनमें वणिक, स्वर्णकार ताम्ब्रकार मणिहारक, कर्मकार, तन्तुवाय, दर्जी कुम्भकार, रज्युनिर्माता चर्मकार बढत्रई मूर्तिकार, स्थापित बैद्य महानाचिनी, नापित, ढीमर, माहर, भेंद, चाण्डाल मृतप, घाशियारे, तामूलिक कल्लपार, कन्दुक, तेली, आद जातियाँ थी। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य भी अनेक उपजातियाँ में बटे थे।

कुछ ऐसी जातियाँ भी थी जिन्हे सूद्र और अनार्य कहा जाता था मुख्य रूप से चमार, अहीर, कौरी, कुर्मी काछी, लोधी, आरख, केवट कुम्हार वशोर, तेली, कोल, गौड़ दंगी सेजवारी बहरियाँ माली आदि अनेक उप जातियाँ थी। इसके अतिरिक्त अनेक जातियाँ अपराधों के माध्यम से अपनी जीविका चलाती थी। इनमें, चरकुला, हरपुरा, जमरार, करनारी, सौर, आदि शामिल थे। आर्यो की संस्कृति ओर अनार्यो की संस्कृति में व्यापक अन्तर था अनार्य जातियाँ जंगलो में निवास करती थी तथा नाना प्रकार के अन्य विश्वासों पर विश्वास करती थी। जबकि आर्य लोग वेदो पुराणों पर

आस्था रखते थे और विविध देवी देवताओं की उपासना करते थे दोनो की आवासीय व्यवस्था और धर्माचरण में व्यापक अन्तर था। स्त्रियों की स्थित आर्यो के समय में ठीक थी। किन्तु धीरे-धीरे अनेक कुप्रथाओं के कारण इसमें परिवर्तन हुआ।

आर्य लोग भोजन में चावल गेहूँ दूध दही मक्खन और घी का प्रयाग करते थे। इसके अतिरिक्त पेड़ों की पत्तियाँ फल तथा मिठाइयाँ और सित्तू मेहमानों को खिलाया करते थे अनेक लोग मांसाहार भी किया करते थे। आर्यो का पहनावा उच्च कुल और सामान्य व्यक्ति का अलग-अलग था ये लोग विशेष प्रकार के वस्त्र पहने थे। और आभूषण धारण करते थे। सामान रूप से धोती पहनने का रिवाज था स्त्री और पुरूषों के वस्त्र अलग-अलग होते थे। स्त्रियाँ सिर के बालों को सटाती थी और विविध प्रकार के आभूषण धारण करती थी कुछ आभूषण पुरूष वर्ग भी धारण करते थे।

बुन्देलखण्ड के निवासियों के आवासीय व्यवस्था की प्राकृतिक परिस्थितियों और आर्थिक स्थित पर निर्भर थे। अधिकांश क्षेत्रों में मिट्टी और लकड़ी की सहायता से मकानों का निर्माण किया जाता था मकानो के मध्य में आँगन होता था जिसके चारों और कमरे होते थे कमरों के मध्य में खिडिकियाँ होती थी। और उसके ऊपर खपरैल की कच्ची छत होती थी। बाद में भवन निर्माण के लिए ईटों और पत्थरों का प्रयोग होने लगा लकड़ी के दरवाजों को बन्द करने के लिए लोहे की कुन्डियों ओर साकरों का प्रयोग होने लगा।

प्राचीन बुन्देलखण्ड में सड़को का विकास नही था अधिकांश लोग पैदल आया जाया करते थे। धीरे-धीरे व्यक्ति हाथी और घोड़े की सवारी करने लगे कुछ समय बाद बैलगाड़ियों और रथों के माध्यम से भी स्थल मार्गो में आने जाने लगे। नदियों को पार करने के लिये नावों का उपयोग होने लगा।

व्यक्ति अपने मनोंरजन के लिए अनेक संसाधनो का प्रयोग करने लगे अनेक प्रकार के तीज त्योंहार और मेलो के अवसरों पर संगीत ओर नृत्य के प्रदर्शन एकल और सामूहिक रूप से हाने लगे इसके अतिरिक्त शिकार खेलना पशुओं की लड़ाई कराना जुआँ खेलना पासा खेलना, चौपड़ खेलना और नाटक तथा प्रहसन के प्रदर्शन से व्यक्तियों की मनोंरजन होता था। इस समय कोई शिक्षा की संगठित व्यवस्था नही थी अनेक बौद्ध बिहारों मन्दिरों तथा ब्राह्यणों के घरों मे शिक्षा प्रदान की जाती थी। वेद दर्शन, तर्वशास्त्र व्याकरण नीतिशास्त्र काव्यशास्त्र राजनीति विज्ञान दण्ड नीति कानून विज्ञान सैनय संगठन इतिहास और धर्मशास्त्र की शिक्षा व्यक्तियों को प्रदान की जाती वैश्यों को अर्थशास्त्र रत्न विज्ञान तथा निम्न जातियों को विविध प्रकार के

कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा में संस्कृत भाषा का सर्वाधिक महत्व था बाद में ब्राह्मणी भाषा का प्रयोग होने लगा।

बुन्देलखण्ड में समय–समय पर अनेक बाहरी जातियों का आगमन होता रहा यह आगमन ग्यारहवी ओर बारहवीं शताब्दी तक बराबर होता रहा यहाँ के मूल निवासी जब बाहरी व्यक्तियों के सम्पर्क में आये उसके पश्चात वेश–भूषा, भाषा, खान–पान तथा रहन सहन के स्तर में व्यापक परिवर्तन हुआ तब कुषाण हूण और तुर्को का आगमन यहाँ हुआ।

बुन्देलखण्ड के निवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि था इसके माध्यम से वे नाना प्रकार की वस्तुयें उत्पन्न करते थे। भूमि की सिंचाई के लिए कोई संसाधनप नही थे। अधिकांश किसान वर्षा पर निर्भर करता था चन्देलकाल में अनेक तालाबों का निर्माण होने सें सिंचाई संसाधन में वृद्धि हुई इसके अतिरिक्त व्यक्ति पशुपालन भी किया करते थे। व्यक्ति गाय, भैस, बकरी, भेड़, हार्थी, घोड़े गदेहे, आदि अपने उपयोग के लिये रखते थे अनेक व्यक्ति यहाँ उद्योग भी किया करते थे। यह उद्योग खनिज सम्पदा बन सम्पदा कृषि उपज और कुटीर उद्योगो पर आधारित था इन उद्योगो को शासन को भी आर्थिक लाभा होता था। व्यापार सन्तुलन को बनाये रखने के लिये अनेक प्रकार की मुद्रायें यहाँ काम में लायी जाती थी। ये मुद्रायें सोने–चाँदी और ताबें की थी।

यहाँ का समाज आर्थिक दृष्टि से कई भागों में विभक्त था जो वर्ग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था उसे कुलीन एवं सम्भ्रान्त वर्ग के नाम से पुकारा जाता था ये लोग दान पुन्य करते थे। तथा आपस में लड़ते–झगड़ते रहते थे।

समाज का दूसरा वर्ग व्यापारी वर्ग था जो व्यवसाय और कृषि के माध्यम से धन अर्जित करता था ये लोग महाजनी का व्यवसाय भी करते थे। और अन्य वर्गो को रूपया उधार भी देते थे तीसरा वर्ग निम्न वर्ग था जो कृषि और कुटीर उद्योगो के माध्यम से अपनी जीविका चलाता था चौथा वर्ग दास एवं मजदूर वर्ग था जो नौकरी और सेवा करके अपनी जीविका चलाता था कभी–कभी उच्च वर्ग के लोग इन्हें उत्पीड़ित भी करते थे। समाज का पाँचवा वर्ग निर्बल असहाय और भिखारियों का वर्ग था जो दूसरों से भीख मांगकर अपना काम चलाते थे छठवाँ वर्ग अपराधी व्यक्तियों का था जो डकैती लूटपाट, राहजली, चोरी, और ठगी, करके अपनी जीविका पैदा करते थे। कुछ स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति के माध्यम से अपने परिवार का खर्च वाहन करती थी।

धार्मिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड दो भागों में विभक्त था यहाँ निवास करने वाले अनार्य लोग प्रकृति की पूजा किया करते थे। अनेक पशुओं की पूजा किया करते

थे। धार्मिक अनुष्ठानों में पशु एवं नर बलि दिया करते थे अनेक अन्ध विश्वासों का अनुसरण करते थे। अनेक प्रकार के धर्मोत्सव करते थे। जिनमें नृत्य गायन और वादन का प्रदर्शन करते थे। यहाँ पर निवास करने वाले बौद्ध लोग महात्मा बुद्ध की उपसना विविध रूप से करते थे। यहाँ निवास करने वाले आर्य लोग वेद, पुराण, और विविध धार्मिक ग्रन्थों में विश्वास रखाते थे। अनेक प्रकार के यज्ञों का आयोजन करते थे। इस आर्य धर्म के अनेक सम्प्रदाय भी थे जो वैश्णव सम्प्रदाय, शैव सम्प्रदाय लिंगायत सम्प्रदाय में विभक्त थे। इसके अतिरिक्त यहाँ के लोग शक्ति की उपासना गणेश की उपासना ब्रह्म विष्णु महेश की उपासना और शिव की उपासना भी किया करते थे। बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों में इनकी मूर्तियाँ उपलब्ध होती है। यहाँ निवास करने वाले जैन धर्म के अनुयायी महावीर स्वामी एवं अपने चौबीस तीर्थाकारों की उपासना करते थे। इनके अनेक धार्मिक स्थल बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होते है। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यहाँ स्लाम धर्म का आगमन हुआ इस धर्म के अनुयायी पाँच वक्त की नमाज अदा करना कुरान शरीफ को पवित्र ग्रन्थ माना खुदा को सरोपरि मानना किसी को खुदा से बड़ा और उसकी बराबरी का न मानना कुरान सरीफ का पाठ करना जकात देना सभी के साथ भाई चारे का व्योंहार करना रमजान में रोजे रखना और माल होने पर हज करना ये उनके मजहब के प्रमुख सिद्धान्त थे। इन्होने मन्दिर तोड़कर मस्जिदे बनवायी बलात धर्म परिवर्तन कराया और हिन्दुओं का उत्पीड़न किया इसलिए हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य ताल मेल नही बैठ सका किन्तु उनका असतित्व बुन्देखण्ड में है।

बुन्देलखण्ड मे दुर्गो का विशेष महत्व रहा है यहाँ पर शासन करने वाले राजा सामन्त और जमींदार अपनी जनता की रक्षा के लिए दुर्गो का निर्माण कराया करते थे। दुर्ग एक निश्चित भूभाग पर बनवाये जाते थे जो प्राचीरों से घिरे होते थे। राजा उनके कर्मचारी और उनके अधीनस्थ रहने वाली जनता दुर्गो में निवास करती थी। जब से राजनीतिक व्यवस्था का सुभारम्भ हुआ उस समय से शत्रुओं से रक्षा के लिए दुर्गो का निर्माण सम्पूर्ण भारतवर्ष में हुआ उसके साथ ही साथ बुन्देलखण्ड में दुर्ग बने इन दुर्गो का उद्देश्य शत्रुओं से राज्य की रक्षा करना था। अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों में दुर्गो का उल्लेख है तथा सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में 300 से अधिक दुर्गो के अवशेष उपलब्ध होते है।

दुर्गो की परिभाषा सुनिश्चित नही है। किन्तु यह बात स्पष्ट है कि जिन स्थलों में मानव बस्तियाँ थी। वे सभी प्राचीर बेहित थे तथा प्राचीर के पहले कृतिम खाई अथवा उसके किनारे कोई सरिता होती थी। जिस स्थल से कोई आसानी

से न पहुँच सके उस स्थल को दुर्ग कहा जाता था। कौटिल्य जैसे विद्वानों ने सूद्रढ़ दुर्ग को शक्ति का प्रतीक माना है। तथा दुर्गो के सन्दर्भ में उसी अनेक, कोटियाँ निर्धारित की है। ये दुर्ग धनु दुर्ग, महि दुर्ग, जल दुर्ग, वृक्ष दुर्ग, और नर दुर्ग आदि है। जिस दुर्गो के चारों ओर खाइयाँ हो वह सर्वश्रेष्ठ माना गया है। दुर्गो का विभाजन औदक दुर्ग, पर्वत दुर्ग, धान्व दुर्ग, वन दुर्ग, महि दुर्ग, नर दुर्ग, वृक्ष दुर्ग, भूमिगत दुर्ग, और सहायक दुर्ग के रूप में किया गया है।

प्रशासनिक दृष्टि से दुर्गो का विशेष महत्व है। इन दुर्गो में दुर्ग का स्वामी और उसकी सेना रहा करती थी। वह सभी प्रकार के अस्त्र–शस्त्र और अपनी सम्पत्ति दुर्गो में रखाता था। दुर्गो में पहुँच के कई मार्या होते थे जिनके माध्यम से वहाँ आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति होती रहती थी। दुर्ग में राजा के अतिरिक्त राजपुत्र उसके मंत्री अमात्य उसका कोष भी रखा जाता था दुर्ग में एक न्यायालय भी होता था। जहाँ शास्त्र के अनुकूल अपराध करने वाले व्यक्ति को शारीरिक दण्ड आर्थिक दण्ड और कारागार का दण्ड दिया जाता था। विविध पुराणों में दण्ड व्यवस्था का उल्लेख मिलता है।

सुरक्षा की दृष्टि से भी दुर्गो का विशेष महत्व था। दुर्गो में कई प्रकार की सेना रहा करती थी। जो शत्रुओं से संघर्ष किया करती थी। यह युद्ध दो प्रकार का होता था पहला युद्ध आत्म रक्षा के लिए होता था। तथा दूसरी प्रकार का युद्ध राज्य विस्तार और शत्रु को दण्ड देने के लिए होता था। इस युद्ध में सेनायें दुर्ग के बाहर जाकर युद्ध किया करती थीं और शत्रु के राज्य में आक्रमण किया करती थी। सैन्य संचालन सेनापति करती थी।

दुर्ग में गुप्तचरों को निवास होता था। दुर्ग के बाहर जाकर यथार्थ स्थित का पता लगाते थे। और राजा को सचेत करते रहते थे ये गुप्तचर अनेक कोटि के होते थे। का पाटिक उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहिक तापस, सत्री, तीक्ष्ण रसद, परिब्राजिका और विषकन्याओं के रूप में रहा करती थी। ये हर प्रकार से शत्रुओं की रक्षा करने में सक्षम होती थी।

दुर्ग की रक्षा करने के लिये दुर्ग मे एक सेना भी रहा करती थी। यह सेना दुर्ग के परिकोटे के चारो ओर रहा करती थी। तथा आक्रमण के समय युद्ध करके दुर्ग की रक्षा करती थी। इस सेना में पदैल सैनिक अश्वरोही, गजरोही सैनिक आदि शामिल रहते थे।

दुर्ग के प्रत्येक द्वार में द्वार रक्षको की नियुक्ति होती थी। ये द्वार रक्षक दुर्ग में प्रवेश करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की जांच पड़ताल किया करते थें इसके अतिरिक्त दुर्ग में अनेक प्रशासनिक अधिकारी निवास करते थे। जिनका कार्य

जनसमस्याओं का समाधान करना था। राजमहलों अमात्यों के निवास स्थलों की रक्षा के लिए प्रहरी या प्रतिहारी नियुक्ति किंये जाते थे। इनका कार्य आवास स्थलों की रक्षा करना था। राजा राजपुत्र, राजमहषी, अमात्य और मन्त्रियों की रक्षा के लिए अंग रक्षकों की भी व्यवस्था की जाती थी। इन्हें नगर वेतन दिया जाता था। बीमारी की रोकथाम के लिये राजवैद्यो की नियुक्ति होती थी। ये भी दुर्गो में रहा करते थे।

बुन्देलखण्ड के राजाओं के यहाँ जो सेना रहा करती थी। वह सैन्य संगठन की दृष्टि से कई भागों में विभक्ति थी सम्पूर्ण सैनय शक्ति को भृतक बल, श्रेणी बल, मित्र बल, अमित्र बल, आटवी बल, और मौल बल में विभाजित किया गया था। सम्पूर्ण सेना अपनी–अपनी श्रेणी के अनुसार कार्य किया करती थी। इसको अतिरिक्त औत्साहिक बल भी था जो दो भागों में विभक्त था। इसे भेद और अभेद्य कहा जाता था। सेना चार भागों में विभक्त थी रथ सेना, गज सेना, अश्व सेना, और पैदल सेना, इनके विभाजन थे। ये सेना छोटे–छोटे अनेक भागों मे विभक्त थी। जिनके पदाधिकारियों को पदिक सेनापति और नायक के नाम से पुकारा जाता था। सम्पूर्ण सेना विशेष प्रकार की वर्दी भी धारण करती थी। और अनेक प्रकार के अस्त्र–'शस्त्र भी प्रयोग में लाते थे। युग परिवर्तन के साथ ऊँटो की सेना और तोपखाना भी इसमें शामिल हो गया।

धर्म की दृष्टि से भी दुर्ग का विशेष महत्व था। बुन्देंखण्ड के अनेक दुर्गो में धार्मिक महत्व के अनेक स्थल उपलब्ध होते है। यहाँ का व्यक्ति धर्म भीरू है वह वेद पुराण, शास्त्रों, में विश्वास करता है उसकी आस्था ईश्वर तथा विविद देवी देवताओं पर है। वह अनेक प्रकार के तीज त्योंहारों का भी अनुसरण करता है इन दुर्गो में शैवमत, शक्तिमत सूर्य उपासना और वैश्णवमत से सम्बन्धित अनेक मूर्तियाँ और मन्दिर उपलब्ध होते है। दुर्गो में उपलब्ध धर्मस्थलों से तदयुगीन नरेशो की धार्मिक भावनाओं का पता लगता है। कालिंजर दुर्ग में भी अनेक धर्म स्थल है। इन धर्म स्थलों से तदयुगीन धार्मिक भावनाओं का पता लगता है। अजयगढ़ दुर्ग में भी अनेक धार्मिक स्थल है देवगढ़ दुर्ग में भी अनेक धार्मिक स्थल हिन्दू और जैनियों के है इसी प्रकार के धर्म स्थल साक्ष्य एरण, दुधई, चाँदपुर में भी उपलब्ध हाते है। अनेक दुर्गो में इस्लाम धर्म से सम्बन्धित धर्म स्थल उपलब्ध होते है।

वास्तुशिल्प की दुष्टि से भी दुर्गो का विशेष महत्व हैं सुरक्षा की दृष्टि दुर्गो का निर्माण वास्तुशिल्प की प्रमुख विशेषता थी। सुल्तान महमूद गजनवी ने कालिंजर दुर्ग की सुदृढ़ता की तारीफ की थी। चन्देल शासन काल में सर्वाधिक दुर्गो का निर्माण बुन्देलखण्ड में हुआ दुर्गो के निर्माण में पत्थर, पटिया, ईट, चूना बालू

मिट्टी, लकड़ी लोहा सन गोंद, उर्द की दार, का प्रयोग किया गया। प्रमुख शिल्पियों, सहायक सिल्पियो, बेलदारों ओर सामन्यं मजदूरों ने दुर्ग निर्माण में सहयोग प्रदान किया सर्वप्रथम भूमि का चैन राजा की इच्छा के अनुसार होता था तथा दुर्ग निर्माण विविध कोटियों के अनुसार होता था। दुर्ग के बाहर खन्दक या खाई का निर्माण होता था परिकोटे का निर्माण किया जाता था परिकोटे से लगे हुए दुर्ग के प्रवेश द्वार होते थे। दुर्ग मे पहुँचने के लिए अनेक प्रकार के मार्गो का निर्माण किया जाता था जिनमें मनुष्य पशु और वाहन आ जा सकते थे। दुर्ग के अन्दर अनेक प्रकार के भवन बनाये जा सकते थे भवन कुलनी वर्ग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सूद्र तथा अन्त्यजों के लिए अलग–अलग होते थे। आने–जाने के लिए प्रत्येक घर के सामने गली का होना अनिवार्य था।

दुर्ग में रहने वाले निवासियों के लिए जल की सर्वोच्च अवश्यकता होती थी। इसलिए दुर्ग का शासक जल आपूर्ति के संसाधनों का विशेष ध्यान रखता था। दुर्ग के अन्दर सरोवर, कुण्ड कूप और बीहड़, निर्मित किये गये जिनके अवशेष अभी उपलब्ध होते है। ये जलाशय अत्यन्त मजबूत है इनमें घाट बने हुए है, और घट से लगे हुए अनेक देव स्थल भी है। जलीय संसाधनो का उपयोग पेय जल से लेकर कृषि कार्यो तक के लिए होता था। सभी दुर्गो में इनके अवशेष उपलब्ध होते है।

बुन्देलखण्ड में अनेक महत्वपूर्ण दुर्ग उपलब्ध होते है जो विविध कालो के है। इनका महत्व सामरिक प्रशासनिक और राजनीतिक दृष्टि से सर्वाधिक रहा है तथा इनका निर्माण विविध कार्यो में हुआ है।

1– कालीजर दुर्ग – यह दुर्ग बांदा जनपद मुख्यालय से 55 किलोमीटर दूर बांदा सतना रोड पर स्थित है तथा भारत का प्राचीनतम दुर्ग है। वामन, पुराण, महाभारत, आदि ग्रन्थों में इसकी प्रसंशा है इस दुर्ग का निर्माण दूसरी शताब्दी से लेकर शताब्दी सातवीं शताब्दी के मध्य हुआ। 1022–23 में महमूद गजनवी ने इस दुर्ग पर आक्रमण किया सन 1202 में कुतुबुद्दीन ऐवक ने परमार्दिदेव को पराजित कर इस दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। सन 1544–45 में शेरशाह सूरी ने इस दुर्ग पर आक्रमण किया उसके पश्चात यह दुर्ग मुगलो के आधीन रहा तत्पश्चात पन्ना नरेश छत्रसाल के अधिकार में आया 1812 मे यह दुर्ग अंग्रेजो के आधीन हो गया यह दुर्ग भूमि से 700 फिट ऊँचाई पर है। इस दुर्ग में प्रवेश करने के लिए सात दरवाजे है जो विभिन्न नामों से विख्यात है प्रवेश द्वारो के आस–पास अनेक मूर्तिया है। तथा इस दुर्ग में अनेक दर्शनीय स्थल है। दर्शनीय स्थलों में

नीलकण्ड मन्दिर, मृगधारा मिट्कृी भैरव, पाण्ड कुण्ड, कोटि तीर्थ आदि ये स्थल है। इसे महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल माना जाता है कार्तिक पूर्णिमा मकर संक्रान्ति और शिव रात्रि के अवसर पर यहाँ विशेष आयोजन होते है।

2— अजयगढ़ दुर्ग — अजयगढ़ दुर्ग भी बुन्देलखण्ड का महत्वपूर्ण दुर्ग है यह दुर्ग महोबा के दक्षिण पूर्व और कालिंजर के दक्षिण पश्चिम में स्थित है। यह दुर्ग विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी में बना हुआ है इस दुर्ग में प्रवेश करने के लिए दो द्वार है। प्रथम द्वार का कोई नाम नही है तथा दक्षिण पूर्व में स्थिति द्वार तरौनी द्वार के नाम से विख्यात है। इस दुर्ग में अनेक धर्म स्थल है जिनका निर्माण तदयुगीन शास्त्रों ने कराया है दुर्ग के ऊपर अजयपाल नाम का एक सरोवर है। जिसके किनारे एक जैन मन्दिर है तथा इसकी दूसरी और शिव मन्दिर है इसे अजयपाल मन्दिर कहते है। दुर्ग के उत्तरी पश्चिमी कोने पर भूतेश्वर महादेव का मन्दिर है। यह दुर्ग चन्देल नरेशो का महत्वपूर्ण दुर्ग था। इस दुर्ग में अनेक अभिलेख उपलब्ध हुए है जो विविध संवतों के है। सामरिक दृष्टि से इस दुर्ग का महत्व था।

3— रसिन दुर्ग — यह दुर्ग अतर्रा तहसील के रसिन गाँव में स्थित है। बाँदा से लगभग 48 किलोमीटर दूर बांदा कर्वी मार्ग पर है चन्देल वंश के पतन के पश्चात यह रघुवंशी राजपूतो के अधिकार में रहा इसका पुराना नाम राजवंशीय था। यहाँ उपलब्ध होने वाला दुर्ग चन्देल कालीन है। तथा दुर्ग का निर्माण ईट और पत्थरों से हुआ है। दुर्ग के ऊपर एक चन्द्रा महेश्वरी का मन्दिर है इसमें विक्रमी संवत् 1466 का एक अभिलेख भी है। पहले रसिन एक बड़ा नगर था इस नगर में अनेक जलाशय और बीहड़ थे।

4— मड़फा दुर्ग — यह दुर्ग चित्रकूट के सन्निकट है भरतकूप बलिया मानपुर मार्ग पर एक पहाड़ी पर स्थित है। चन्देल युग में इस दुर्ग का महत्व था। कालिंजर से इसकी दूरी 26 किलो मीटर है। दुर्ग के ऊपर हाथी दरवाजा है। तथा चन्देल कालीन अनेक मन्दिर है। कुछ मन्दिर जैनियों के भी है इसके अतिरिक्त अनेक सरोवर है। इस दुर्ग का धार्मिक महत्व भी था अनेक ऋषि मुनी यहाँ तप करने के लिये यहाँ रहा करते थे। रामचन्द्र बघेल इस दुर्ग का शासक था जो सम्राट अकबर का समकालीन था।

5— शेरपुर सेवड़ा दुर्ग — शेरपुर सेवड़ा दुर्ग भी अति प्राचीन दुर्ग है यह स्थल महाभारत काल में चेदि देश की राजधानी थी और सुक्तिमती नगरी के नाम से प्रसिद्ध थी। यह दुर्ग केन नदी के तट पर बाँदा नरैनी मार्ग पर गिरवाँ के सन्निकट है। मुगलकाल में इसे सूबे का दर्जा प्राप्त था तथा यहाँ मुगलों की सेना निवास करती थी। यह एक विशाल नगर था

इसमें सात सौ मस्जिदें और नौ सौ कुँये थे और बाद में यह दुर्ग बुन्देलो के अधिकार में आ गया था। इस दुर्ग में अनेक धार्मिक स्थल और जलाशय है।

6– रनगढ़ दुर्ग – यह दुर्ग केन नरी के एक पहाड़ी पर बना हुआ है यहाँ पहुँचने के लिए बाँदा नरैनी गांव से रिसौरा होकर जाना पड़ता है। दुर्ग के ऊपर अनेक धर्म स्थल जलाशय और आवासीय महल है मुख्य रूप से सुरक्षा चौकी बारादरी गौरइया दायीं का मन्दिर और रंग महल विशेष दर्शनीय स्थल है। इस दुर्ग के चारो ओर एक केन नदी प्रवाहित होती है।

7– तरहुआ दुर्ग – यह दुर्ग कर्वी नगर के सन्निकट है तथा तरहुआ गाँव में बना हुआ है। इसका प्राचीन नाम दालमपुर था। तथा यह एक पूर्ण विकसित नगर था कुछ लोग इसे इच्छुक नगर भी कहते है। इस दुर्ग का निर्माण सन 1685 में बसन्तराय सुरकी ने कराया था। यह गहोरा का शासक था। कालान्तर मे इस दुर्ग पर बुन्देला शासकों का अधिकार रहा।

8– भूरागढ़ – यह दुर्ग बाँदा शहर के केन नदी तट पर उसपार स्थित है। महाराजा छत्रालाल के शासन काल से लेकर 1857 तक इस दुर्ग कास महत्व रहा इस दुर्ग का निर्माण सन1740मे जगत राया के पु.त्र कीर्ति सिंह ने कराया था। इस दुर्ग के सन्निकट आवासीय स्थल और जलाशय उपलब्ध होते है।

9–कल्याण गढ दुर्ग– यह दुर्ग कर्वी जनपद में मानिक पूर के सन्निकट कल्याण पुर गाँव में है। तथा मानिक पुर मार्ग रीवाँ पर स्थित है मुगल काल में इसका राजनीतिक महत्व था इस दुर्ग में सैन्य स्थ्ल जगदीश मन्दिर तथा अनेक जलाशय हैं।

10–महोबा दुर्ग – महोबा दुर्ग चन्देल कालीन प्राचीन दुर्ग है। इस दुर्ग मे अनेक अभिलेख उपलब्ध हुए हैं जिनसे चन्देलो की वंशावली का बोध होता है महोबा का प्राचीन नाम महोत्सव नगर था। इसके सन्निकट दिसरापुर सागर , राहिल सागर , विजय सागर कीरत सागर, मदन सागर, आदि जलाशय उपलब्ध होते है। तथा दुर्ग के ऊपर अनेक आवासीय स्थल धार्मिक स्थल और दुर्लभ मूतियाँ उपलब्ध होती है। दुर्ग में प्रवेश करने के लिए दो द्वार थे। थोडी दूर चलकर गोरय पहाडी है वहाँ अनेक स्थल उपलब्ध है। जिनका सम्बन्ध धर्म से है। तथा उसी के कुछ दूरी पर कल्याण सागर भी है।

11–सिरसा गढ– यह दुर्ग महोबा राठ मार्ग पर उरई के सन्निकट है। तथा चन्देलो का महत्व पूर्ण दुर्ग इसे माना जाता था जब परमार्दिदेव पृथ्वीराज से पराजित हुआ उस समय यह दुर्ग पृथ्वीराज के अधिकार में आ

गया यह दुर्ग प्राचीर बेष्टित था इस में प्रवेश करने के लिए अनेक द्वार थे तथा अनेक आवासीय स्थल जलाशय और धार्मिक स्थल थे।

12— जैतपुर दुर्ग— यह दुर्ग महोबा हर पाल पुर मार्ग पर कुल पहाड से 11 किलो मीटर और महोबा से 32 किलो मीटर दूर है। इस दुर्ग में सुप्रद्धि सरोवर बेलाताल दुर्ग क़े ऊपर के आवासीय स्थल दुर्ग के नीचे धौनसा मन्दिर आदि दशर्नीय स्थल है।

13—मंगल गढ़ दुर्ग— यह दुर्ग एक चरखारी के पहाडी पर बना हुआ है महोबा से इसकी दूरी 20 किमी0 और हमीरपुर से इसकी दूरी 106 किलोमीटर है। मंगल गढ़ दुर्ग के नीचे चरखारी नगर है जो बुन्देला नरेशों के समय में एक प्रसिद्ध नगर था। यहाँ पर अनेक प्राचीन महल अनेक धर्म स्थल उपलब्ध है जो दर्शनीय है।

14—मनिया गढ़ दुर्ग— यह दुर्ग चन्देल कालीन दुर्ग है। तथा छतरपुर जनपद में केन नदी के तट पर स्थित है। इस दुर्ग के ऊपर मनिया देवी का मन्दिर है। इसमें प्रवेश करने के लिए अनेक द्वार थे। और दुर्ग के ऊपर अनेक जलाशय और आवासीय स्थल थे।

15—बरूआ सागर दुर्ग— बरूआ सागर दुर्ग बाँदा झाँसी मार्ग पर स्थिति है झाँसी से इसकी दूरी 12 मील है एतिहासिक दृष्टि से भी इसका महत्व है इस स्थल में बरूआ सागर ताल घुगुआमठ, जरायमठ, आदि दर्शनीय स्थल है। वर्तमान समय में यह दुर्ग नष्ट हो चुका है।

16—ओरछा दुर्ग— ओरछा दुर्ग बुन्देलखण्ड का सुप्रसिद्ध दुर्ग है इस दुर्ग में बुन्देलो का अधिकार रहा है दुर्ग का निर्माण राजा रूद्र प्रताप 16 वी सताब्दी में कराया यह दुर्ग बेतवा नदी के तट पर है। इस दुर्ग में जहाँगीर महल राम राजा मन्दिर चतुर्भुज मन्दिर गणेश कुवँर महल शीश महल, राय प्रवीण भवन, केशव दास भवन, सावन भादव स्तम्भ, गुलाब बाग, और राजा हरदौल की समाधि आदि दर्शनीय स्थल आदि है।

17—झाँसी दुर्ग— झाँसी दुर्ग भी सामरिक दृष्टि से महत्व पूर्ण था। इस दुर्ग का निर्माण सन 1613 में वीरसिंह जी देव ने करवाया था इस समय इसका नाम बलवन्त नगर था। इस दुर्ग्र में प्रवेश करने के लिए अनेक दरबाजे थे। यहाँ पर रानी महल, नारायण बाग, लक्ष्मी ताल, महराजा गंगाधर राव की छतरी, नकटा चौपडा , लक्ष्मी मन्दिर, मुरली मनोहर मन्दिर, गणेश मन्दिर, लहरदेव का मन्दिर, रघुनाथ जी का मन्दिर, पचकुइयाँ देवी का मन्दिर, सिद्धमहादेव का मन्दिर, लाला हरदौल का मन्दिर का मन्दिर, अठखम्भा महादेव का मन्दिर आदि दर्शनीय स्थल है।

18—गढ़ कुढ़ार दुर्ग— यह दुर्ग गढ कुढांर ग्राम के सन्निकट एक पहाडी मे निर्मित है दुर्ग का निर्माण काले पत्थरो से हुआ है। दुर्ग मे पहुँचने के लिए पहाडी मार्ग है तथा अनेक गोपनीय दरवाजे भी है जिनमे दुर्ग पर पहुँचा जा सकता है। पृथ्वी राज के शासन काल मे यह दुर्ग्र खंगारो के हाँथ मे रहा उसके पश्चात तुर्को और मुगलो के अधिकार मे आ गया दुर्ग के ऊपर प्रवेश द्वार, कचेहरी दरबार हाल सति चौरा आवासीय महल एवं धार्मिक स्थल दशर्नीय है।

19—चिरगाँव दुर्ग— चिर गाँव दुर्ग झाँसी उरई मार्ग पर झाँसी 18 मील दूरी पर एक पहाडी पर स्थित है। यहाँ बुन्देलों का शासन अनेक वर्षो तक रहा है। दुर्ग की प्राचीर प्रवेश द्वार जलाशय, धर्मस्थल और आवासीय स्थल दर्शनीय हैं।

20—एरच दुर्ग— यह दुर्ग भी सुप्रसिद्ध दुर्ग है। तथा बेतवा नदी के तट पर एरच कस्बे में यह बना हुआ है। झाँसी से इसकी दूरी 46 मील है यह गरौठा से पुन्छ मार्ग पर स्थित है कुछ लोग राजा हिरणा कश्यप के पुत्र प्रहलाद की जन्म स्थली भी इसे मानते हैं यह दुर्ग बुन्देलो और मुगलों के हाँथ रहा। इस दुर्ग में अनेक प्रवेश द्वार है आवासीय स्थल है तथा हिन्दू तथा मुसलमान धर्म से सम्बन्धित अनेक स्मारक है।

21—उरई दुर्ग— यह दुर्ग भी प्राचीन दुर्ग हैं तथा झाँसी कानपुर मार्ग पर स्थित है। कानपुर से इसकी दूरी 109 किमी और झाँसी से इसकी दूरी 114 किमी0 है। इस दुर्ग का राजनीतिक और धार्मिक महत्व है। उरई नरेश माहिल इस दुर्ग का चन्देल कालीन शासक था इस दुर्ग में अनेक प्रवेश द्वार माहिल का तालाब बाबा प्रयाग दास का मन्दिर और खण्डेश्री मन्दिर बने हुए है।

22—कालपी दुर्ग— यह दुर्ग भी प्राचीन दुर्ग है इसका राजनीतिक सांस्कृतिक महत्व चन्देल काल से हैं। उरई से इसकी दूरी 35 किमी है यहाँ सडक मार्ग और रेल मार्ग से पहुँचा जा सकता है। दुर्ग का निर्माण चन्देलो ने करवाया था बाद में यह दुर्ग कुतुबुद्दीन ऐबक के अधिकार में आ गया था। अनेक वर्षो तक यह दुर्ग मराठों के अधिकार में रहा। इस दुर्ग में श्री दरवाजा चौरासी खाम्भा सिकन्दर की मजार तथा अन्य धार्मिक स्थल उपलब्ध होते हैं। यह दुर्ग यमुना नदी के तट पर है।

23— दतियाँ दुर्ग— यह दुर्ग भी प्राचीन दुर्ग भी हैं तथा झाँसी ग्वालियर मार्ग पर स्थित है पहले यही बक्र दन्त नाम दैत्य का राज्य था उसके पश्चात गुर्जर प्रतिहारों ने राज्य किया कालानतर में बीर सिंह जी देव

के अधिकार में आया बीर सिंह जी देव ने यहाँ अनेक दर्शनीय स्थलों का निर्माण कराया इस दुर्ग में दुर्ग का परिकोटा प्रवेश के चार द्वार दुर्ग का गोविन्द महल जहाँगीर महल तथा अन्य अवासीय स्थल महत्व पूर्ण हैं।

24— बढ़ौनी दुर्ग— यह दुर्ग ओरछा राज के आधीन था। इस दुर्ग की जागीर बीर सिंह जी देव को उपलब्ध हुई थी। तथा यहाँ का दुर्ग उनके पूर्वजों ने बनवाया था दुर्ग के प्रवेश द्वार, दुर्ग के आवासीय स्थल, धार्मिक स्थल, और जलाशय, दर्शनीय हैं।

25—ग्वालियर दुर्ग— यह दुर्ग बुन्देलखण्ड का अति प्राचीन दुर्ग है पहले ये दुर्ग गुप्त वंशीय शासको के आधीन था बाद में यह दुर्ग हर्ष बर्धन और कछवाहों के हाँथ में रहा। बिक्रमी संबत 339 में कछवाहों वंश के नरेशों ने इसका निर्माण कराया था। अनेक नरेशों ने इस दुर्ग को जीतने का प्रयास किया सल्तनतकाल मे यह दुर्ग तोमर वंश के शासको के आधीन था मुगल सम्राट बाबर ने भी इस दुर्ग पर आक्रमण किया था अन्त में यह दुर्ग मराठों के आधीन हो गया। इस में दुर्ग की प्राचीर तेली का मन्दिर, गूजडी रानी का महल, मानसिंह का महल, जैन तीर्थाकरों की मूर्तियां तानसेन का मकबरा, गुलाब गौस खाँ का मकबरा, रानी झाँसी की समाधि, जय विलास पयलेस आदि दर्शनीय स्थल है।

26—चन्देरी का दुर्ग— चन्देरी का दुर्ग भी बुन्देलखण्ड का सुप्रसिद्ध दुर्ग है। इस दुर्ग में अनेक राज वंशो ने राज किया मुगल सम्राट बाबर ने इस दुर्ग पर आक्रमण किया था। दुर्ग का निर्माण दसवी शताब्दी में हुआ यहाँ पर गुर्जर प्रतिहार वंश के नरेश राज्य करते थे। दुर्ग का निर्माण कीर्तिपाल ने करवाया था। इसका मुगलों के आधीन रहा। दुर्ग के प्रवेश द्वार कुशल महल बादल महल कीर्तिसागर युद्ध स्मारक आवासीय स्थलों के अवशेष और जैन तीर्थाकरों की प्रतिमाएँ दर्शनीय स्थल है।

27छतरपुर दुर्ग— छतरपुर रियासत बहुत प्राचीन रियासत नही है पहले यह पन्ना राज्य के आधीन थी बाद में स्वतन्त्रा रियासत के रूप में इसका विकास हुआ इस रियासत में 191गाँव थे। इस दुर्ग के दर्शनीय स्थलों में दुर्ग की प्राचीर दुर्ग के आवासीय महल, धर्म स्थल, जलाशय और दुर्ग के प्रवेश द्वार दर्शनीय हैं।

28— पन्ना दुर्ग— पन्ना दुर्ग भी महत्व पूर्ण दुर्ग है। दुर्ग का निर्माण बिक्रमी संबत 1738 में पन्ना महराज छत्रशाल ने कराया था इसका प्राचीन नाम परना था तथा यह स्थल धार्मिक दृष्टि से महत्व पूर्ण था पहले यह चेदिराज के अन्तर्गत था। बाद में चन्देलों के अधिकार में आया उसके पश्चात

बलदाऊ जी का मन्दिर, पदमावती देवी का मन्दिर, राजादक्ष की यज्ञ वेदी और विभिन्न जलाशय दर्शनीय हैं।

29— सिंगौर गढ़ का दुर्ग— यह गढ़ गौंड वंशीय नरेशों का शक्ति शाली केन्द्र था इस वंश की वंशावली, गढ़ा मडला दुर्ग में उपलब्ध हुई है। संग्रामशाह, दलपतिशाह और दुर्गावती के शासन काल में इस दुर्ग का विकास हुआ रानी दुर्गावती के मृत्यु के पश्चात यह दुर्ग मुगलों के आधीन हो गया दुर्ग का परिकोटा दुर्ग के प्रवेश द्वार अनेक युद्ध स्मारक, संग्रामशह और दलपतिशाह के आवासीय महल, और जलाशय दर्शनीय स्थल हैं।

30— राज नगर दुर्ग— ऐतिहासिक दृष्टि से इसका महत्व है यह दुर्ग पन्ना के सन्निकट है मलहरा और बारीगढ़ से यहाँ पहुँचा जा सकता है। पहले यह दुर्ग चन्देलों के आधीन था बाद में गौंडों के आधीन हो गया उसके पश्चात तुर्कों मुगलों के हाँथ में आया बाद में छत्रशाल के राज्य का एक अंग बन गया इस दुर्ग में प्रवेश द्वार आवासीय स्थल युद्ध स्मारक जलाशय और धर्म स्थल दर्शनीय हैं।

31—बटिया गढ़ दुर्ग— यह दुर्ग छतरपुर से दमोह जाने वाले मार्ग में स्थित है तुर्को के शासन काल में इस दुर्ग का विशेष महत्व था। इसके पहले यह दुर्ग कल्चुरियों के आधीन था। इस दुर्ग में अनेक दुर्ग उपलब्ध हुए है। जिनसे तदयुगीन इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। सल्तनत काल में यह दुर्ग चन्देरी के सूबेदार जुलथी खाँ के आधीन था। इस दुर्ग में आवासीय स्थल सती स्मारक धार्मिक स्थल और जलाशय उपलब्ध होते है। इस दुर्ग में अनेक प्रवेश द्वार थे।

32— बिजावर या जटाशंकर दुर्ग— यह दुर्ग का निर्माण और नगर की सरंचना विजय सिंह नामक और सरदार ने की थी। यह मण्डला के राजा का नौकर था। कालान्तर में यह क्षेत्र छत्रसाल के अधिकार में हो गया तथा बाद में यह एक विकसित रियासत के रूप में बना रहा। विजावर दुर्ग में प्रवेश द्वार आवासीय महल जलाशय जटाशंकर और भीमकुण्ड जैसे स्थल है जो दर्शनीय है।

33— वीरगढ़ दुर्ग— यह दुर्ग बांदा जनपद में बदौसा के सन्निकट एक पहाड़ी पर स्थित है। यह दुर्ग अत्यन्त प्राचीन दुर्ग है। पहले यह दुर्ग चन्देलो के आधीन था बाद में यहाँ बघेल नरेशो का अधिकार रहा। सम्राट अकबर के जमाने तक यहाँ रामचन्द्र बघेल का राज्य था। सन्तनत काल में दलकेश्वर और बलकेश्वर, दो बहादुर यहाँ निवास करते थे जिनके युद्ध तुर्क सुल्तानो से हुए दुर्ग में प्रवेश द्वार वीरगढ़ की देवी का मन्दिर मगर मुहा के

शैलचित्र सकरों का जल प्रयात, बिलहरिया मठ, बान गंगा, हनुमान मन्दिर के भग्न अवशेष उपलब्ध है।

34– धमौनी दुर्ग – यह दुर्ग सागर के सन्निकट है यहाँ पहले हिन्दू नरेशो का शासन था बाद में यह दुर्ग तुर्क और मुगलों के आधीन हो गया। सन 1672 में छत्रसाल ने यह दुर्ग मुगल सरदार खालिक से जीत लिया और उससे तीस हजार रूपये जुर्बाने के रूप में वसूले इस दुर्ग के प्रवेश द्वार, धार्मिक स्थल, युद्ध स्मारक, जलाशय, और सैन्य स्थल है।

35– पथरी गढ़ दुर्ग– यह दुर्ग चन्देल कालीन दुर्ग है। बांदा जनपद के फतेहगंज से कुछ दूरी पर सतना जनपद पर कुछ दूरी पर स्थित है। इस दुर्ग का विषद वर्णन आल्हा खण्ड में उपलब्ध होता है चन्देलो के पश्चात यह दुर्ग तुर्को और मुगलों के आधीन रहा अन्त में यह छत्रसाल के आधीन हो गया अंग्रेजी शासनकाल में इसे प्रथक रियासत का दर्जा उपलब्ध हुआ इस दुर्ग में प्रवेश द्वार महलों के अवशेष रक्तदन्तिका मन्दिर, गरूण मन्दिर, जगन्नाथ स्वामी का मन्दिर, मृत्यु स्मारक, दो प्राकृतिक झीले और विविध जलाशय उपलब्ध है।

36– बारीगढ़ दुर्ग – यह दुर्ग चन्देलकालीन दुर्ग है जगनिक द्वारा रचित आल्हखण्ड, और चन्दबरदायी द्वारा रचित पृथ्वीराज रासो ने इसका वर्णन है। चन्दला और गौरहार मार्ग से पहुँचा जा सकता है यह दुर्ग पत्थरों से निर्मित है। इस दुर्ग में दुर्ग की प्राचीर, आवासीय स्थल दुर्ग के जलाशय और दुर्ग के धर्मस्थल दर्शनीय है यह दुर्ग चन्देलो के बाद तुर्को मुगलों और गौंड वंशीय नरेशो के हाथ में रहा बाद में छत्रसाल के आधीन हो गया।

37– गौरहार दुर्ग– यह दुर्ग एक महत्वपूर्ण दुर्ग है। पहले यह गौंड वंशीय नरेशो के हाथ में था बाद में तुर्को और मुगलो के आधीन हो गया तथा अन्त में छत्रसाल का अधिकार इस दुर्ग में हो गया। छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात अजयगढ़ के राजा धुमानसिंह के समय पंडित राजा राम तिवारी भूरागढ़ के किलेदार थे। अन्त में गौरहार दुर्ग उन्हें जागीर के रूप में उपलब्ध हो गया गौरहार दुर्ग के अतिरिक्त इसी के सन्निकट किसनगढ़ दुर्ग के अवशेष गौरहार नरेशो के आवासीय स्थल, धार्मिक स्थल और जलाशय उपलब्ध है। यहां मटौध और चन्दला से पहुंचा जा सकता है।

38– कदौरा दुर्ग – यह दुर्ग झांसी जालौन मार्ग पर कदौरा गांव के सन्निकट है यह एक प्राचीन रियासत है मुगलकाल में यहां के किलेदार मुसलमान थे। जो हैदराबाद निजाम के निकट सम्बन्धी थे। तथा इन्हें नवाब की पदवीं उपलब्ध थी यह स्थल कालपी से 27 किलोमीटर और उरई से

पचयन किलो मीटर है। अंग्रेजो के समय में भी इस रियासत का असितित्व था यहां दुर्ग के अवशेष नवाबों के आवासीय महल विविध धार्मिक स्थल जलाशय ओर कर्दम ऋषि के आश्रम के अवशेष उपलब्ध है।

39 कुलपहाड़ दुर्ग – कुलपहाड़ दुर्ग भी एक प्राचीन दुर्ग है, यह स्थल हमीरपुर के दक्षिण पश्चिम की ओर स्थित है। तथा यह क्षेत्र बुन्देला नरेशो के अधिकार में रहा यहाँ के विशेष दर्शनीय स्थल गौराहाताल, जलाशय, ईदगाह, और मस्जिद सेनापति महल, विद्याअर्जन मन्दिर, किशोरी जी का मन्दिर दुर्ग का जलाशय, बीहड़ और समरशाह की मजार है।

40– तालबेहट दुर्ग – यह दुर्ग ललितपुर जनपद में है तथा झांसी सागर मार्ग पर स्थित है। झांसी से इसकी दूरी 31 मील है पहले यह दुर्ग चन्देलो के आधीन था बाद में भरतशाह के आधीन रहा यहां अनेक अभिलेख भी उपलब्ध हुए है। इस दुर्ग में चन्देलकालीन भग्नावशेष भारतशाह के दुर्ग के अवशेष दुर्ग की प्राचीन, तालबेहट सरोवर, नृसिंह मन्दिर, अदोना का विष्णु मन्दिर, महादेव मन्दिर, और दुर्ग की बावली दर्शनीय स्थल है।

41– देवगढ़ दुर्ग – यह दुर्ग ललितपुर जनपद में तालबेहट के सन्निकट है। ललितपुर से इसकी दूरी 20 मील है। और जखलौन से इसकी दूरी नौ मील है यह दुर्ग एक ऊँची पहाड़ी में बना हुआ है भूमि से इसकी ऊँचाई 300 फुट है। बलुआ पत्थर से इस दुर्ग का निर्माण हुआ है पहले यह दुर्ग गुप्त शासको के आधीन था इसके पश्चात गुर्जर प्रतिहार यहाँ के शासक रहे उसके बाद गौंड़ तुर्क और मुगलों का शासन यहाँ रहा इस दुर्ग में गजेन्द्र मोक्क्ष मन्दिर, दशावता मन्दिर सप्तमत्रिका मन्दिर, सूर्य मन्दिर, बुन्देलो के बनवाये मन्दिर जैन मन्दिर, आवासीय स्थल, जलाशय, और युद्ध स्मारक दर्शनीय स्थल है।

दुर्गा का निर्माण उस समय प्रारम्भ हुआ जब व्यक्ति अपना भ्रमण शील जीवन त्यागकर एक स्थान पर रहने लगा और धातुओं का उपयोग अस्त्र–शस्त्र के निर्माण में किया जाने लगा राज्य व्यवसाी की स्थापना होने के पश्चात नागरिकों की अपनी सुरक्षा तदयुगीन नरेशो को हुई। इसलिए उसने आवासीय भूमि को एक परिकोटे से घेरा और वहां दुर्ग का निर्माण किया। दुर्ग निर्माण में इस बात का ध्यान रखा जाता कि वहाँ पहुँचने के लिए अनेक मार्गो का निर्माण कराये जिससे आवश्यक वस्तुओं का आयात और निर्यात सम्भव हो सके इसी समय व्यापार का भी जन्म हुआ और व्यापार की कठिनाइयें को दूर करने के लिए मुद्रा प्रणाली का भी उदय हुआ।

अनेक पुराणों धार्मिक ग्रन्थों और अलग से लिखे गये वास्तुशिल्प के ग्रन्थों में दुर्ग निर्माण का उल्लेख मिलता हैं तदयुगीन विद्वान कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में वास्तुशिल्प का विस्तृत वर्णन किया है। उस युग में जिस स्थान का जो सामग्री उपलब्ध होती थी। उसी से वास्तु का निर्माण होता था। मिट्‌टी पत्थर, बालू, चूना लकड़ी लोहा, आदि वस्तुओं से वास्तु का निर्माण होता था। समान ढोने के लिए तसलो बैलगाड़ों और पशुओं का सहारा लिया जाता था। वास्तुकार फावड़ा, खुदाली, हथौड़ा, कन्नी, सहायकता से वास्तु का निर्माण करता था। सबसे पहले वह भूमि की पैमाइस करता था। इसके लिए भी अनेक उपकरण उस युग में थे। वास्तुकला को धन की सर्वाधि क आवश्यकता पढ़ती थी। इसलिए इसका निर्माण राजा महराजा और पूँजीपति ही करा पाते थे।

दुर्ग निर्माण के लिए जहाँ राजा उसके कर्मचारी और उसकी प्रजा रहती थी। वहाँ सर्वप्रथम पर कोटे का निर्माण कियाक जाता था। लकड़ी को परिकोष्टा बनाने की अनुमति नही थी बुन्देलखण्ड के समस्त दुर्ग प्राचीर बेष्ठित है। ताकि शत्रु आसानी से दुर्ग में प्रवेश न कर सके।

दुर्ग वास्तु की सबसे बड़ी विशेषता दुर्ग में प्रवेश करने के लिए उसके द्वार होते है। जिन्हें प्रवेश द्वार के नाम से जाना जाता है। प्रवेश द्वारों के बगल में डेवणी अथवा चबूतरे बनाये जाते थे। दरवाजे के खम्भों की ऊँचाई 15 हाथ से लेकर 18 हाथ तक होती थी। उसके पश्चात दरवाजे से लगे हुए सैन्य स्थल होती थी। उसके पश्चात दरवाजे से लगे हुए सैन्य स्थल होते थे और उसके सन्निकट जलाशय होता था। दरवाजे में मजबूत लकड़ी के द्वार होते थे। और ऊपर की ओर नुकीले कीले लगे हाते थे। ताकि शत्रु सेना दरवाजों को आसानी ने तोड़ सके।

प्रत्येक दुर्ग में विविध प्रकार के जलाशयों का निर्माण किया जा सकता था। जनता की आवश्यकता को देखते हुए इनकी लम्बाई चौड़ाई निर्धारित की जाती थी। तथा जलाशय के किनारे विविध प्रकार के घाट बने होते है। इन जलाशयों के किनारे धर्म स्थल भी बने होते थे। बुन्देलखण्ड के अनेक दुर्गो में महत्वपूर्ण जलाशय उपलब्ध है ये सरोवरों के रूप में है। सरोवरों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के बीहड़ और कूप भी बनवाये जाते थे। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक जलाशय नदी झरने और कुण्डों से भी लज आपूर्ति होती थी। ये जलाशय भी कभी–कभी कृषि कार्यो में भी सहयोग प्रदान करते थे।

दूर्ग में उपलब्ध अनेक प्रकार के निवास स्थान तदयुगीन वास्तुशिल्प के अनुसार बनवाये गये थे। इनमें राजमहल सभा स्थल तथा सामन्य व्यक्तियों

के निवास स्थल शामिल हैं प्रत्येक महल में रसोई पर कोष्ठागार संयन कक्ष बैठक आदि होती थी और बीच मे आंगन होता थां। महल मे प्रवेश करने के लिए अनेक दरवाजे होते थे। महोबा, जबलपुर, गढ़ाकोटा, हटा, मदनपुर, चिल्ला में अनेक आवासीय स्थल उपलब्ध हुए है। ये स्थल चन्देलो से लेकर बुन्देल गौंड़, तुर्को और मुगलों के है।

प्रत्येक दुर्ग में नाना प्रकार के धर्म स्थल है। ये स्थल बौद्ध, जेन, शैव, शक्ति, विष्णु, गणेश, वृह्य तथा अन्य देवी देवताओं के है मुख्य मन्दिर पंचायतन नागरी शैली के है। यहाँ कुछ मन्दिर दक्षिण भारतीय शैली के उपलब्ध हुए है। इन मन्दिरों में प्रवेश द्वार गर्भगृह परिक्रमा पथ और विशाल काय आगन भी है। इनमें कलात्मक मूर्तियाँ है। मन्दिरों का निर्माण धर्म शास्त्रों के अनुसार किया गया है। प्रमुख मन्दिरों में खजुराहों, कालिंजर, महोबा, देवगढ़, दुधाई, चाँदपुर, जबलपुर मैहर, के मन्दिर सर्वश्रेष्ठ है।

दुर्ग मैं अनेक प्रकार की मूर्तियाँ भी उपलब्ध होती है उपलब्ध प्रमुख मूर्तियाँ गुप्तकाल से लेकर चन्देल काल और उसके बाद तक की है। तथा कुछ मूर्तियाँ मौर्य काल और उसके बाद की हैं उपलब्ध होने वाली मूर्तियाँ महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, विविध तीर्थकारों हिन्दू धर्म के देवी देवताओं पशु पक्षियों पक्ष यक्षाणियों और मैथुन क्रिया में लिप्त स्त्री पुरूषों की है। कुछ मुर्तियाँ संगीत ओर नृत्य की भी है। ये मूर्तियाँ उच्चकला का प्रदर्शन करती है। तदयुगीन संस्कृति और धर्म पर प्रकाश डालती है। खजुराहो, कालिंजर महोबा देवगढ़ आदि में उपलब्ध है। इन मूर्तियों को हिन्दू धर्म जैन धर्म, बौद्ध धर्म, निर्पेक्ष पशु पक्षियों में विभाजित किया जाता है। इसके अलावा धातु की मूर्तियाँ मिट्टी की मूर्तियाँ भी यहाँ उपलब्ध होती है।

बुन्देखण्ड के अनेक दुर्गो में उन स्थलों का भी निर्माण कराया गया। जिनका महत्व सामरिक दृष्टि से था पूर्व मध्यकाल और मध्यकाल में युद्ध पद्धति मे परिवर्तन हुआ था और अस्त्र–शस्त्र, सैन्य उपकरणों में व्यापक परिवर्तन हुआ था और अस्त्र–शस्त्र, सैन्य उपकरणों में व्यापक परिर्वतन हुआ था। इसलिए सर्वप्रथम दुर्ग उन स्थलों में बनवाये जाते थे जहां शत्रु के लिए प्राकृतिक बाधाये उपलब्ध हो। यदि प्राकृतिक बाधायें नही होती है तो कृतिम बाधाओं का निर्माण किया जाता था दुर्ग के प्रवेश द्वार निर्मित करने के लिए यह ध्यान रखा जाता था। कि शत्रु उनमें आसनी से प्रवेश न कर सके। दुर्ग की दीवालों से सटे हुए बुजुर्गो का निर्माण इस तरह कराया जाता था। ताकि वहाँ से शत्रु सेना पर आक्रमण किया जा सके और उसे आगे बढ़ने से रोका जा सके परिकोटे की दीवाल में कंगूरे बनाये जाते थे। और उसके नीचे शस्त्र

चलाने के लिए मारक छिद्र होते थे।

किले के मुख्य द्वार के पश्चात नगाड़ खाने होते थे। जो नगाड़ बजाकर सूचना दिया करते थे। प्रवेश द्वार के डेवणी के बगल में ऐसे गुप्त अड्डे होते थे जहां छिपकर शत्रुओं पर आक्रमण किया जा सता था। किले के अन्दर ऐसे प्रकोष्ठ होते थे जहां अस्त्र–शस्त्र रखने की सुविधा होती थी। तथा घोड़े हाथी ऊँट आदि जानवरों को रखाने के लिये भी अस्थान बनवाये जाते थे। राजा और उसके कर्मचारियों के निवास स्थल बहुत ही सुरक्षित स्थानों में होते थे।

प्रत्येक दुर्ग में गुप्त मार्ग हुआ करते थे इनकी लम्बाई 10 या 15 मील तक हुआ करती थी। इस गुप्त मार्ग का सम्बन्ध किले की गढ़ी मन्दिर, कुँआ, जलाशय और कन्दराओं से हुआ करता था। कभी–कभी इन मार्गो से सामान भी ढोया जाता था। कालिंजर, महोबा, अजयगढ़, देवगढ़ तथा अन्य दुर्गो में इस प्रकार के गुप्त मार्ग में है इनका निर्माण युद्ध कला को ध्यान मे रखकर किया गया था।

1— शोध प्रबन्ध का शीर्षक — शोध प्रबन्ध का शीर्षक बुन्देलखण्ड के दुर्ग एक ऐतिहासिक अध्ययन है। शोध के लिए जिसकी स्वीकृति बुन्देलखण्ड विश्व विद्यालय में पिछले वर्ष शोध छात्र को उपलब्ध हो गई थी। उसके पश्चात शोध कार्य प्रारम्भ कर दिया गया था तथा शोध प्रबन्ध का लेखन कार्य भी शोध प्रबन्ध के शीर्षक के अनुसार उसकी सीमाओं को ध्याम में रखकर पूर्ण किया गया है।

शोध प्रबन्ध के लेखन में सर्वप्रथम बुन्देलखण्ड को परिभाषित किया गया है। तथा उसकी सीमाओं को एतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार निर्धारित किया गया है। उसके पश्चात बुन्देलखण्ड के उन दुर्गो को शोध प्रबन्ध में स्थान दिया गया है। जिनका महत्व राजनीतिक प्रशासनिक और सामरिक दृष्टि कोण से बुन्देलखण्ड में था। शोध प्रबन्ध का लेखन शीर्षक के अनुसार किया गया है।

2— शोध प्रबन्ध का उद्देश्य — शोध प्रबन्ध का उद्देश्य विश्व विद्यालय़ से पी0एच0डी0 की उपाधि प्राप्त करना मात्र नही है। बल्कि इसका उद्देश्य बहुत ही व्यापक है। युग परिवर्तन के साथ बुन्देलखण्ड के प्राचीन स्मारक दुर्ग, धर्मस्थल जलाशय, प्राचीन बस्तियाँ आवासीय स्थल, धीरे–धीरे नष्ट होते जा रहे है। और हमारी परम्पराए नष्ट होती जा रही है। यदि सब कुछ नष्ट हो गया तो आगे आने वाले पीढ़ी बुन्देल खण्ड गरिमामयी अतीत को किस प्रकार से समझेगी भारत के ऐतिहासिक महत्व को

और बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक गरिमा को पाश्चात्य विद्वानों ने समझा था इसीलिए बी0ए0 स्मिथ–ए– कनियंम और काकवर्ण जैसे विद्वानों ने अतीत के इतिहास को उजागर किया बुन्देलखण्ड का इतिहास जिस प्रकार से लिखा जाना चाहिए था। उस प्रकार से लिखा भी नही गया। केवल छत्रप्रकाश, तवारिक बुन्देलखण्ड, का इतिहास प्रथम भाग, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, बुन्देलखण्ड दर्शन, बुन्लेखण्ड का एतिहासिक मूल्यांकन आदि ग्रन्थ उपलब्ध होते है। पंडित रामसेवक रिछारियां ने बुन्देलखण्ड के दुर्गो पर विशेष कार्य किया है। जो अपूर्ण और अपर्याप्त है इसलिए इस अपूर्णता को दूर करने के लिए शोध कार्य किया गया।

बुन्देलखण्ड में ऐसे अनेक एतिहासिक स्थल और दुर्ग है जिनका पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है ये स्थल उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में स्थित है। यदि इन दुर्गो का सरक्षण किया जाय इनका सुन्दरीकरण किया जाय और यहाँ पहुँचने के लिए मार्गो का निर्माण किया जाय तो ये स्थल सरकारों को अच्छी आय प्रदान कर सकते है। यहाँ पर्यटकों की सुरक्षा व्यवस्था भोजन व्यवस्था और आवासीय व्यवसा सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। क्योंकि अधिंकाश स्थल असुरक्षित है और जंगलो में है।

शोध का उद्दश्य यह भी है कि पुरातत्व विभाग का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाय कि इस विभाग के अधिकारी और कर्मचारी बुन्देखण्ड की पुरा सम्पदा और एतिहासिक धरोहर को नष्ट होने से बचावे अभी तक सरकारों का ध्यान ग्वालियर झांसी ओरछा, खजुराहों, कालिंजर की ओर ही गया है। अन्य महत्वपूर्ण दुर्गो के सरक्षण में वह आज भी उदासीन है।

शोध प्रबन्धक यह भी उद्देश्य है कि जनता दुर्गो के राजनीतिक प्रशासनिक और सामरिक महत्व को समझे और उस अतीत को याद करें जब बुन्देखण्ड के निवासी आभाव ग्रस्त होते हुए भी अपनी कला और संस्कृति की रक्षा के लिए सब कुछ त्याग देते थे। दुर्गों के अवशेष जो आज है वे तदयुगीन परिस्थितियों को मानव मस्तिक में आज भी बनाये रखते है। इसी उद्देश्य को लेकर यह कार्य पूरा किया गया है।

शोध प्रबन्ध का यह भी उद्देश्य है कि इतिहासकारों को पीड़ित किया जाय कि वे सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड का एतिहासिक सर्वेक्षण करके एतिहासिक साक्ष्यों का संकलन करें और नई विधि से यहाँ उपलब्ध दुर्गो पर एतिहासिक ग्रन्थों की रचना करें।

<u>3– शोध प्रबन्ध की विषय सामग्री –</u> विषय सामग्री से तात्यपर्य उन पुस्तकों दस्तावेजो जनपश्रुतियों और परम्पराओं के अध्ययन से

है जिनके आधार पर शोध प्रबन्ध क़ी रचना की जाती है। शोध प्रबन्ध को पूरा करने के लिए शोध छात्र ने विषय सामग्री को निम्न आधार पर संग्रीत किया और उसका अध्ययन किया।

(1) महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संकलन एवं अध्ययन—

शोध प्रबन्ध को पूरा करने के लिए बुन्देखण्ड से सम्बन्धित महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संकलन किया गया। यह संकलन शोध दात्र को महत्वपूण्र पुस्तकालयों के माध्यम से उपलब्ध हुआ है। महत्वपूर्ण ग्रन्थों में वेद, पुराण, महाभारत, स्मृतिग्रन्थ आइने अकबरी, बाबरनामा, तथा पुराने कवियों के काव्य ग्रन्थ आल्हखण्ड, पृथ्वीराज रासो, छत्रप्रकाश, तथा कविभूषण द्वारा रचित ग्रन्थों के अतिरिक्त आर्कयोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, इण्डियन एन्टीक्वेरी, तथा विविध गजेटियर्स को शोध प्रबन्ध की विषय सामग्री में शामिल यिका गया है। इसके अतिरिक्त विविध दुर्गो और रियासतों में सुरक्षित दस्तावेजों को भी शोध प्रबन्ध की विषय सामग्री में रखा गया है। दुर्ग विशेष के सन्दर्भ में प्रचलित जनश्रुतियों को भी और वहां की परम्पराओं को विषय सामग्री में शामिल किया गया है। उपलब्ध विषय सामग्री का अध्ययन गम्भीरता पूर्वक करने के पश्चात शोध प्रबन्ध को अन्तिम रूप दिया गया है।

4— शोध के लिए अपनायी गयी विधि— यह शोध विषय कोई वैज्ञानिक शोध विषय नही है। जिसमें कोई नवीन शोध सिद्धान्त का सृजन किया गया हो और उस सिद्धान्त का प्रक्रीयात्मक परिक्षण किसी प्रयोगशाला में किया गया हो। शोध का विषय एक सामाजिक विषय है जो इतिहास से सम्बन्धित है। इतिहास विषय के अन्तर्गत अतीत की घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। तथा उन पुरातात्विक महत्व के स्थलों का अध्ययन किया जाता है। जिनका निर्माण अतीत में हुआ हो इसलिए इस शोध प्रबन्ध में उस शोध विधि को अपनाया गया है जो किसी भी सामाजिक विषय के लिए अपनायी जाती हो । यह निम्नबिन्दुओं पर आधारित है।

(क) दुर्गो का सर्वेक्षण एवं निरीक्षण — शोध प्रबन्ध लेखन के पूर्व बुन्देखण्ड के सभी दुर्गो का वहाँ जाकर निरीक्षण किया गया। निरीक्षण के अतिरिक्त दुर्गो का व्यापक सर्वेक्षण भी किया गया इस सर्वेक्षण में वास्तुविधि , वास्तु सामग्री, प्रवेश द्वार, परिकोष्टा, आवासीय स्थल, धर्मस्थल, मूर्ति शिल्प, जलाशय का अध्ययन किया गया। और इस बात का विशेष ध्यान रखा गया कि दुर्ग का सामरिक महत्व क्या था तथा दुर्ग के सामन्त और शासक कौन थे। उन्होने यहाँ कितने वर्ष यहाँ अध्ययन किया।

(ब) दुर्ग से सम्बन्धि पुस्तकों एवं दस्तावेजों का अध्ययन— दुर्ग का इतिहास जानने के लिंए अपनायी गई विधि में दस्तावेजों और पुस्तकों का भी अध्ययन किया गया जिसका सम्बन्ध दुर्ग विशेष से था। यदि दुर्ग में शासन करने वाले कोई का परिवार कहीं निवास करता था तो उन व्यकितयों से भी सम्पर्क साधा गया ताकि यर्थात का बोध हो। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड के महत्वपूर्ण इतिहासकार जो बुन्देलखण्ड के इतिहास लेखन में सहयोग प्रदान कर रहे है। उनसे भी सम्पर्क साधा गया और कुछ अपनी चेतना से भी पर्यात का बोध किया जिसके पश्चात लेखन कार्य को अन्तिम रूप दिया गया।

(स) समतुलना — बुन्देलखण्ड में उपलब्ध दुर्गो का तुलनात्मक अध्ययन अन्य स्थलों में उपलब्ध दुर्गो से किया गया है। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में 400 से अधिक दुर्ग थे जिनमें से वर्तमान समय मे 40 या 45 दुर्ग ही एतिहासिक और पुरातात्विक महत्व के प्रतीत होते है। जिनकी समतुलना राजस्थान, बिहार तथा दक्षिण भारत के दुर्गो से की जा सकती है। बुन्देल खण्ड का कालिंजर का सर्वाधि प्राचीन है। वास्तुशिल्प तथा सामरिक, दृष्टिकोण से भी इसका महत्व है अनेक राजनीतिक घटनायें इस दुर्ग से जुड़ी हुई है। इसके अतिरिक्त, ग्वालियर, महोबा देवगढ़ एरण आदि के दुर्ग आते है जिसका अध्ययन तुलनात्मक विधि के अनुसार किया गया है। तुलनात्मक विधि को ध्यान में रखते हुए ही दुर्ग ही वर्तमान स्थित पर प्रकाश डाला गया है।

5— शोध का मूल्यांकन— शोध छात्र द्वारा लिखा गया शोध प्रबन्धा का मूल्यांकन कोई भी शोध स्वतः नही कर सकता उसका मूल्यांकन वे व्यक्ति करते है जो विषय विशेष के विशेषज्ञ है। जिन्होने बुन्देलखण्ड के दुर्गो का निरीक्षण बहुत पैनी दुष्टि से किया है। ओर जिनका अध्ययन विस्तृत एवं व्यापक है इसके अतिरिक्त जो भी विद्धान व्यक्ति इस शोध प्रबन्ध को पढ़ेगे वे भी इसका मूल्यांकन यर्थात रूप में कर सकेंगे फिर भी शोध छात्र निम्न बिन्दुओं ध्याम में रखकर करेंगे।

(क) शोध के लिए किया गया परिश्रम— किसी भी शोध प्रबन्ध से अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है। कि शोध छात्र ने कितना परिश्रम शोध के लिए किया गया है। क्योंकि ज्ञान की गरिमा का प्रत्यक्षीकरण शोध प्रबन्ध के अध्ययनसे झलकने लगता है। यह परिश्रम शोध छात्र ऐतिहासिक स्थल को देखने और विषय समाग्री को संकलित करने में करता है। उसका अन्य परिश्रम अध्ययन और लेखन कार्य में होता है।

(ब) विषय सामग्री संकलन के आधार पर मूल्यांकन– कोई भी शोध छात्र अपने शौध प्रबन्ध का प्रस्तुतीकरण करता है। तो वह साक्ष्य की पुष्टि के लिए अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का उदाहरण प्रस्तुत करता है। शोध छात्र ने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों के फुट नोट्स प्रत्येक अध्याय में प्रस्तुत किये है। तथा शोध प्रबन्ध के अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची संलग्न की गई है। अर्थात शोध प्रबन्ध का मूल्यांकन फुट नोट्स और सन्दर्भ ग्रन्थ सूची आधारपर किया जाना चाहिए।

(स) लेखन शैली के आधार पर मूल्यांकन – किसी भी शोध प्रबन्ध के लेखन में गवेषणात्मक शोध परक शैली अपनायी जाती हैं यह शैली एक ऐसी चिन्तनशील शैली है जो किसी भी विषय को उसके लक्ष्य तक ले जाती है। यह शोध प्रबन्ध किसी शैली को अपनाकर लिखा गया है। शोध प्रबन्ध के लेखन सश्य चयन भाषा चयन तथा व्याकरण का पूर्ण ध्यान रखा गया है। इसकी लेखन शैली इतिहास विषय के अनुकूल है। जिसमें शीर्षक से लेकर उपसंहार तक विषद वर्णन है इस लिए शोध प्रबन्ध का मूल्यांकन शेली के आधार पर किया जान चाहिए।

(द) तुलनात्मक मूल्यांकन– प्रत्येक शोध प्रबन्ध एक ऐसे शोध विषय से जुड़ा होता है। जिसके शीर्षक पृथक होते है तथा विषय भी पृथक होते है। यह शोध प्रबन्धपूर्ण रूपेण बुन्देलखण्ड के दुर्गो से सम्बन्धित है इसलिए इसकी तुलना इतिहास विषय के अन्तर्गत ही किये गये अन्य शोध विषयों से नही की जा सकती हो सकता कि अन्य शोध प्रबन्धो का कुछ अंश इससे मेल खाता हो किन्तु सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध एक पृथक विषय से सम्बन्धित है इसलिए इसका मूल्यांकन तुलनात्मक दृष्टि से अन्य शोध प्रबन्धो से करना उचित नही होगा। वर्तमान परिप्रेक्ष में इसका मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

6– शोध परिणाम – शोध छात्र कोयह पूर्ण आत्म विश्वास है कि उसे अपने शोध प्रबन्ध से निम्न परिणाम उपलब्ध हुए।

(अ) बुन्देलखण्ड के इतिहास के सन्दर्भ में विस्तृत जानकारी की उपलब्धि – यदि शोध छात्र बुन्देलखण्ड के दुर्गो के सन्दर्भ मे शोध कार्य पूरा न करता तो उसे बुन्देलखण्ड के सन्दर्भ में किसी भी प्रकार की जानकारी उपलब्ध न हो पाती बुन्देलखण्ड का सीमांकन, बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक संरचना यहाँ के निवासी, संस्कृति एवं धर्म के सन्दर्भ में उसे कोई भी जानकारी उपलब्ध न हो पाती। बुन्देलखण्ड की राजनीति व्यवस्था प्रशासनिक व्यवस्था और सामरिक विधि का वह अध्ययन न कर पाता

और न उसे उन व्यक्तियों के सन्दर्भ म जानकारी न हो पाती जिन्होने बुन्देलखण्ड के इतिहास की रचना की है। शोध प्रबन्ध के माध्यम से बुन्देलखण्ड के इतिहास के सन्दर्भ शोध छात्र को विशेष ज्ञान की उपलब्धि हुई है।

(ब) बुन्देलखण्ड के दुर्गों के सन्दर्भ में विशेष ज्ञान की उपलब्धि – शोध के पहले शोध यह नही जानता था कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में प्राचीन काल से लेकर उत्तर मध्य युग तक 400 से अधिक दुर्ग थे। जिनमें से अधिकांश दुर्ग नष्ट हो चुके है। शोध प्रबन्ध के माध्यम से इस दुर्गो का पर्यात बोध हुआ इसकी वास्तु विधि का बोध हुआ दुर्ग में उपलब्ध आवासीय स्थल, धर्म स्थल, जलाशय तथा सामरिक स्थलों का बोध हुआ। अनेक दुर्गो में प्राचीन वेषभूषा के चित्र अस्त्र–शस्त्र आभूषण आदि भी देखाने को मिले जो विभिन्न संग्रहालयों म संग्रहीत है।

(स) यशकीर्ति और उपाधि की उपलब्धि – इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से शोध छात्र को यश कीर्ति की उपलब्धि होगी। जब यह शोध प्रबन्ध एक पुस्तक के माध्यम से प्रकाशित होगा और इतिहास में रूचि रखने वाले व्यक्ति इस शोध प्रबन्ध का अध्ययन करेगें तथा शोध छात्र यह भी आशा करता है कि भविष्य में उसे विश्व विद्यालय द्वारा पी0एच0डी0 की उपाधि से उसे सम्मानित किया जायेगा जो भविष्य में उसे आर्थिक आध ार बनेगी।

7– शोध प्रबन्ध की उपयोगिता – यह शोध प्रबन्ध एक उपयोगी शोध प्रबन्ध होगा ऐसी आशा शोध छात्र द्वारा की जाती हैं इसकी उपयोगिता निम्न बिन्दुओं पर आधारित है।

(अ) बुन्देलखण्ड की इतिहास की जानकारी के लिए उपयोगी– यह शोध प्रबन्ध उन लोगो के लिए उपयोगी होगा। जो बुन्देल खण्ड के इतिहास जानने की उत्सुकता रखते है। क्योंकि यह शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड के इतिहास की आंशिक जानकारी इस शोध प्रबन्ध के व्योक्तियों को सुलभ हो सकती है।

(ब) बुन्देलखण्ड के दुर्गो पर प्रकाश – अभी तक ऐसा कोई शोध प्रबन्ध नही था जो बुन्देलखण्ड के सम्पूर्ण दुर्गो पर प्रकाश डाले इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से बुन्देलखण्ड के दुर्गो के सन्दर्भ में व्यक्तियों को महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध होगी। तथा व्यक्ति शोध प्रबन्ध के अध्ययन के पश्चात दुर्गो के एतिहासिक महत्व को समझेगा और उन्हें देखना भी चाहेगा।

(स) पर्यटन को प्रोत्साहन– इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से

बुन्देलखण्ड में पर्यटन व्यवसाय को प्रात्साहन मिलेगा जो व्यक्ति बुन्देलखण्ड में पर्यटन की दृष्टि कोण से आते है। वे इन दुर्गों को देखेगे जिससे सरकार को आर्थिक आय उपलब्ध होगी तथाजो समस्यायें पर्यटन के लिये यहाँ है। उनका भी समाधान होगा समस्त दुर्ग मार्गो से जोडत्रे जायेगें वहाँ आवासीय स्थल बनेगे तथा बेरोजगार युवको को अनेक प्रकार के रोजगार पर्यटन व्यवसाय के माध्यम से उपलब्ध होगे। तथा यहाँ के व्यक्तियों का सम्पर्क बाहरी व्यक्त्यिों से होगा।

8— आगामी शोध छात्रों के लिए सलाह— बुन्देलखण्ड के इतिहास के सन्दर्भ में अभी—भी अनेक ऐसे विषय है। जिन पर शोध कार्य किया जा सकता है। उदाहरण के लिए बुन्देलखण्ड के पर्यटन विकास की सम्भावना पर शोध कार्य करना अभी बांकी है। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड की अवधारणा की एतिहासिक पृष्ठिभूमि आजादी के बाद से अब तक पर भी शोध कार्य किया जा सकता है। एक शोध कार्य बुन्देलखण्ड की संस्कृति के परिवर्तित स्वरूप पर किया जा सकता है।

—:सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:—

1— आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, ऑफ इण्डिया भाग 2, 7, 10,

2— आइने अकबरी भाग दो,

3— आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, खण्ड़ 21,

4— आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, ऑफ इण्डिया,1909,

5— आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, ग्वालियर राज्य, 1930—31,

6— आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, ऑफ इण्डिया 1911—12,

7— अग्निपुराण अध्याय 222,

8— अग्निपुराण अध्याय 223,

9— अग्निपुराण अध्याय 225, 227, 228, 236,

10— आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट (कनिंघम), भाग 10, अग्निहोत्री, प्रभुदयाल, पतंजलिकालीन भारत,

11— अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो,

12— अथर्ववेद,

13— डॉ0 अयोध्या प्रसाद पाण्डे, चन्देलकालीन, बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रथम संस्करण, प्रयाग, 1968,

14— आल्हखण्ड़, जनकवि जगनिक,

15— आल्हखण्ड़, सिरसागढ़ की लडाई,

16— औपपातिक सूत्र 31,

17— डॉ0 आशीर्वादीलाल, भारत का हतिहास, सन् 1979, पृ0 सं0 135,

18— अंगुत्तर निकाय, खण्ड 1, पृ0 सं0 197, दे0 इण्डि0 एण्टि0, खण्ड 20, पृ0 सं0 375,

19— अशोक का एक अभिलेख दतिया जिला, (म0 प्र0) के गुर्जरा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। दे एपि0 इण्डिका0 जिल्द 31, पृ0 सं0 2005—10,

20— डॉ0 अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्यति, पृ0 सं0 5,59,

21— अबुल फजल, अकबर नामा, भाग 2, पृ0 सं0 421,

22— डॉ0 श्री मती अरूणेन्द्र चौरसिया,— बुन्देलखण्ड लोक संगीत में सामाजिक, साहित्यक और सांस्कृतिक तत्व, ''शोध प्रबन्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय, सन् 1993,

23— आपस्तम्ब स्मृति, अध्याय 10, अत्रि संहिता, श्लोक सं0 220,223,

24— अभिलेख, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली सन् 1961,

25— इण्डियन आर्केलाजी—ए रिव्यु, सन् 1955—56,

26— इण्डियन एण्टिक्वेरी, जिल्द 16, 18, 25,

27— इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग 1, 5,

28— डॉ0 ईश्वरी प्रसाद, भारतीय इतिहास, संस्कृति, कला राजनीति, धर्म तथा दर्शन सन् 1990, पृ0 सं0 67,

29— इन्द्र एम0 ए0 कौटलीय अर्थशास्त्र,

30— उदयवीर शास्त्री, कौटलीय अर्थशास्त्र(नई दिल्ली मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास पब्लिकेशन्स, 1988)द्वितीय अधिकरण 33 वाँ अध्याय,

31— उमेश कुमार, कौटलीय थॉट आन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन (नई दिल्ली नेशनल बुक आर्गनाइजेशन पब्लिशर्स, 1990) पृ0 सं0 28,

32— एस0 डी0 त्रिवेदी, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, राजकीय संग्रहालय झाँसी 1984,

33— एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द,1, 4, 10, 14, 20, 21, 31,

34— एस0 एम0 अली— दी जाग्राफी ऑफ दी पुराणाज, संस्करण, 1996,

35— डॉ0 एम0 पी0 जायसवाल, ए0 लिग्विस्टिक स्टेज ऑफ बुन्देली संस्करण 1962,

36— एलेक्जेण्डर कनिंघम आर्कुलाजिकल सर्वे रिर्पोट ऑफ इण्डिया, जिल्द 9, पृ0 सं0 82,

37— ए0 रिकार्ड ऑफ बुद्धिस्ट किंगडम्स,

38— कामन्दकनीतिसार, अध्याय 5, श्लोक सं0 74—84,

39— कनिंघम, स्तूप ऑफ भरहुत, पृ0 सं0 132,

40— डॉ0 कन्हैयालाल अग्रवाल, विन्ध्यक्षेत्र का ऐतिहासिक भुगोल सुषमा प्रेस सतना म0 प्र0 पृ0 सं0 8, 1987,

41— कार्पस इन्सक्रिप्शन इण्डिकेरम भाग 3, नं0 46,

42— कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, सन् 1991, पृ0 सं0 218,

43— कालिदास मेघदूत, श्लोक सं0 123,

44— कालिदास रघुवंश महाकाव्य, अध्याय 4, श्लोक सं0 47,

45— डॉ0 कामिनी, बुन्देली भाषी क्षेत्र के स्थान अभिधानों का भाषा वैज्ञानिक,

46— डॉ0 काशी प्रसाद जायसवाल, अनुबादक रामचन्द्र अन्धकारयुगीन भारत संबत 1995,

47— कार्पस खण्ड़, 3, 4,

48— के0 डी0 बाजपेयी, मध्य प्रदेश संस्कृति बाम्बे 1973,

49— कनिंघम आर्कुलाजिकल सर्वे रिर्पोट, भाग 21,

50— कालंजर महात्म्य, अध्याय 1,

51— कृष्ण कवि, बुन्देलखण्ड के कवि, बिक्रमी संबत 2025,

52— केशवचन्द्र मिश्र, भाग 2, चन्देल और उनका राजत्वकाल सन् 1974,

53— कामन्दक नीतिसार, अध्याय 4,

54— कृष्ण कवि, बुन्देलखण्ड का शोध पूर्ण इतिहास, ओरछा खण्ड संस्करण 1980,

55— कार्पस, खण्ड 3,''गुप्तनृपराज्य भुक्तौ'' पृ0 सं0 102,

56— कामसूत्र, पृ0 सं0 288, ''मालव्य इति पूर्वमालव भवाः।''

57— कीथ, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटलेचर, पृ0 सं0 314,

58— किताब—ए— यामिनी, मेमोयर्स ऑफ सुबुक्तगीन, पृ0 सं0 34—35,

59— कर्नल जेम्स टॉड, राजस्थान का इतिहास, सन् 2000, पृ0 सं0 38,

60— खजान—उल—फुतूह— पृ0 सं0 48,

61— खजुराहो स्कल्पचर्स,

62— डॉ0 ग्रियर्सन, लिग्यूस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया, वाल्यूम नौ,

63— पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास बिक्रमी संबत 1990,

64— गुप्त जगदीश, प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, दिल्ली 1967,

65— गुप्त प्रचीन भारतीय चिन्तन पृ0 86,

66— गौतम स्मृति, अध्याय 10, श्लोक 24—27,

67— गुप्त परमेश्वरीलाल, गूप्त साम्राज्य, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक इतिहास, विश्वविद्यालय वाराणसी, सन् 1991, पृ0 सं075,

68— चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल,

69— चन्द्रबरदाई और उनका काव्य— डॉ0 विपिन बिहारी त्रिवेदी,
70— छत्र प्रकाश अध्याय 1, अष्टावदी, 6 दोहा, 6,
71— जैन, जगदीशचन्द्र, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज,
72— ज0 न्यु0 सो0 ई0 खण्ड 26, पृ0 सं0 5,
73— जानमथाई— विलेज गर्वनमेन्ट इन ब्रिट्रिश इण्डिया 25—27,
74— जनरल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल बाल्युम 13, भाग 1 संस्करण 1844,
75— ज0 यू0 पी0 हि0 सो0, खण्ड 18, पृ0 सं0 307,
76— जयचन्द्र विद्यालंक्कार, भारत भूमि और निवासी, संस्करण 1931,
77— जालौन गजेटियर,
78— झाँसी गजेटियर,
79— टी0 ए0 फोल्डिज, पोलिटिकल जॉग्रफी ऑफ फाउन्डेशन,
80— तिवारी, उदय नारायण, भारत का भाषा सर्वेक्षण खण्ड 1, भाग 1, अनुवादक, संस्करण 1959,
81— दंगलसिंह, 'आल्हा'—युगीन दुर्ग और शास्त्र, ममुलिया,
82— दि, मानूमेण्टस ऑफ साची भाग 1,—सर जानमार्शल,
83— देवकान्ता शर्मा, कौटिल्य के प्रशासनिक विचार, प्रशासक, प्रिन्टवैल प्रथम संस्करण 1998,
84— देसाई, कल्पना, आइनेग्राफी ऑफ विष्णु ,
85— द्वितीय चन्द्रगुप्त, उदय गिरि गुहा अभिलेख,
86— दी, बुद्धिस्ट इण्डिया,
87— देलवारा लेख,— कृष्ण कवि, बुन्देलखण्ड के कवि, बिक्रमी संबत 2025 पृ0 सं0 204,
88— द, क्वायनेज ऑफ दि गुप्त एम्पायर, पृ0 सं0 319,
89— दि, एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ0 सं0 64—65,
90— देवगढ़ अभिलेख बिक्रमी संबत 1154,
91— डिक्लाइन ऑफ दि किंगडम ऑफ मगध, पृ0 सं0 127—29,
92— नारद सूक्त, 18,31,
93— नीलकण्ठ मंदिर, अभिलेख, कालिंजर,
94— नीति प्रकाशिका, अध्याय 6,
95— नार्थ— वेस्टर्न प्रविन्सेज गजेटियर भाग 1,
96— नैषध चरित,
97— पाली, जातक, भाग 3, 6,

98— पतंजलि, महाभाष्य, अध्याय 5,

99— पाणिनि, अष्टाध्यायी, अध्याय 5,

100— पी० एन० बनर्जी पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन एसियन्ट इण्डिया,

101— पृथ्वीराज रासो, भाग 1, (नागरी प्रचारणी सभा, काशी)

102— प्रबोधचन्द्रोदय, पृ० 7—8,

103— फोर्ट ऑफ इण्डिया,

104— बोस, एन० एस० हिस्ट्री ऑफ दी चन्देलराज,

105— बाँदा गजेटियर संस्करण1977,

106— बाजपेयी, कृष्णदत्त युग—युगों में उत्तर प्रदेश,

107— बनर्जी, दि एज ऑफ इम्परियल गुप्ताज,

108— बाल्मीकि, रामायण, अरण्यक पर्व, अध्याय 5,

109— बुलेटिन (पुरातत्व विभाग, सागर विश्व)

110— बाण भट्ट —कादम्बरी, काले एम० आर०,

111— बुद्ध कालीन, भारतीय भूगोल,

112— बुन्देली राधाकृष्ण, बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन प्रथम भाग, बुन्देलखण्ड प्रकाशन बाँदा (उ० प्र०)

113— बृजरत्नदास,— बुन्देलों का इतिहास,नागरी प्रचारणी सभा पत्रिका, भाग 1

114— बाजपेयी, सागर थ्रु दि एजेज, पृ० सं० 3,

115— डॉ० बहादुर सिंह परमार, बुन्देली बसन्त, फरवरी 2003, पृ० सं० 1, 2,

116— भारत का भाषा सर्वेक्षण खण्ड 1, भाग 1,

117— 'भरहुत' वेदिका'— एस० सी० काला,

118— भागवत पुराण, स्कन्द 5, अध्याय 8,

119— डॉ० भगवान दास— गुप्ता—मस्तानी बाजी राव, और उसके वंशज बाँदा के नवाब सन् 1983, पृ० सं० 51,

120— महाभारत आदिपर्व अध्याय 2,

121— महाभारत उद्योगपर्व, 155,

122— महाभारत भीष्म पर्व, 5/1187,

123— मेम्वायर्स आव् महमूद आव् गजनवी 322,

124— माटे, मधुकर श्रीपद् ''अली हिस्टोरिक फोर्टीफिकेशन इन दी गंगावैली''पुरातत्व खण्ड़ 3, 1969—70,

125— महाभारत (क्रिटिकल एडीशन पूना)शान्ति पर्व,

126— मत्स्यपुराण(वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1986,

127— मनुस्मृत, अध्याय, 7,

128— महोबा शिलालेख— इपि0 इण्डि0 भाग 1,

129— महाभारत (आरण्यक पर्व) 3—83—54,

130— महाजन, विद्याधर, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली 1986,

131— महाभारत, खण्ड 1, अध्याय 57,

132— मुकर्जी, हर्ष, पृ0 सं0 43,

133— मराठों का इतिहास प्रथम खण्ड, लेखक गोविन्द खाराम, सरदेसाई 1981, पृ0 सं0 266,

134— माधुरी, खण्ड, सं0 1982,

135— मंजु श्री— मूलकल्प, श्लोक 652, पृ0 सं0 109,

136— मजूमदार क्लासिकल एकाउण्टस, ऑफ इण्डिया,

137— मेम्वायर्स ऑफ द ज्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया भाग 2,

138— मित्तल, हिस्ट्री ऑफ उडीसां, पृ0 सं0 269 ,उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ0 सं0 427,

139— मदन का मऊ प्रस्तर अभिलेख, एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द 1, पृ0 सं0 197 श्लोक 3,

140— महाभारत शान्ति पर्व— अध्याय 78, श्लोक सं0 23, 24,

141— मेकक्रिण्डल, एन्शियन्ट इण्डिया एज डिस्क्राब्ड इन क्लासिकल लिटलेचर पृ0 सं0 48,

142— मध्य प्रदेश का पुरातत्व, पृ0 2—3,

143— याज्ञवल्क्य स्मृति, 16, 148,

144— ऋग्वेद 7—19, में विश्व यदद यदवन्ति, में इसी बृहस्पति के महत्तम् देव के रूप में उपासना की गयी है।

145— ऋक परिशिष्ट, ऋग्वेद, 10—75,

146— डॉ0 रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल, बुन्देली भाषा का शास्त्रीय अध्ययन सन् 1963,

147— राजगौड़ महाराज , पृ0 सं0 41,

148— रघुनाथ सिंह कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम् ,

149— लंका काण्ड, 52, 11,

150— रैप्सन, केटालाग, पृ0 CLXV और पृ0 सं0 207—10,

151— लुइस राइस संग्रहीत, ''मैसूर के शिलालेख'' पृ0 सं0 229,

152— वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम् , चौखम्भा विद्याभवन, बाराणसी संस्करण सन् 1991, अध्याय 6,

153— वाजसनेयी संहिता, 16/9,

154— वामन पुराण, 76/14,

155— डॉ0 वासुदेव शरण, अग्रवाल, भरहुत, बेनी माधव
बरूआ और ''भारतीय कला''

156— वासुदेव शरण अग्रवाल, मार्कण्डेय पौराणिक संस्कृतिक
अध्ययन संस्करण 1961,

157— वायु पुराण, अध्याय 14,

158— विनायक दमोर सावरकर, 1857, का भारतीय स्वतन्त्रय
समर, सन् 1983, पृ0 सं0 485,

159— डॉ0 विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर भारत का राजनीतिक
इतिहास (600—1200 ई0) सन् 1972 पृ0 सं0 22,

160— वाटर्स, खण्ड 2, पृ0 सं0 251,

161— शिवराम मूर्ति सी0 इण्डियन स्कल्चर,

162— शुक्रनीतिसार, श्लोक 47, पृ0 सं0 305,

163— शुक्रनीति, अध्याय 4,

164— शोध प्रबन्ध डॉ0 इन्दुप्रभा सचान, ''बुन्देलखण्ड की
सामाजिक एवं धार्मिक दशा का ऐतिहासिक निरूपण सन् 1997,

165— स्टैटिकल डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल एकाण्टस
ऑफ नार्थवेस्टन प्रविन्सेज ऑफ इण्डिया, भाग 6, पृ0सं0 52,

166— स्तूप ऑफ भरहुत — कनिंघम,

167— समुद्र गुप्त का एरण अभिलेख प्राचीन भारतीय
अभिलेख सन् 1983, पृ0 सं049—50,

168— डॉ0 सुशील कुमार सुल्लेरे, अजयगढ़ और कालंजर
की देव प्रतिमाएं,

169— सतपथ ब्राह्मण (x ii,2,2,13,)

170— सिंह दीवान प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास
भाग एक बनारस 14 फरवरी, सन् 1929 ई0,

171— सिंह आर0 एल0, इण्डिया एरीजनल जाग्रफी
संपादक, संस्करण 1971,

172— सागर थ्रु दि, एजेज, पृ0 9,

173— स्टडीज इन इन्डोलाजी, खण्ड 1, पृ0 सं0 240,

174— हिस्ट्री ऑफ दी चन्देलाज,

175— हमीरपुर गजेटियर,

176– हिन्दी भाषा का उद्गम् और विकास ,

177– हिन्दी उद्भव विकास और रूप,

178– हर्षचरित, बाण भट्ट, मुकर्जी आर0 के0 1926,

179– हिन्दी विश्व कोष – भाग 21,

180– हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 सं0 189,

181– हरि सहाय सिंह– प्राचीन भारत में पंचायती जनसमिंतियाँ सन 1987, पृ0 सं0 256,

182– त्रिपाठी, हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृ0 सं0 282,

183– Ancient Bundelkhand- Kirit K.Shah- Gian Publishing house Delhi Jun 30- 1987- Page N. 18,

184– Asir (Cunningham), vol, X, PP,105-110 ;Agrawala, V.S. Studies in Indian art, 1956, Varanasi, PP, 220-225,

185– Atkinson, E.T. statistical, Descriptive and Historical account of the nort-western provinces of India, vol 1, Bundelkhand Divsion, page 524,

186– Agrawala, V.S. studies in Indian Art 1965, Pg-95-97,

187– A stone plapue carved with mother Goddess and their consorts, datable to 3rd, C.B.C., was found from kausambi and is presently housed in the Allahabad museum. see chandra's stone sculpture in the Allahabad museum, Pt-III

188– Brown, P. Indian. Architecture (Buddhest- -and hindu periods) (Bombay, 1956), P. 61,

189– Banerjea, J.N. Religion in art and archaeology, P.6,

190– Bajpai K.D. Yugo-yugon men utter pradesh, Page, 42

191– Banda, Gazetteers, 1977, Page 29,

192– Banda, Ggztteers, being Vol.21 of the district Gazetytters of the unitied provinces of Agra and oudh, by drak- Brockman, D.L,, (Allahabad, 1924) page 29

193– Beams Johan (E.D.) memoirs on the History, Folk-lore, Aand Distribution of the Races of the North Western provinces of India, Vol 1, Page 153,

194– Barua, B.M. Ashoka and his Inscriptions calcutta 1934, page8,

195– Bajpai, K.D. Indian, Numismatic, studies New Delhi 1976, Page 3-53.

196– CII, IV, Part 1, 158, Cultural inscription of India part 1, Page 158,]

197– Drak-Drockman, D.L. Jalaun. a gazetter. Page 115

198– Dikshit, R.k. the candellas, Jejabkukti Page 11,

199– Epigraphica indica Vol. 31, Edition 1892, Page 205,

200– From. Rajadharmakaustubha of Anatadeva. Videch. 14.

201– Ghash, A,,Remdins of bharhut stupu in the indian Museum 1978, P. 41.

202– Historical Geography of Ancient india, Ess Publication Delhi 1967, Page. 312-13,

203– Journal of the numismatic, society of india bomboy part, 38

204– Kirit, K.Shah, Ancent Bundelkhand, Gian publishing hose delhi Jun 30-1987, Page.N,8,

205– L.G. KIl, Proceedings of the all india tal Research Institute, Poona, Oricntal Conference, VI. X.X., Page. 48,

206– M.L. Nigam-cultual history of bundelkhand, sandeep prakashan editon 1983, page, N.1,

207– M.P. chronicle, (daily news paper), bhopal, may 14,1975, page-5,

208– majumdar, R.c. and pusalker, history and culture of the indian people vol,1 editon bombay 1965 page-300

209– Moti chandra costumes textiles cosmeties and coiffurein ancient and mediaevăl india, 1973, page-85

210– Op.CIt., barua, B.M.,II,1934,P.70,

211– Russell,R.V. and hiralal, trives and castes of the central provinces of india, vols, 3 publications delhi 1975 page-139

212– Sankalia, H.D. pre- History and Proto-History of india and pakistan deccan college (New Edition), Poona, 1974 page-107

213– The jarai temple at barwa sagar-Dr. S.D. trivedi goverment museum, jhansi 1985- page-N.-17,

214– the history and culture of the indion people vol 1, the vedic age page-274,
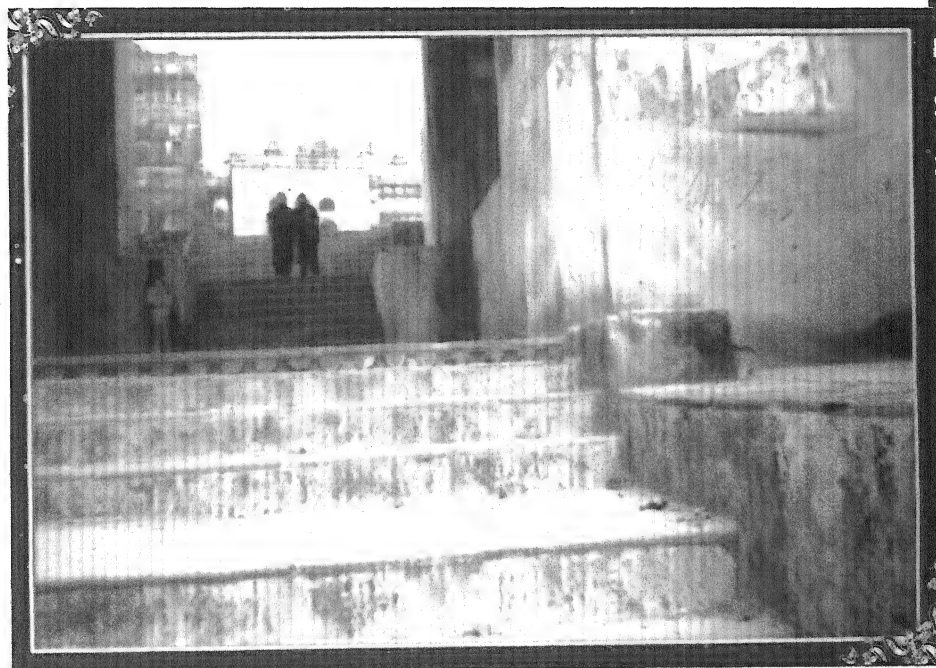
ओरछा दुर्ग का बाहरी भाग
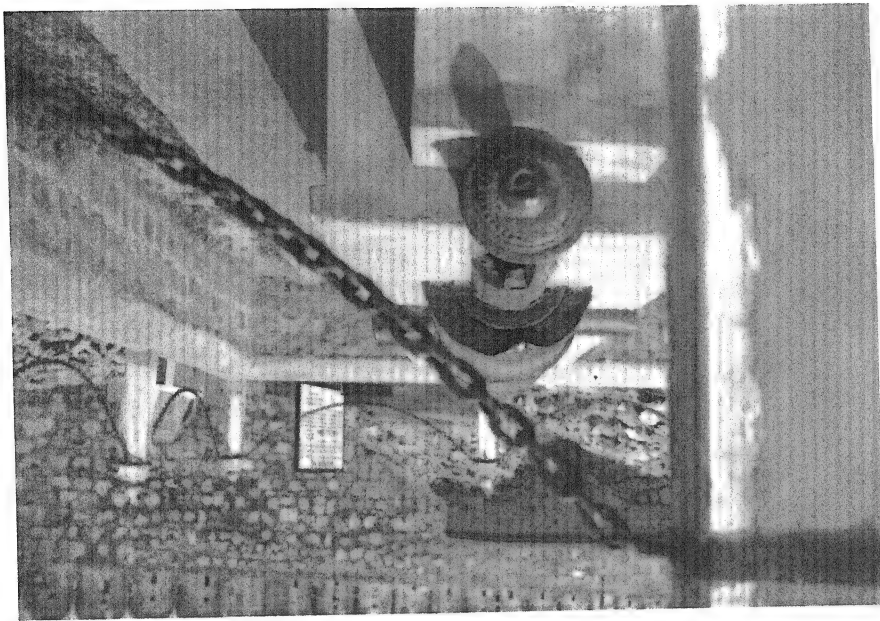
झाँसी दुर्ग की तोप
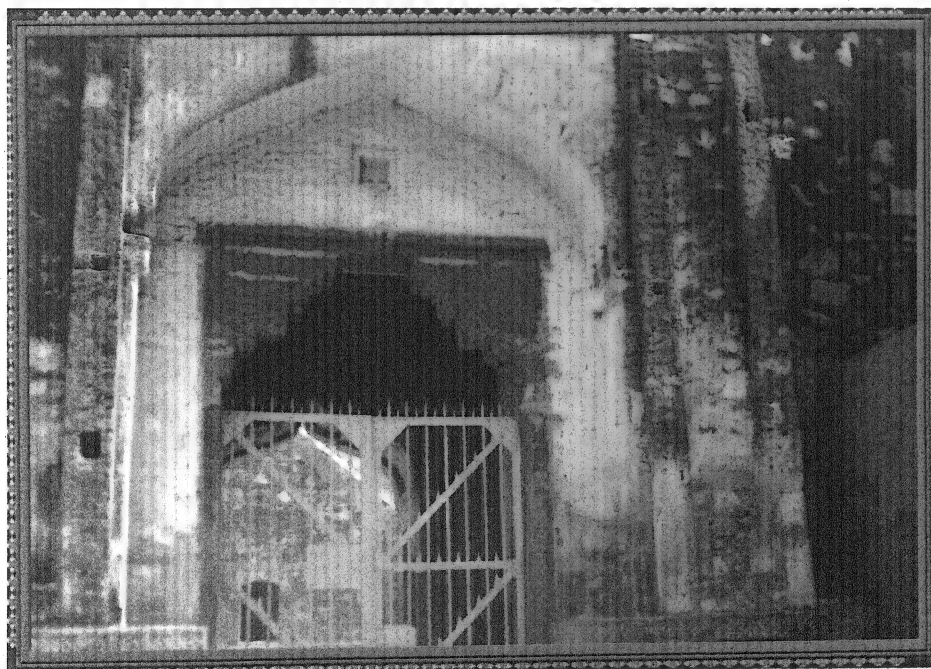
झाँसी दुर्ग के अन्दर का प्रवेश द्वार

झाँसी दुर्ग
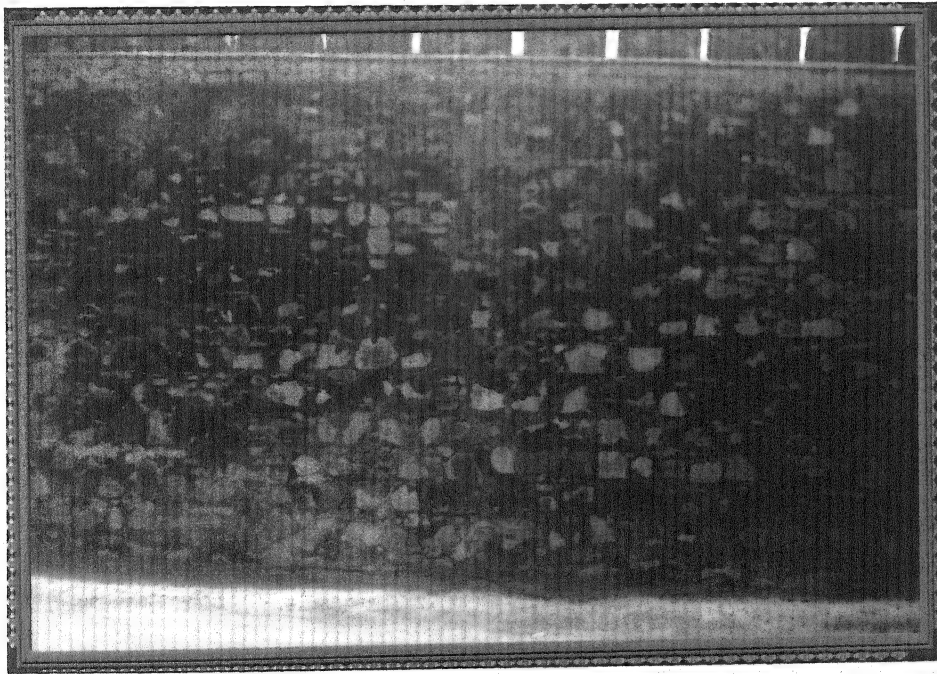
झाँसी दुर्ग की प्रचीर
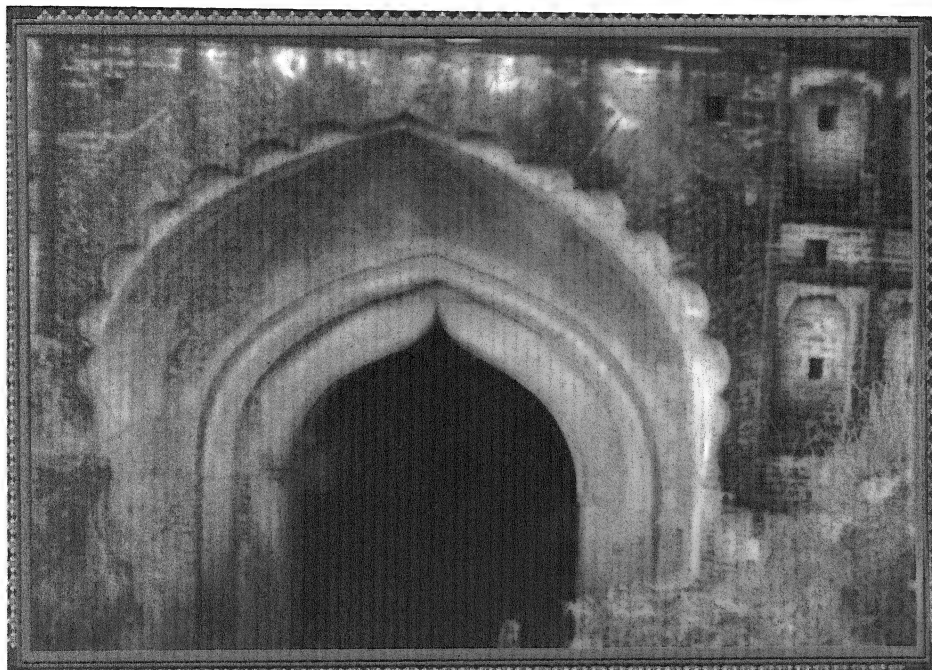
तरहुँआ दुर्ग का प्रवेश द्वार (कर्वी)

तरहुँआ का दुर्ग

तरहुँआ दुर्ग की प्राचीर (कर्वी)

भूरागढ़ दुर्ग का रनिवास महल
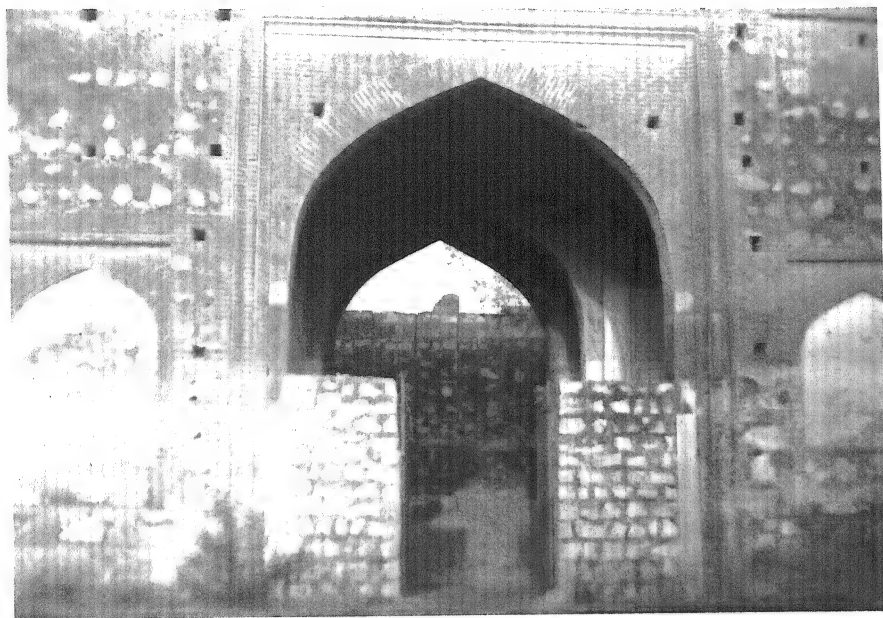
भूरागढ़ दुर्ग का प्रवेश द्वार (बाँदा)

भूरागढ़ दुर्ग की प्राचीर
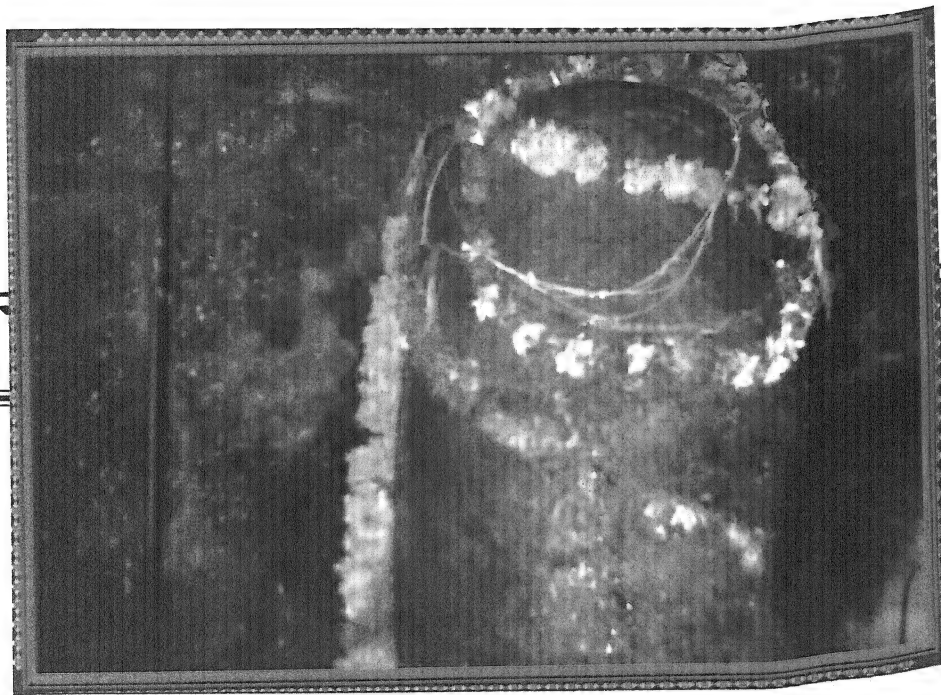
नीलकंठ का मन्दिर कालिंजर दुर्ग
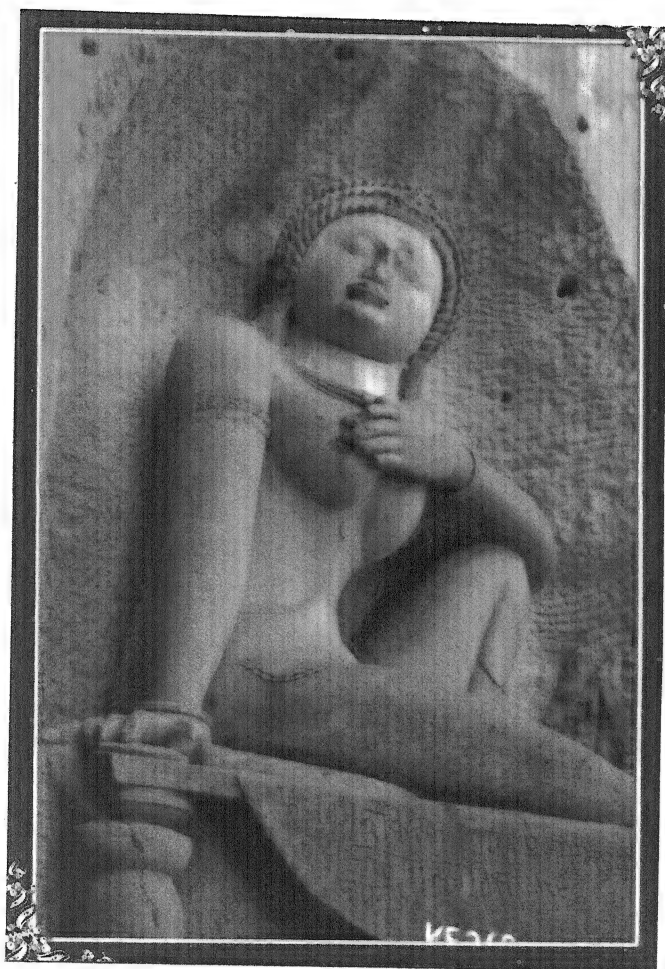
कालिंजर दुर्ग की मिढ़की भैरव

कोट तीर्थ सरोवर कालिंजर दुर्ग

कालिंजर दुर्ग का जलाशय

1 ALAMGIRI GATE
2 GANESH GATE
3 CHANDI OR CHATUR-BURJI GATE
4 BUDH BHADRA GATE
5 HANUMAN GATE
6 LAL DARWAZA
7 BARA DARWAZA
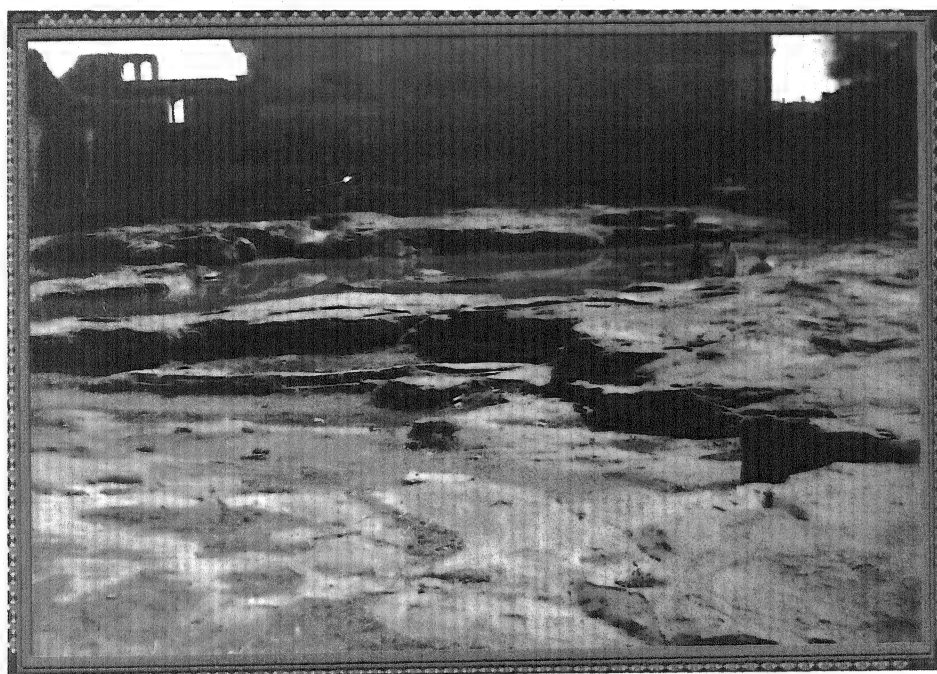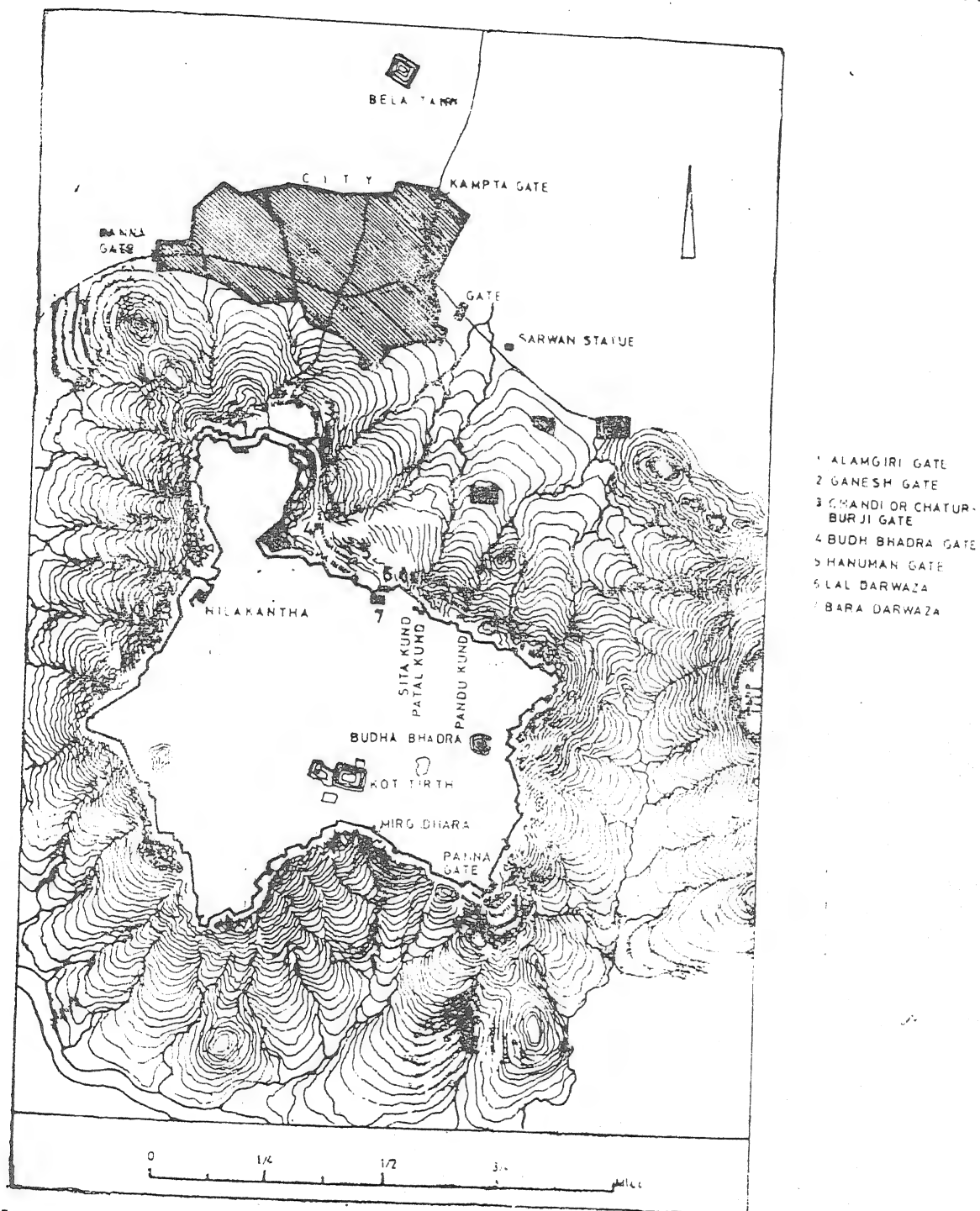
Fig 44
Plan of the Kalinjar Fort.

JHANSI

The visitor to Jhansi comes not so much to view the walls and battlements and deserted terraces as to be touched by the spirit of place. Jhansi Fort has become the *chattri* of the woman who headed the Indian troops here during the Mutiny of 1857–8, the Rani Lakshmi Bai.

The nucleus of the present fort was built in 1613 by Bir Singh Deo of Orchha, though local lore telling of an earlier site here is borne out by carved stonework, set within the walls, of the 12th- and 13th-century Chandella period. These walls, with their ten gates, towers, bastions and battlements, march across the brown hillsides to surround the old city.

The policy of the British in India affected Jhansi in two main ways. The first was part of the question of paramountcy and independent
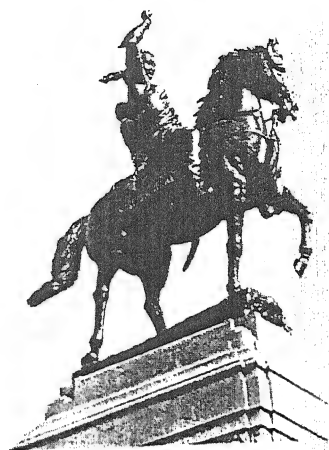
A Hindu shrine in the Rani's
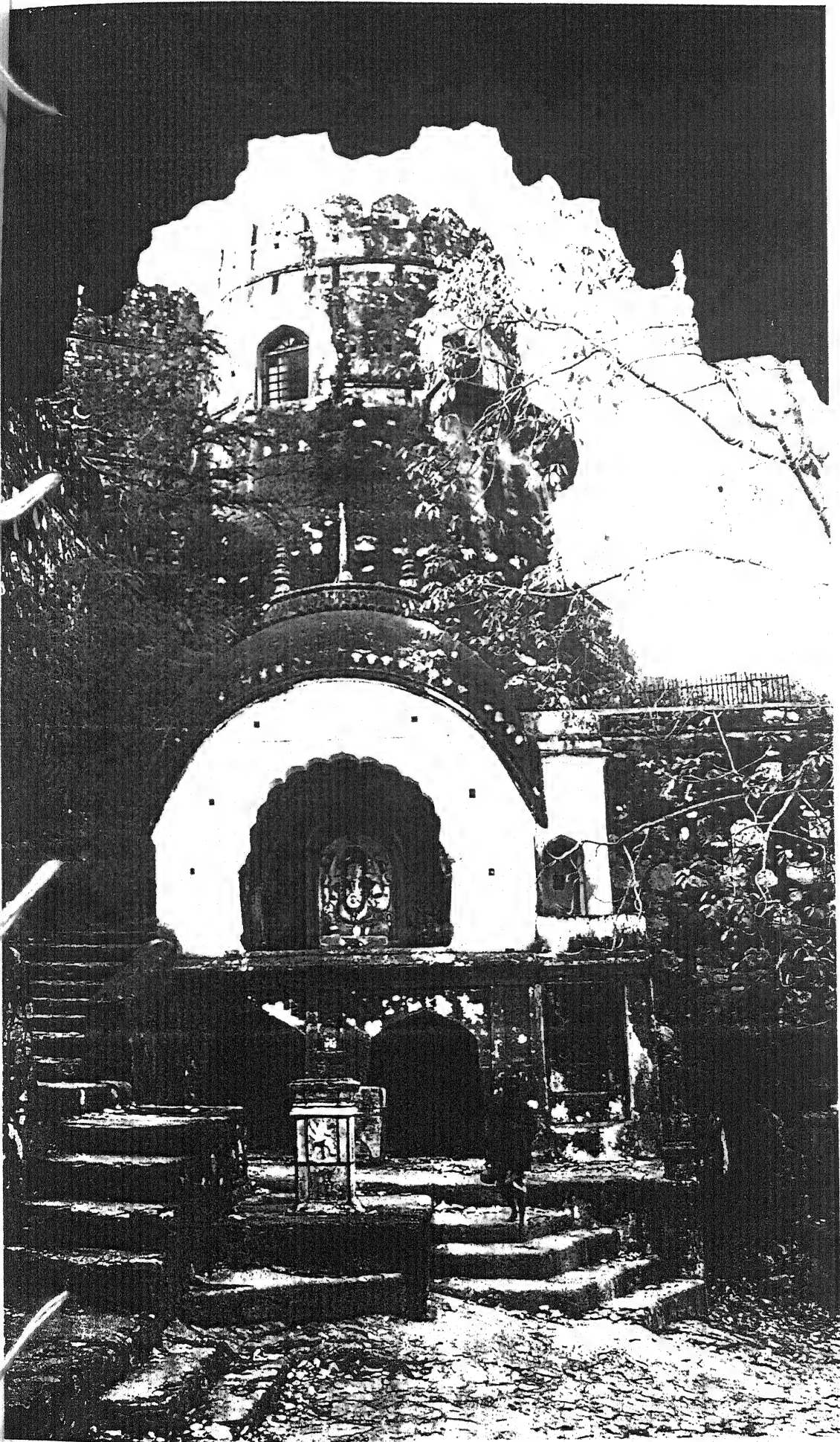
EOGARH & CHANDERI
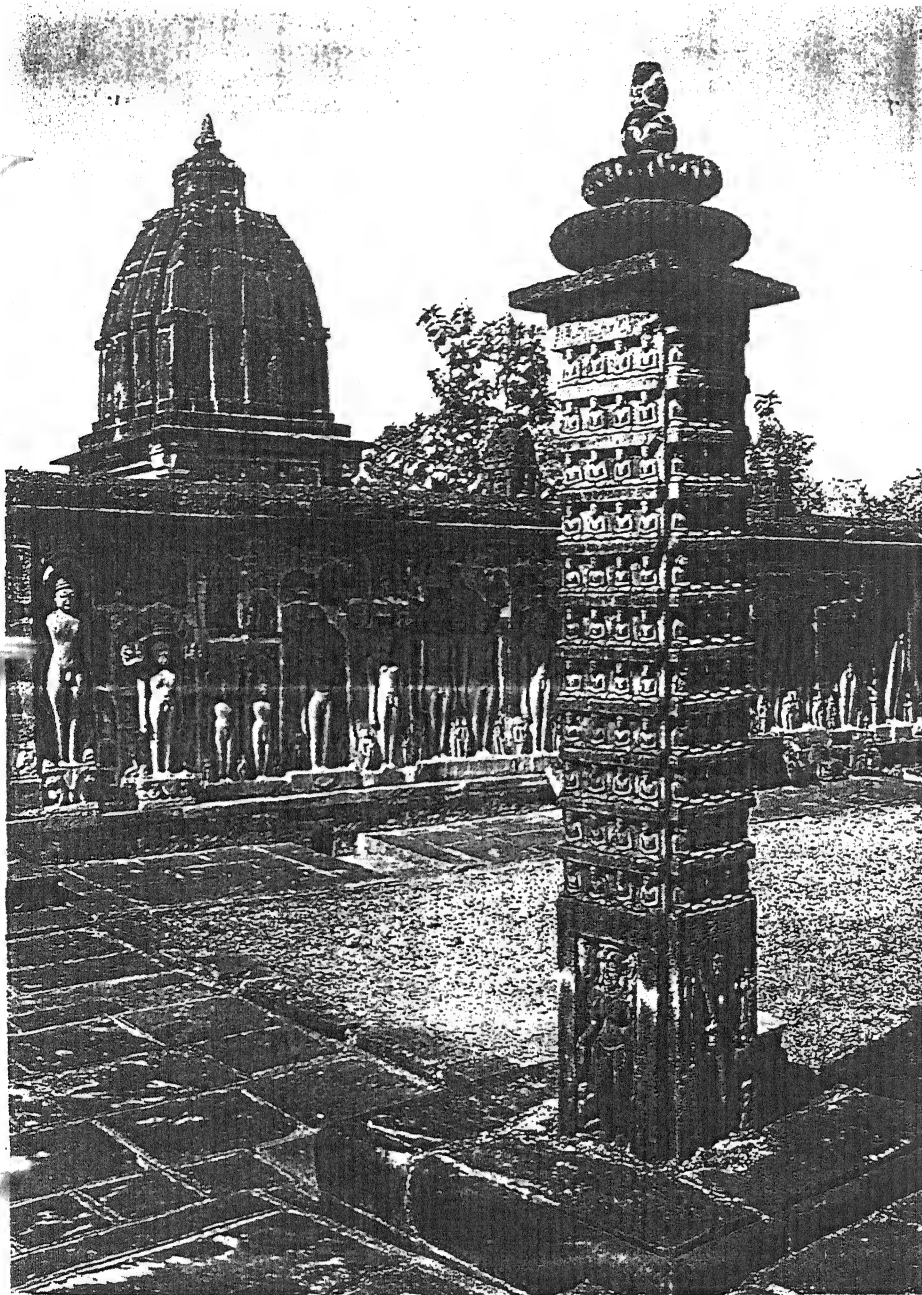
The court of the Shantinath Temple complex within the fort contains pillars carved with Sahastra Kuta in the lotus position.

A corbelled Hindu gateway in the curtain wall of the fort.
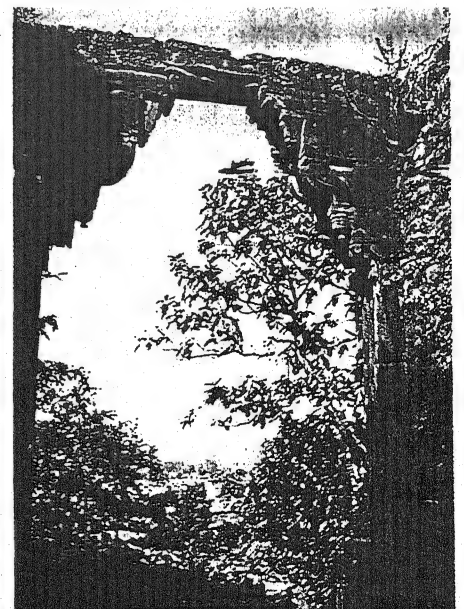
The famous Vishnu Narayana sculpture on the Dashavatara Temple.

A fallen idol and Jain images set into the temple compound wall.
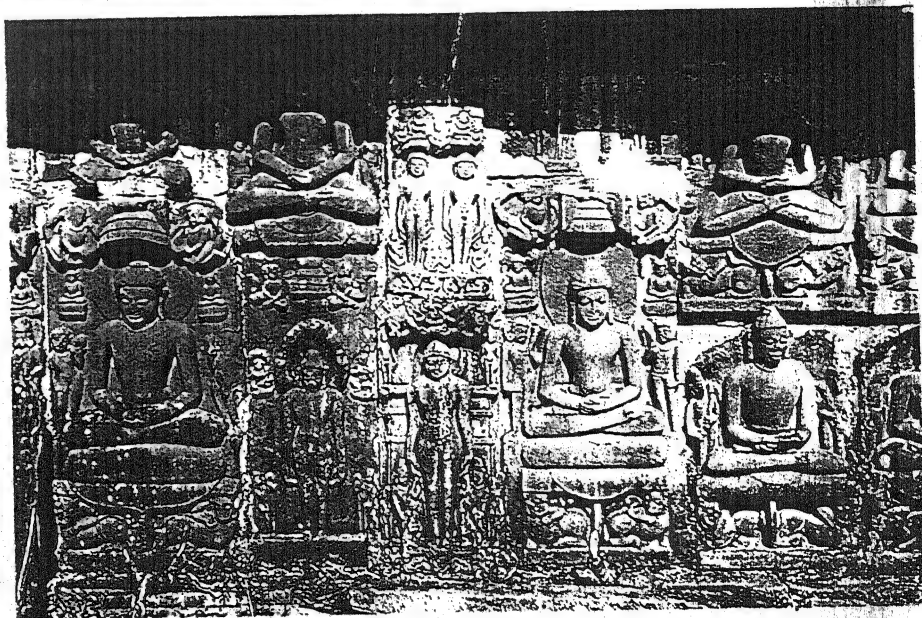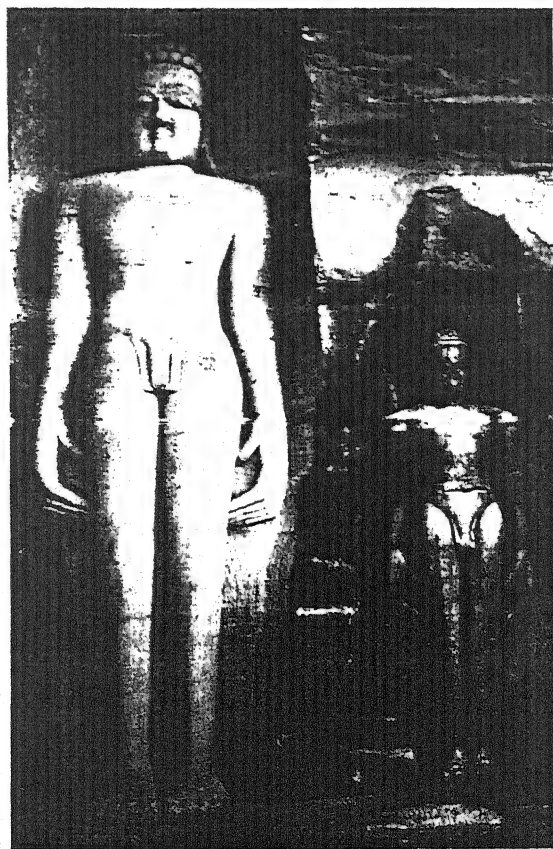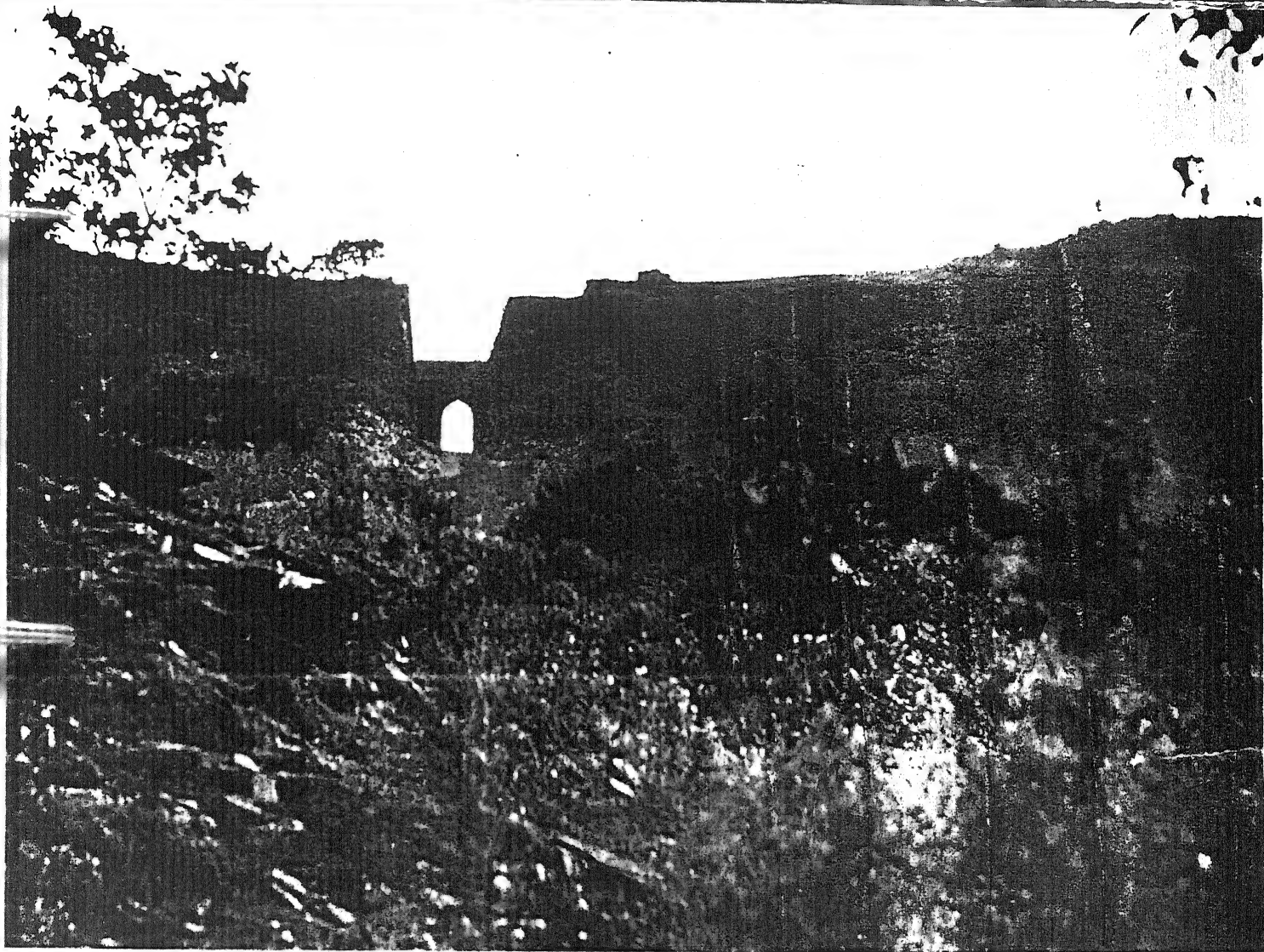
Chanderi: Babur's gorge in the Kirtidurga spur and Jain images cut into the adjacent rock face.

OPPOSITE *Chanderi Fort: the Kirtidurga Palace complex and palatine mosque; interior.*

AHOBA & CHARKHARI

OPPOSITE AND LEFT *The main entrance to the fort with its spiked Elephant Gate and gold sun and moon finials.*

The fort's Kali Temple and a marble multi-armed Kali murti *inside.*
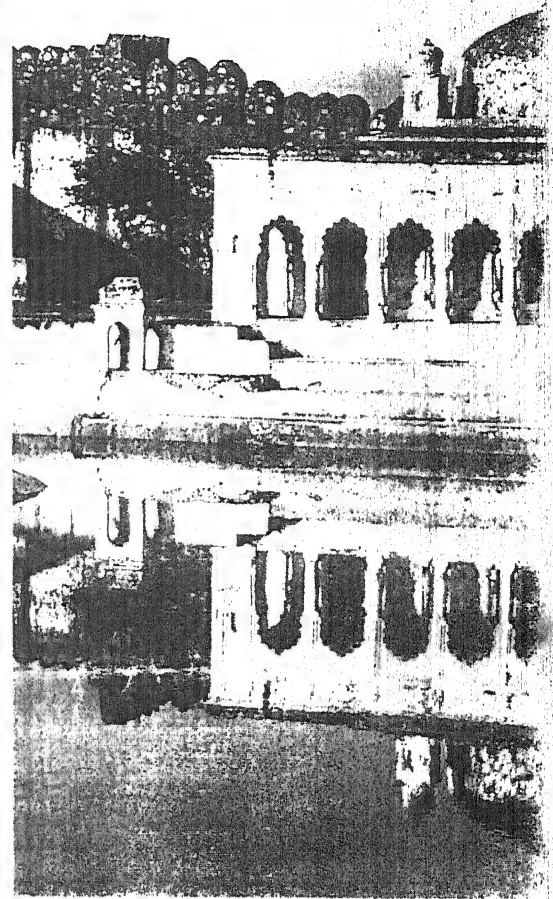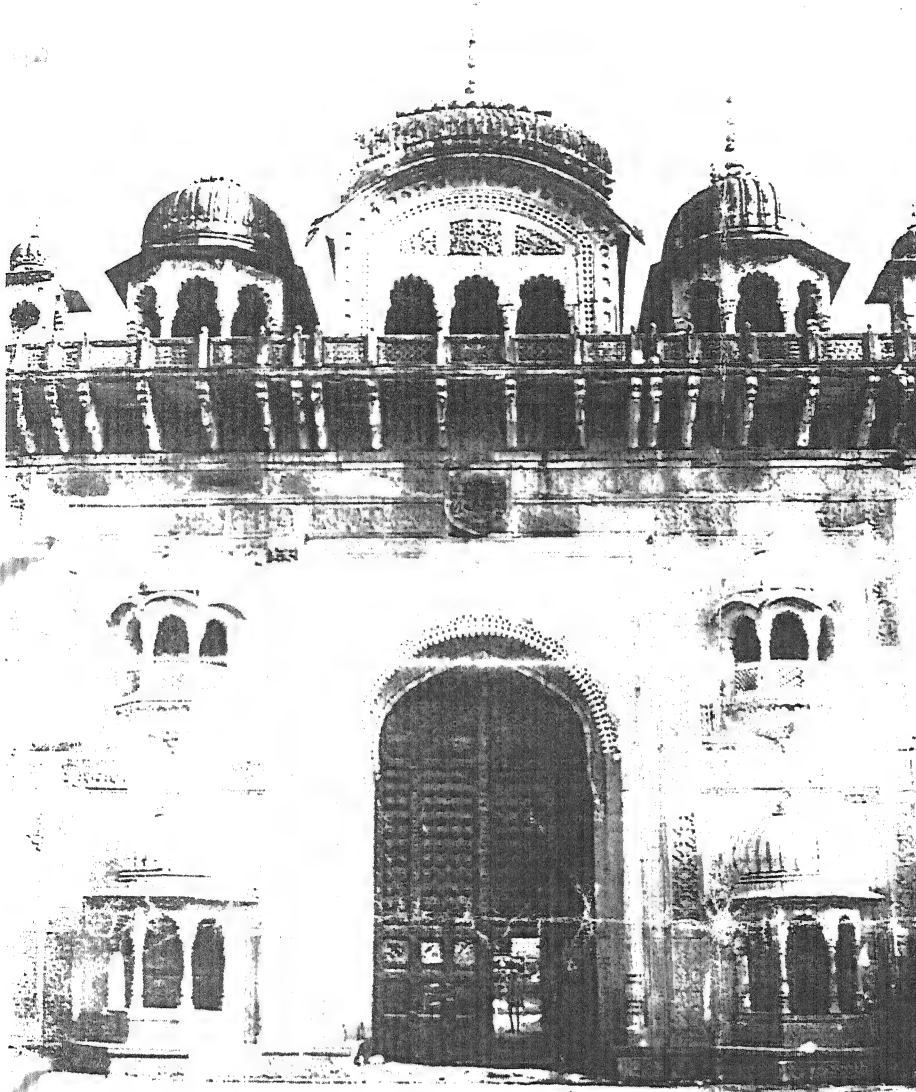
GARHKUNDAR

Rising out of black granite rock in wild dacoiti country stands the foreboding fortress of Garhkundar. A remarkably austere stronghold, standing foursquare on its hill, it commands a 360° view over the plains. Rarely visited by *ferenghi*, outsiders, since the days of the Raj and the occasional tour of a District Magistrate, Garhkundar has a romance and an allure all its own. It is the lair of wolves and wild boar and brigands, and the prudent visitor will venture forth in strength.

In the haze of distance the fort is softer-seeming, less foreboding.

BELOW AND OPPOSITE *Garhkundar Fort stands foursquare on its granite hill base.*
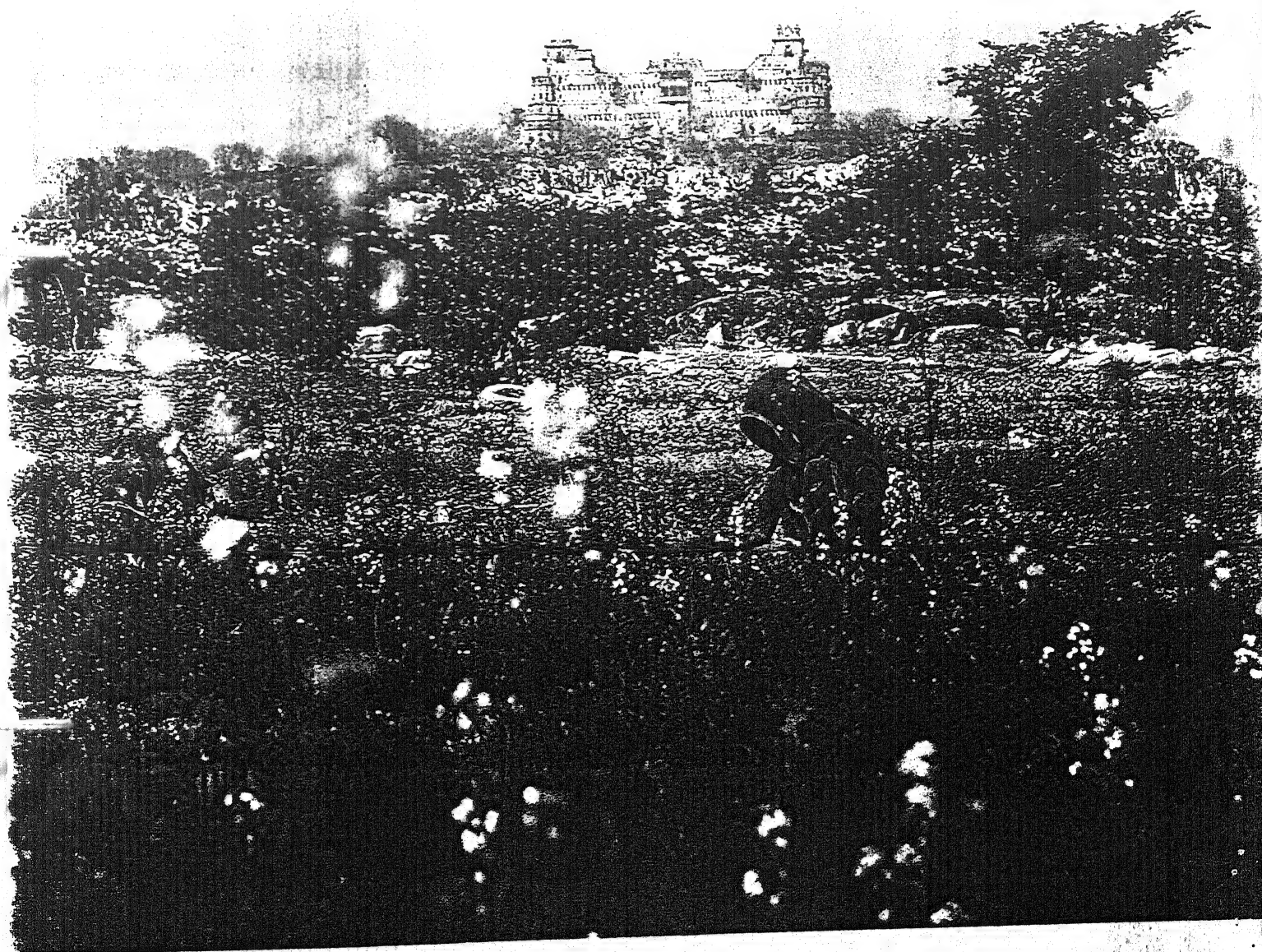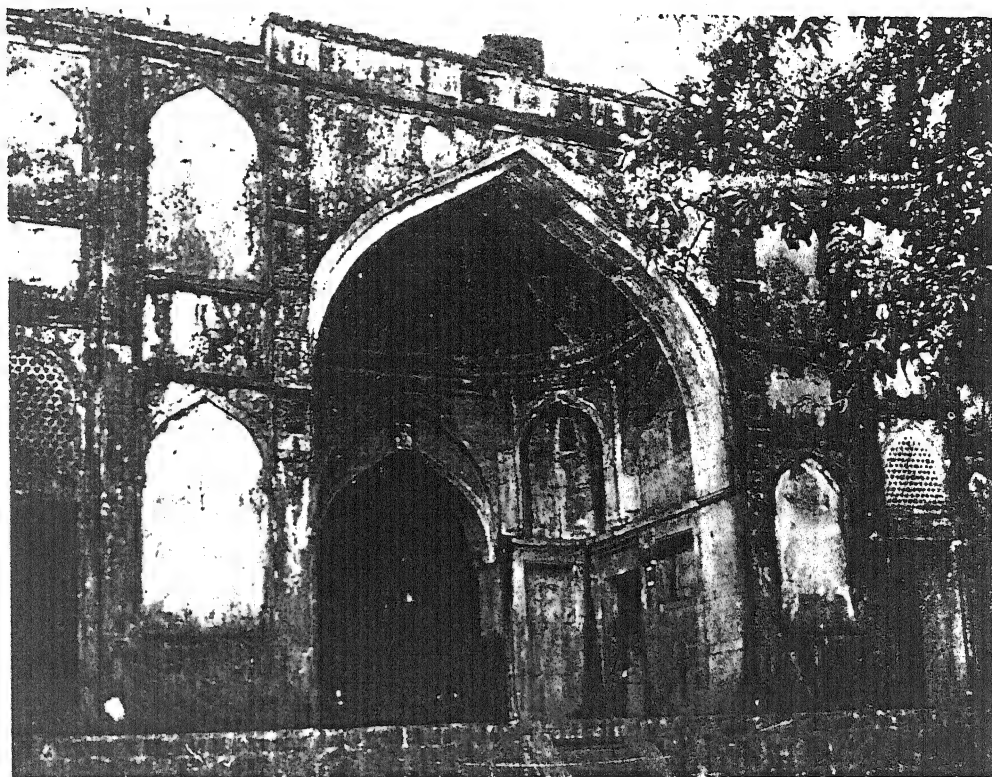
96. MANDU—The Neel Kantha Temple
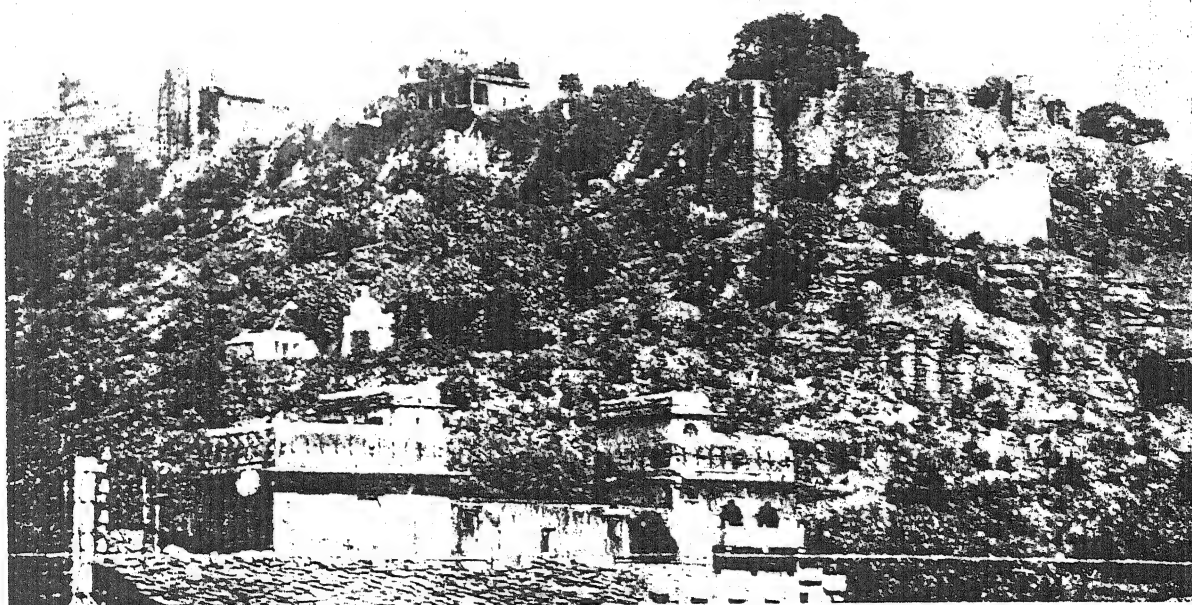
97. General view of the Chanderi Fort
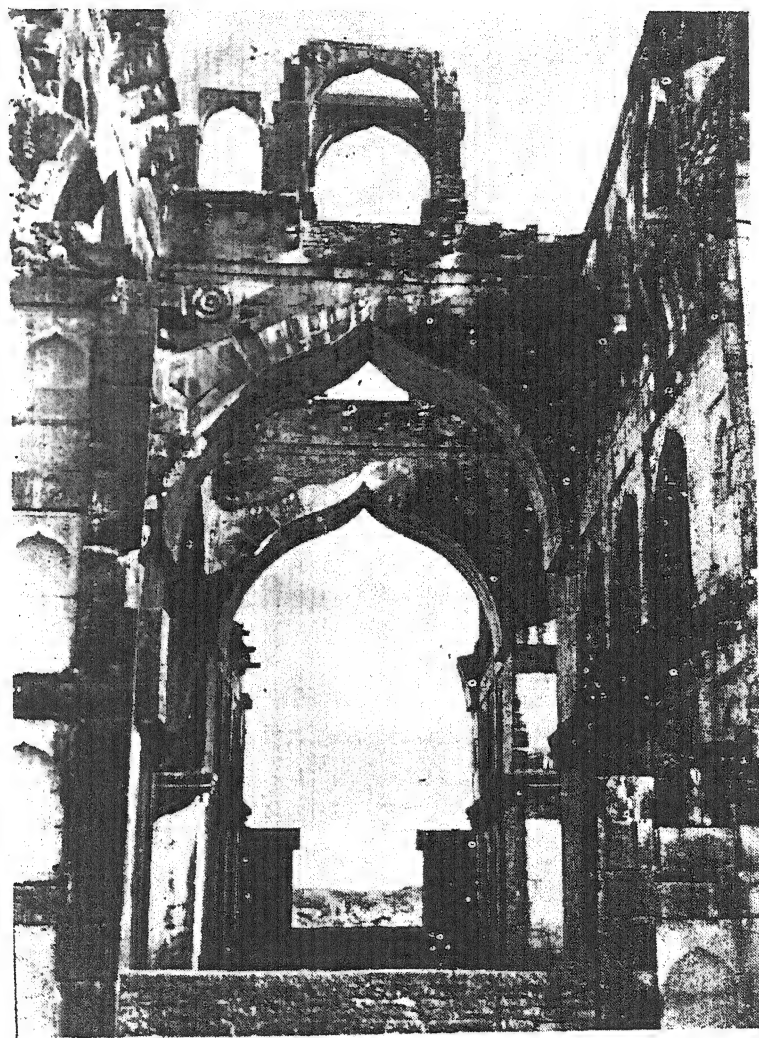
98. CHANDERI—Gate of the Kushak Mahal
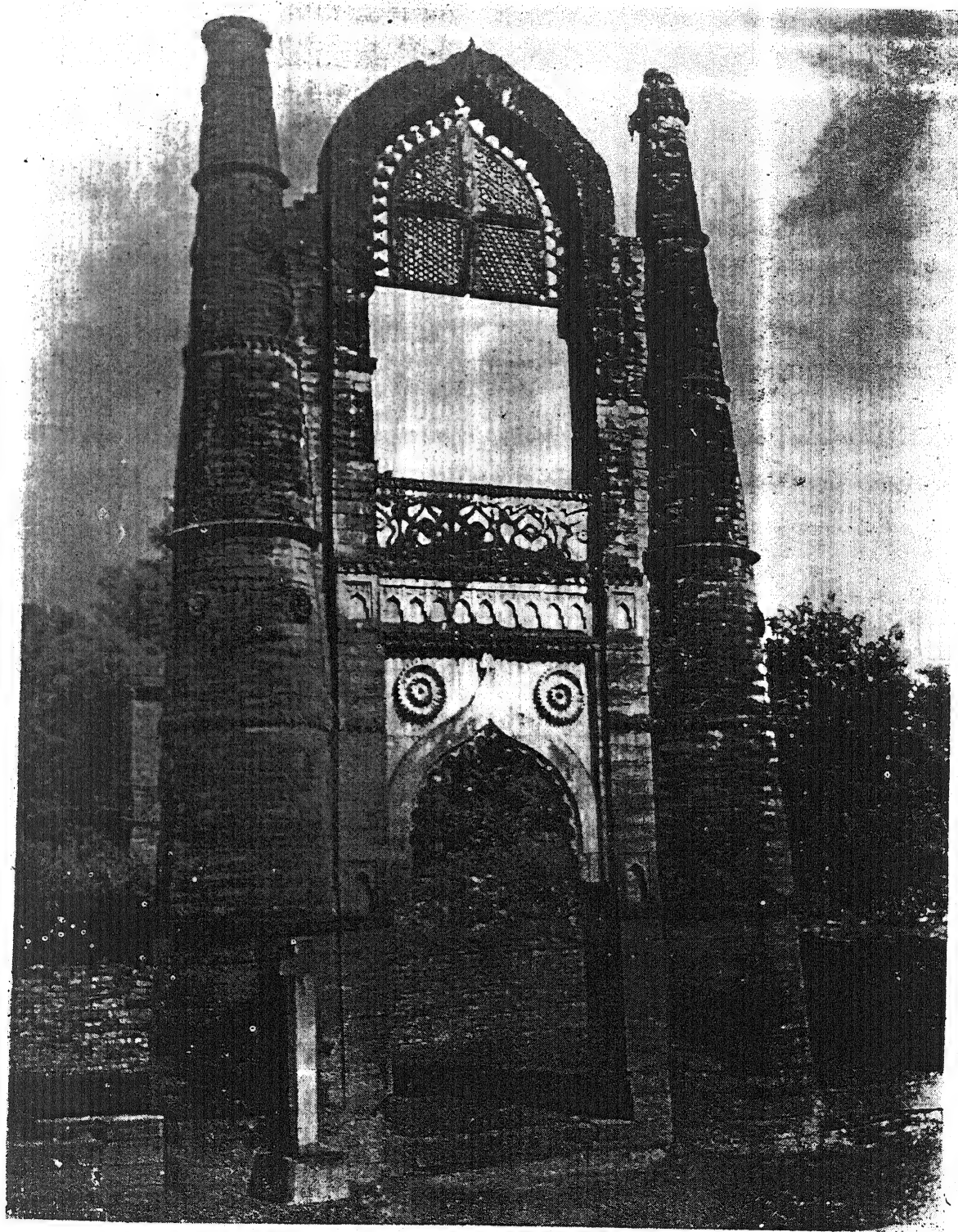
99. CHANDERI—The Badal Mahal gate
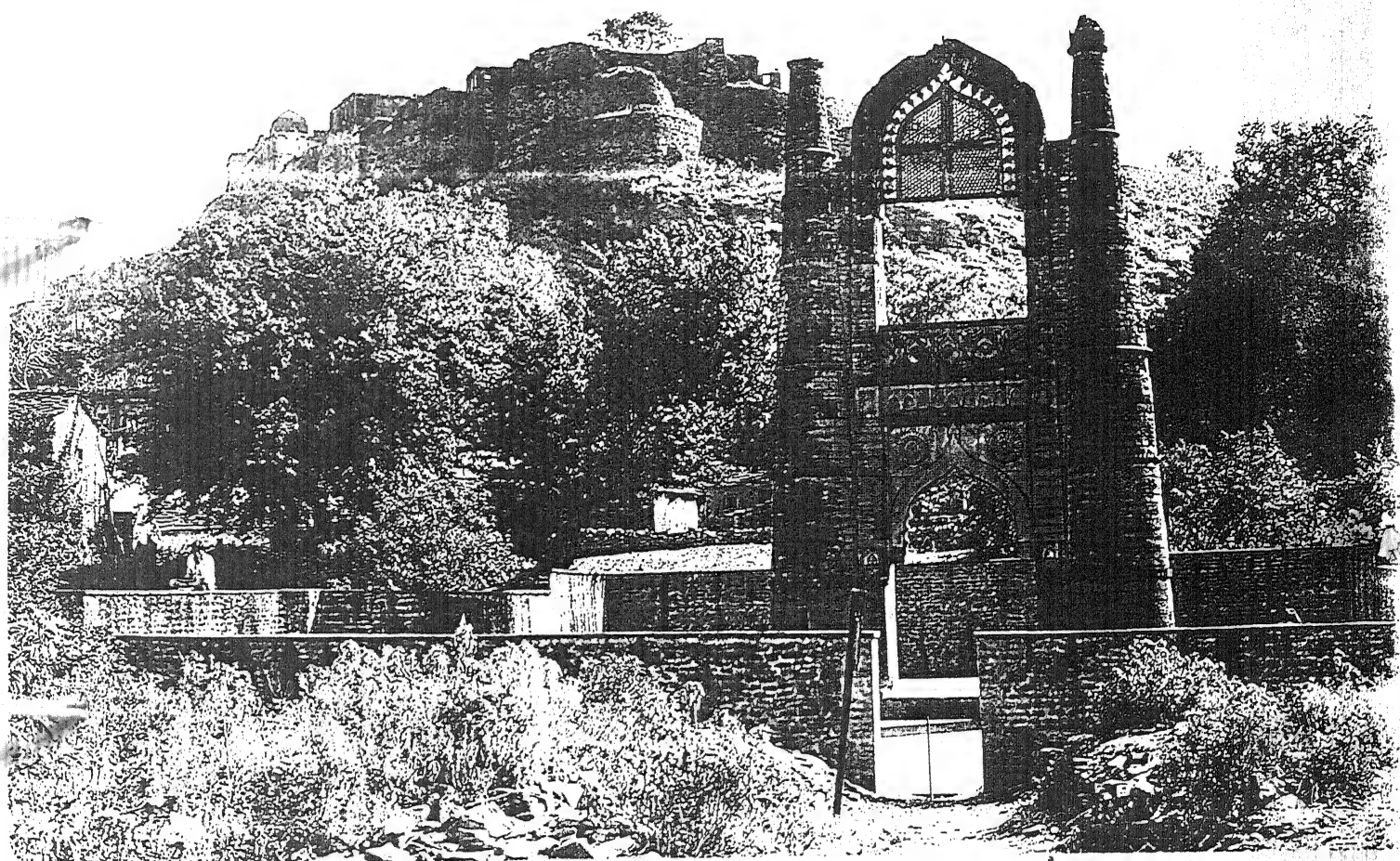
Chanderi Fort seen beyond Badal Mahal Gate.

ORCHHA
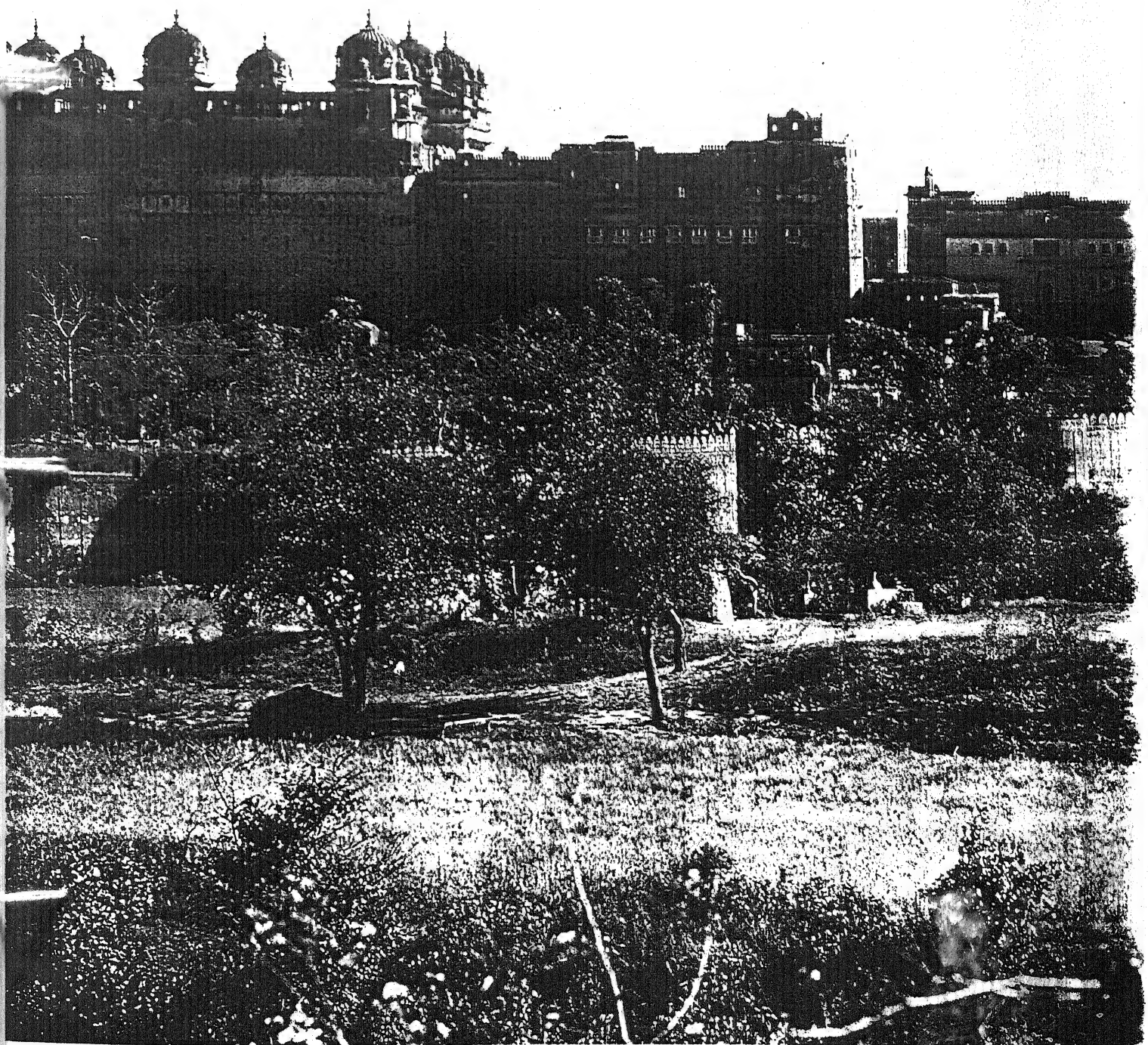
Jehangiri Mahal. Goats now crop the grass 'where once kings trod'.
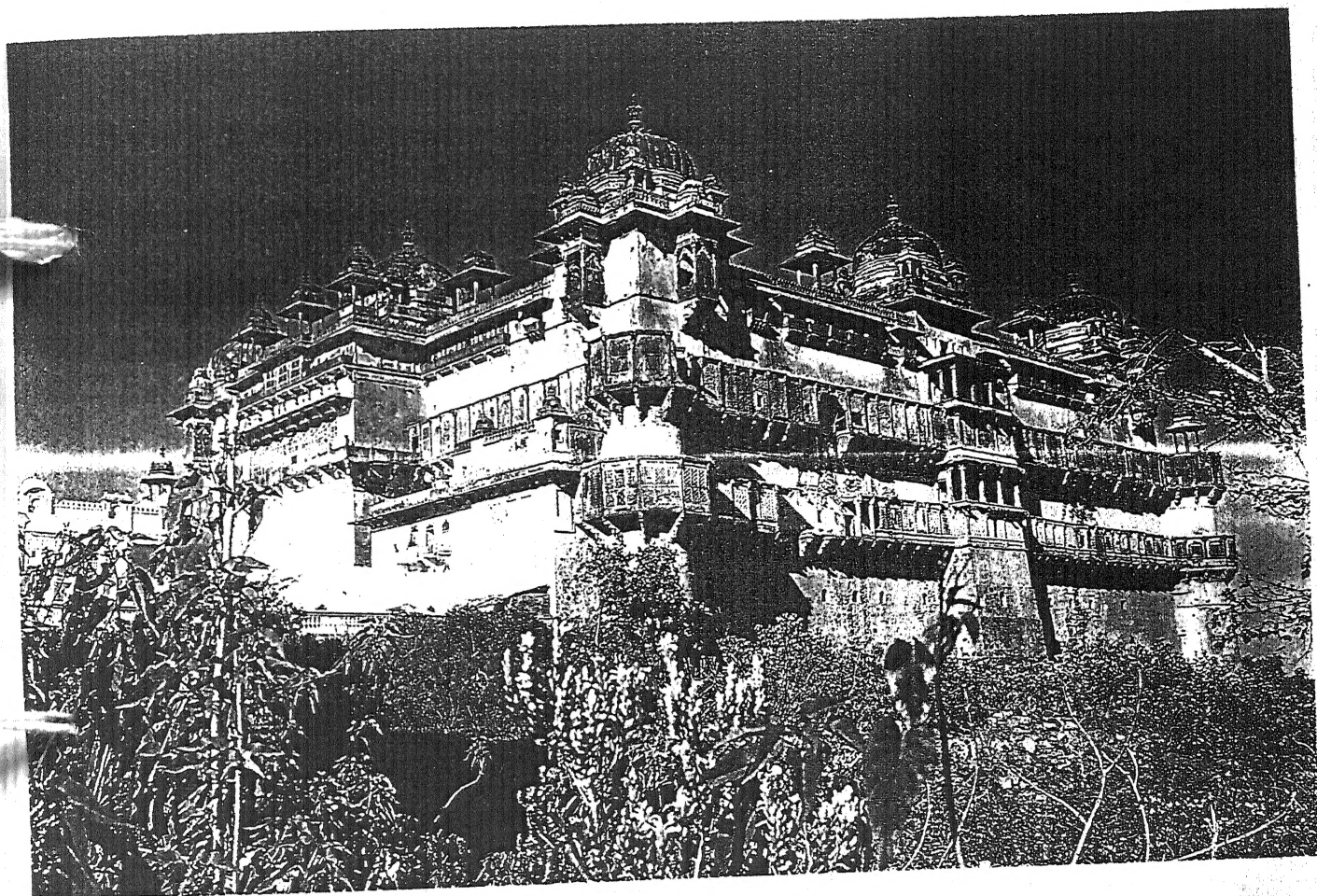
Exterior and interior court of the Jehangiri Mahal.
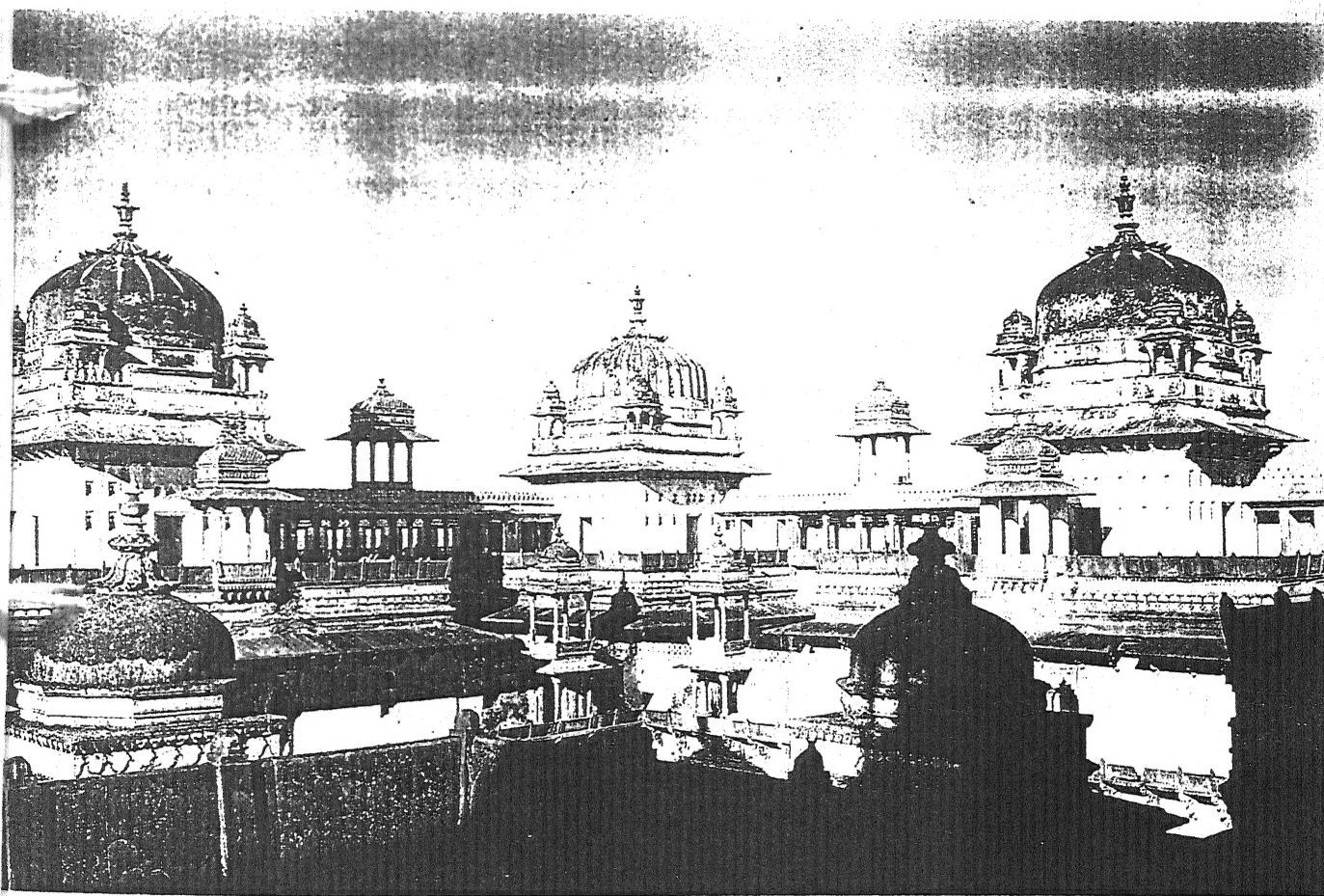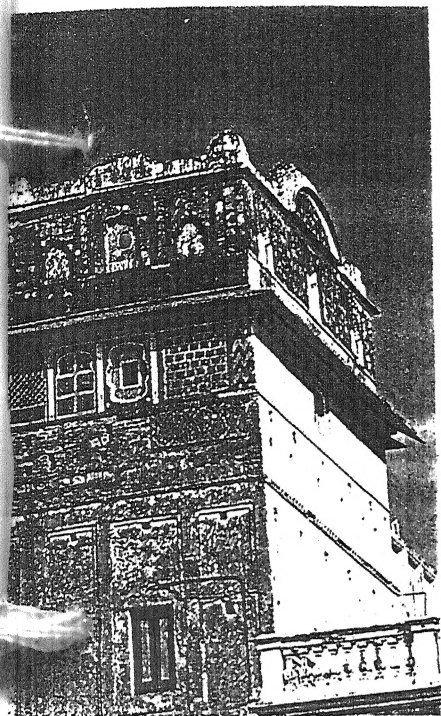
...ch tilework on the Ramji Mandir.
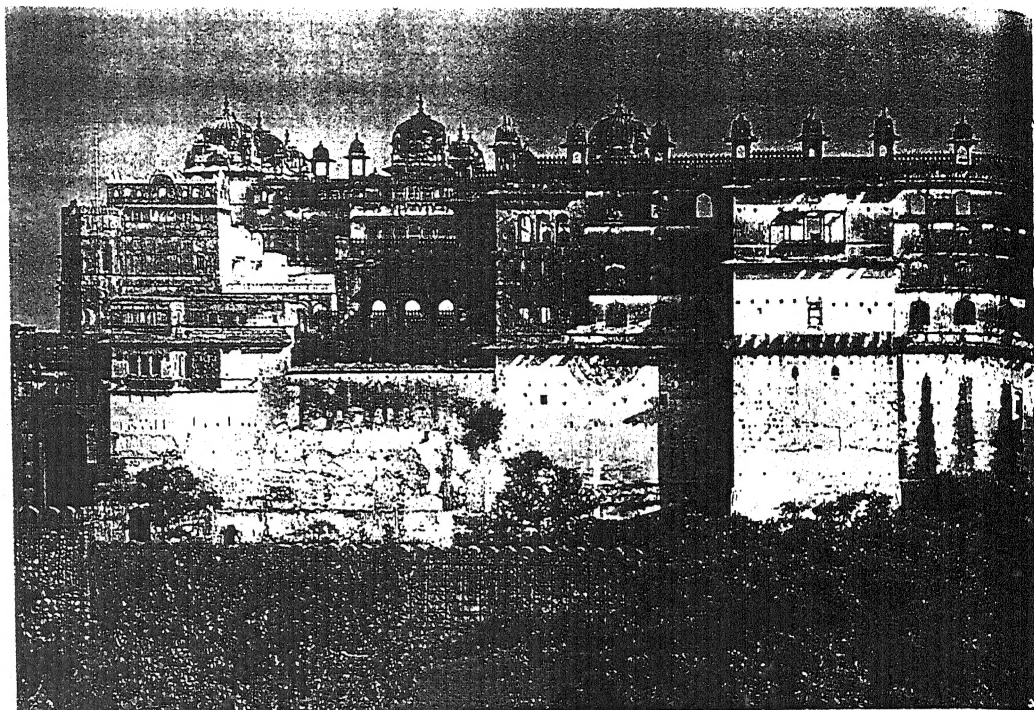
Raj Mahal and the river front.
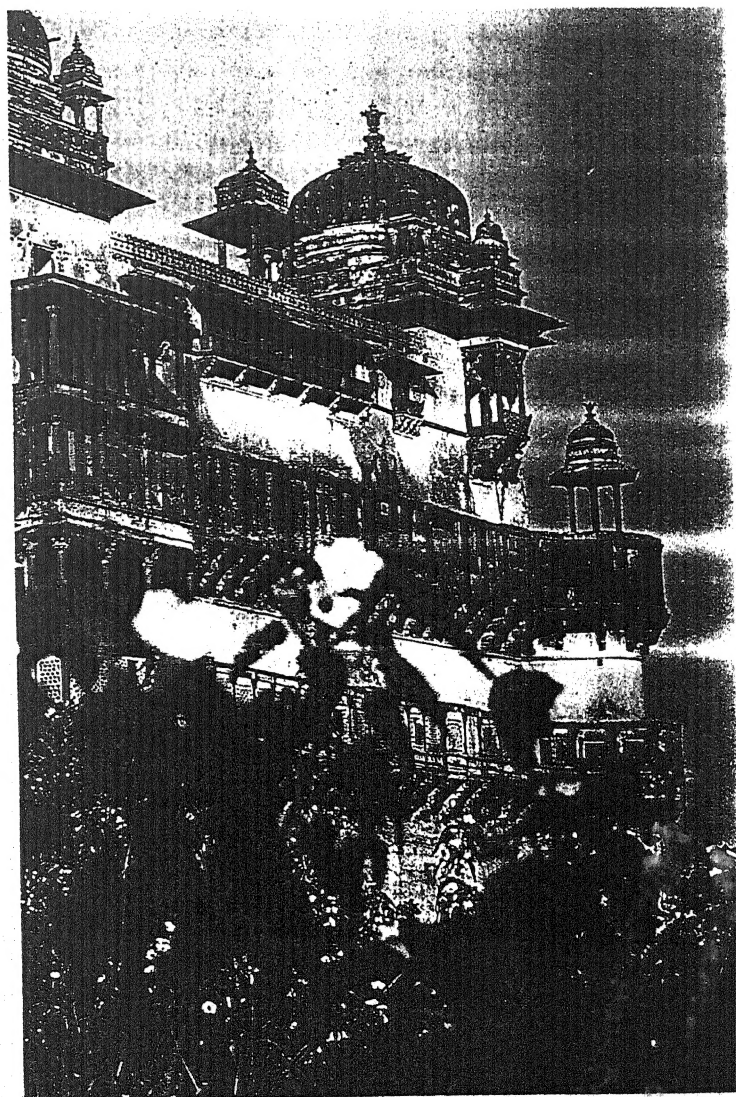
Jehangiri Mahal: a corner pavilion with galleries and chattris.

AJAIGARH

Ajaigarh Fort with
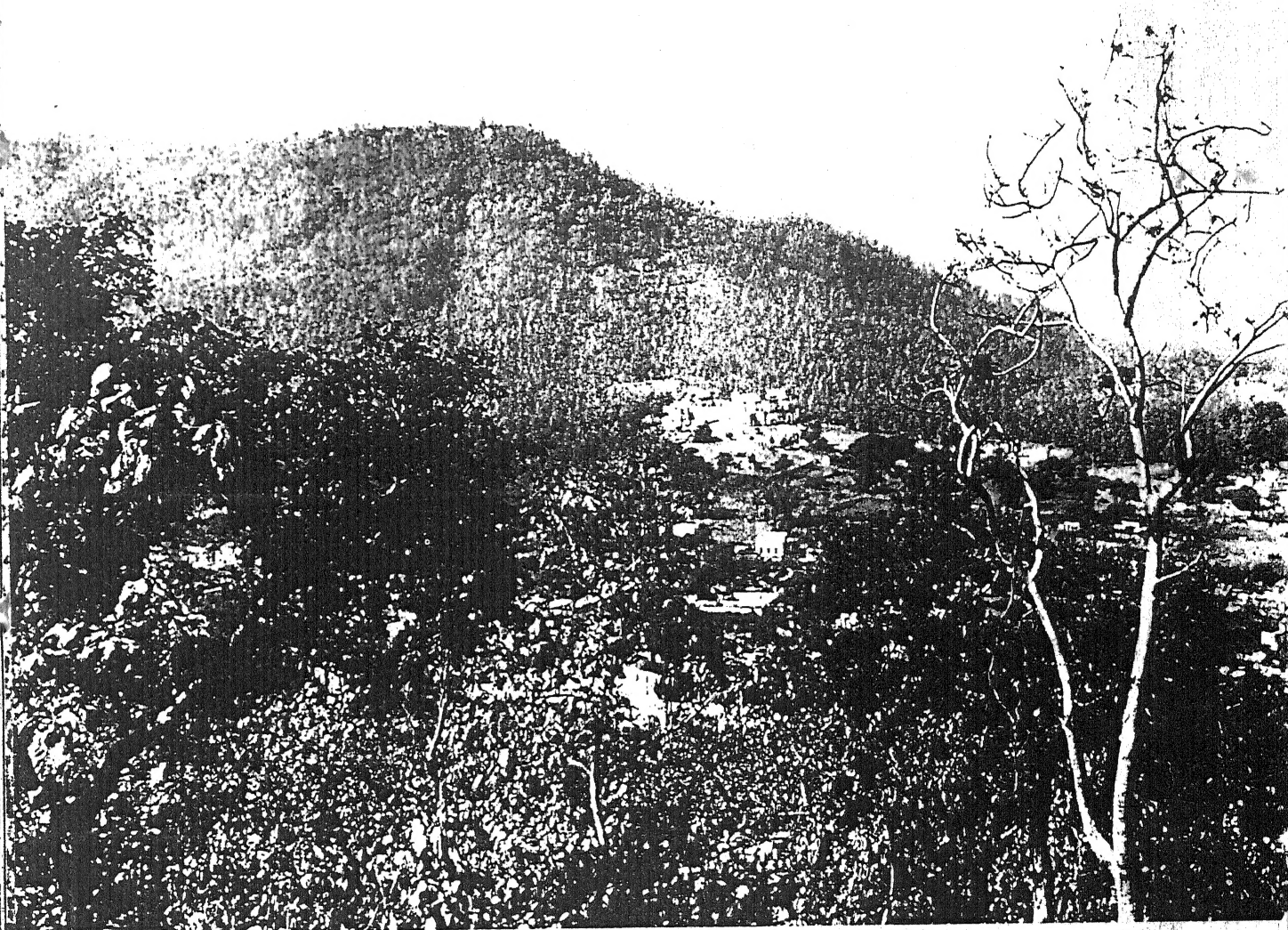
Ajaigarh has rich rewards for the traveller unafraid of distance, difficulty and danger. Reached at last deep in rough and rugged country, the challenge is not yet ended: Ajaigarh's uneven rampart is an aching 800-foot climb from the plain and nearly three miles round, enclosing a triangular spur.

The views are breathtaking but Ajaigarh's treasures are to be found even before the topmost gate. On a huge cliff face are magnificent Hindu rock carvings – a cow and calf and innumerable *suttee* hands. Years of erosion by wind and water have damaged these exquisite sculptures but they remain an awe-inspiring revelation of a vanished civilisation. Strewn amongst the ruins lie a thousand broken and fragmented icons: